पुराणवर्म

पूर्वार्द्धम्।

कालूरामशास्त्रिणा रचितम्।

* श्रीगणेशाय नमः *

A-16

* पुराणवर्म *

तस्येदं पूर्वार्द्धम्

कालूरामशास्त्रिणा रचितम्

तच्च

पं० कामताप्रसाददीक्षितेन
अमरौधायां श्रीकृष्णाख्ये मुद्रणागारे
मुद्रापयित्वा प्रकाश्यं नीतम्

द्वितीयवार १००० } विक्रमीय सम्वत् १९८६ { मूल्य २)

Printed by K. Banshi Singh
Manager S.K. Press Amrodha
(Cawn Pore)

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्यवर्य पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीण त्वाद्यनेक पदांकित जगद्गुरु
श्रीमच्छंकराचार्य श्रीशारदापीठ द्वारकासंस्थानाधीश्वर श्रीमन्माधवतीर्थ स्वामिवर्य
करकमलसञ्जात श्रीमद्राजराजेश्वराश्रमस्वामिमहाराजाः ।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

योगीन्द्रवर्य ब्रह्मचारी श्री १०८ शिवानन्दजी महन्त गादी ब्रह्मगिरजी महाराज,
सन्तोषकुटी, भामगढ़ (नीमाड़) मध्यप्रदेश।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

॥ श्री हरिः ॥

पालीवाल-गौड़-ब्राह्मण-वंश-भूषण, शान्ति-स्वरूप, भारत-प्रसिद्ध,
दानशील, आनरेरी मजिस्ट्रेट

॥ श्री १०५ सेठ नन्हेलालजी रईस ॥

होशंगाबाद (मध्यभारत)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

॥ श्री हरिः ॥

पालीवाल-गौड़-ब्राह्मण-वंश-भूषण, दान-शील, धर्म-मूर्ति

श्री १०५ सेठ घासीरामजी रईस

होशंगाबाद (मध्यभारत)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर ।

श्रीगणेशाय नमः

* उपोद्घात *

शंकाकोष और पुराणतत्वप्रकाश प्रभृति पुस्तकों के प्रकाशित होने पर स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र की इच्छा हुई कि हम पुराणों की रक्षा में कोई ग्रन्थ लिखें। दैवयोग से पूज्य पण्डित जी रुग्ण हो गये, उस रुग्णावस्था में मुझे मुरादाबाद बुलाकर यह कहा कि अब हमको विश्वास नहीं है कि हम अच्छे हो सकेंगे अतएव आप पुराणों की रक्षा में एक ग्रन्थ अवश्य लिखना। कुछ दिन पश्चात् पण्डित जी का स्वर्गवास हो गया, उनकी आज्ञा में बंधकर हमने इस ग्रन्थ के लिखने का उद्योग आरम्भ किया।

इस ग्रन्थ का लिखना साधारण नहीं था, कुछ अर्थ की भी आवश्यकता थी, हमने अपने इष्टमित्रों से दश सहस्र रुपये से अधिक माँगा किन्तु हमको पैंतीस सौ रुपया मिला। साथ ही साथ हमने पण्डितों से विचार—विवेचन—समाधान की भी सहायता मांगी। हमने पुराण देखना आरम्भ किया, अठारह पुराण देख चुके थे कि दैवयोग से हमारी दृष्टि जाती रही, विवश अन्य कई पण्डितों को वेतनरूप से रखकर अष्टादश पुराण—उपनिषद्—ब्राह्मण—दर्शन—निरुक्त प्रभृति ग्रन्थों की सूचियां तैयार कराई गईं, ग्रन्थ के प्रत्येक विषय के लेख में बहुत अधिक विचार की आवश्यकता रहती थी अतएव बहुत धीरे धीरे लिखा गया।

विद्यावारिधि जी की आज्ञा और कृपा से आज यह ग्रंथ तैयार होगया है हम इस ग्रंथ को—

श्रीभगवान्शंकर

के चरण कमलों में समर्पित करते हुये भगवान् शंभु से यह प्रार्थना करते हैं कि इस ग्रंथ के प्रचार से जो शुभफल की प्राप्ति हो वह हमारे पूज्यमित्र स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र को पहुंच कर उनके आत्मा को शान्ति और सुख दे।

हितेच्छुः—

ग्रन्थकर्ता—

❀ श्री हरिः ❀

क्षत्रिय-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ राणा दुर्गासिंहजी साहब

सोलन-नरेश ।

मरचेंट प्रेस, कानपुर ।

❀ श्री हरिः ❀

श्रीभूमिहार-ब्राह्मणवंश-भूषण, धर्मप्राण

❀ श्री १०५ रामनन्दनप्रसादनारायणसिंहजी ❀

सेहड़ा-नरेश।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

❀ श्री हरिः ❀

धर्मवीर, कालाकांकर-राजवंशावतंस

❀ श्री १०५ कुवँर छत्रपतिसिंहजी ❀

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

॥ श्री हरिः ॥

श्रीमान् कुंवर भीमसिंहजी जागीरदार साहब,

स्टेट भामगढ़ जिला नीमाड़ सी. पी. ।

मरचेंट प्रेस, कानपुर ।

श्रीगणेशाय नमः

* भूमिका *

नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥१॥

परस्पर के द्वेष से जब कोई जाति किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपने वीरत्व और प्रभुत्व को क्षय करके किसी दूसरी जाति के वश में जा पड़ती है तब उसके ऊपर भूमण्डल की समस्त जातियों का आक्रमण होता है ।

उसके धार्मिकग्रन्थ दो कौड़ी के, मान्यपूर्वज जंगली, भाषा निकम्मी, वेष-लज्जाकारी, व्यवहार बच्चों का खेल और आहार बुद्धिनाशक बतलाकर उस जाति के अयोग्य होने की घोषणा कर दी जाती है । इसके पश्चात् नये नये पाठ पढ़ा कर उस जाति को दूसरी जातियां खा जाया करती हैं । इस नियम के अनुसार भूमण्डल की अनेक जातियां दूसरी जातियों के पंजे में पड़ कर अपने स्वरूप को खोबैठी हैं उनके अस्तित्व का केवल इतिहास साक्षी है ।

आर्य जाति संसार की जातियों में से सब से पुरानी जाति है इसका लक्ष्य स्वार्थत्याग-परोपकार-धर्माचरण-ईश्वर प्रेम रहा है, जो आर्यजाति समस्त संसार पर शासन करती थी दैवयोग से वह अन्य धर्मों के पंजे में चली गई । सब से प्रथम इस जाति पर बौद्ध जाति का शासन हुआ उसके पश्चात् मुसलमानों का आक्रमण किन्तु इन दो जातियों के शासन के नीचे पहुँचने पर भी हिन्दूजाति ने शिक्षा पद्धतिं को अपने ही हाथ में रक्खा फल इसका यह हुआ कि कुमारिलभट्ट और श्री १०८ आदि जगद्गुरु शंकराचार्य प्रभृति विद्वान् बन कर बौद्ध जाति के साम्राज्य का पतन करने में सफल हुये ।

यवनों के राज्य में भी शिक्षापद्धति हिन्दुओं के हाथ में थी इसी कारण से लाखों हिन्दू अपने धर्म और अपनी जाति की रक्षा करने में बलिदान हो गये ।

शिक्षा के प्रभाव से गुरु गोविन्दसिंह जी—महाराणा प्रताप एवं शिवाजी प्रभृति महानुभावों ने नष्ट होती हुई हिंदू जाति को बचाया और मुसलमान साम्राज्य को कमजोर बना दिया।

इसी अवसर पर भारत में योरुप जाति का आगमन हुआ। धीरे धीरे शासन की बागडोर भी इसी जाति के कर कमलों में पहुँची, लार्ड मेकाले ने देखा कि भारतवासी हमसे घृणा करते हैं इस घृणा को उड़ाने के लिये पूर्वोक्त लार्ड ने शिक्षापद्धति को अपने हाथ में ले लिया, इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकें बनाकर रक्खी गईं कि जिनके अध्ययन से हिन्दू जाति जंगली जाति सिद्ध हो जावे (१) आर्य लोग इस देश के निवासी नहीं हैं किन्तु उत्तरीय हिमालय से आये हैं, उत्तरीय हिमालय के वाशिन्दों में से कुछ अमेरिका एवं कुछ भारत वर्ष में आपहुँचे अतएव अमेरिकन-यूरोपीय भारतवासी ये सब एक पिता की सन्तान हैं (२) वेद कोई महत्व की किताब नहीं, प्राचीन आर्य जो भारतवर्ष में आये थे वे सब विद्या रहित मूर्ख जंगली कृषक थे, ये लोग जो गीत गाया करते थे उन्हीं गीतों को लिख लिया तो वेद बन गये इसमें आर्यों के पूर्वजों को मूर्ख और वेद निष्प्रयोजन सिद्ध किये गये (३) इनकी भाषा संस्कृत को मृतक भाषा तथा हिन्दी को अज्ञों की भाषा कह दिया (४) इनके वेष को टेसू का स्वांग बतला कर वेष से घृणा करा दी (५) हिन्दू जाति के सात्विक आहार को बलहीन कह कर (६) इसके व्यवहारों को मूर्खों की प्रणाली की पदवी से विभूषित किया।

इसी प्रकार पाठ्यक्रम इस प्रकार का रक्खा कि जिस पाठ्य से आर्य जाति के सिद्धान्त मूर्खों के सिद्धान्त ठहर जावें और अंग्रेजी शिक्षित मनुष्य स्वतः अपनी जाति के प्रबल शत्रु बनें, इस प्रकार की शिक्षापद्धति को चालू करके लार्ड मेकाले अपने को कृतकृत्य एवं धन्य मानने लगे, इसकी खुशी में उन्होंने अपने पिता जी को पत्र लिखा वह यह है।

"MACAULEY'S LETTER TO HIS FATHER"

No Hindu who has received English Education ever remains sincerly attached to his religion. Some continue to profess it as a mother of policy, but other's profess them-

selves pure athist and some embrace christinity. We desire to form a class who may be interpretors between as and the millions we govern, a class of person Indian in blood and colour, but English in taste, in opinion, in morals and in intellect.

लार्डमेकाले के खत उसके पिता के नाम की किताब से उद्धृत।

वह व्यक्ति हिन्दू कभी नहीं रहता जो कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करता है और वह अपने धर्म को छोड़ बैठता है अथवा अपने धर्म से हार्दिक सहानुभूति नहीं रखता। और लोग पालिसी से ऐसा करते हैं कि वे ईश्वर को नहीं मानते तथा कुछ ईसाईधर्म को ग्रहण कर लेते हैं, हम एक ऐसा जत्था बनाना चाहते हैं जो हमारे तथा उन लाखों मनुष्यों के मध्य में जिन पर कि हम (हुकूमत) शासन करते हैं अनुवादकों का कार्य कर सके। यह जत्था रक्त तथा रंग में हिन्दुस्तानी हो किंतु आचार, व्यवहार, चरित्र, चिन्ता आदि में अंग्रेज होना चाहिये।

लार्ड मेकाले अपनी बुद्धिमत्ता से कृतकार्य हुये और इस विषैली शिक्षा से शिक्षित समुदाय हिन्दूजाति का शत्रु बना। जिन लोगों में संस्कृत का अध्ययन नहीं था और जिनके ऊपर अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव पड़ चुका था वे सब दयानन्द के जाल में फंस कर नास्तिक बन गये और उन्होंने अवतार, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था, मृतक श्राद्धादि वैदिक विषयों का खण्डन करना आरंभ कर दिया। धीरे धीरे दयानन्द और अन्य आर्यसमाजी वेद के इतने प्रबल शत्रु बने कि जितने औरंगजेब आदि मुसलमान बादशाह भी नहीं थे, इन्होंने वेद के ब्राह्मण भाग को पुराण लिख दिया और मंत्र भाग की ग्यारह सौ इकत्तीस किताबों में से केवल चार किताबों को वेद मान ग्यारह सौ सत्ताइस को वेद डिगरी से बाहर निकाल दिया।

पुराण

अब ये आर्यसमाजी अनुभव करने लगे कि जबतक पुराणों का पूर्णरूप से खण्डन न किया जावेगा तब तक पूर्णरूप से हिन्दू धर्म और हिन्दूजाति

सदा के लिये मृत्यु के मुख में नहीं जा सकेगी। इस गंभीर गवेषणा को आगे रख कर इस समुदाय के मनुष्यों ने पुराणों के खण्डन में लेखनियां उठा कर भांति २ की सहस्रों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें पुराणों की असत्यता, बनाने वालों की अनभिज्ञता, मानने वालों की मूर्खता इस प्रकार से सिद्ध कर दी गई कि उन लेखों को पढ़कर भारत का साधारण जन समुदाय भ्रम में पड़ कर दिनोंदिन हिन्दूधर्म को तिलाँजलि देता जा रहा है। हिन्दू लोगों में आस्तिकता बनी रहने और पुराणों की सत्यता दिखलाने के लिये हमने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है पाठक इस पर विचार करें।

पारितोषिक।

जो आर्यसमाजी इस ग्रन्थ का आरंभ से अन्त तक खण्डन करेगा हम उसके ऋणी होंगे और एक सहस्र रुपया इनाम देंगे किंतु आर्यसमाजी संस्कृत साहित्य से सर्वदा दूर रहते हैं, इन मूर्खों में कोई भी मनुष्य ऐसा निकल नहीं सकता कि पुराण वर्ग के ऊपर लेखनी उठा दे। यदि किसी ने अपनी मां का दूध पिया हो तो पुराणधर्म का खण्डन करे। यह क्या बात है गली कूचों में व्याख्यान देकर और किताबें लिख पुराणों को गपोड़ा बतलावें और जब कोई इनके लेख की असत्यता सिद्ध करे तब घरों में घुस कर रोवें, ऐ आर्यसमाजियो! सब इकट्ठे हो जाओ यदि तुम सच्चे हो तो उद्योग करो पुराणधर्म के खण्डन का नहीं तो हम तुमको मूर्ख, भीरु, शास्त्रानभिज्ञ समझ लेंगे।

ग्रन्थकर्ता

❀ श्री हरिः ❀

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, धर्मप्राण—

पूज्यपाद श्री १०८ महन्त यदुनन्दनदासजी महाराज

अध्यक्ष चौकीमंदिर, चम्पानगर (भागलपुर)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

श्री हरिः

श्रीसनातनधर्म-संरक्षक, वैष्णवधर्मपालकाग्रगण्य,

श्री १०८ महन्त चतुर्भुजदासजी,

आनरेरी मेजिस्ट्रेट, कोंच, जिला जालौन।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

❀ श्री हरिः ❀

माननीय राव साहब सेठ श्री १०५ पं० हरीशङ्करजी रईस,

आनरेरी मजिस्ट्रेट, हरदा (मध्यभारत)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

॥ श्री हरिः ॥

धर्मप्राण माहेश्वरी-कुल-कमल-दिवाकर

श्रीमान् स्वर्गीय सेठ श्रीनाथजी वाहेती,

हरदा (मध्यभारत)

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

॥ श्री हरिः ॥

धर्मदिवाकर माहेश्वरी-वंशावतंस वाहेती-कुल-भूषण।

श्रीमान् सेठ चंपालालजी आनरेरी मजिस्ट्रेट,

हरदा (मध्यभारत)

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

श्रीगणेशाय नमः

विषय-सूची

वास्तविक पुराण स्वरूप

पुराण संख्या।

देव विवरण

संख्या	विषय	पृष्ठ

देव संख्या

देवशक्ति

देवचरित्र

ईश्वर सत्ता

संख्या	विषय	पृष्ठ
	ईश्वर स्वरूप	

ईश्वर चरित्र

* श्री हरिः *

* श्रीवैष्णवाचार्य महन्त श्री १०८ रामदासजी *

दरबार पिंडोरी महंताम् (पंजाब)

मरचेंट प्रेस, कानपुर ।

ब्राह्मण वंशावतंश पं॰ नाथूलालजी द्विवेदी रईस खिलचीपुर (सेन्ट्रल इंडिया)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

❁ श्री हरिः ❁

धमवीर, प्यारीसंगत के संस्थापक, बंवई पेठी के अध्यक्ष

स्वर्गीय श्री १०५ सेठ बाधूराम ट्वरमलजी रईस

शिकारपुर (सिंध)

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

❀ श्री हरिः ❀

कायस्थ-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ राय कृष्णकिशोरजी साहब ताल्लुकेदार

गोरखपुर।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

मानननीय श्री १०५ पं० भगवानदीनजी शुक्ल

ताल्लुकेदार, शाहपुर (मध्यभारत)।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

❀ श्री हरिः ❀

श्रीक्षत्रिय-कुल-कमल-दिवाकर

श्री १०५ कुंवर वेणीमाधवसिंहजी

दर्बार जसवाड़ी जि० नीमाड़।

मरचेंट प्रेस, कानपुर।

* श्रीगणेशायनमः *

मंगलाचरण ।

यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथाऽन्ये ।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥१॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२॥
शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥३॥
प्रणम्य विष्णुं शिरसा त्रिमूर्तिं साकारमाकारविवर्जितं यत् ।
तनोति दिव्यं सुपुराणवर्म बालप्रबोधाय च कालुरामः ॥४॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति

पुराणं शब्द नपुंसकलिङ्ग वाचक है । पुरा अव्यय से "पुराभवं" इस अर्थ में "ट्यु" प्रत्यय है" सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४ । ३ । २३,, । इस सूत्र से यद्वा" पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन २ । १ । ४९,, । इस सूत्र से निपातन द्वारा तुड् भाव । यद्वा" पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण-कल्पेषु ४ । ३ । १०५,, । इस सूत्र से अथवा पुरा अव्यय पूर्वक "नी" धातु से "ड" प्रत्यय और णत्व इस प्रकार से पुराण शब्द बनता है निरुक्तकार यास्कमुनि ने पुराण शब्द की व्युत्पत्ति "पुरानवम्" "पुराणम्" लिखी है जिसका अर्थ है जो कि पहले किसी समय में नये हों उनका नाम पुराण है । इस व्युत्पत्ति मात्र से सिद्ध है कि इनमें पूर्व कल्पों तक की कथा लिखी गई है । फिर हमको नहीं मालूम इनको

नूतन किस विचार से कहा जाता है । यदि पुराणों को नवीन कोई कह सकता है तो वही कह सकता है कि जिसको व्युत्पत्ति तक का भी ज्ञान न हो तथा जो पुराण ज्ञान में अनभिज्ञ हो । विचार शील सज्जन तो व्युत्पत्ति मात्र से ही पुराणों को प्राचीन समझते हैं ।

पुराण काल ।

वादी पुराणों के नवीन होने में पहली शङ्का जो दिखलाते हैं वह यह है—

(१) रामानुजाचार्य विक्रमीय सम्वत् १२ में हुए हैं उन्होंने लोगों को शंख चक्रादि चिन्हों से चक्राङ्कित किया था परन्तु लिङ्गपुराण में उस मत का खण्डन किया है । तब सिद्ध हुआ कि लिङ्गपुराण रामानुज के बाद में बना अतएव व्यासकृत नहीं है ।

रोप का चश्मा आंख पर रखकर भारतीय पुराणोंका अवलोकन किया जाता है इसी कारण से पुराण नवीन और अमान्य जान पड़ते हैं । यूरोप की यह मर्यादा है कि पहले घटना हुई और पश्चात् वह घटना लेख में आई किन्तु भारतवर्ष में यह नियम ऋषि, योगी और अवतारों के लिये लागू नहीं है । ऋषि योगी और अवतार तीनों ही भूत, भविष्य, वर्तमान के ज्ञाता होते हैं इस कारण वे भविष्य की बात को भी पहिले ही लिख दिया करते हैं अतएव व्यास जी ने पहिले ही से लिख दिया तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ । यदि वादी यह आग्रह कर बैठे कि नहीं नहीं तुम्हारी ये बातें बनावटी हैं हम नहीं मानेंगे ऐसी दशा में हम यह कहेंगे कि पुराण अभी बने ही नहीं । क्योंकि पुराणों में कल्कि अवतार का चरित्र आता है और कल्कि अवतार कलियुग के अन्त में होंगे अतएव पुराण कल्कि अवतार होने के पश्चात् लिखे जावेंगे । जिस प्रकार योगी तथा ईश्वरावतार वेदव्यास जी कल्कि अवतार का चरित्र अवतार होने से पहिले ही पुराणों में लिख सकते हैं तो फिर भगवान् रामानुजाचार्य के पश्चात् होने वाली घटनाओं को व्यास जी पहिले ही से पुराणों में क्यों नहीं लिख सकते । घटना होने से पहिले लेख लिखा जाना यह वेद और शास्त्र दोनों ही में पाया जाता है । आगे चल कर वेदों का भी उदाहरण मिल जावेगा विषय भिन्न होने से इसको हम यहां पर छोड़ते हैं ।

वास्तव में शंख चक्रों का खण्डन जो लिङ्गपुराण में पाया जाता है यह खण्डन करने वाला श्लोक लिङ्गपुराण का असली व्यासकृत नहीं है किन्तु क्षेपक है

प्राचीन समय में जब कि संसारमें पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं उस समय में यह चाल थी यदि कोई श्लोक किसी पण्डित ने कहा या किसी पुस्तक में मिला तो फिर पुस्तक पढ़ने वाला जहां उसको उचित समझता था ऊपर या नीचे के पुस्तक के खाली भाग में लिख लेता था और जहां उसको कहना होता था वहां कुछ निशान बना देता था जिसका अभिप्राय यह होता था कि यह श्लोक यहां कहा जावेगा । इसी प्रकार वैष्णवों से द्वेष रखनेवाले किसी पण्डित ने यह श्लोक लिखा, छपते समय प्रेसकी असावधानी से यह पुस्तक की श्लोक संख्या में आगया । क्षेपक होने में हमारे पास दो प्रमाण हैं (१) वेद व्याख्याता पण्डित भीमसेनजी शर्मा तथा मेरे मित्र विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी इस श्लोक को क्षेपक लिख चुके हैं और (२) पुराणों में किसी भी सम्प्रदाय का कहीं पर खण्डन नहीं होता । पुराणका यह सिद्धांत ही नहीं है तो फिर शंख चक्रादि के खण्डन करने वाला श्लोक क्षेपक नहीं तो और क्या है ?

(२) पुराणों के व्यासकृत न होने में यह प्रमाण देते हैं कि तौजुक जहांगीरी नामक पुस्तक में आलू तम्बाकू, और गोभी के लिये लिखा है कि जहांगीर बादशाह के बाप के समय एक पादरी इन चीजों को अमेरिका से लाया था जिसको २८९ वर्ष हुये परन्तु ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि (तमालं भक्षितं येन०) तथा पद्मपुराण में लिखा है कि (धूम्रपानरतंविप्रं०) इन श्लोकों में तम्बाकू पीने की निन्दा की है इससे ये पुराण २८९ वर्ष से इधर के ही हैं ।

इतना अच्छा हुआ कि पादरी साहब जहांगीर बादशाह के बाप के समयमें तमाखू ले आये और जो कहीं उस समय तमाखू न लाकर आजकल ले आते तो फिर ये पुराण डेढ़ ही सप्ताहके बने ठहर जाते अमेरिका में तमाखू सस्ता और भारत वर्ष में महंगा होगा इस कारण पादरी साहब ले आये और कुछ मुनाफा खा लिया । इससे पुराण नये कैसे होगये । या अमेरिका में बढ़िया तमाखू होता होगा, पादरी साहब बतौर तोफे के लाये होंगे, बादशाहकी नजर किया होगा, बादशाह प्रसन्न हुए होंगे, नहीं मालूम इससे पुराण नये कैसे हो गए । क्या इस घटना से पहिले भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता था । बुद्धि की बलिहारी है । अमेरिका के तमाखू से भारतवर्ष में तमाखू की उत्पत्ति मानना एक विलक्षण ही बात है । पादरी साहब अमेरिका से तमाखू लाए, इस तमाखू शब्द से संसार में तमाखूं के पत्ते का ग्रहण होता है।

उक्त पादरी तमाखू का पत्ता लाए, फिर क्या भारतवर्ष में वह तमाखू का पत्ता बोया गया, फिर वह जमा, बड़े २ पेड़ हुए उससे भारतवर्ष में तमाखू चला। तमाखू का पत्ता नहीं बोया जाता किन्तु बीज बोया जाता है पादरी के जरिए से अमेरिका के तमाखू का बीज भारतवर्ष में आना इसका इतिहास साक्षी नहीं है तो फिर क्या हम भी मानलें कि तमाखू के पत्ते से तमाखू पैदा हो गया ? लिखनेवालों को तमाखू की उत्पत्ति का विचार करना चाहिए था, विचार को ताक में रख कर ही अमेरिका के तमाखू से भारतवर्ष के तमाखू की उत्पत्ति बतलाई गई है जो निर्मूल है. अतएव भारतवर्ष में तमाखू पहिले ही से होता था उसीका पुराणों में निषेध है।

दुर्जनतोष न्याय से हम माने लेते हैं कि पादरी के तमाखू लाने से पहिले भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता था और हम यह भी माने लेते हैं कि आज भी भारतवर्ष में तमाखू नहीं होता फिर इतने से क्या पुराण नए हो जावेंगे ? जिस सज्जन ने पुराणों पर तमाखू की शङ्का करके पुराणों को नवीन बतलाया है उसने अपनी दूसरी पुस्तक में अर्जुन का विवाह अमेरिका देश में होना लिखा है सम्भव है कि व्यासजी अर्जुन की बरात में गए हों और अमेरिका में तमाखू देख आए हों या व्यासजी बरात न गए हों तो किसी दूसरे बराती ने व्यासजी से अमेरिकाके तमाखू का कुछ जिकर किया हो, या राजा युधिष्ठिर की राजसूय यज्ञ अथवा अश्वमेध यज्ञ में कोई अमेरिका निवासी आया हो और उसने गुड़ २ मचाया हो उसी के ऊपर व्यासजी ने निषेध लिख दिया हो।

वास्तव में तो इसका ठीक उत्तर यह है कि योगी तथा अवतार को ब्रह्माण्ड भर का ज्ञान रहता है, जब व्यासजी योगी तथा अवतार थे और उनको समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान था तो क्या अमेरिका ब्रह्माण्ड से बाहर है ? यदि आप यह कहें कि हम इस बात को नहीं मानेंगे कि योगी को ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है तो इसके ऊपर हम इतना ही कहेंगे कि आप मानें चाहे न मानें क्या हमने आप के मनवाने का ठेका लिया है। आप मानें या न मानें किन्तु दर्शनों से यह पूरा पता लगता है कि योगी को ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है इसकी पुष्टि में हम योगदर्शन के विभूतिपाद का एक सूत्र लिखते हैं देखिये—

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।

सूर्य में संयम करने से समस्त जगत् का यथार्थ ज्ञान होता है । जब योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान होता है और इन भुवनों के अन्तर्गत अमेरिका भी है तो अमेरिका में रहनेवाले तमाखू का निषेध व्यासजी ने कर दिया तो इसमें शङ्का के बाप का क्या दावा है ?

(३) शंकराचार्य जी रामानुज से पूर्व हुये क्योंकि रामानुज ने शङ्करभाष्य का खंडन किया है मायावाद शङ्कराचार्य ने चलाया था उस मायावादी की निन्दा पद्म पुराण में की है कि—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ।

इससे सिद्ध हुआ कि बुद्ध, शङ्कर और रामानुज से पीछे पद्मपुराण बना इससे व्यासजी का बनाया नहीं हो सकता ।

कथा

मजे की बात है ऋग्वेद ४ अनुवाक् ३ सूक्त ५ में लिखा है कि 'अहं मनुरभवं' ईश्वर कहता है कि 'हमही ने मनु शरीर धारण किया है' फिर मनुस्मृति अध्याय ३ में श्राद्ध में पितरों को पुराणों का सुनाना लिखा है, लेखक की समझ के अनुसार पुराणों के बाद मनुस्मृति बनी । तब ही तो मनुस्मृति में पुराणों का जिकर आया और मनु के बाद वेद बने क्योंकि वेदों में मनु का जिकर है । इतना तो लेखक को भी मानना पड़ेगा कि पुराण वेदों से पहिले बने हुये हैं यदि पुराण भगवान् रामानुज के समय में बने हैं तो फिर वेद बीरबल के समय में बने हैं । न वेदों का दोष, न पुराणों का दोष, लेखक की समझ का दोष है । जब पुराणकर्ता भविष्य काल को जानता है तो फिर भविष्य की एक बात कहदेने में आश्चर्य कैसे आन कूदा । हम एक बार फिर दिखलाते हैं कि योगी और अवतार को भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल एक से होते हैं देखिये योगसूत्र—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।

पूर्वोक्त धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम, अवस्थापरिणाम, इन तीन प्रकार के परिणामों में ध्यान समाधि रूप संयम करने से योगी पुरुष को भूत भविष्य का ज्ञान हो जाता है ।

जब योगी को भविष्य का ज्ञान होता है तो फिर भावी मायावाद का ज्ञान हो जाना दुरुह और असम्भव कैसे ? वास्तव में "मायावादसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेवच" यह पाठ क्षेपक है। पाठक कहेंगे कि आप अच्छा उत्तर देने लगे सबको क्षेपक ही बतलाने लगे। इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि हम करें भी क्या वादी ने क्षेपक ही आगे रक्खे हैं; वादीका अभिप्राय यह है कि शंका तो कम मिलतीहैं और शंकाओं का बढ़ाना अवश्य है अतएव क्षेपक ही सम्मिलित किये जावें, वादी के इस अभिप्राय से शंकाओं में क्षेपक आये हैं हम इनका उत्तर और प्रकारसे भी देसकते हैं किन्तु जिनको हमसे पहले के पण्डितों ने क्षेपक माना है फिर हम भी उनको क्षेपक क्यों न मान लें। द्वितीय—पुराणों का प्रौढ़ सिद्धान्त है कि वे किसी सम्प्रदाय के सिद्धांत का खण्डन नहीं करते अतएव प्राचीन पण्डितों का क्षेपक लिखना ठीक है और उसी को हम यहां उत्तर में देते हैं।

(४) सब विद्वानों की सम्मति है कि अठारह पुराण महाभारत के पीछे बनाये गये हैं क्योंकि पुराणों में महाभारत का नाम आता है परन्तु महाभारत में पुराणों का नाम नहीं है।

मको नहीं मालूम कौन कौन विद्वान की सम्मति है और वे सम्मतियां किस पुस्तक में लिखी हैं। महाभारत से पहिले श्रीमद्भागवत को छोड़ कर समस्त पुराण बन चुके थे पश्चात् महाभारत बना और महाभारत के पश्चात् श्रीमद्भागवत बना यह लेख देवी भागवत के प्रथम श्लोक के नीलकंठ कृत संस्कृत टीका में पाया जाता है नहीं मालूम इसके विरुद्ध समस्त पण्डित कहां लिख गये। महाभारत और पुराण दोनों ही पुस्तक व्यास जी ने लिखे हैं, कोई पहिले लिखा कोई पश्चात् लिखा इसमें हानि क्यां हो गई और ये आधुनिक तथा नवीन कैसे हो गये। पुराणों का नाम महाभारत में तो क्या वेदों में भी पाया जाता है क्या पुराणों का नाम आजाने से वेद नवीन हो जावेंगे और महाभारत में तो पुराणों का नाम आता है नीचे देखिये—

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सतम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।

महाभारत ।

पुराण, मानवधर्म शास्त्र, साङ्गवेद, और चिकित्सा ये चारो आज्ञासिद्ध हैं इनको दलीलों से नहीं काटना।

फिर नहीं मालूम शङ्काकर्ता के मत में महाभारत में पुराण का नाम क्यों नहीं आया और यदि नाम है तो फिर ये आधुनिक काल के बने हुये कैसे होगये पाठक इस पर विचार करें।

(५) महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २३२ व २३३ से विदित है कि व्यास पुत्र शुकदेवजी राजा परीक्षितके गर्भ में आने से भी बहुत पहिले मर चुके थे फिर महाभारत के ९६ वर्ष पीछे शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को भागवत कैसे सुनाई?

शान्ति पर्व अ० २३२ और २३३ में शुकदेवजी की आश्चर्यजनक योग शक्तियां दिखलाई गई हैं यहां पर शुकदेवजी का मुक्त होना लिखा है मुक्त पुरुष मरते नहीं किन्तु अमर होजाते हैं इसको "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति" "अमृतास्ते भवन्ति" इत्यादि वेद प्रमाणों से मोक्ष में मृत्यु का निषेध किया है। व्यासजी ने स्वर्गारोहणिक पर्व में लिखा है कि राजा युधिष्ठिरजी का मृत्यु नहीं हुआ किन्तु धर्मावतार राजा युधिष्ठिर जी इसी भौतिक शरीर सहित स्वर्ग को गये इससे उनको मर गये लिखना व्यास जी के लेख इतिहास से ही विरुद्ध है। तथा शुकदेवजी मुक्त होगये वा अमरभाव को प्राप्त हो गये इससे उनको मर गये कहना लिखना भी सर्वथा असत्य है। "य आत्माऽपहत पाप्मा" इत्यादि छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि वह मुक्त पुरुष सत्य काम, सत्यसंकल्प हो जाता है उस मुक्तजीव के शुद्ध दिव्यनेत्र, शुद्धमन आदि इन्द्रियां भी संकल्पसिद्ध हो जाती हैं। छान्दोग्य० प्रपा० ८ खण्ड २ क्रं० १०

यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।

कठो० नि०

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि मुक्तपुरुष जिस जिस लोक तथा देश कालादि में जैसे जैसे नाम रूपादि द्वारा जोकुछ काम करना चाहता है सोसब करसकता है। यह भी सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जो देवयोनिस्थ प्राणी मनुष्यों को अब नहीं दीखते उनदेवों के साथ

भी पूर्वकाल में उत्तम प्रवज्ञ धर्मात्माओं का मेल, वार्तालापादि हुआ करता था तब मानना होगा कि देवों के तुल्य मुक्त हुये शुकदेव जी ने भी सिद्ध होकर प्रवज्ञ धर्मात्मा राजा परीक्षित को भागवत सुनाई सो ठीक है। यह पूर्वोक्त समाधान शास्त्र मर्यादा के सर्वथा अनुकूल है तथापि हम इसकी पुष्टि के लिये प्रमाण भी दिखलाते हैं देखिये- महाभारत में शुकदेव जी की अवस्था मोक्ष होने से पहिले पचीस वर्ष की लिखी है और श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय १९ श्लोक २६ "तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम्" जब राजा परीक्षित गंगा तट पर आसन लगाकर मृत्यु आने से पूर्व में बैठे तब बहुत से देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि लोग राजा के पास मिलने को आये जिनमें वसिष्ठ, विश्वामित्रादि सभी सिद्ध तथा मुक्त लोग एकत्र हुए। उसके पश्चात् सोलह वर्ष की अवस्था वाले जिनके हाथ पांव आदि शरीरांग अति कोमल सुकुमार थे ऐसे फैले केशों वाले, जटाधारी, दिगम्बर नाम नग्न परमहंस रूपधारी शुकदेवजी आये उनको देखकर सब ऋषि, मुनि अपने अपने आसनों से उठे तथा राजा ने शुकदेव जी का पूजन करके उत्तम आसन पर बैठाया और कहा मालूम होता है कि कृष्ण भगवान ही मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं क्योंकि "अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम्" ३६। यदि ऐसा न होता तो जिनकी गति नाम चलना फिरना अव्यक्त नाम प्रत्यक्ष नहीं उन आप जैसे मुक्तपुरुष का दर्शन हम मनुष्यों को क्यों कर हो सकता था। यहां राजा ने अपने को मनुष्य कहते हुये शुकदेव जी को मनुष्यत्व से पृथक् दिखाया तथा अव्यक्त गति कहने से दिखाया है कि स्थूल पंचमहाभूतजन्य देहधारियों की सी गति उनकी नहीं है। इत्यादि श्रीमद्भागवत के लेख से ही साफ साफ सिद्ध है कि यहां राजा परीक्षित को भागवत सुनाने वाले यथेच्छाचारी मुक्त शुकदेव हैं किन्तु मोक्ष से पहिले मानुषदेहधारी शुकदेव ने भागवत नहीं सुनाई महाभारत और श्रीमद्भागवत दोनों में ही शुकदेव जी को मुक्त लिखा है मर जाना नहीं लिखा।

(६) नारद जी व्याकुल होकर बद्रिकाश्रम में विष्णु के पास गये, वह वहां तप करते थे उन्होंने नारद से समाचार पूछा, नारदजी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि म्लेच्छों ने महादेव जी का मंदिर तोड़ डाला, महादेवजी ज्ञानवापी अर्थात् कुए में डूब गये, अब इस बात को सब विद्वान् जानते हैं कि यह वृत्तान्त जो नारद ने

बिष्णु को सुनाया औरंगजेब के समय में हुआ जिस औरंगजेब ने विक्रम के संवत् १७१३ से १७६४ तक राज्य किया अतएव भागवत को बने केवल १८७ वर्ष हुये।

भागवत के किसी स्कन्ध के किसी अध्याय में भी यह कथा नहीं है और न इस कथाका भागवत में कहीं इशारा है फिर नहीं मालूम किस कारण से यह शङ्का उठाई गई। प्रतीत होता है कि शंका करने वाले ने भागवत को नहीं देखा और लोगों के कथन रूपी कथा को सुनकर शंका लिख मारी, पाठक इसके ऊपर बिचार करें कि ऐसे ऐसे मिथ्या कलंक लगाकर पुराणों को अयोग्य और असत्य बतलाया जाता है, हमारी समझ में तो यह इन लोगों को आग्रह ही हो गया है कि किसी प्रकार पुराणों से तिलाञ्जलि हो जावे तो अच्छा है, ये स्वतः चाहे तिलाञ्जलि देदें किंतु इन मिथ्या लेखों से विचारवान् मनुष्य तो तिलाञ्जलि नहीं देसकता।

(७) अट्ठारह पुराणों में सब ऋषि मुनियों और देवताओं की निन्दा लिखी है और उन पर मिथ्या कलङ्क लगाये गए हैं। यथा ब्रह्मा जी को बेटी से व्यभिचार का कलङ्क, कृष्णजी को कुब्जा और राधा से, महादेवजी को ऋषिपत्नियों से इत्यादि परन्तु बुद्धदेव को कोई दोष नहीं लगाया इससे पुराणों के कर्त्ता बौद्धमत वाले हैं।

इसका विस्तार से उत्तर आगे लिखा जावेगा कुछ सूक्ष्म यहां भी लिखे देते हैं किसी पुराण में यह कथा नहीं आई कि महादेव ने ऋषियों की पत्नियों के साथ व्यभिचार किया हो। राधा का नाम श्रीमद्भागवत के किसी श्लोक में नहीं आया। कुब्जा के साथ कृष्ण का भोग बतलाते हैं परन्तु भगवान् कृष्ण जिस समय कुब्जा के यहां गए उस समय श्रीकृष्णचंद्र की आयु ग्यारह वर्ष की थी, ग्यारह वर्ष के बच्चे में भोग की शक्ति आजाना नहीं मालूम किस वैद्य, हकीम, या डाक्टर ने सिद्ध कर दिया है। ब्रह्मा का सरस्वती के साथ में जो चरित्र पुराण में है उससे अधिक वेद में है। वेद में यह कथा तीन स्थानों में आई है और तीनों ही स्थानों में सायणभाष्य है। सबको तो हम आगे लिखेंगे और विस्तार से उत्तर भी आगे ही लिखेंगे यहां पर केवल ऋग्वेद का एक मंत्र दिए देते हैं वह यह है—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् ।

पिता ब्रह्मा अपनी लड़की के साथ में भागा । ब्रह्मा के कलङ्क के कारण ही पुराण बौद्धों के बन ये हैं तो इसी नियम से वेद भी बौद्धों के बनाए हुए हैं क्योंकि वेदों में भी ईश्वरावतार और देवों के लिए वे ही कथा लिखी गई हैं । पाठक लोग इस पर विचार करें कि जब पुराणों में वे कथा आजावें तब तो पुराण बौद्धों के बनाये होजावें और वे ही कथा यदि वेदों में आजावें तो वेद ईश्वर कृत हो जावें ।

(८) व्यास के बनाए हुए वेदान्त सूत्र एवं मीमांसा की व्याख्या और योगभाष्य जगत्प्रसिद्ध है उनका धर्म भी विद्वानों पर प्रकट है परन्तु ये अट्ठारह पुराण उनसे अत्यन्त विरुद्ध हैं । इनका कोई सिद्धान्त पूर्वोक्त शास्त्रों से नहीं मिलता जिससे अच्छे प्रकार ज्ञान हो जाता है कि ये ग्रंथ उनके बनाए हुए नहीं हैं ।

खंडन वादी ने विरोध होने का कोई प्रमाण नहीं दिया पुराणोंका उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग, तथा याम्यागति आदि सबही बिषय वेदान्त सूत्र के अनुकूल हैं और पुराणों का याज्ञिक विभाग सोलह आने मीमांसा से मिल कर चलता है वेदान्तसूत्र और योगदर्शन में विग्रहवती देवता, मूर्तिपूजा, अवतार ये सब बातें पुराणों के तुल्य लिखी गई हैं (भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात्) इस योग सूत्र पर व्यासभाष्य में चतुर्दश भुवनों का विचार सर्वथा पुराणों के अनुकूल लिखा है "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्" योग सूत्र के व्यासभाष्य में ईश्वर का अवतार लिखा है इत्यादि सैकड़ों बातें पुराणानुकूल योग भाष्यादि में लिखी हैं । वादी का लेख मिथ्या है ।

(९) देवीभागवत में लिखा है कि आर्यावर्त के एक राजा का लड़का म्लेच्छ वेश्या पर आसक्त होकर धर्म से पतित हो गया । यह प्रत्यक्ष है कि जब मुसलमान नहीं आये थे तब मुसलमान रण्डियां भी न थीं, तब उन पर कोई आसक्त भी नहीं होता था । इससे निश्चय है कि देवीभागवत मुसलमानों के समय में बनी व्यासकृत नहीं है ।

म्लेच्छ शब्द का मुसलमान अर्थ करना भूल है जो अक्षरों का उच्चारण शुद्ध न कर सके इसका नाम म्लेच्छ है देखिये व्याकरण का महाभाष्य–"तेऽसुराहेलयो हेलयइति' कुर्वन्तः पराबभूवुस्तस्माद्ब्राह्मणेन नम्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो हवाएषयदपशब्दः म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्" "विवरणम्–निन्दार्थवाहेन न म्लेच्छतवा इतिम्लेच्छनं निषिध्यते तत्रकेचिदाहुः हैहे प्रयोगे हैहयोरिति प्लुते प्रकृतिभावे च कर्तव्ये तदकरणं म्लेच्छनमिति पदद्विर्वचनकार्ये वाक्यद्विर्वचनंतत्वं च म्लेच्छनमित्यपरे न म्लेच्छितवा इत्यस्य पर्यायो नापभाषितवा इति कृत्यार्थे तवेप्रत्ययः म्लेच्छ इति कर्मणिघञ्"। इस महाभाष्य और विवरण से सिद्ध है कि मुसलमान को म्लेच्छ नहीं कहते किन्तु जो शब्द का स्पष्ट उच्चारण न कर सके वह ही म्लेच्छ है।

(१०) अत्रि स्मृति का श्लोक लिख यह सिद्ध किया है कि मूर्खलोग भागवत पढ़ा करते हैं। श्लोक यह है–

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥

इस श्लोक के (वेदैर्विहीनाश्च०) में चकार खा गया तथा (कृषिणो) को कृषणो लिखा, ये दो अशुद्धियां बोध न होने से हुई हैं श्लोक में हमने ठीक करदीं। वेद के पढ़ने पढ़ाने को सभी सनातन धर्मी सबसे उत्तम काम मानते हैं इसी कारण वेदपाठी ब्राह्मणों का विशेष आदर करते हैं, यह एक साधारण बात है कि जो जो काम कठिन हैं उन उन को जो जो लोग नहीं कर पाते वा नहीं कर सकते वे लोग उन कठिनों से कुछ कम कठिन कामों को करते हैं तथा कोई उनसे भी सुगम वा रोचक कामों को करते वा करना चाहते हैं। पठन पाठन के ग्रन्थों में इतिहास, उपाख्यान, नाविल, उपन्यास वा किस्सा कहानी पढ़ने देखने में अनेक लोगों का चित्त लगता है तदनुसार वेद का पढ़ना पढ़ाना सबसे कठिन है, शास्त्र उनसे कुछ सुगम हैं। पुराण उन शास्त्रों से भी सुगम हैं, उनमें उपाख्यान आदि के कारण चित्त लगता है। यह एक संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति दिखाई है किन्तु इसमें किसी की निन्दा स्तुति नहीं है। यह भी ठीक है कि जो कुछ भी नहीं पढ़ते वे लोग प्रायः खेती करते हैं परन्तु "भ्रष्टा

स्ततो भागवता भवन्ति" वाक्य का जो अर्थ वादी ने लिखा है कि सबसे पतित भागवत पुराण बांचते हैं" सो यह लिखना प्रत्यक्ष प्रमाण से ही विरुद्ध है क्योंकि भागवत पुराण बाचने वाले सैकड़ों, कहीं कहीं सहस्रों रुपये पुजाते बड़े आनन्द में रहते हैं वे लोग खेती आदि को नीच काम समझ के कदापि करना स्वीकार नहीं करते। यदि वादी न माने तो एक किसी भागवती पंडित और एक किसान को एकत्र करके निश्चय कर लेवे। वास्तव में प्रत्यक्ष प्रमाणानुकूल "भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति" वाक्य का सत्य सत्य अर्थ यह है कि धर्मशास्त्र बनाने वाले महर्षियों ने अपनी सर्वज्ञता से जान लिया था कि जब भारतवर्ष में वेदमतानुयायी किसी धार्मिक राजा का राज्य न रहेगा तब पाखण्ड बहुत बढ़ेगा। तदनुसार पाखण्ड बढ़ रहा है अनेक पाखण्डी पूजे भी जाते हैं। इसीसे अनेक निकम्मे लोग जो मेहनत से भोजनादि नहीं करना चाहते किन्तु पाखंड बना के पुजाना चाहते हैं ऐसे लोग शिर में अन्य जानवरों के बाल जोड़, बड़ी बींड़ लपेट, शरीर में मिट्टी लगा, हाथ में चिमटा ले, तपस्वियों का भेष बना, दिखावटी तप करते हुये नकली भगवद्भक्त बन जाते हैं इन्हींको भगवान्‌के आश्रय बनने के कारण भागवत कहा गया है (भगवत उपासका एव भागवताः) वास्तवमें ऐसे वैरागी आदि नामों वाले कई निकम्मे मूर्ख ढोंगी पाखंडी खेती आदिसे भी भ्रष्ट राम नाम आदि कहकर अपने को भगवद्भक्त जताने वालोंको अत्रि स्मृति में दिखाया है पर यह भी ध्यान रहे कि उन वैरागी आदिकों में बिना पढ़े वा कुछ पढ़े कोई कोई सच्चे भगवद्भक्त भी होते हैं कि जो काम क्रोध लोभ से बच केवल भगवद्भक्ति में लगे हैं उनकी निन्दा यहां नहीं है।

पाश्चात्य विद्वान्।

आजकल पाश्चात्य देश जो कुछ करते हैं भारतवर्ष उसीके पीछे दौड़ उठता है हमने जो पुराणों पर दश शंकाएं दिखलाई हैं ये भारतवासियों के मस्तिष्क से नहीं निकलीं वरन डाक्टर विलसन और वेबर साहबने जो पुराणों पर येशंकायें उठाई थीं उन्हीं को पं० लेखराम मुसाफिर प्रभृति लोगों ने हिंदी उर्दू में लिख कर पुराणों का खंडन करना आरंभ कर दिया। यह रीति खंडन की नहीं है। मनुष्य को चाहिये कि प्रथम ग्रन्थ को पढ़े जब उसको उत्तमरीतिसे ग्रंथ आजावे तब उसके विषय में अपनी सम्मति दे किन्तु न्यूशिक्षा से शिक्षित भारतवासियों ने यह नई

रीति निकली है कि ग्रन्थ के बिना पढ़े ही उसको मिथ्या, कपोल कल्पित आदि उपाधियां दे उसकी बुराई लिखने और कहने को तैयार हो जाते हैं। यहां पर जो कुछ भी भारतवासियों ने लेख लिखा है वह इनकी बुद्धि से नहीं निकला वरन डाक्टर विलसन की बुद्धि से निकला हुआ मसाला है। पूर्वोक्त डाक्टर की यह धारणा सत्य है या मिथ्या इसके विवेचन में हम यूरोप के कुछ विद्वानों के लेख पाठकों के आगे रखते हैं ध्यान से पढ़ने की कृपा करें।

इस विषय में यूरोप के विद्वान् इस प्रकार लिखते हैं।

एच० एच० विलसन साहबने पुराणों में कुछ वाक्यों का भ्रामक अर्थ समझा जिनमें कि यवनों का चर्चा है और इसी के बल पर उन्होंने अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि "विष्णुपुराण" लगभग एक हजार पैंतालीस १०४५ ई०के निर्मित हुआ। यह भ्रामक असत्य विलसन महोदय के समय मे क्षम्य था परन्तु अभाग्यवश यह असत्य बार बार दुहराया जाता है। यद्यपि इसका खंडन कई वर्ष पहिले तर्कों द्वारा किया जा चुका है।

विलसन महोदय की बार बार दोहराई हुई भूल के कारण यह आवश्यक हो गया है कि कुछ सरल और अकाट्य प्रमाण इस विषय के दिये जावें कि विलसन महोदय के दिये गये समय से पुराण कहीं अधिक पुरातन हैं।

अलबेरुनी

अलबेरुनी—जिसने भारतवर्ष का एक वैज्ञानिक लेखा सन् १०३० ई० में दिया है एक सूची ऋषियों द्वारा बनाये गये १८ पुराणों की दी है और उसने स्वयं मत्स्य, आदित्य तथा वायु पुराणों के कुछ अंश देखे थे। आगे चल कर उसने एक दूसरी सूची १८ पुराणों की जिनका कि नाम विष्णुपुराण में मिलता है दी है। इसलिये यह निश्चित है कि १०३० ई० में पुराणों की संख्या आजकल की भांति १८ तो अवश्य ही थी और उनका पीढ़ी दर पीढ़ी ऋषियों के समय से चला आना भी माना जाता है।

बाण।

हर्षचरित के लेखक कवि बाण जिस समय शाहाबाद (आरा) जिले के अन्तर्गत अपनी जन्मभूमि सोननदी पर स्थित ग्राम में गये हैं जिसका कि समय ६२० ई० कहा जाता है उन्होंने सुदृष्टि को वायु पुराण का उच्चारण करते सुना।

पुराण की पुरातनता का समय इसकी सहायता से ४०० वर्ष और भी पहिले हो जाता है ।

फुलहर ।

डाक्टर फुलहर का विश्वास है, वह इस बात का प्रमाण देसकते थे कि बाण महोदय अग्नि, भागवत और वायु पुराणों से भी परिचित थे ।

इसी समय में बंगला की एक हस्तलिखित प्रति से "स्कन्द पुराण" की स्थिति का एक अलग ही प्रमाण मिलता है, यह हस्तलिखित प्रति गुप्तराज्य के समय के अक्षरों में लिखी हुई है अतः इसका समय विद्वानों की राय में सातवीं सदी के लगभग माना जाता है ।

मिलिन्दपन्ह

मिलिन्दपन्ह के लेखक को भी पुराणों से कुछ कुछ परिचय अवश्य था । जिनका कि वेद, रामायण तथा महाभारत का सा पूज्य और पुरातन होना माना जाता है, मिलिन्दपन्ह का पहिला भाग जिसमें कि इनका पहिले पहिल चर्चा मिलता है और जो कि निःसंदेह प्रधान पुस्तक का एक अंश है निश्चय रूप से ३०० ई० में निर्मित हुआ है ।

बुलहर

बुलहर महोदय ने बहुत से उद्धरण पुराणों के इनके विषय में एकत्र किये उनका कथन है कि भावी राज्यों के चर्चे की इतिश्री वायु, विष्णु मत्स्य, और ब्रह्माण्ड पुराण में गुप्तवंश एवं उनके सामयिक गद्दी के अधिकारियों के साथ होती विदित होती है, बुलहर महोदय भावी राजाओं का चर्चा इसलिये करते हैं कि पुराणों, के सभी ऐतिहासिक कथन एक भविष्यवाणी के रूप में दिये हैं जिससे यह विदित हो कि ये बहुत ही पुरातन हैं जो कि निःसन्देह अपने पुराने रूप में स्थित हैं ।

पार्जिटर

मिस्टर एफ० ई० पार्जिटर अपनी अमूल्य पुस्तक "दी डायनेस्टीज आफदी कलियेज" क्लेरेण्डन प्रेस १९१३ द्वारा बड़े ही ठीक परिणाम पर पहुंचने में सफल हुये हैं । वह सिद्ध करते हैं कि भविष्यपुराण अपने पुरातनरूप में अधिक श्रेष्ठतर है जिससे कि मत्स्य और वायु पुराणों ने राज्यों की सूची का अंश लिया है, उन्हीं सूचियों का विवरण जैसा कि मत्स्य वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में मिलता है एक

प्रमुख, श्रेष्ठतर और सबसे पूर्व लिखित पुस्तक से निकले हैं, परन्तु इन तीनों में मत्स्य पुराण का अंश सबसे पुरातन और उत्तम है। विष्णु और भागवत पुराणों का स्थान बाद में हैं, भविष्यपुराण अपनी वर्तमान स्थिति में ऐतिहासिक कार्यों के लिये बिलकुल निकृष्ट है, इतिहास का कार्य केवल मत्स्य वायु और ब्रह्मांड पुराणों से चलता है। इन तीनों पुस्तकों में इसकी साफ झलक है कि राज्यों का संस्कृत में विवरण जो इन तीनों पुस्तकों में वर्तमान है पुरानी प्राकृत के श्लोक और कविता की नकल है, यह संदेह करने में कुछ तथ्य है कि सबसे पुरातन अंश "खारोष्ट्रीलिपि में पहिले पहिल लिखा गया था।

मिस्टर पार्जिटर यह मानते हैं कि संस्कृत की प्रथम ऐतिहासिक पुस्तक अंध वंश के याजनश्री के राज्य में लगभग क्राईस्ट की दूसरी सदी के अन्त में निर्मित हुई थी और उसका परिवर्द्धितरूप भविष्यपुराण के प्रमुख अंश में लग भग २६० ई० में निर्मित हुआ। भविष्यपुराण विवरण ३१५ से ३२० ई० तक दुहराया गया और बायुपुराण की प्रति के अन्तर्गत कर दिया गया, वही विवरण पुनर्वार कुछ बर्षों के उपरान्त फिर दुहराया गया जिसका कि समय ३२५-३३० के लगभग है और बायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण की दूसरी प्रतियों के अन्तर्गत कर दिया गया, इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य पुराण का मसाला पूर्वांकित तिथि पर कहे हुये पुराणों के अन्तर्गत आ गया। ऐसा विदित होता है कि मत्स्यपुराण के अन्तर्गत भविष्य पुराण की प्रति का अंश थोड़े समय पूर्व ही आ गया था जिसका कि समय लगभग सबसे अन्त की तीसरी सदी का चतुर्थांश है।

मिस्टर पार्जिटर ने अपनी पुस्तक की नींव ६३ हस्तलिखित प्रतियोंका अवलम्ब लेकर लिखी है और उसका अध्ययन विशेष रुप से किया जाना चाहिये क्योंकि उसमें पूर्ण रूप से दूसरी कृतियों का विवरण मिलता है।

मैं यहां पर इतना अवश्य कहूंगा कि पुराण किसी भी रूप में ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में भी माननीय थे। अर्थशास्त्र के लेखक ने अथर्ववेद और इतिहास का स्थान चौथे और पाचवें बेद की भांतिं माना है और बतलाया है राजा का धर्म है कि अपना तीसरे पहर का समय इतिहास के अध्ययन में व्यतीत करे। इतिहास की व्याख्या ६ भागों में की है वह इस प्रकार है (१) पुराण (२) इतिवृत्त (इतिहास) (३) अध्यायिक (कहानी) (४) उद्धरण (५) धर्मशास्त्र (६) अर्थशास्त्र

दी आरली हिस्ट्री आफ इण्डिया बाई विन्सेन्ट ए स्मिथ एम० ए० आर० ए० एस० एफ० आर० एस० एस० । पृष्ठ २१ से २३ तक मुद्रित क्लेरेंडेन प्रेस १९१४ तीसरा संस्करण ।

डाक्टर विलसन के लेख पर हमने पाश्चात्य विद्वानों के लेख पाठकों के आगे रख दिये अब सत्यासत्य का निर्णय पाठक स्वतः करें ।

द्वापर ।

(११) कई एक सज्जनों का कथन है कि सतयुग और त्रेता एवं द्वापर में पुराण नहीं थे, द्वापर के अन्त में वेद व्यासजी ने पुराणों की रचना की है अतएव पुराण द्वापर में बने ।

अब रही बात यह कि पुराण वेद व्यास जी ने बनाये हैं इसका उत्तर यह है ।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार वेद संसार में आये, उस समय लेखन प्रणाली नहीं थी, वेद सुन सुन कर कंठ किये जाते थे इसकारण वेद का नाम श्रुति पड़ गया । ब्रह्मा के द्वारा जो वेद प्रकट हुये वे चार थे । द्वापर में वेदव्यास जी ने उन चार वेदों को विभाजित किया—यजुर्वेद के एक सौ एक, सामवेद के एक सहस्र, ऋग्वेद के इक्कीस और अथर्ववेद के नव भाग बनाये । ये भाग वेद की शाखा या संहिता के नाम से प्रसिद्ध हैं पूर्वोक्त चारो वेदों के अन्तर्गत ब्राह्मण भाग भी था वह भी किसी २ संहिता से पृथक् कर दिया गया और किसी में संयुक्त रहा, इन शाखा और इनके ब्राह्मणों को छोड़ कर इनसे पृथक् एक भी मंत्र वेद का नहीं है । जिस प्रकार व्यासजी ने वेदों को शाखादि रूप में विभाजित किया इसी प्रकार पुराणों को विभाजित किया ।

पुराण ब्रह्मा के द्वारा संसार में आये, लेखन प्रणाली न होने के कारण लोगों को इनका स्मरण रखना पड़ता था इसीसे पुराणों का नाम स्मृति हो गया, द्वापर में वेद व्यास जी ने पुराणों को श्लोकबद्ध बना दिया—उनके विभाग पृथक् पृथक् कर दिये—इस विषय में प्रमाण नीचे देखिये—

पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे नृप ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥

स्मृत्वा जगाद च मुनीन्प्रतिदेवश्चतुर्मुखः ।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ।
व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत्स युगेयुगे ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन्प्रभाषते ॥
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षसंक्षेपेण निवेशितः ॥
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥

रेवा माहात्म्य १ । २३ । ३०

हे राजन् कल्पान्तर में पहले एक पुराण था और अर्थ, धर्म, काम का साधक वह सौ कोटि श्लोकों में विस्तार वाला था । उसको स्मरण करके ब्रह्मा जी ने मुनियों के प्रति कथन किया, तब सब शास्त्र और पुराणों की प्रवृत्ति हुई । जब समय पर पुराणों का अग्रहण देख कर कि इतना बड़ा ग्रन्थ सब कैसे ग्रहण कर सकेंगे तब व्यासरूप धारण कर प्रभु प्रत्येक द्वापर युग में उसको संक्षेप करते हैं । प्रति द्वापर युग में वह चार लाख प्रमाण के पुराण करके उनके अठारह भेद करते हैं । देवलोक में अब भी सौ कोटि श्लोकों में इनका विस्तार है सो इसी निमित्त चार लाख श्लोक वाले अठारह पुराण इस समय कहे जाते हैं रेवाखंड से स्पष्ट है कि पुराणों का प्रादुर्भाव ईश्वर से हुआ है—

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा ।
कालिना ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुम् ॥
व्यासरूपी तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे प्रभुः ॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेस्मिन्प्रकाश्यते"

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड० अध्याय १

अर्थात् पहिले पुराणों से ही सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई है और समयानुसार समस्त पुराण के ग्रहण में असमर्थ देख कर वह व्यासरूपी भगवान्ब्रह्मा युग युग में संग्रह के निमित्त चार लक्ष श्लोक के पुराण प्रत्येक द्वापर युग में करते हैं वह अठारह प्रकार से इस भूलोक में प्रकाशित होते हैं।

हमने इस बात का पूर्ण प्रमाण दे दिया कि पुराण सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से प्रकट हुए हैं यदि हम ऐसा न मानें तो दोष यह आवेगा कि समस्त ही पुराण इस वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के नहीं हैं किन्तु प्रलय के पहिले जो और कल्पबीते हैं उनकी कथाओं का द्वापर में ही कहने का कौन प्रयोजन था। उस ज्ञान की संसार को आवश्यकता थी तो सृष्टि के आरम्भ से थी और यदि नहीं आवश्य कता थी तो फिर द्वापर में भी नहीं थी। सृष्टि के आरम्भ में पुराणज्ञान न होता तो फिर सतयुग और त्रेता के मनुष्य पुराणज्ञान से वंचित ही रह जाते। पुराण ज्ञान भी एक ऐसा ज्ञान है कि जिस ज्ञान के आगे संसार के धार्मिक पुस्तक और आज तक के विज्ञानी तत्ववेत्ता भूगर्भविद्या के पंडित नीचे को मस्तक करके मौन रह जाते हैं, अपनी खोज के समस्त अभिमान को त्याग कर पुराणों के बालविद्यार्थी बनते हैं।

इसके आगे पुराणों का प्राचीनत्व सिद्ध कर व्यास के समय से पुराणों के मानने वाले लोगों के पक्ष को स्पष्ट रूप से उड़ा दिया जावेगा।

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम् ॥ १ ॥
ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मयाश्रुतः।
सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ॥ २ ॥

बाल्मी० अयो० कां० सर्ग ९

अर्थ—दशरथ ने अपने पुत्र न होने का शोक दिखलाया इसके ऊपर सूत राजा से बोला कि ऋत्विकों से उपदेश किए हुए सनत्कुमार ने कथा को कहा इस प्रकरण का मैंने पुराण सुना पुराणों में आपके चार पुत्रों का होना लिखा है।

वाल्मीकि ऋषि त्रेता में हुए और वेद व्यास जी द्वापर में। यदि हम

व्यास के समय से पुराणों का होना मान लें तो फिर बाल्मीकि ऋषि के समय में पुराणों का होना और उनकी बनाई हुई रामायण में पुराणों का लेख आना किस प्रकार सिद्ध होगा। महर्षि बाल्मीकि ने जो स्वकीय "बाल्मीकि रामायण" में पुराणों की कथा लिखी हैं इससे पुराणों की प्राचीनता निःसंदेह सिद्ध है। अब आगे और देखिये महर्षि पतञ्जलि व्याकरण का "महाभाष्य" बनाते हुए पश पशाह्निक में लिखते हैं कि—

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारोवेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा वाह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषय इति।

अर्थ—सप्तद्वीपवाली पृथ्वी, तीनों लोक, शिक्षा कल्पादि अङ्ग सहित चारों वेद, उनके रहस्य, यजुर्वेद की एक सौ एक, सामवेद की एक सहस्र, ऋग्वेद की इक्कीस और अथर्ववेद की नौ शाखा, वाकोवाक्यतर्कादि, इतिहास पुराण, वैद्यक ये शब्द का विषय हैं।

महर्षि पतञ्जलि नें भी महाभाष्य में पुराणों का उल्लेख किया है अतएव पुराण प्राचीन हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य के लेख को देखिए—

पुराणंन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

याज्ञ० स्मृति० अ० १ श्लो० ३

अर्थ—पुराण शब्द से अष्टादश पुराण और न्याय शब्द से वैशेषिक तथा गौतम सूत्र। मीमांसा से पूर्व मीमांसा कर्मकाण्ड और उत्तर मीमांसा वेदान्त। धर्मशास्त्र से समस्त स्मृतियां। और छहो अङ्गों सहित चारों वेद। ये चौदह विद्या धर्म के स्थान हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य आज के नहीं हैं बहुत प्राचीन हैं, वेदों के मन्त्रों के द्रष्टा हैं, जब ये महात्मा धर्म के निर्णय में प्रथम संख्या पुराणों को दे रहे हैं तो फिर वेद व्यास के समय ही से पुराण बने इस सिद्धान्त को किसप्रकार मान लें। महर्षि मनु के लेख को भी देखिये—

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च ॥

अर्थ—श्राद्ध में पितरों को स्वाध्याय, धर्मशास्त्र, आख्यान और इतिहास तथा समस्त पुराण सुनावे ।

महर्षि मनु सृष्टि के आरम्भ में हुए हैं उन्होंने भी तो अपने निर्माण किए हुए धर्मशास्त्र मनुस्मृति में पुराणों का पितरों को श्रवण कराना लिखा है यदि सृष्टि के आरम्भ में पुराण नहीं थे तो फिर मनु ने उनका सुनाना कैसे लिख दिया । इसी विषय की पुष्टि में हम छान्दोग्य उपनिषद् का एक प्रमाण पाठकों के आगे रखते हैं ।

सहोवाचऋग्वेदं भगवोध्येमियजुर्वेदᳬं सामवेदमाथर्वण चतुर्थमिति-हास पुराण पञ्चमंवेदानांवेदं पित्र्य ᳬं राशिंदैवंनिधिं वाकोवाक्य-मेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्या भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्या ᳬं सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि ।

छां० प्र० ७ खण्ड १

नारद बोले कि ऋग्वेद तथा साम, यजु, अथर्व (इतिहास पुराणपंचमं वेदानांवेदं) और इतिहास पुराण पाचवां वेद मैंने पढ़ा है । (पित्र्यं) श्राद्ध कल्प (राशिं) गणित (दैवमुत्पातज्ञानम्) जिससे देवताओं के किए हुए उत्पात का ज्ञान होता है (निधिं) महाकालादि निधि शास्त्र (वाकोवाक्यं) तर्क शास्त्र (एकायनं) नीतिशास्त्र (देवविद्यां) निरुक्त (ब्रह्मविद्यां) ब्रह्म सम्बन्धी उपनिषद् विद्या (भूतविद्यां) भूत तंत्र (क्षत्रविद्यां) धनुर्वेद (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिष (सर्पदेवयजनविद्यां) सर्प विद्या गारुड़ि, गन्धयुक्त नृत्य गीतादि वाद्य शिल्प ज्ञान को भी मैं पढ़ा हूँ ।

छान्दोग्य उपनिषद् जो कि वेद विद्या का पुस्तक है जिसमें उत्कृष्ट ब्रह्म ज्ञान है वह भी तो उपरोक्त लेख में पुराण शब्द को उल्लेख में लाया है । छान्दोग्य उपनिषद् के आरम्भिक समय में यदि पुराण नहीं थे तो फिर पुराण शब्द को विद्यावाचक मान कर कहां से लिखा और यदि इसके समय में पुराण अस्तित्व

रखते थे तो फिर इससे पुराण नवीन कैसे ? अब हम बृहदारण्यक उपनिषद् से भी पुराणों की प्राचीनता लिखते हैं ।

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहास पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट थं हुतमाशितं पायित मयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

बृह० अ० ४—११ कं० ब्रा० ५

उस परमेश्वर के निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण विद्या, उपनिषद्, श्लोकसूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान हैं जिसमें कोई कथा प्रसंग होता है सो इतिहास, १ जिसमें सर्गादि जगत् की पूर्व अवस्था का निरूपण सो पुराण, २ उपासना और आत्मविद्या का प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या, ३ उपास्य देव के रहस्य का नाम है उपनिषद्, ४ जो श्लोक नाम से मंत्र कहे जाते हैं वे श्लोक हैं, ५ जो संक्षिप्त अर्थ का प्रतिपादक वाक्य सो सूत्र है, ६ जिस वाक्य में जिसका विस्तार होता है सो व्याख्यान है और जिस वाक्य में व्याख्यान को भी स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यान है ।

बृहदारण्यक उपनिषद् ने भी तो पुराणों का स्मरण किया है क्या इसके आरम्भ काल में पुराणसत्ता थी यदि नहीं थी तो अभाव में स्मरण कैसे हो गया ? यदि पुराण थे तो फिर ये आधुनिक समय के बने हुए नवीन किस प्रकार हो जावेंगे क्या पुराणों को नवीन कहने वालों ने उपनिषदों को नहीं देखा था । इस विषय में वेद भगवान का लेख भी देखिये—

सबृहतीं दिश मनुव्यचलन् तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराश थं सीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वै सपुराणस्य गाथानां नाराश थं सीनां च प्रियंधाम भवति य एवं वेद ।

अथर्व० का० १५ प्र० ६ अनु० १ मंत्र १२

वह बड़ी दिशा को गया और उसके पीछे इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसियों का प्यारा घर बनता है।

द्वितीय प्रमाण—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः ॥

अथर्व० ११-७। १ (२४)

इसका अर्थ यह है कि सब के अन्त (प्रलय काल) में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और पुराण--यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुये हैं।

हमने दो वेद मन्त्र दिये हैं दोनों में ही ईश्वर से पुराणों का प्रादुर्भाव लिखा है इससे अधिक पुराणों के अनादि और प्राचीन होने में पुष्टि की आवश्यकता नहीं है अतएव पुराण आधुनिक या व्यास के समय के निर्माण किये नहीं हैं किन्तु सृष्टि के आरम्भ में वेदों के साथ में इनका प्रादुर्भाव हुआ है।

पुराण गौरव

हम पुराणों की प्राचीनता पूर्व लेख में सिद्ध कर आये हैं उस लेख को पढ़ कर कोई भी मनुष्य पुराणों को नवीन नहीं कह सकता, आज जो पुराणों को नवीन बतला कर जनता को इनके छोड़ देने का उपदेश किया जाता है इसका अभिप्राय क्या है ? पुराण साधारण ग्रंथ नहीं हैं, साइंस के भंडार हैं। बड़े २ साइंटिस्ट भूगर्भविद्या की खोज करने वाले बड़े परिश्रम से नूतन खोज निकालते हैं किन्तु जब पुराण देखते हैं तब समस्त नूतन खोजों का पता पुराणों में लगने से उनका समस्त घमंड चूर हो जाता है और उनको यह मानना पड़ता है कि पुराण अलभ्य तथा गौरव की वस्तु हैं। इसी विषय में हम कुछ ज्ञान पाठकों के आगे रखते हैं हमें विश्वास है कि पाठक न्याय पूर्वक विचार दृष्टि से देखेंगे।

सर्ग।

तत्त्वोत्पत्तिज्ञान किसी भी धर्म पुस्तक में नहीं है, मौलवी साहब दिन में आठ बार कुरानशरीफ पढ़ जायं किंतु उनको यह ज्ञान न होगा कि पृथ्वी किस तत्व से बनी है। पादरी साहब हजार बार बाइबिल के पन्ने उथलने पर यह नहीं जान सकते कि

पृथ्वी किस तत्व से बनी है, इसी प्रकार जिन्दावस्था पुस्तक में भी इस का पता नहीं चलता, हम औरों की तो क्या कथा कहें जिस मंत्र भाग वेद को ज्ञान का भंडार बतलाया जाता है और जिसके मंत्रों के कान पूँछ ऐंठ कर वेद में से रेल दौड़ाकर तार खटखटाये जाते हैं, जिस वेद में विधवाविवाह बतलाकर ब्राह्मण क्षत्रिय भंगी, चमार को एकसा बना दिया जाता है, जिस वेद से ईसाइयों के नियमों को वैदिक सिद्ध किया जाता है, वेद २ चिल्ला कर जिसकी डुग्गी पीटी जाती है उस वेद में भी यह पता नहीं चलता कि पृथ्वी किस तत्व से बनी और कैसे बनी। आज कल के सांइटिस्ट धर्म पुस्तकों को त्याग बुद्धि से देखते हैं उनका कथन है कि जब इन ग्रंथों में मामूली भी ज्ञान नहीं तो फिर इन में विज्ञान क्या खाक निकलेगा तत्वोत्पत्ति का पता किसी भी धर्म ग्रंथ ने नहीं लगाया यदि भूतल पर साइंस का जन्म और साइंस की उन्नति न होती तो संसार तत्वज्ञान से शून्य रह जाता। यह निश्चय हो चुका है कि तत्वोत्पत्तिज्ञान धर्म ग्रन्थों में नहीं है सब ग्रन्थ टटोल डाले इस ज्ञान का पता न चला किन्तु पुराण इस विषय पर लिखता है कि—

नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२
अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३
अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम्।
आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४
ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम्।
महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥ ३५

श्री मद्भा० स्क० ३ अ० ५।

विकार को प्राप्त हुआ आकाश स्पर्श दशा को प्राप्त होता है, वह स्पर्श जब अधिक विकार वाला होता है तब वायु बन जाता है वह वायु भी आकाश से युक्त अनेक शक्तिमान् होकर रूप की दशा को पहुँचता है और फिर उसी से तेज उत्पन्न होता है तदनन्तर वायु से युक्त और ईश्वर के अवलोकन किए हुये तेज ने

रस गुण युक्त जल को उत्पन्न किया, ब्रह्म का अवलोकन किया हुआ तेज जल युक्त होकर विकार को प्राप्त हुआ, तब इससे गन्ध, रूप, शब्द, स्पर्श रस गुणवती पृथ्वी पैदा हुई।

साइंसवेत्ता पृथ्वी, जल, वायु की उत्पत्ति तक ही पहुँचे किन्तु पुराण आगे के तत्वों की उत्पत्ति भी कह रहे हैं। इस आगे की उत्पत्ति तक भी साइंस की तहक़ीक़ात किसी दिन अवश्य पहुँचेगी। पुराण उस ऊंचे दर्जे की तहक़ीक़ात पर भी पहुँच गये जिस पर आधुनिक साइंस का पहुंचना इस समय तक अधूरा ही है।

फिर यह भी कोई धर्म पुस्तक नहीं बतला सकती कि इन तत्वों की उत्पत्ति कितने दिन में हुई। इस विषय पर बाइबिल और कुरान का तो यह लेख है कि खुदा ने "कुन" कहा—कहते ही सब बन गया यहां तक लिखा है कि खुदा ने ६ दिन में समस्त ब्रह्माण्ड को रच दिया, और सप्तम दिन में आराम किया, यह तो बाइबिल कुरान वालों का हाल है। अब हमारे मंत्रभाग वाले वेदपाठी भाइयों के यहां चलकर पूछिए, वहां कुछ भी पता नहीं, न एक दिन का और न करोड़ दिन का, सुधारकों के वेद में तो कुछ है ही नहीं किन्तु जिनके यहां कुछ पता चलता है कि ६ दिन में सब संसार बन गया, उनकी परीक्षा करो, उनका कहना ठीक है कि गलत, अच्छा अब इसको विचारकर देखो कि साइंस इस विषयमें क्या कहती है।

इसके ऊपर "सेक्रेट डाक्टरन" नामी पुस्तक जो लन्दन में छपी है उसके द्वितीय भाग में प्रोफेसर लिचाफ़ साहब लिखते हैं कि जमीन को दो हजार डिगरी गर्मी से दो सौ डिगरी गर्मी तक पहुंचने के वास्ते किसी तरह से ३५ करोड़ वर्ष से कम नहीं हो सकते। साइंसवेत्ताओं ने अपनी २ किताबों में इस विषय पर अनेक लेख लिखे हैं जिनसे यह अच्छी तरह से सिद्ध हो जाता है कि करोड़ों ही वर्ष में अग्नि का गोला ठण्डा होकर जमीन बनी। जब साइंस से यह सिद्ध है कि करोड़ों वर्ष में जमीन बनी फिर ६ दिन में सब ब्रह्मांड का रचा जाना और सातवें रोज खुदा का आराम करना कौन मान लेगा?

इसके ऊपर पुराण का क्या लेख है जरा इसको भी देख लें। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदके शयन् ।

देवताओं के सहस्रों वर्ष तक वह अण्ड जल में रहा ।

मिला लीजिये, जिस बात की तहकीकात करके साइन्स आज बतलाने लगी है उस बात को पुराण पहिले ही कह रहे हैं तब ही तो यह कहना है कि पुराणों का मानना छोड़ दोगे तो सर्ग का पता भी न चलेगा ।

विसर्ग ।

विसर्ग (विविध रचना) यह पता किसी भी धार्मिक पुस्तक से नहीं लगता कि मनुष्य की उत्पत्ति किसके बाद और किस प्रकार से हुई । किसी २ धर्म पुस्तक में तो यह लिखा है कि खुदाने एक मुट्ठी खाक से मनुष्य के पुतले को बनाकर उस में रूह फूंक दी बस आदम पैदा होगया और उस आदम की औलाद आदमी बने । यह लेख बाइबिल और कुरान का है और इस विषय में वेद पाठी पार्टी के आचार्य सुधारक लिखते हैं कि युवा युवा पुरुष और युवा २ स्त्रियां पैदा होगई । अब इन अक्ल के हिमायतियों से पूछो कि वह युवास्त्रियां और पुरुष कहां से आगये, क्या जमीन से निकल पड़े या आसमान से बरस गये ? अब क्यों नहीं बरसते कि नौकरों की तकलीफ तो मिटे । सुधारक के मत में केवल मनुष्य के जोड़े नहीं टपके किन्तु युवा २ गाय और बैल, भैंस और भैंसा आदि २ सभी जोड़े ऊपर से टपके अच्छी वरषा हुई । मैं इनसे यह पूछता हूँ कि वे निराकार के जोड़े ऊपर किस के घर में और बिना माँ बाप के कैसे बन गये, कुछ भी पता नहीं चलता, साथ ही में मनुष्य और पशुपक्षियों की उत्पत्ति एक साथ हुई लिखी है ।

साइन्स की तहकीकात कह रही है कि जब पृथ्वी बन गई तब प्रथम घास उगी, इसके बाद बेल, झाड़ी, वृक्ष उगे, पश्चात् पक्षी पैदा हुए । जो सिलसिला मजहबों की पुस्तकों में था वह साइन्स की तहकीकात से साफ उड़ गया, साइन्स के सामने एक भी न ठहर सका । पूर्वोक्त धर्मों की पुस्तकों की दशा तो आप देख चुके अब जरा पुराणों का भी सिलसिला देखें ।

पञ्चधावस्थिते सर्गं ध्यायतःप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ॥१

मुख्या नगायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततः स्वयम् ।
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गं यथान्यच्च परं पुनः ॥२
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोतोऽभ्यवर्तत ।
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स्यात्तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥३
पश्वादयोऽत्रविख्यातास्तमः प्रायाह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥४
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ।
अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे स्वावृताश्च परस्परम् ॥५
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्विकोर्द्धमवर्तत ॥६
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥७
तुष्टात्मनस्तुरीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः ।
यस्मिन्सर्गे भवप्रीतिर्निष्पन्ना ब्रह्मणस्तथा ॥८
ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ।
असाधकांस्तु ताञ्ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥६
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥१०
यस्मादर्वाक् प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक् स्रोतसंस्तुते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥११
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥१२

विष्णु पुराण प्र० अ० श्लोक ६-१७

अर्थ—जब आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इनका सर्ग हो चुका तब ब्रह्मा ने ध्यान करके बाहर भीतर अज्ञानवाले वृक्ष उत्पन्न किये। यह, मुख्य सर्ग है

इससे कार्यसिद्धि न देख कर फिर ब्रह्मा ने ध्यान किया। इसके पश्चात् तिर्यक्सर्ग पश्वादि उत्पन्न किये ये सब तमप्राय और अज्ञानी थे, मार्ग को छोड़ कर चलते थे और बड़े अभिमानी थे। इसको असाधक देख कर ब्रह्मा ने फिर ध्यान किया। ध्यान के पश्चात् सात्विक सर्ग ऊर्ध्वस्रोत देवताओं को उत्पन्न किया। ये देवता सुख और प्रीति के चाहनेवाले, अन्तःकरण में ज्ञान रखनेवाले हुये इनको देखकर ब्रह्मा को कुछ आनन्द हुआ, ब्रह्मा की प्रीति संसार रचने में हुई किन्तु सृष्टिसाधन में उपयोगी न हुये। ब्रह्मा ने फिर ध्यान किया पश्चात् अर्वाक्स्रोत मनुष्य उत्पन्न किये। ये मनुष्य ज्ञानवाले थे इन में रजोगुण को बहुत वृद्धि थी अतएव दुःख के सहने वाले थे ये सृष्टि के साधक हुये।

इन लोगों को कर्माधिकारी और ज्ञानाधिकारी देख ब्रह्मा बहुत ही प्रसन्न हुआ समझा कि यह ही काम की वस्तु है। ध्यान से देखिये कि पुराण सृष्टि और साइन्स सृष्टि एक है या नहीं।

पुराणों की सृष्टि में मनुष्यों की उत्पत्ति आरम्भ से ही गर्भ से हुई। ईश्वर ने अपने शरीर के दो भाग किये, दक्षिण से मनु और वायें से शतरूपा हुई, इन्हीं की संतान से जगत् पूरित हुआ।

सृष्टि की उत्पत्ति का समय—यह भी ठीक पता किसी धर्म ग्रन्थ से नहीं लगता कि सृष्टि को बने आज कितने दिन हुये। इस विषय में ईसाई और मुसलमानों की धर्म पुस्तकों का तो यह कहना है कि संसार रचे आज पांच हजार वर्ष हुए और मंत्र भाग को मानने वाले वेद पाठियों के यहां इसका कुछ पता ही नहीं चलता। सुधारक के शिष्यों की तो कथा ही मत छेड़ो क्योंकि ये तो इस विषय में मौन धारण किये परम महंत बने बैठे हैं। पांच हजार वर्ष से सृष्टि बतलाने वालों की भी तहकीकात सच नहीं है।

आज साइंस की तहकीकात से कोई बात छिपी नहीं रही। अब इस विषय में साइंस की भी तहकीकात देख लीजिये।

प्रथम "पापोलर इस्ट्रानोमी" किताब में प्रोफेसर "एस न्यूकोम्ब साहब" फरमाते हैं कि जब जमीन सर्द होकर नबातात उगाने के योग्य हुई उस समय से अब तक १ करोड़ वर्ष से कम नहीं हुआ।

द्वितीय—किताब "वरुर्ड लाइफ" में प्रोफेसर "हैक्सिले साहब बहादुर" जो संसार में अति प्रसिद्ध पुरुष गिने जाते हैं वह लिखते हैं कि जमीन में जब नबातात उगाने की शक्ति आई उस दिन से आज तक कमसे कम एक अरब वर्ष गुजर गये।

ये दो ही प्रमाण नहीं किन्तु हजारों प्रमाण साइन्स की तहकीकात में मिल रहे हैं कि जिनसे यह साबित है कि जमीन बने न पांच हजार वर्ष हुये और न दस हजार किन्तु इसको बने करोड़ों अरबों वर्ष हो गए।

साइन्स की तहकीकात यह भी कहती है कि मंगल पृथ्वी से अधिक अवस्था वाला है, शुक्र का तारा कुछ कम युवा, बृहस्पति और शनि अभी बच्चे हैं, उनके आस पास भाफ के घेरे बहुत बड़े २ हैं जिनके समुद्र बनेंगे, हमारा सूर्य अच्छा युवान है। हमारा चांद बूढ़ा हो गया, अनुमान दो सौ वर्ष में यह चाँद नष्ट हो जावेगा फिर आप लोगों को इसके दर्शन न होंगे। शायद जब तक परमात्मा आपके लिये कोई दूसरा चाँद पैदा करदे या फिर अंधेरे ही में रहना पड़े। इस स्थान में पृथ्वी की भी तहकीकात लिखी है। पृथ्वी के लिये लिखा है कि हमारी पृथ्वी युवान अवस्था में है। यह साइन्स की तहकीकात है। अब पुराणों का भी कथन सुनलें।

इस विषय में पुराणों का यही कथन है जो साइन्स का पुराण भी अरबों वर्षों से सृष्टि की उत्पत्ति कहकर पृथ्वी को युवान दशा में बतला रहे हैं। पुराण कहते हैं कि जब से सृष्टि बनती है उस दिन से प्रलय तक इस अवधि को कल्प कहते हैं और एक कल्प में चतुर्दश मनु होते हैं। अब जो सृष्टि वर्तमान है इसका नाम वाराह कल्प है। इस वाराह कल्प में सातवां वैवस्वत मनु भोग रहा है। और अब आगे सात ही बाकी हैं। कहिये पृथ्वी युवान ही अवस्था में है या और दशा में? अच्छा पृथ्वी कब बनी इसका हिसाब लगा लें। एक मनु इकहत्तर चतुर्युगी का होता है अर्थात् एक मनु में इकहत्तर बार चारों युग भोग जाते हैं। चतुर्युग अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ४३२०००० वर्ष के होते हैं और कल्प में स्वायम्भू, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष ये ६ मनु बीत चुके इनके वर्षों में २७ युग के वर्ष जोड़कर अट्ठाइसवें युग कलियुग के ५०१४ वर्ष और जोड़ दो क्योंकि वैवस्वत मनु में यह अट्ठाइसवाँ युग है। इस जोड़ से सृष्टि

का आरम्भ काल निकल आवेगा। और वह अरबों वर्षों की संख्या में होगा।

कहिये पुराणों के सृष्टिकाल में और साइंस की तहकीकात में कुछ फर्क है ? कुछ नहीं। जैसे जैसे साइंस की तहकीकात पुख्ता होगी वैसे वैसे ही पुराणों की पुष्टि होगी।

जिस प्रकार दूसरे धर्म पुस्तकों में विसर्ग का पता नहीं लगता, उसी प्रकार प्रलय (क़यामत) का ठीक पता कहीं पर नहीं लिखा। सुधारक समाज तो प्रश्न ही करता है उत्तर नहीं देता और दूसरे मजहबों की भी अजब ही हालत है।

कोई कोई तो इसी शताब्दी में क़यामत बतलाते हैं किन्तु पुराण और साइन्स एक ही रास्ते पर हैं जो पृथ्वी को युवान बतला रहे हैं। इसीसे प्रलय समझ लीजिए।

वंश।

हिन्दू जाति प्राचीन जाति है, नवीन जाति और प्राचीन जाति में बड़ा अन्तर होता है। नवीन जाति मजहब से बनती है, जब वह किसी अन्य मजहब में चली जाती है, तब वह अपने प्राचीन जाति नाम को नष्ट कर नवीन जाति नाम को स्वीकार कर लेती है। योरुप आदि देशों में प्रथम हिन्दू जाति थे फिर हिन्दू जाति से यवन जाति बनी। यवन जाति के स्वरूप को नष्ट कर यहूदी जाति कहलाई। इसके पश्चात् क्रिश्चियन जाति और क्रिश्चियन जाति के बाद इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर मुस्लिम जाति बन गई। नहीं मालूम आगे को योरुप का जन समुदाय कौन कौन जातियों के नाम को स्वीकार करेगा। इसके विरुद्ध भारतवर्ष की हिन्दू जाति सृष्टि के आरम्भ से आज तक ज्यों की त्यों चली आती है। हम यह मानते हैं कि इसमें से भी कुछ जन समुदाय अन्य मजहब में चला गया, और वह अन्य जाति के नाम से पुकारा जाने लगा। किन्तु जो जाति इस समय हिन्दू नाम से पुकारी जाती है, वह सृष्टि के आरम्भ से आज तक ज्यों की त्यों चली आती है। नवीन जातियों में वंश का इतिहास नहीं रहता किन्तु प्राचीन जाति में उसका वर्णन सृष्टि के आरम्भ से आज तक ज्यों का त्यों पाया जाता है। हिन्दू जाति में सूर्यवंश, चन्द्रवंश, भृगुवंश, अत्रिवंश, बशिष्ठ बंश, हैहयबंश, यदुवंश, रघुबंश आदि सहस्रों बंश मौजूद हैं। आज भी हिन्दू लोग अभिमान करते हैं कि

हम बशिष्ठ वंश के हैं, हम अत्रिवंश के हैं, हम भृगुवंशी हैं, हम चन्द्रबंशी हैं, हम रघुबंशी हैं। यदि पुराणों को छोड़ दिया जायगा या पुराणों को गपोड़े मान लिया जावेगा तब तो हिन्दू जाति के बंश का पता ही न लगेगा कि हम कौन बंशी हैं फिर क्या हिन्दू लोग अपने को मुहम्मद बंशी या ईसामसीहबंशीय कहेंगे। जो लोग पुराणों का खण्डन करते हैं उनके अन्तःकरण का यही भाव है कि हिन्दू जाति के प्राचीन वंश गौरव का नाश हो और यह सृष्टि के आरम्भ से ही मूर्खा अनभिज्ञ जाति सिद्ध हो जावे, वंशों के वर्णन से मनुष्य शिक्षा लेकर बीर धर्मिक बन सकता है इसको मिटा देना निरी मूर्खता है। हिन्दू जाति का जब उत्थान होगा तब बंशों की कथा श्रवण करके होगा इससे अन्य मनुष्य समुदाय के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है जिस से मृतक हिन्दू जाति पुनः जाति-शिरोमणि बने। यदि तुम पुराणों को मानोगे तो बंश का ज्ञान जाता रहेगा और हिन्दुओं का उत्थान हिन्दु-स्वरूप में होगा अतएव तुमको पुराण मानने पड़ेंगे।

मन्वन्तर

जो लोग कल्प को जानते हैं वह मन्वन्तरों को भी जानते हैं, यदि मन्वन्तरों का ज्ञान न रहा तब तो हिन्दु जाति के इतिहास और साहित्य में घपला होजावेगा। यह बात पुराण ही बतला सकते हैं कि स्वायम्भू मनु के साथ में होने वाले इनके सहायक कौन २ ऋषि थे, और स्वारोचिष मनु के साथ में होने वाले ऋषियों के क्या २ नाम थे, मन्वन्तर के न मानने से किसी भी ऋषि के उत्पत्ति काल का पता न लगेगा, यह इतिहास में घपला होगा जब एक कल्प में १४ मनु होते हैं फिर उन १४ में से किस मनु ने मनुस्मृति बनाई, मनुस्मृति बनाने वाले मनु का क्या नाम था, उसकी स्त्री कौन थी, कितने पुत्र थे। यह कुछ भी पता नहीं चलेगा।

जिस हिन्दू जाति ने अपनी तनिक, तनिक, बातों का निर्णय कर विज्ञान की अन्तिम सीमा को दिखलाया है वही हिन्दू जाति आरम्भ से मूर्खा कहलाने की हकदार हो जावेगी। मन्वन्तर आदि सूक्ष्म विषय जानने के लिये नास्तिकों को भी पुराण मानने पड़ेंगे।

वंशानुचरित।

यदि हम पुराणों को गपोड़े समझ लें तो फिर वंशानुचरित का ज्ञान हम

को होगा कैसे ? आज जो हिन्दू लोग कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर बड़े सत्यवादी थे, ध्रुव और प्रह्लाद बड़े भक्त थे, जनक बड़े ब्रह्मज्ञानी थे, दिलीप, रघु, पाँडु बड़े बीर थे, अर्जुन अद्वितीय धनुर्धर था, भगवान् राम का चरित्र वह पवित्र चरित्र है कि जिसको पढ़कर ईसाई मुसलमान भी सिर झुका देते हैं। अनुसूया, शतरूपा, सती गान्धारी, भगवती सीता, दमयन्ती सच्ची पतिव्रता धर्म की आदर्श थीं। यह तुमको कौन बतलाता है, पुराण ही तो बतलाते हैं। यदि तुम पुराणों को गपोड़े मानोगे, तो तुम्हारा समस्त गौरव नष्ट होजावेगा, और तुम दूसरी जातियों के आगे जंगली कहलाओगे। जब तुमको भारतवर्ष की भक्ति आस्तिकता, बीरता, सदाचार, ब्रह्मचर्य, पातिव्रत धर्म जानना होगा तब तुम्हारे मुँहपर थप्पड़ लगाकर पुराण ही तुम्हारे गुरु बनेंगे। जिस दिन हिन्दू जाति पुराणों को गपोड़ा समझ लेगी उसी दिन पशुजाति बन जावेगी।

श्रीगणेशाय नमः ।

पुराण स्वरूप ।

पूर्वोक्त वैदिक साहित्य, पुराण लेख और युक्तिवाद के अवलोकन मात्र से पुराणों की महत्व उत्कृष्टता इस प्रकार उत्तम रीति से अन्तःकरण में स्थायी हो जाती है कि कोटि कोटि खंडन से भी पुराणों की आस्तिकता में धक्का नहीं पहुंचने देती । नास्तिकों ने अपने अन्तःकरण में इसका पूर्ण अनुभव किया कि अब खपुष्प, और बन्ध्यापुत्र वत् ही पुराणों का खंडन है अतएव उन महानुभावों ने पुराण नवीन हैं इस सिद्धान्त को छोड़ कर द्वितीय सिद्धान्त उठाया । इनका कथन है कि निःसन्देह स्मृति, दर्शन, वेद, पुराणों के महत्व को कह रहे हैं किंतु ब्राह्मादि अष्टादश व्यासकृत संहिता पुराण नहीं हैं, वेद के द्वितीय भाग ब्राह्मण ग्रन्थों का ही नाम पुराण है और उन्हीं के महत्व को वेदादि सच्छास्त्र गा रहे हैं । ये सज्जन ब्राह्मणों के पुराण होने में अधोलिखित पुष्टियों को सन्मुख रख कर अपने सिद्धांत को दृढ़ बनाते हैं ।

(१) ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण हैं, वे ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उनके नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी हैं, (२) ब्राह्मणग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं किंतु महर्षि लोगों ने बनाये हैं, (३) वे वेद नहीं हैं क्योंकि वेदों का व्याख्यान हैं, (४) एक कात्यायनि ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने इनके वेद होने की साक्षी नहीं दी (५) ब्राह्मणों में इतिहास हैं इस कारण भी वे वेद नहीं हो सकते अतएव पुराण हैं ।

इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिकधर्मी मनुष्य का कर्तव्य है । इस कर्तव्य को आगे रख कर अपनी बुद्धि के अनुसार हम भी कुछ विचार रूप में यहां लिखते हैं आशा है कि जिज्ञासुजन समुदाय इससे यथेच्छ लाभ उठावेगा । प्रथम पुष्टि में यह दिखलाया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी संज्ञा है इस कारण इनकी वेद संज्ञा नहीं हो सकती । इस पुष्टि में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया केवल लेख लिख कर आज्ञा मात्र दी है । क्या लेखक यह तो नहीं समझा कि जब एक वस्तु की एक संज्ञा होगई तो फिर द्वितीय

संज्ञा कैसे होगी। यदि यही बात है तब तो निश्चय नास्तिक भ्रम में पड़ गया। कोई भी संज्ञा अन्य संज्ञा का निषेध नहीं कर सकती। यदि हम निषेध करना मानलें तो क्षति यह होगी कि ब्राह्मणों की पुराण संज्ञा ही कल्प संज्ञा का विरोध कर बैठेगी। यदि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा का विरोध करती है तो इसी नियम के अनुसार प्रथम प्राप्त पुराण संज्ञा किसी प्रकार भी कल्प संज्ञा न होने देगी। दुर्जन तोषन्याय से यदि हम यह भी मान लें कि किसी प्रकार बलात्कार हम कल्प संज्ञा कर ही लेंगे तो फिर पुराण और कल्प ये दोनों संज्ञा तृतीय गाथा संज्ञा का निश्चय निषेध कर देंगी। इसमें कोई भी 'ननु' 'नच' 'किन्तु' 'किम्बा' कर नहीं सकता क्योंकि सर्वतन्त्र सिद्धान्त होगया कि एक संज्ञा द्वितीय संज्ञा की बाधा करती है। सिद्धान्त के विपरीत कदापि हो नहीं सकेगा। हम यह भी मान लें कि पुराण, कल्प संज्ञा रहते हुये भी किसी रीति से गाथा संज्ञा कर लेंगे तो फिर पुराण, कल्प, गाथा, ये तीन संज्ञा नाराशंसी संज्ञा न होने देंगी। किन्तु यहां पर इन तीन संज्ञाओं के रहते हुये भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा हो जाती है। तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी इन चार संज्ञाओं के रहते हुये वेद संज्ञा नहीं हो सकती। नास्तिक ने जो संज्ञा रहते हुये द्वितीय संज्ञा के निषेध का नियम स्थापित किया था वह तो इन्हीं परस्पर चार संज्ञाओं के होने में कपूर की भांति उड़ गया फिर इन चार संज्ञाओं के रहते हुये पञ्चम संज्ञा का अवरोध किस नियम से कर सकते हैं। वह नियम नास्तिक के लेख में आया नहीं। अतएव यह सुतरां सिद्ध है कि ब्राह्मणों की पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी संज्ञा रहते हुये भी वेद संज्ञा अवश्य है।

एक संज्ञा दूसरी संज्ञा की बाधक नहीं होती। इस विषय में हम एक उदाहरण व्याकरण का देते हैं। "हरि" इसकी प्रथम शब्द संज्ञा है। शब्द संज्ञा रहने पर भी वैयाकरण मनुष्य इसकी प्रातिपदिक संज्ञा करते हैं। प्रातिपदिक संज्ञा होने में शब्द संज्ञा किञ्चिन्मात्र भी छेड़ नहीं करती किन्तु द्वितीय संज्ञा को स्वीकार कर लेती है। विद्वान् लोगों को दो संज्ञा होने पर भी तो सन्तोष नहीं होता, वे लोग तृतीय "भ" संज्ञा कर बैठते हैं। यहां पर भी शब्द संज्ञा और प्रातिपदिक संज्ञा "भ" संज्ञा से शत्रुता नहीं करती। फिर चतुर्थी के एक वचन में इसी "हरि" की कि जिसकी

शब्द संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा, भ संज्ञा, हो चुकी है, "घि" संज्ञा करते हैं । यहां पर भी शब्द संज्ञा, भ संज्ञा ने घि संज्ञा का निषेध नहीं किया फिर हम कैसे मानलें कि पुराण,कल्प,गाथा, नाराशंसी, वेद संज्ञा का निषेध कर देंगी ।

अब एक लौकिक उदाहरण ले लीजिये । कल्पना कीजिये कि कानपुर में कोई रघुनन्दन शुक्ल नामक व्यक्ति है । वह पाठशाला में संस्कृत पढ़ने लगा, परिश्रम के फल से वह कुछ दिन में शास्त्री परीक्षा दे आया और उत्तीर्ण भी होगया । अब उसकी तीन संज्ञा हो गईं । रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री । यहां पर रघुनन्दन और शुक्ल इन दो संज्ञाओं ने शास्त्री संज्ञा के आने पर उसकी कुछ भी रोक टोक नहीं की । अब यह सज्जन अंग्रेजी भाषा में परिश्रम करने लगा ।कुछ दिन के पश्चात् बी०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ । अब यह अपने को रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री, बी० ए० लिखने लगा । रघुनन्दन, शुक्ल, शास्त्री, इन तीन संज्ञाओं ने बी० ए० संज्ञा का कुछ भी विरोध नहीं किया । यही पुरुष राज्याधिकार में प्रवेश कर गया और शनैः शनैः जज हो गया । अब एक संज्ञा और आगई । प्रथम की संज्ञाओं ने जज संज्ञा से महाभारत नहीं मचाया । फिर हम कैसे मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी, संज्ञा ब्राह्मणों की वेद संज्ञा होने में घोर युद्ध मचावेंगी ।

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि मन्त्र भाग में जिस मन्त्र की पुराण, इतिहास संज्ञा है उसी मन्त्र की वेद संज्ञा भी है । मंत्र नीचे देखिये—

यस्या वै मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।
वैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥ सोदक्रामत्सा
सुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति तस्या विरोचनः।
प्राह्लादिर्वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ॥

अ० का०८ अ०५ सू० १३

अर्थ—उस गो रूप पृथ्वी का वैवस्वत मनु वत्स (बछड़ा) हुआ,पृथ्वी का पात्र बनाया, बेन के पुत्र महाराज पृथु ने उस गो से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा ! फिर वह गो रूप पृथ्वी असुरों के पास पहुँची । असुरों ने उसका आह्वान किया । आह्वान के पश्चात् जब वह गो असुरों के पास ठहर गई तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बना कर पृथ्वी पात्र में अपने भोजन को दुहा ।

इस मंत्र की पुराण, इतिहास संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा सिद्ध है अतएव इसके वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं हिलाता । इसी उदाहरण को सन्मुख रख लें तो फिर वह कौन न्याय है जिसका आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं होती । नास्तिक ने किञ्चित् भी विचार नहीं किया, हास्यास्पद लेख लिखने का ही उद्योग किया है । अब हम यह भी सिद्ध करेंगे कि कल्प की वेद संज्ञा होती है "चत्वारिशृङ्गा" इस वेद मंत्र में कल्प की वेद संज्ञा वेद ने ही मानी है और इसके ऊपर यास्क मुनि ने निरुक्त भी किया है । जब कि कल्प की वेद संज्ञा स्वतः प्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है और उसके साक्षी वेदज्ञाता मुनि यास्क हैं फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मान लें कि कल्प संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती । विचारशील सज्जनों की दृष्टि में नास्तिक का भाषण बालभाषण की तुल्यता से अधिक बिन्दु मात्र भी गौरव नहीं रखता । "चत्वारिशृङ्गा" यह मन्त्र इसी लेख में निरुक्त के सहित हम आगे लिखेंगे अतएव हमने यहां नहीं लिखा । आगे यह भी दृष्टिगोचर कराने का उद्योग करते हैं कि नाराशंसी की भी वेद संज्ञा होती है। अधोलिखित मन्त्र के अवलोकन मात्र से निरन्तर सिद्ध हो जावेगा—

इदं जना उपश्रुत नराः शंसस्तविष्यते ।
षष्टिंसहस्रा नवतिं च कौरम आरु शमेषु दद्महे ॥

अथर्व० कां० २०

हे मनुष्यो ! इस बात को सुनो, मनुष्य स्तुत किये जाते हैं साठ सहस्र और नव्वे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं ।

इस मंत्र की नराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती । फिर हम किस आधार का अवलम्बन करके कह सकते हैं कि नराशंसी संज्ञा होने पर वेद संज्ञा नहीं होती । ब्राह्मणों के वेद न होने में जो प्रथम हेतु लिखा गया था उसका सारांश पाठक अवलोकन कर चुके । अब द्वितीय हेतु पर विचार का आरम्भ करते हैं । द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं किन्तु महर्षि लोगों के बनाये हैं ।

नास्तिक के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक जैसा है । इनका

मन्तव्य है कि अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा, इन चार ऋषियों के द्वारा वेद संसार में आया अर्थात् ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक वेदज्ञान इनके अन्तःकरण में प्रकाशित किया उसी को इन्होंने संसार में फैलाया इसी ज्ञान का नाम वेद ज्ञान है। ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव होने में इनका मत है कि अनेक ऋषि समाधिस्थ हुये और उसी समय में परमात्मा ने उनके अन्तःकरण में वेदार्थज्ञान प्रकाशित किया उस ज्ञान का नाम "ब्राह्मण ग्रंथ" है।

इस मत में वेद और ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं, ऋषि समाधि में एक दशा में बैठे, ज्ञान की उपलब्धि एक ही प्रकार से और एक ही ईश्वर से हुई, फिर हमको यह ज्ञान नहीं होता कि वेदों को ईश्वर प्रणीत और ब्राह्मणों को ऋषिप्रणीत किस हेतु से माना। यदि वास्तव में दोनों में ही ज्ञान ईश्वर का है तब तो दोनों ही ईश्वरज्ञान हैं। ईश्वरज्ञान रहने पर भी एक ईश्वरप्रणीत और द्वितीय ऋषिप्रणीत लिखना प्रमाद है अतएव सिद्ध हुआ कि वेद और ब्राह्मण इन दोनों का प्रादुर्भाव इनके मत में एक जैसा है फिर ब्राह्मणों को ऋषिप्रणीत लिखना बड़ी भारी भूल है।

इस प्रकार से जो वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव वादी ने माना है वह कल्पित है। न कोई अग्नि, न कोई वायु और न कोई रवि ऋषि था। अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे किंतु उनके द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं है अतएव ये समस्त मानसिक कल्पनाएं, हैं मानसिक कल्पना रहने पर भी ये सत्य मानी जाती हैं जब इसके मत में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीय ज्ञान हैं फिर ब्राह्मणभाग ऋषिप्रणीत किस प्रकार हुआ इस पर पाठकवर्ग विचार करे।

वैदिक सिद्धांत में भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का प्रादुर्भाव तुल्य है। शतपथ ने लिखा है कि—

स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदोऽथयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः

श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि ।

श० १४ प्र० ब्र० ४ कं० १०

अर्थ—जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम्र उठता है और वह धूम्र चारो दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरीय ज्ञान जो कि ईश्वर का श्वासभूत है वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यानरूप होकर चारो तरफ फैला।

इस वैदिक सिद्धांत को जब हम आगे रखते हैं तब मन्त्र, ब्राह्मण, पुराण आदि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव एक जैसा है फिर हम एकको ईश्वर प्रणीत और द्वितीय को ऋषिप्रणीत किस न्याय को आगे रखकर कहने का साहस कर सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण ग्रंथ ऋषिप्रणीत नहीं किन्तु ईश्वरप्रणीत हैं अतएव द्वितीय हेतु निःसन्देह सारशून्य व्याधिग्रस्त पुरुष के कथन की तुल्यता को छोड़कर शेष कुछ भी फल नहीं रखता।

तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं क्योंकि वे वेद का व्याख्यान हैं अतएव पुराण हैं। क्या आनन्द का लेख है, अवलोकनमात्र से चित्त आनन्दाब्धि में निमग्न हो जाता है, जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का हो जावे यह लेख हमारी बुद्धि में समावेश नहीं करता। हमने तो आज तक यही पढ़ा और यही सुना है कि जिस पुस्तक में जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उसी विषय का रहता है। उदाहरण अवलोकन कीजिये। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के नियम रूप सूत्रों का निर्माण करके अष्टाध्यायी रची। उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतञ्जलि ने विस्तृत व्याख्यान किया, उस विस्तृत व्याख्यान का नाम 'महाभाष्य' है। आज तक भारत के गौरव रखने वाले "महाभाष्य" को सभी विद्वान व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं। फिर वह कौन नियम है जिस नियम से पुस्तक अपने विषय को छोड़ कर अन्य विषय का हो जाता है। यदि पुस्तक का अन्य विषयक होना सिद्ध है तब तो अनर्थ हो जावेगा आगे को इसी नियम के अनुकूल महाभाष्य भी व्याकरण का ग्रन्थ नहीं रहेगा। कल्पना करो किसी मनुष्य से पूछा कि महाभाष्य किस विषय का पुस्तक है? उसने उत्तर दिया कि "महाभाष्य" तो ज्योतिष का ग्रन्थ

है। प्रश्न कर्ता ने कहा हम तो आज तक व्याकरण का सुनते थे ? उत्तरदाता कहेगा कि महाभाष्य व्याकरण का ग्रन्थ नहीं क्योंकि उसमें व्याकरण का व्याख्यान है अतएव वह ज्योतिष का ग्रन्थ है।

द्वितीय उदाहरण देखिये, महर्षि गौतम ने "न्याय दर्शन" का निर्माण किया उस न्यायदर्शन के ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य किया, आज तक सभी विद्वान् वात्स्यायनभाष्य को न्याय का ग्रन्थ बतलाते हैं। तथा न्याय दर्शन के व्याख्यान रूप "रामरुद्री" "दिनकरी" आदि २ बड़े २ पुस्तक न्याय के ग्रन्थ कहलाते हैं। किन्तु अब वे न्याय के ग्रन्थ न रहेंगे। कल्पना करो एक मनुष्य ने किसी से पूछा कि "वात्स्यायन भाष्य" और "रामरुद्री" तथा "दिनकरी" किस विषय के ग्रन्थ हैं उत्तर मिला कि वैद्यक के। प्रश्नकर्ता ने कहा हम तो आज तक उनको न्याय के पुस्तक ही सुनते आये हैं। उत्तरदाता बोला कि यह कहने वालों की भूल है "वात्स्यायन भाष्य" और "रामरुद्री" तथा "दिनकरी" में न्याय का व्याख्यान है इस कारण वे वैद्यक के ग्रन्थ हैं।

इस सिद्धांत को आगे रखलें तब तो कुछ का कुछ ही हो जावेगा। वादी का यह हेतु शास्त्रविरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध और प्रत्यक्षविरुद्ध है। जब व्याकरण का व्याख्यान रूप महाभाष्य व्याकरण है और न्याय के व्याख्यान रूप "वात्स्यायन भाष्य" तथा "रामरुद्री" "दिनकरी" न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यानरूप ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे। इसके ऊपर पाठक ही विचार करलें कि इस तृतीय हेतु में कितना गौरव है।

चतुर्थ हेतु में दिखलाया गया है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते क्योंकि एक कात्यायनि ऋषि को छोड़ कर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी अतएव वे पुराण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं इसको एक नहीं समस्त ऋषियों ने माना है। उन समस्त ऋषियों में से कुछ ऋषियों के लेख नीचे लिखे जाते हैं—

। महर्षि जैमिनि ।

तच्चोदकेषु मंत्राख्या

मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः

मीमांसा० अ० २ सू० ३३

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मंत्र है। मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिये, महर्षि जैमिनि ने दो सूत्रों में मंत्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना या नहीं ? पहले सूत्र में मंत्रभाग को वेद बतलाया, और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया। आप कहते थे कि केवल कात्यायनि ऋषि ने ही ब्राह्मणों को वेद माना है यदि ऐसा है तो फिर ये दूसरे महर्षि जैमिनि कहां से कूद बैठे जो ब्राह्मणों को वेद कह रहे हैं, और देखिये—

महर्षि गौतम।

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः

न्याय द० अ० २ आ० १ सू० ५७

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि (अनृतव्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः) उसके वाक्यों में असत्, पूर्वापरविरोध, दो बार कहना इत्यादि दोष हैं। असत्य का उदाहरण यथा "पुत्र कामः पुत्रेष्टया यजेत" जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करे परंतु कहीं पुत्रेष्टि करने से भी पुत्र नहीं होता। जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्य का प्रमाण नहीं तो "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्ग कामः" स्वर्ग की कामना से अग्निहोत्र करे, ऐसा जो वेद में अदृष्टार्थ वाक्य है उसकी (प्रामाण्यं) सत्यता में कैसे विश्वास होवे ? यहां (तदप्रामाण्यम्) इस सूत्र में तत् पद से वेद ही का ग्रहण है इस रीति से वेद के अप्रमाण की आशंका करके (अग्निहोत्रं) इस ब्राह्मण वाक्य का अप्रमाण दिखलाते हैं।

यज्ञ का करना ब्राह्मणों में लिखा है। और पुत्रेष्टि करने से पुत्र नहीं होता इस बात को लेकर वेद पर मिथ्या कथन का कलंक लगाया गया है। यदि ब्राह्मणों को वेद न माना जाता तो मिथ्या बोलने का कलंक केवल ब्राह्मणों पर ही लगता क्योंकि मंत्र भाग में कहीं पर पुत्रेष्टि आदि यज्ञों की विधि नहीं लिखी। यहां वेद पर कलंक लगाया गया है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं। महर्षि गौतमकृत न्यायदर्शन से ब्राह्मणों का वेद होना सिद्ध हो गया अब आगे चलिये—

महर्षि कणाद ।

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां, दृष्टाऽभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।

वैशे० द० अ० १० आ० २ सू० ८

(दृष्टानाम्) [वेद में] देखे हुए (दृष्टप्रयोजनानाम्) जिनका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है, उनका तथा (दृष्टाभावे) जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी (प्रयोगः) अनुष्ठान करना (अभ्युदयाय) पारलौकिक फल के लिये [माननीय है] ।

दृष्टफल और अदृष्टफल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्टफल वेद में बतलाया गया है । अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं ।

महर्षि वात्स्यायन ।

वात्स्यायन भाष्यम्—पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते । दृष्टार्थस्य वाक्यस्य अनृतत्वाददृष्टार्थमपि वाक्यं अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते ।

वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे, परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होता अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसा कि 'अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है' यह भी मिथ्या है ।

जिस प्रकार न्याय दर्शन के कर्ता महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में ब्राह्मणों को वेद माना है उसी प्रकार न्यायदर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ब्राह्मणों को वेद स्वीकार करते हैं ।

महर्षि व्यास ।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्

वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म प्रत्यक्ष व अनुमान का विषय नहीं है, केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक (प्रमाणवान्) है, मूल शब्द यहां प्रमाण वाचक है, शब्द ही

प्रमाण में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना, व कारण होना सिद्ध है। जब श्रुति (शब्द प्रमाण से) सिद्ध है तो अन्य प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध होने से उसके कारण व कर्ता होने में शङ्का व दोष आरोपण करना युक्त नहीं है।

ब्रह्मसूत्र के आरम्भ से अन्त तक उपनिषदों की व्याख्या है। यहां पर उपनिषद् जो ब्राह्मणों का भाग है उसको वेद मानकर भगवान् व्यास जी ने इस सूत्र को रचा है। इससे सिद्ध है कि उपनिषद् जो ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग है वह वेद है। वेदान्त के भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य, भगवान् वल्लभ, प्रभु निम्बार्क, तथा माध्व और जगद्गुरु शंकराचार्य हैं इन सभी आचार्यों ने उपनिषदों को वेद माना है।

अब कौन विवेकी पुरुष कह सकता है कि ब्राह्मण भाग वेद नहीं है। और न मानने का कोई यत्न नहीं "मेरे घोड़के तीन टांग" इसका कोई उपाय भी नहीं।

और देखिये—

महर्षि बौधायन।

मंत्रब्राह्मणमित्याहुः

बौधायन० सूत्र

मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं हमको नहीं मालूम, बादी ने कात्यायनी सूत्र ब्राह्मणों को वेद कहता है ऐसा क्यों लिखा और इस बौधायन सूत्र को क्यों छिपाया।

महर्षि आपस्तम्ब।

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्

मंत्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है।

ऊपर लिखे थोड़े से ऋषि हमने गिनवा दिये। इतने ही ऋषि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते किंतु जितने ऋषि आज तक हुये हैं वे सब ही ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। एक ऋषि का प्रमाण और देकर हम इस लेख को बन्द करेंगे।

महर्षि मनु।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।

सर्व्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥

मनुजी का कथन है वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदयकाल में एवं अनुदयकाल में, तथा सूर्य और नक्षत्रों के अदृश्य काल में भी हवन करना चाहिये ।

"उदितेजुहोति' "अनुदितेजुहोति"

ये सब श्रुतियां ब्राह्मण भाग की हैं और मनुजी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है, अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं ? क्या आनन्द की बात है कि समस्त ऋषियों ने ब्राह्मणों को जो वेद माना है वह तो तुम मानो मत, किन्तु किसी एक भी ऋषि ने जिन ब्राह्मणों को पुराण नहीं माना वह तुम मान लो । धन्य है इस उपदेश को ?

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं इसमें (५) पांचवां कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है । इस कारण वे वेद नहीं ? इस के ऊपर हमारा कथन [illegible] में [illegible] इतिहास है [illegible] मंत्र भाग भी इनकी दृष्टि में वेद न ठहरेगा । मंत्र भाग का इतिहास देखिये—

संमात पन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः । मूषो न शिश्ना-व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।

ऋग्वेद० अष्टक० १ अ० ७ सू० १०५ मं०८

त्रितं कूपेऽवहित मेतत्सूक्तं प्रति बभौ तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्र मृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति त्रितस्तीर्णतमो मेधया बभूवापिवा संख्यानामैवाभिप्रेतं स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवुः ।

यह निरुक्तकार का लेख है अर्थात् मुझ को सौतों की समान चारों ओर से कुएं की ईंटें दुःख देनी हैं और जैसे मूसे अन्नलिपित सूत्रों को काटते व खाते हैं तैसे ही हे इन्द्र? तेरी स्तुति करने वाली मुझको कामनाएं भक्षण कर रही हैं अर्थात् दुःख दे रही हैं । हे पृथ्वी आकाशाभिमानी देवताओ! मेरे इस वचन का प्रयोजन जानो, अर्थात् जिस कारण से मैं रो रहा हूं इस अति भयानक कूप से मेरा उद्धार करो । यह सूक्त कुएं में गिरे हुये त्रित को प्रकाशित हुआ । इस सूक्त में जो वाक्य हैं वह इतिहासमिश्र हैं जैसे "त्रितःकूपेऽवहितो देवात् हवत् ऊतये इत्येवमादि"

अर्थात् जैसे कुएं में पड़ा हुआ त्रित देवताओं की स्तुतियां करके आह्वान करता हुआ, फिर वह इतिहास ऋग्वद्ध और गाथावद्ध होता है, उसका नाम त्रित क्यों हुआ बुद्धि करके तीर्णतम अर्थात् अत्यन्त तरनेवाला हुआ। अथवा ये तीन भाई थे एकत, द्वित, त्रित, तीसरा होने से इसको त्रित कहते हैं।

मंत्रसंहिता का एक इतिहास हमने पाठकों के आगे रख दिया, जो लोग इसके पक्षपाती हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ इस कारण वेद नहीं कि उनमें इतिहास है, अब वे क्या कहते होंगे, क्या इतिहास बीच में पड़ने से पुस्तक वेद नहीं रहता, यदि ऐसा है तब तो मंत्रभाग भी वेद नहीं रहेगा क्योंकि मंत्रभाग में इतिहास विद्यमान है और उसके ऊपर 'निरुक्त' है' फिर पूर्व न्याय से मंत्रभाग वेद कैसे हो सकता है। हमने यहां पर एक इतिहास दिखला दिया आगे मंत्रभाग के सैकड़ों इतिहास दिखलावेंगे। और बीच बीच में जहां जिस वैदिक इतिहास की आवश्यकता होगी वहां पर भी दिखलाया जावेगा। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मंत्रभाग भी वेद नहीं,। ब्राह्मणग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते, पुराण तो ब्रह्म पुराण आदि अठारह ही पुस्तक पुराण रहेंगे। ब्राह्मण पुराण नहीं हैं इसके कारण नीचे दिखलाये जाते हैं देखिये—

(१) किसी भी ब्राह्मण के आरम्भ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उनमें पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे। इसके विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कन्ध पर 'इति श्रीमहापुराणे' लिखा है, आरम्भ में पुराण, अन्त में पुराण, प्रत्येक अध्याय में पुराण।

(२) ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है, और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अङ्ग है। वेद का प्रधान अङ्ग ब्राह्मणों में वर्णित है, इस कारण ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं।

ब्राह्मणों का सम्बन्ध यज्ञ से है, इसका प्रमाण नीचे देखिये—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे

शीर्षे प्रायणीयो दयनीये सप्त हस्तासः सप्तछन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मंत्र ब्राह्मण कल्पै वृषभो रोरवीति । रोरवण मस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति । महोदेव इत्येषहि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येषहि मनुष्यानाविशति यजनाय । तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ।

चार वेद चार सींग हैं तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायणीय और उदयणीय ये दो शिर हैं, सात छन्द हाथ हैं, मंत्र, ब्राह्मण, कल्प, इन तीन से बंधा, शब्द करता हुआ बैल महादेव नाम यज्ञ यजमान के लिये मनुष्यों में प्रवेश करता है।

ऊपर के मंत्र से और निरुक्त से सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञ कर्म का वर्णन है अतएव वे पुराण नहीं किन्तु वेद हैं क्योंकि यज्ञ की विधि वेदों में ही है।

(३) वैदिक लोगों के यहां श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं, जिस में वेद के मंत्र बोले जावें और वेद ही में जिस की विधि मिले उस कर्म का नाम श्रौतकर्म है, मंत्र 'मंत्रसंहिता' से लिये जाते हैं और विधि 'ब्राह्मण' तथा 'श्रौत-सूत्रों' से ली जाती है, ऐसे कर्म का नाम श्रौतकर्म है। श्रौत का अर्थ है, श्रुति नाम बेद का बतलाया कर्म, ब्राह्मणों के बतलाए हुये कर्म का नाम श्रौतकर्म है। इसका अर्थ यह हुआ कि बेद का बतलाया कर्म, जब इनका बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है, तब ये पुराण नहीं किंतु बेद हैं।

(४) जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी न किसी बेद की शाखा के ब्राह्मण हैं। जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है। जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं तो वे फिर पुराण कैसे हो जावेंगे तब तो बेद ही रहेंगे।

(५) ब्राह्मणग्रंथ ब्राह्मण भाग कहलाते हैं, भाग नाम एक हिस्से का है, जहां पर हिस्सा अर्थात् जुज होता है वहां पर हिस्सेवाला भी होता है तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मणग्रंथ जिसके भाग हैं, ब्राह्मणसमुदाय पुराण का भाग नहीं किंतु बेद का भाग है अतएव ये पुराण नहीं हैं। बेद हैं।

(६) जहां जहाँ पर पुराण का पाठ उद्धृत किया गया है वहां पर 'अमुक पुराण में है' ऐसा लिखा है, और जिस ग्रन्थ में ब्राह्मणों का पाठ उद्धृत किया वहां श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि यह

शतपथ पुराण का बचन है किन्तु ऐसा कहीं नहीं मिलता, अतएव ये पुराण नहीं।

(७) किसी भी ऋषि ने इनके विषय में पुराण होने की सम्मति नहीं दी अतएव ये पुराण नहीं हैं।

(८) वेद के प्रादुर्भाव के साथ इनका प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भाव विधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक्, और पुराण पृथक् हैं अतएव ये पुराण नहीं हैं। जिन प्रमाणों से पुराण पृथक् और वेद पृथक् हैं उनको हम नीचे लिखते हैं—

अथस्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पा गाथानराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृता हुतिभिर्यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन्स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्यायद्ब्राह्मणानि कुल्यान्गाथा नाराशंसीरितिहास पुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः स यावन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिद. धाति नमो ब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यो नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमीति।

आश्वला० सू० अ० ३

आशय यह है कि जो ऋगादि चारों वेदों को और ब्राह्मणादि ग्रन्थों को कल्प, गाथादि सहित पढ़ते हैं उनके पितरों का स्वधा से अभिषेक होता है। ऋग्वेद के पढ़ने वाले के पितरों को दूध की कुल्या, यजुर्वेद के पढ़ने वालों के पितरों को घृत की कुल्या, साम के पढ़नेवालों के पितरों को मधु की कुल्या, अथर्वांगिरस के पढ़ने वाले के पितरों को सोम की कुल्या, और ब्राह्मण, कल्प, नाराशंसी, इतिहास, पुराण, के पाठ करनेवाले के पितरों को अमृत की कुल्या प्राप्त होती है, इस कारण इनका पाठ करना। ईश्वर अग्नि, पृथ्वी, वाक्पति, विष्णुदेव को नमस्कार है।

द्वितीय प्रमाण देखिये—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः स संस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्या-

एतेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते।

गोपथपूर्वभाग: द्वितीय प्रपाठक:

यदि ब्राह्मण ग्रन्थों ही में इतिहास पुराण का अन्तर्भाव होता तो गोपथ में और "आश्वलायन" में इस प्रकार कल्प, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखता, इससे भी ब्राह्मण से अतिरिक्त ही पुराण इतिहास जाना जाता है, इस कारण जो पुराण को इतिहास का विशेषण कहते हैं सो प्रमादी हैं क्योंकि "सेतिहासाः सपुराणाः" ऐसा पृथक् कहना ही इनमें भेद प्रतीत कराता है जब इतिहास सहित और पुराण सहित ऐसे दो शब्द कहे तो निःसन्देह ये दोनों पृथक् ही हैं और सूत्रकार ने भी तो अश्वमेध प्रकरण में आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखा है। अब यह तो निश्चय हो गया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणों से अतिरिक्त ही कोई ग्रन्थ हैं, यदि हम ब्राह्मण शब्द से पुराणों का ग्रहण कर लें तो फिर पुराण शब्द से किसका ग्रहण करें इसका कोई उत्तर नहीं। ब्राह्मण और पुराण दोनों पृथक् पृथक् गिनाये हैं इस कारण ब्राह्मण पुराण नहीं हो सकते।

(९) ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण इन दोनों के विषय में बड़ा अन्तर है, महर्षि वात्स्यायन ने "समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः" न्यायदर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखा है, कि "यज्ञो मंत्र ब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य" अर्थात् मंत्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है, और पुराण इतिहास का विषय लोकवृत्त है। जो बात महर्षि वात्स्यायन ने लिखी है वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है जो ब्राह्मणों में बिलकुल नहीं है। पुराणों का लक्षण लिखते हुये महर्षि व्यास जी ने वायु पुराण में एक श्लोक लिखा है वह यह है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थ-सर्ग (तत्वों की रचना) विसर्ग (प्राणियों की रचना) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र, (कैरेक्टर) ये पांच बातें जिसमें हों उसको पुराण कहते हैं।

वंश और मन्वन्तर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है,

ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सर्वथा ही अभाव है, फिर हम उनको पुराण कैसे मानलें प्रोफेसर विलसन तथा वेवर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जो पुराणों पर विचार किया है वह पांच लक्षणों को लेकर किया है, जो इसी ग्रन्थ में दिखलाया गया है। जब पुराणों में पांच लक्षण प्रधान हैं और वे ही पांच लक्षण ब्राह्मणों में नहीं हैं तो फिर हम ब्राह्मणों को पुराण कैसे मान लें।

कुछ दिन हुये स्वामी दयानन्द और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इन दो प्रसिद्ध पुरुषों में वेदों पर विवाद उठा, स्वामी दयानन्द कहते थे कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं और राजा साहब कहते थे कि ब्राह्मण वेद हैं। इन दोनों का लेखबद्ध शास्त्रार्थ हुआ, वह लेखबद्ध शास्त्रार्थ विचार के लिये संस्कृत के विद्वान् यूरोप निवासी विद्वन्मण्डलीभूषण काशिकराजकीयपाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब के आगे रक्खा गया, टीबो साहब ने अपने फैसले में लिखा है।

वह चिट्ठी यह है।

The question at issue between Raja Shivaprasad and Dayanand Sarssvati is the authoritativeness of the Several parts of what is commonly comprised under the name 'Veda' Dayanand Saraswati rejects the Brahmanas and Upnishads (with one exception) and acknowledges the authority of the Sanhitas only. As this procedur is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the Present day as well as of past ages of which we have records, Dayanand Saraswati is bound to Produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Sanhitas are ईश्वरोक्त while The Brahmans and Upnishads are merely जीवोक्त But how does he prove this assertion? (for as it stands it cannot be called anything but a mere assertion), The assertion of the Sanhitas being स्वतः प्रमाण while the Brahmans and Upnishads are merely परतः प्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Saraswati has brought

forward up to the present, Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वतः प्रमाण if one is so ?" or again "why should not both be परतः प्रमाण if one is so ?" and this reasoning could certainly not be emplyed by any one for proving that other nonvedic books as well are to be considered equal to the veda; for the veda alone (including Brahmans and Upnishabs) enjoys the privilege of having-since immemorial times been acknowledged by Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quouted by Dayanand Saraswati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak Upuishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well-founded; if one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertion whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्य समूह is wholly irrelevant to the point at issue.

Dayanand Saraswati has certainly no right to declare the passage from Katyayana-according to which the veda consists of Mantra and Brahmana-on interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contrary to this preconceived opinions an interpolation.

Dayanand Saraswati rejects the authority of the Brahmanas. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiriya Sanhita, which in character nowise differ from other Brahmanas, like the Satapatha, Panchavinsa, ect. And on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana ?

G. THIBAUT.

इस लेख में उत्तम रीति से स्पष्ट हो गया कि ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम पुराण नहीं है । ब्राह्मण ग्रन्थ तो वेद हैं और पुराण नामक पुस्तक वे हैं कि जिनमें सर्गादि

पाँच लक्षण हों। सर्गादि पांच लक्षण व्यासकृत ब्राह्मय आदि अष्टादश पुराणों में ही पाये जाते हैं। इस कारण इन्हीं अष्टादश पुस्तकों का नाम पुराण है।

जितनी शङ्का थी उनका उत्तर हमने क्रम से दे दिया अब 'ननु' 'नच' करने वाली कोई भी शङ्का नहीं रही अतएव यहां पर ही इस लेख की समाप्ति करते हैं।

वास्तविक पुराणस्वरूप।

कई एक सज्जनों का प्रश्न है कि पुराणों में कहा हुआ जो पुराण का स्वरूप है वह स्वरूप वर्तमान पुराणों में नहीं घटता ?

इसके उत्तर में विचार करने से हम इस फल पर पहुँचते हैं कि अठ्ठारह पुराणों को पुराण तथा महापुराण इन दो नामों से याद किया गया है और उनका लक्षण यह नीचे लिखा है—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानपोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।

श्रीमद्भा० स्कं० द्वि० अ० १०

इस पुराण में सर्ग (सूक्ष्म रचना) विसर्ग (सृष्टि रचना) स्थान (भूगोल खगोल) पोषण (पालन) ऊति, मन्वन्तर और मन्वन्तरों का चरित्र निरोध, मुक्ति, ये नव लक्षण कहे हैं इनके कहने का प्रयोजन यह है कि इन से दशवां लक्ष्य आश्रय (ईश) जाना जावे।

जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दश लक्षण वर्णन किये हैं इसी प्रकार समस्त महापुराणों में दश लक्षण पाये जाते हैं देखिये—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनान्तु क्रमेण च॥

वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तनं हरेरवे देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ० १३२

१-मूल सृष्टि, २-विस्तृत सृष्टि, ३-संसार की स्थिति का वर्णन, ४-संसार का पालन, ५-कर्मों की वासना, ६-मनुओं का क्रम, ७-प्रलय का वर्णन, ८-मोक्ष का निरूपण, ९-भगवान हरि का कीर्तन, १०-देवताओं का पृथक पृथक वर्णन, महापुराणों में ये दश लक्षण कहे हैं ।

उपपुराणों को उपपुराण तथा पुराण कहते हैं और उनमें नीचे लिखे हुये लक्षण मिलते हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पंचलक्षणम् ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में सूतजी शौनकजी से कहते हैं कि अब पुराण के लक्षण सुनो १—महाभूतों की सृष्टि का वर्णन, २ समस्त चराचर की सृष्टि का वर्णन, ३-वंशों का वर्णन, ४-मन्वन्तरों का वर्णन और ५-वंश के प्रधान २ पुरुषों का चरित्र वर्णन जिसमें किया गया हो उसका नाम पुराण है ।

नारद पुराण में जो ब्राह्मपुराण का लक्षण कहा है वह इस प्रकार है-

ब्राह्म

तत्पूर्वभागे—

देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिःप्रकीर्तिता ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्तनं ब्रह्मन्महापातकनाशनम् ॥
यत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः ।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ॥

ततश्च सोमवंशस्य कीर्तनं यत्र वर्णितम् ।
कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ॥
द्वीपानाञ्चैव सिंधूनां वर्षाणां वाप्यशेषतः ।
वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणां च प्रदृश्यते ॥
नरकानां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ॥
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य मानद ॥

तदुत्तरभागे—

अस्योत्तरविभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
योगानाञ्च समाख्यानं सांख्यानाञ्चापि वर्णनम् ॥
ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य च शासनम् ।
एतद्ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमर्चितम् ॥
वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ।

नारदपुराण ।

हे मुनीश्वर ? जिसमें देवासुरगण तथा प्रजापतिगण और दक्षादि की उत्पत्ति हुई है पश्चात् लोकेश्वर परमात्मा सूर्यदेव का महापातकनाशन वंशानुकीर्तन जिस में परमानन्दरूपी चतुर्व्यूहावतार श्रीमान् रामचन्द्र का अवतार पश्चात् सोमवंश का कीर्तन और जगदीश्वर श्रीकृष्ण का पापहरचरित्र, जिसमें सम्पूर्ण प्रकार से समस्त द्वीप, सिंधु, वर्ष, पाताल और स्वर्ग का वर्णन तथा सम्पूर्ण नरकों के नाम, सूर्य की स्तुति, पार्वती का जन्म और विवाह पश्चात् दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र वर्णित है । हे मानद ! इस पुराण का यह पूर्व भाग है । इसके उत्तर भाग में विस्तृत रूप से तीर्थयात्रा विधान, क्रम से पुरुषोत्तम वर्णना कही है, पश्चात् यमलोक वर्णन, पितृश्राद्धविधि और वर्णाश्रम धर्म विस्तार एवं विष्णुधर्म, युगाख्यान, प्रलय-वर्णन, ब्रह्मवाद समुद्देश और पुराणशासन कथित हुआ है, यह ब्रह्मपुराण दो भागों में विभक्त सर्वपापहर और सर्व सौख्यदायक है ।

इस समय में जो ब्राह्मयपुराण उपलब्ध है नारदपुराण की सूची के साथ उसकी पूर्ण एकता पाई जाती है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि जैसा ब्राह्मयपुराण नारदपुराण ने बतलाया है उपलब्ध वैसा का वैसा ही है।

(१) विलसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने वर्तमान ब्रह्मपुराण के विषय में लिखा है कि यह पुस्तक तेरहवीं शताब्दी में बना है क्योंकि इस में जगन्नाथ माहात्म्य और प्रसाद (जगन्नाथ के मन्दिर) का वर्णन है (२) मत्स्योक्त ब्रह्म-पुराण में मरीचि श्रोता और ब्रह्मा वक्ता और प्रचलित ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा वक्ता और दक्षादिक मुनिगण श्रोता हैं इसकारण वर्तमान ब्रह्मपुराण मत्स्योक्त ब्रह्म-पुराण नहीं है।

श्चात्य विद्वानों के इन दो सिद्धांतों का ठीक विचार करने के समय हम इस फल पर पहुँचते हैं कि निस्सन्देह पाश्चात्य विद्वानों ने ब्रह्मपुराण का विचार करते हुये गलती खाई है। इस पुराण के १७६ अध्याय में अनन्त वासुदेव का माहात्म्य वर्णित है। उत्कल के प्रसिद्ध भुवनेश्वर क्षेत्र में अनन्त वासुदेव का मंदिर विद्यमान है, उस देश के सामवेदिगण के पद्धतिकार अद्वितीय पंडित भवदेव भट्ट ने इन पूर्व से विद्यमान अनन्त वासुदेव का मन्दिर ११ शताब्दी में निर्माण किया था, ब्रह्मपुराण में अनन्त वासुदेव की मूर्ति की उत्पत्ति और माहात्म्य वर्णित होने पर मंदिर का कुछ प्रसंग नहीं है यदि उस मंदिर के निर्माण समय माहात्म्य बनता तो मंदिर का भी प्रसंग होता, इस प्रमाण से पाश्चात्य पंडितों का मत असंगत प्रतीत होता है। पुरुषोत्तम माहात्म्य में जो प्रासाद का वर्णन है वह वर्तमान प्रासाद नहीं है वहां गांगेय पद है वर्तमान पुरुषोत्तम मंदिर गंगेश्वर चौड़ द्वारा निर्मित हुआ है चौड़गंग १०७७ खृष्टाब्द में कलिंग देश के सिंहासन पर आरूढ़ थे इसके ३०। ३५ वर्ष पीछे उन्होंने उत्कल आक्रमण किया तो ११०७ से १११२ तक पुरुषोत्तम प्रासाद निर्मित हुआ होगा यह चौड़गंग और बल्लालसेन दोनों एक ही समय के हैं। बल्लालसेन ने दानसागर में प्रचलित ब्रह्मपुराण से श्लोक उद्धृत किये हैं अतएव अब यह निश्चय ही हो गया कि वर्तमान प्रासाद से ब्रह्मपुराण बहुत प्रथम का है। सेनराज लक्ष्मण की शिलालिपि में भी पुरुषोत्तम क्षेत्र का उल्लेख है।

ईस्वी सप्तम शताब्दी में चीन परिब्राजक हिडियनसियाने आकर चि, लि, ति, लो, चित्रोत्पल वर्तमानपुरी में आकर पांच प्रासाद का उच्च चूड़ादर्शन किया था यह भी कोई पुरुषोत्तम प्रासाद होगा इस में सन्देह ही क्या है यह बात सिद्ध है कि देव-मूर्ति, क्षेत्र माहात्म्य प्राचीन समय के हैं मंदिर नित नये बनते ही रहते हैं।

११ शताब्दी के रचित दानसागर में तथा उसी समय के हलायुध कृत ब्राह्मण सर्वस्व में और हेमाद्रि परिशेष खंड में जो उससे कुछ समय पहले का है ब्रह्मपुराण के श्लोक पाये जाते हैं तब उनका यह कथन कैसे प्रमाण हो सकता है कि १३ शताब्दी में बना है।

शीय और विदेशीय प्रायः सब पण्डित कहते हैं कि इस समय जो विष्णु पुराण प्रचलित है वह ब्रह्म आदि सब पुराणों की अपेक्षा प्राचीन प्रमाण को ब्रह्म पुराण का कृष्णचरित और विष्णु पुराण का कृष्णचरित दोनों का पाठ मिला कर देखो इसी प्रकार ब्रह्मपुराण का पुरुषोत्तम माहात्म्य और नारदीय महापुराण का पुरुषोत्तम माहात्म्य मिलाकर देखने से ज्ञात होगा कि ब्रह्मपुराण के श्लोक ही अविकल परिवर्धित आकार में विष्णु और नारद पुराण में गृहीत हुये हैं, ऐसे स्थल में ब्रह्म, विष्णु और नारद इन तीन पुराणों में ब्रह्मपुराण को ही आदि और सब से प्राचीन कह कर स्वीकार कर सकते हैं, ब्रह्मपुराण अठारह पुराणों में से सब से पहिला है सो विष्णु पुराण में ही वर्णित है, ब्रह्मपुराण देख कर विष्णु पुराण में कृष्णचरित्र और नारदपुराण में पुरुषोत्तम माहात्म्य वर्णित हुआ है।

नारदपुराण के पूर्वभाग में ब्रह्मपुराण का जो विषयानुक्रम दिया गया है उसके पाठ करने से प्राचीन ब्रह्म पुराण और प्रचलित ब्रह्म पुराण का सादृश्य प्राप्त होता है।

ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय च।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना॥
तद्वै सर्व पुराणाग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते॥

महात्मा वेदवित् व्यास द्वारा प्रथमतः सर्वलोक के हित के निमित्त (यह) पवित्र पुराण समाख्यात हुआ है। यह सब पुराणों से श्रेष्ठ, धर्म, अर्थ काम और मोक्ष अनेक प्रकार के आख्यान और इतिहासयुक्त तथा दश सहस्र श्लोक पूर्ण है।

नारद पुराण में ब्रह्मपुराण की जो सूची दी गई है, प्रचलित ब्रह्मपुराण में उसके किसी विषय का भी अभाव नहीं है, ऐसे स्थल में वर्तमान आकार का ब्रह्म पुराण नारदीय पुराण सङ्कलित होने से पहिले प्रचलित हुआ था यह सहज में ही स्वीकार किया जा सकता है।

इस ब्रह्मपुराण के अनेक प्रसङ्ग महाभारत के अनुशासन पर्व में अविकल उद्धृत हुये हैं। इस ब्रह्मपुराण के २२३ से २२५ अध्याय और अनुशासन पर्व के १४३ से १४५ अध्याय के साथ एवं ब्राह्म के २२६ अध्याय तथा अनुशासन पर्व के १४६ अध्याय में श्लोक श्लोक में अविकल मेल है। इन उद्धृत श्लोकों को देखकर कोई कोई कह सकते हैं कि महाभारत से ही ब्रह्मपुराण में ये श्लोक सन्निवेशित हुये हैं किन्तु अनुशासनोक्त "इदं चैवापरं देवि ब्रह्मण्यं समुदाहृतम्" (१४३।१६) और "पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः" (१४३।१८) इत्यादि महाभारतीय श्लोक देखने से ब्रह्म का वचन महाभारत में उद्धृत हुआ है, इस विषय में कुछ सन्देह नहीं रहता। प्रथम सन्देह का निराकरण हो चुका, अब द्वितीय सन्देह पर दृष्टि डालेंगे। मत्स्यपुराण में लिखा है कि—

ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।

ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते॥ ५३।१३

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मरीचि से यह पुराण कहा था, वही यह ब्राह्म नाम से कीर्तित है इसकी श्लोक संख्या १३ हजार है।

विलसन साहब मत्स्य पुराण के इस श्लोक को आगे रखकर वर्तमान ब्रह्म पुराण देखने लगे, जब उसका अवलोकन किया तो ब्रह्मपुराण में नीचे लिखा श्लोक मिला—

कथयामि यथा पूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।

पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥१।३३

दक्षादिक मुनियों ने पितामह ब्रह्मा से जो पूछा था वह मैं तुम से कहता हूँ। विलसन साहब ने इस श्लोक को पढ़कर समझा कि यह पुराण तो ब्रह्मा ने दक्षादि मुनियों से कहा है यह वह नहीं है जो ब्रह्मा ने मरीचि से कहा था इस कारण प्रचलित ब्रह्मपुराण मत्स्योक्त ब्रह्मपुराण नहीं है। यदि विलसन साहब कुछ और श्लोक देखते तो उनका यह सन्देह अपने आप दूर हो जाता किन्तु उन्होंने इतने पर ही फैसला कर दिया और इसके आगे पुराण का पाठ अवलोकन नहीं किया किन्तु जब हम प्रचलित ब्रह्मपुराण को देखते हैं तो हमको पता लगता है कि यह पुराण जो ब्रह्मा ने सुनाया है इसके श्रोता मरीचि भी थे और दक्षादि भी थे नीचे लिखा श्लोक देखने पर यह सब पता चल जाता है और विलसन साहब का उठाया हुआ सन्देह भी दूर हो जाता है, सुनिये—

"मरीच्याद्यास्तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम्।
इममर्थमृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः" ॥ २६।३६

उक्त श्लोक से जाना जाता है कि मरीचि आदि ने ब्रह्मा के निकट पुराणाख्यान सुना था। आगे का श्लोक देखने से फिर कुछ इस विषय में सन्देह नहीं रहता।

ब्रह्मोवाच—"शृणुध्वं मुनयः सर्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
पुराणं वेदसंवद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्" ॥

वास्तव में प्रचलित ब्राह्मपुराण के २७ अध्याय से शेष पर्य्यन्त ब्रह्मा वक्ता और मरीच्यादि मुनिगण श्रोता हैं इस कारण मत्स्य वर्णित ब्राह्म के साथ प्रचलित ब्रह्म पुराण की सम्पूर्ण ऐक्यता ज्ञात होती है।

ब्राह्मय कल्प का यह पुराण है इसके वक्ता ईश्वरावतार ब्रह्मा और श्रोता दक्ष, मरीच्यादिक ऋषि हैं। कई एक पंडितों का कथन है कि इसमें तीर्थों का माहात्म्य पीछे से मिला दिया गया है अतएव वह क्षेपक है।

शिवपुराण।

तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम्।
ग्रंथलक्षप्रमाणं तद्व्यास्तं द्वादशसंहितम् ॥

निःर्मितं लच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः ।
तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नरा ॥

वायु० संहि० अ० १

चतुर्थ शिव पुराण समस्त अर्थों का देने वाला है, एक लक्ष इसका प्रमाण है, किन्तु मृत्य लोक में चौबीस हजार है, द्वादश संहिता हैं, यह पुराण शिव निर्मित है, इस पुराण में धर्म प्रधान है उस धर्म के उपदेश से मनुष्यों को धार्मिक बनाया है ।

अन्य पुराणों में इसकी सविस्तृत ऐसी सूची नहीं है कि जिससे लक्षण लेकर पूर्ण शिवपुराण का ज्ञान होजावे । यह पुराण शंकर ने वायु ऋषि से कहा है इस कारण इसका दूसरा नाम वायु या वायवीय भी है । यह पुराण श्वेत कल्प का है ।

❀ लिङ्ग ❀

पुराणोपक्रमे प्रश्नं सृष्टिसंक्षेपतः पुरा ।
योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम् ॥
लिङ्गोद्भवस्तदर्चा च कीर्तिता हि ततः परम् ।
सनत्कुमारशैलादिसम्वादश्चाथ पावनः ॥
ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपणम् ।
ततो भुवनकोषाख्यो सूर्यसोमान्वयस्ततः ॥
ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा ।
लिङ्गप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ॥
शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम् ।
प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम् ॥
अन्धकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः ।
नृसिंहचरितं पश्चाज्जालन्धरवधस्ततः ॥
शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम् ।

कामस्य दहनं पश्चाद्गिरिजायाः करग्रहः ॥
ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च ।
उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः ॥
विष्णुमाहात्म्यकथनमम्बरीषकथा ततः ।
सनत्कुमारनन्दीशसम्वादश्च पुनर्मुने ॥
शिवमाहात्म्यसंयुक्तं स्नानयागादिकं ततः ।
सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा ॥
दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणं ततः ।
प्रतिष्ठा तत्र गदिता ततोऽघोरस्य कीर्तनम् ।
व्रजेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः ।
त्र्यम्बकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च ॥
एतस्योपरिभागस्ते लैङ्गस्य कथितो मया ।
व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः ॥

नारदपुराण ।

इसमें प्रथमतः पुराणोपक्रम प्रश्न और संक्षेप से सृष्टि वर्णन है । इस पूर्वभाग में यागाख्यान, कल्पाख्यान, लिंगोत्पत्ति, और उसकी अर्चना, सनत्कुमार और शैलादि का पवित्र सम्वाद, दधीचिचरित, युगधर्म निरूपण, भुवन कोषाख्यान, सूर्य और सोमवंश, विस्तृत रूप से सृष्टि, त्रिपुराख्यान, लिंग प्रतिष्ठा, पशुपाश विमोचण समुदय शिवव्रत, सदाचार निरूपण, सर्वविधि प्रायश्चित्त और अरिष्ट काशी और श्रीशैल वर्णन, अन्धकाख्यान, वाराहचरित, नृसिंहचरित, जालन्धर बध, शिवसहस्रनाम, दक्षयज्ञ विनाश, मदनमोहन, गिरिजा कापाणिग्रहण, विनायकाख्यान, शिव का नृत्याख्यान और उपमन्यु कथा आदि का वर्णन है ।

हे मुने ! उत्तर भाग में—विष्णुमाहात्म्य, अम्बरीष कथा, सनत्कुमार और नन्दीश सम्वाद, शिवमाहात्म्य संयुक्त स्नान यागादि, सूर्य पूजा विधि, मुक्तिदायिनी शिव पूजा, वहु प्रकार दान, श्राद्ध प्रकरण, प्रतिष्ठा, अघोर कीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या और गायत्री की महिमा, त्र्यम्बकमाहात्म्य और पुराणश्रवणमाहात्म्य यह समस्त वर्णित हुआ है ।

वर्तमान लिंग पुराण प्रायः समस्त ही उपरोक्त लक्षणों से मिलता है अतएव उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। यह पुराण अग्निकल्प का है और महादेव के मुख से निकला है।

❀ गरुड़ ❀

पुराणोपक्रमो यत्र सर्गसंक्षेपतस्ततः।
सूर्य्यादिपूजनविधिर्दीक्षाविधिरतः परम्॥
श्र्यादिपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्चनं द्विज।
पूजाविधानञ्च ततः वैष्णवं पञ्जरं तथा॥
योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्त्रकीर्तनम्।
ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजा मृत्युञ्जयार्चनम्॥
मालामंत्राः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम्।
गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनश्रीधरार्चनम्।
विष्णवर्चा पंचतत्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम्॥
न्यासादिसंध्योपास्तिश्च दुर्गा चाथ सुरार्चनम्।
पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोहणार्चनम्।
मूर्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानाञ्च लक्षणम्॥
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजा विधानतः।
योगोष्टाङ्गो दानधर्मः प्रायश्चित्तं निधिक्रिया॥
द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम्।
सामुद्रिकं स्वरज्ञानं नवरत्नपरीक्षणम्॥
माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम्।
ततो मन्वन्तराख्यानं पृथक् पृथग्विभागशः॥
पित्राख्यानं वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिसमर्पणम्।
श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथाश्रमाः॥
जननाख्या प्रेताशौचं नीतिसारो व्रतोक्तयः।

सूर्यवंशः सोमवंशोवतारकथनं हरेः ॥
रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकं ततः ।
आयुर्वेदे निदानं प्राक् चिकित्सा द्रव्यजागुणाः ॥
रोगघ्नं कवचं विष्णोर्गारुडं त्रैपुरो मनुः ।
प्रश्नचूड़ामणिश्चान्ते हयायुर्वेदकीर्तनम् ॥
औषधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम् ।
छन्दःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः ॥
तर्पणं वैश्वदेवं च संध्या पार्वणकर्म च ।
नित्यश्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोघनिष्कृतिः ॥
प्रतिसंक्रम उक्तःस्याद्युगधर्माः कृतेः फलम् ।
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृतिफलं हरेः ॥
माहात्म्यं वैष्णवं चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ।
ज्ञानामृतं गुह्याष्टकं स्तोत्रं विष्ण्वर्चनाह्वयम् ॥
वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं ब्रह्मज्ञानं तथात्मकम् ।
गीतासारफलोत्कीर्तिः पूर्वखण्डोयमीरितः ॥
अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्पः पुरादितः ।
यत्र तार्क्ष्येण संपृष्टो भगवानाह वाडवः ॥
धर्मप्रकटनं पूर्वयोनीनां गतिकारणम् ।
दानाधिकं फलं चापि प्रोक्तमन्त्यौर्द्ध्वदेहिकम् ॥
यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनञ्च ततः परम् ।
षोड़शश्राद्धफलकं वृत्राणाञ्चात्र वर्णितम् ॥
निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम् ।
प्रेतपीड़ाविनिर्देशः प्रेतचिह्ननिरूपणम् ॥
प्रेतानां चरिताख्यानं कारणं प्रेततां प्रति ।
प्रेतकृत्यविचारश्च सपिण्डकरणोक्तयः ॥

प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये ।
आवश्यकोत्तमं दानं प्रेतसौख्यकरं हितम् ॥
शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम् ।
प्रेतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृविनिर्णयः ॥
मृत्योःपूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ।
मध्यं षोड़शकं श्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम् ॥
सूतकस्याथ संख्यानं नारायणबलिक्रिया ।
वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम् ॥
अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम् ।
कृत्याकृत्यविचारश्च विष्णुध्यानं विमुक्तये ॥
स्वर्गतौ विहिताख्यानं स्वर्गसौख्यनिरूपणम् ।
भूर्लोकवर्णनं चैव सप्तधा लोकवर्णनम् ॥
पञ्चोर्द्ध्वलोककथनं ब्रह्माण्डस्थितिकीर्तनम् ।
ब्रह्माण्डानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम् ॥
आत्यान्तिकलयाख्यानं फलस्तुतिनिरूपणम् ।
इत्येतद्गारुड़ं नाम पुराणं भक्तिमुक्तिदम् ॥

नारद पुराण ।

(पूर्वखंड)—इसके प्रथम में सर्ग संक्षेप से पुराणोपक्रम और पश्चात् सूर्यादि पूजाविधि, दीक्षाविधि, श्रीआदिपूजा, नवव्यूहादि अर्चना, पूजाविधान, वैष्णव पञ्जर, योगाध्याय, विष्णु के सहस्रनाम कीर्तन, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युंजयपूजा, मालामन्त्र, शिवार्चन, गणपूजा, गोपालपूजा, श्रीधरार्चन, विष्णुपूजा, पंचतत्वार्चन, चक्रार्चन, देवपूजा, न्यासादि, सन्ध्योपासन, दुर्गार्चन, सुरार्चन, माहेश्वरीपूजा, पवित्रारोहणार्चन, मूर्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासाद लक्षण, सर्वदेव प्रतिष्ठा अष्टांगयोग, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश, नरकाख्यान, सूर्यव्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरज्ञान, नवरत्न परीक्षा, तीर्थ समुदाय का माहात्म्य, उत्तम गयामाहात्म्य, पृथक् २ रूप से मन्वन्तराख्यान, पित्राख्यान, वर्णधर्म, द्रव्य शुद्धि, श्राद्ध, विनायकार्चना,

ग्रहयज्ञ, आश्रम, प्रेताशौच, नीतिसार, सूर्यवंश, सोमवंश, हरिअवतार कथा, रामायण, हरिवंश, भारताख्यान, आयुर्वेदनिदान चिकित्सा, द्रव्यगुण, विष्णुकवच, गारुड़ और त्रैपुरमन्त्र, प्रश्नचूड़ामणि, हयायुर्वेदकीर्तन, औषधी नाम कीर्तन, व्याकरण और छन्दशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, वैश्वदेवतर्पण, सन्ध्या पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डाख्यश्राद्ध, धर्मसार, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरिनमस्कारफल, वैष्णवमाहात्म्य, नारसिंहस्तव, ज्ञानामृत, गुह्याष्टक स्तोत्र, विष्णु की अर्चा, वेदान्त, सांख्य सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान और गीतासार फल कीर्तन, विष्णु की अर्चा।

अनन्तर इसके उत्तरखण्ड में प्रेतकल्प वर्णित हुआ है। जिसमें गरुड़ के पूछने पर भगवान् द्वारा धर्म प्रकटन, सर्वयोनि समुदाय का गतिकारण, दानाधिक फल, और औद्र्ध्व दैहिक क्रिया कही गई है। और यमलोक मार्ग का बर्णन, षोड़श श्राद्ध का फल, यम मार्ग निष्कृति, धर्मराजकवैभव, प्रेत पीड़ा निर्देश, प्रेतचिह्न निरूपण, प्रेतगण का चरिताख्यान, प्रेतत्व के प्रति कारण, प्रेतकृत्य विचार, सपिण्ड करणोक्ति, प्रेतत्व मोक्ष कथन, मुक्ति के निमित्तदान, प्रेत सौख्य का आवश्यकीय दान, शारीरक निर्देश, यमलोक वर्णन, प्रेतत्व उद्धार, कर्म कर्तृक विनिर्णय, मृत्यु की पूर्व क्रिया कथन, कर्म निरूपण, षोड़शश्राद्ध, सूतक संख्यान, नारायणवलि क्रिया, वृषोत्सर्गमाहात्म्य, निषिद्ध परित्याग, अपमृत्युक्रिया उक्ति, मनुष्यगण का कर्म विपाक, कृत्याकृत्य विचार, विष्णुध्यान, स्वर्ग गति सम्बन्ध में विहिताख्यान, स्वर्गसुख निरूपण, भूलोक वर्णन, सप्तलोक वर्णन, ऊर्ध्वलोक कथन, ब्रह्माण्डस्थिति कीर्तन, ब्रह्माण्ड के बहुचरित, ब्रह्म जीव निरूपण, आत्यन्तिकलय कथन और फल स्तुति निरूपण यह सम्पूर्ण कीर्तन हुआ है। यह गारुड़ नामक पुराण भक्ति और मुक्ति देता है।

उपलब्ध गरुड़पुराण ठीक गरुड़पुराण है उपरोक्त सूची के अनुसार कथायें प्रायः पाई जाती हैं। यह पुराण तार्क्ष्यकल्प का है और विष्णु ने गरुड़ से कहा है।

नारद

सूतशौनकसम्वादः सृष्टिसंक्षेपवर्णनम्।
नानाधर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्तेः समुदाहृताः॥

प्राग्भावे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना ।
द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ॥
वेदाङ्गानाञ्च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् ।
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ॥
महातंत्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम् ।
मंत्राणां शोधनं दीक्षा मंत्रोद्धारश्च पूजनम् ॥
प्रयोगाः कवचं नाम सहस्रं स्तोत्रमेव च ।
गणेशसूर्यविष्णूनां नारदाय तृतीयके ॥
पुराणं लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च ।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानं फलपुरःसरम् ॥
चैत्रादिसर्वमासेषु तिथीनाञ्च पृथक् पृथक् ।
प्रोक्तं प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वौघनाशनम् ॥
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके ।
पूर्वभागोयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः ॥
अस्योत्तरविभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते ।
वशिष्ठेनाथसम्वादो मान्धातुः परिकीर्तितः ॥
रुक्माङ्गदकथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथमाहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ॥
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ॥

गौतमाख्यानकं पश्चाद्वेदपादस्तु वस्तुतः ॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ।
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ॥
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ॥
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

नारद पुराण ।

इसके पूर्व भाग के प्रथमपाद में सूतशौनक सम्वाद, संक्षेप से सृष्टि वर्णन और महात्मा सनक द्वारा अनेक प्रकार की धर्मकथा कही है । मोक्ष धर्माख्य द्वितीयपाद में मोक्ष का उपाय निरूपण, वेदांग समुदाय का कथन और विस्तृतरूप से शुक की उत्पत्ति, यह सम्पूर्ण महात्मा नारद के निकट सनन्दन द्वारा उक्त हुये हैं ।

महातंत्रोद्दिष्ट पशुपाश विमोक्षण, मंत्र समुदाय का शोधन, दीक्षाउद्धार, पूजा और प्रयोग एवं गणेश, सूर्य तथा विष्णु का सहस्र नाम स्तोत्र, पुराण के लक्षण और प्रमाण, दान और दान का पृथक् २ फल उद्देश और चैत्रादिमास में प्रतिपदादि तिथिक्रम से पृथक् पृथक् व्रत निरूपण, ये सम्पूर्ण सनातनमुनि ने नारद को इस चतुर्थ भाग में कहे हैं ।

इसके उत्तर भाग में एकादशी व्रत विषय में प्रश्न, वसिष्ठ का और मान्धाता का संवाद, पवित्र रुक्मांगदकथा, मोहिनी की उत्पत्ति और कर्म, मोहिनी प्रति वसु शाप, पश्चात् उद्धार क्रिया, पुण्यतम गंगाकथा, गयायात्रा कीर्तन, काशीमाहात्म्य, पुरुषोत्तम वर्णन, बहु आख्यान युक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र का यात्राविधान, प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, हरिद्वाराख्यान, कामोदाख्यान, बदरीतीर्थमाहात्म्य, कामाख्या माहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराणाख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादस्तव, गोकर्णक्षेत्र-माहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान,सेतुमाहात्म्य, नर्मदातीर्थ वर्णन, अवन्ती और मथुरा का माहात्म्य, वृन्दावनमहिमा, ब्रह्मा के निकट वसु का गमन और फिर मोहिनीचरित, यह संपूर्ण नारदीय में कहा गया है ।

उपलब्ध नारदपुराण में क्रम से यह समस्त कथा पाई जाती है। यह पुराण बृहत्कल्प का है।

भागवत।

देवी भागवत और श्रीमद्भागवत दोनों का ग्रहण भागवत शब्द से होता है पहिले हम श्रीमद्भागवत के विषय में लिखते हैं।

श्रीमद्भागवत।

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८

श्रीमद्भा० स्कं० २ अ० ९

तुष्टं निशम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम्।
देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनु पृच्छति ॥४२॥
तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम्।
प्रोक्तं भगवताप्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥
नारदप्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४४ ॥
यदुताऽहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम्।
यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः॥४२ ॥

श्रीमद्भा० द्वि० स्कं० अ० ९

जब ब्रह्मकल्प का आरम्भ हुआ तब बेद के तुल्य भागवतपुराण को ब्रह्मासे भगवान् विष्णु ने कहा। सूत कहते हैं कि हे शौनक जो प्रश्न तुमने हमसे किया है एक दिन सब लोकों के पितामह अपने पिता ब्रह्मा को प्रसन्न देख यही प्रश्न नारद ने ब्रह्मा से किया था। प्रसन्न हुये ब्रह्मा ने ईश्वर का कहा हुआ भागवत पुराण अपने पुत्र नारद से कहा। हे राजन्! सरस्वती के तट पर अमित तेजवाले बेदव्यास जी जिस समय परब्रह्म का ध्यान कर रहे थे उस समय नारद आये और नारद ने यह भागवतपुराण वेदव्यास जी से कहा, तुमने हम से पूछा था कि यह पुराण

आदि पुरुष ईश्वर से किस प्रकार प्रकट हुआ, वह मैंने आप से कह दिया अब अन्य समस्त प्रश्नों को सुनिये।

ब्रह्म कल्प में श्रीमद्भागवत की उपलब्धि ऊपर के श्लोकों में कही है। पाद्म कल्प में भी श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ है वहां पर विष्णु ने शेष से और शेष ने पराशर से, पराशर ने मैत्रेय से कही है इस प्रकार श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में लिखा है।

देवी भागवत

देवीभागवत सारस्वत कल्प का ग्रन्थ है इसको हम आगे पुराण संख्या में लिखेंगे।

* आग्नेय *

प्रश्नपूर्वं पुराणस्य, कथा सर्वावतारजा।
सृष्टिप्रकरणं चाथ, विष्णुपूजादिकं ततः॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मंत्रमुद्रादिलक्षणम्।
सर्वदीक्षाविधानञ्च, अभिषेकनिरूपणम्॥
लक्षणं मंडलादीनां कुशापामार्जनं ततः।
पवित्रारोपणविधिर्देवालयविधिस्तथा॥
शालग्रामादिपूजा च मूर्तिलक्ष्म पृथक् पृथक्।
न्यासादीनां विधानं च प्रतिष्ठापूर्तिका ततः॥
विनायकादिदीक्षाणां, विधिर्ज्ञेयस्ततः परम्।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां, ब्रह्माण्डस्य निरूपणम्॥
गङ्गादितीर्थमाहात्म्यं, जम्ब्वादिद्वीपवर्णनम्।
ऊर्ध्वाधोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम्॥
ज्योतिषञ्च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम्।
षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मंत्रयंत्रौषधीगणः॥
कुब्जिकादिसमर्चा च षोढान्यासविधिस्तथा।

कोटिहोमविधानञ्च तदनन्तरनिरूपणम् ॥
ब्रह्मचर्यादिधर्म्माश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः ।
गृहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्तकर्म च ॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथीनाञ्च व्रतादिकम् ।
वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्तनम् ॥
मासिकव्रतनिर्देशो दीपदानविधिस्तथा ।
नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम् ॥
व्रतानाञ्चापि दानानां निरूपणमिहोदितम् ।
नाड़ीचक्रसमुद्देशः सन्ध्याविधिरनुत्तमः ॥
गायत्र्यर्थस्य निर्देशो लिङ्गस्तोत्रं ततः परम् ।
राज्याभिषेकमंत्रोक्तिर्धर्मकृत्यञ्च भूभुजाम् ॥
स्वप्नाध्यायस्ततः प्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम् ।
मण्डलादिकनिर्देशो रत्नानां लक्षणं ततः ॥
धनुर्विद्या ततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम् ।
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम् ॥
गजादीनां चिकित्सा च तेषां शान्तिस्ततः परम् ।
गोनसादिचिकित्सा च नानापूजास्ततः परम् ॥
शान्तयश्चापि विविधाश्छन्दशास्त्रमतःपरम् ।
साहित्यं च ततः पश्चादेकार्णादिसमाह्वया ॥
सिद्धशिष्टानुशिष्टश्च कोषः स्वर्गादिवर्गके ।
प्रलयानाँ लक्षणं च शारीरकनिरूपणम् ॥
वर्णनं नरकानाञ्च योगशास्त्रमतः परम् ।
ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात्पुराणश्रवणे फलम् ॥
एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्तितम् ।

इसमें प्रश्नपूर्वक समस्त अवतारों की कथा कही है इसके प्रथम में सृष्टि प्रकरण, पश्चात् विष्णु पूजादि एवं क्रम से अग्निकार्य मन्त्र मुद्रादि का लक्षण, कुशा का मार्जन, पवित्रारोपण विधि, देवालय विधि, शालग्रामादि पूजा, पृथक् २ मूर्ति चिह्न, न्यासादि का विधान, प्रतिष्ठापूर्वक विनायकादि की दीक्षा विधि, सर्वदेव प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्ड निरूपण, गंगादितीर्थ माहात्म्य, जम्बू आदि द्वीप वर्णन, ऊर्ध्व और अधोलोक रचना, ज्योतिश्चक्र निरूपण, ज्योतिष, मंत्र और यंत्रौषधि समहू, षट्कर्म, युद्ध जयशास्त्र कुब्जिकादि समर्चा, षोढ़ान्यास विधि, कोटिहोम विधान तदनन्तर निरूपण, ब्रह्मचर्यादि धर्म, श्राद्ध कल्पविधि, ग्रह यज्ञ, वैदिक और स्मार्त कर्म प्रायश्चित्तानुकथन, तिथि अनुसार व्रतादि, वार व्रतानुकथन, नक्षत्र व्रत कीर्तन, मासिक व्रत निर्देश, दीपदान विधि, नव व्यूहार्चन, नरक समुदाय का निरूपण, व्रत और दान समुदाय का निरूपण, नाड़ी चक्र समुद्देश, संध्याविधि, गायत्र्यर्थ का निर्देश, लिंगस्तोत्र, राजगणों का अभिषेक मन्त्र, राजगणों का धर्म कार्य, स्वप्नाध्याय, शकुनादि निरूपण, मंडलादि का निर्देश, रणदीक्षाविधि, रामोक्त नीति निर्देश, रत्नसमूह का लक्षण, धनुर्विद्या और व्यवहार प्रदर्शन, देवासुर विमर्दाख्यान, आयुर्वेद निरूपण, गजादि की चिकित्सा, उनकी शान्ति, गोनसादि चिकित्सा, अनेक प्रकार की पूजा, विविध प्रकार शान्ति, छन्दशास्त्र, साहित्य, एकार्णादि समाह्वय, सिद्ध शिष्टानुशिष्ट स्वर्गादिवर्ग विशिष्ट कोष, प्रलय समुदाय का लक्षण, शरीरक निरूपण, नरक वर्णन, योगशास्त्र, ब्रह्मशास्त्र और पुराणश्रवण फल ये संपूर्ण आग्नेय पुराण में कहे गये हैं। हे विप्र ! यह आग्नेयपुराण कीर्तन किया।

आज कल जो अग्निपुराण प्रकाशित हुआ है उसका अधिक भाग सूचीसे मिलने पर भी अनेक अंशों में वह रूपान्तर प्राप्त कर चुका है संभव है कि न मिलने पर किसी विद्वान् ने कुछ अंश बनाया हो या अन्य किसी उपपुराण आदि का पाठ किन्हीं कारणों से इसमें समावेश कर गया हो। इसमें जो पाठान्तर हुआ है वह बहुत न्यून है किन्तु हुआ अवश्य है। इस पुराण के वक्ता अग्निदेवता हैं और श्रोता वसिष्ठ हैं तथा ईशान कल्प का यह पुराण है।

स्कन्द

(१)—यत्र माहेश्वरा धर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः ।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः ॥
तस्य माहेश्वरश्चाद्यः खण्डः पापप्रणाशनः ।
किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः ॥
सुचरित्रः शतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः ।
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा ॥
दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम् ।
समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं ततः ॥
पार्वत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम् ।
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसंगरः ॥
ततः पाशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमाचितम् ।
दूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः ॥
ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम् ।
धर्मवर्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तितम् ॥
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाड़ीजंघकथाचिता ।
प्रादुर्भावस्ततो मह्यं कथा दमनकस्य च ॥
महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः ।
ततस्तारकयुद्धञ्च दानाख्यानसमाहितम् ॥
वधश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिषेवणम् ।
द्वीपाख्यानं ततः पुण्यं ऊर्ध्वलोकव्यवस्थितिः ॥
ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम् ।
महाकालसमुद्भूतिः कथाचास्य महाद्भुता ॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम् ।
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्तितम् ॥

पाण्डवानां कथा पुण्या महाविद्याप्रसाधनम् ।
तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् ॥
अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ।
गौरीतपःसमाख्यानं ततस्तीर्थनिरूपणम् ॥
महिषासुरजाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ।
शोणाचले शिवास्थानं नित्यदा परिकीर्तितम् ॥
इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डे माहेश्वरोद्भुतः ।
(२)—द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु ॥
प्रथमं भूमिवाराहसमाख्यानं प्रकीर्तितम् ।
यत्र रोचककुधूस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ॥
कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ।
कुलालाख्यानकं यत्र सुवर्णमुखरीकथा ॥
नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता ।
मतंगाञ्जनसम्वादः कीर्तितः पापनाशनः ॥
पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कले ततः ।
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥
इन्द्रद्युम्नस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा ।
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव ॥
नीलकण्ठसमाख्यानं नारसिंहोपवर्णनम् ।
अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा ॥
रथयात्राविधिः पश्चाज्जपस्नानविधिस्तथा ।
दक्षिणामूर्तेराख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः ॥
रथरक्षाविधानञ्च शयनोत्सवकीर्तनम् ।
श्वेतोपाख्यानमंत्रोक्तं वह्न्युत्सवनिरूपणम् ॥
दोलोत्सवो भागवतो व्रतं साम्वत्सराभिधम् ।

पूजा च कामिभिर्विष्णोरुद्दालकनियोगकः ॥
मोक्षसाधनमंत्रोक्तं नानायोगनिरूपणम् ।
दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्तितम् ॥
ततो बदरिकाधाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ।
अग्न्यादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम् ॥
कारणं भगवद्वासे तीर्थकापालमोचनम् ।
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा ।
ततः कार्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम् ।
धूम्रकाशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके ॥
पञ्चभीष्मव्रताख्यानं कीर्तिदं भुक्तिमुक्तिदम् ।
तद्भूतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा ॥
पुण्ड्रादिकीर्तनं चात्र मालाधारणपुण्यकम् ।
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम् ॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीर्तनम् ।
अखण्डैकादशी पुण्या तथा जागरणस्य च ॥
मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकीर्तनम् ।
ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम् ।
वनानां द्वादशानाञ्च माहात्म्यं कीर्तितं ततः ॥
श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्यं कीर्तितं परम् ।
वज्रशाण्डिल्यसम्वादो ह्यन्तर्लीलां प्रकाशकः ॥
ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् ।
नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्याये निरूपितम् ॥
ततो वैशाखमाहात्म्ये शय्यादानादिजं फलम् ।
जलदानादिविषयः कामाख्यानमतः परम् ॥

श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम् ।
तथाक्षय्यतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम् ॥
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके ।
ऋणपापविमोक्षाख्ये तथा धारसहस्रकम् ॥
स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिधर्महर्य्युपवर्णनम् ।
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदा सरयूयुतिः ॥
सीताकुण्डं गुप्तहरिः सरयूघर्घराह्वयः ।
गोप्रचारश्च दुग्धोदं गुरुकुण्डादिपञ्चकम् ॥
घोषार्कादीनितीर्थानि त्रयोदश ततः परम् ।
गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्वाङ्गविनिवर्तकम् ॥
माण्डव्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ।
अजितादिमानसादितीर्थानि गदितानि च ॥
इत्येष वैष्णवः खण्डो द्वितीयः परिकीर्तितः ।
(३)—अतः परं ब्रह्मखण्डं मरीचे शृणु पुण्यदम् ।
यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नानेक्षणोद्भवम् ॥
गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं ततः ॥
चक्रतीर्थादिमाहात्म्यं देवीतपनसंयुतम् ।
वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्तनम् ॥
मङ्गलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादिवर्णनम् ।
हनुमत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थभवं फलम् ॥
रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ।
शंखादितीर्थमहिमा तथा साध्यामृतादिकः ॥
धनुष्कोट्यादिमाहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा ।
गायत्र्यादिकतीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्तितम् ॥
रामनामस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् ।

यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥
धर्मारण्यस्य माहात्म्यं ततः परमुदीरितम् ।
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान्यत्र तत्त्वमुपादिशत् ॥
धर्मारण्यसुसम्भूतिस्तत्पुण्यपरिकीर्तनम् ।
कर्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम् ॥
अप्सरस्तीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्तितम् ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मतत्त्वनिरूपणम् ॥
देवस्थानविभागश्च बकुलार्ककथा शुभा ।
छत्रानन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतंगिनी ॥
पुण्यदाख्यः समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः ।
इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम् ॥
लोहासुरसमाख्यानं गङ्गाकूपनिरूपणम् ।
श्रीरामचरितञ्चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ॥
जीर्णोद्धारस्य कथनं शासनप्रतिपादनम् ।
जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम् ॥
ततस्तु वैष्णवा धर्माः नानाख्यानैरुदीरिताः ।
चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ॥
दानप्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्य महिमा ततः ।
तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनं ततः ॥
प्रकृतीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् ।
तारकस्य वधोपायस्तार्क्ष्यर्चामहिमा तथा ॥
विष्णोः शापश्च वृत्तत्वं पार्वत्यनुनयस्ततः ।
हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम् ॥
हरस्य लिंगपूजा च कथा वै जवनस्य च ।
पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य वधोद्भुतः ॥

प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितं पुनः ।
दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षररूपणम् ॥
ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशार्कजः ।
श्रवणादिकपुण्यञ्च कीर्तिदं धर्मदं नृणाम् ॥
ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः ।
पश्चाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्तनम् ।
सोमवारव्रतञ्चापि सीमन्तिन्याः कथानकम् ॥
भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम् ।
शिवधर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम् ॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्तनम् ।
शवराख्यानकञ्चैव उमामाहेश्वरव्रतम् ॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् ।
श्रवणादिकपुण्यञ्च ब्रह्मखण्डोयमीरितः ॥
अतः परं चतुर्थञ्च काशीखण्डमनुत्तमम् ।
विन्ध्यनारदयोर्यत्र सम्वादः परिकीर्तितः ॥
सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासे सुरागमः ।
पतिव्रताचरित्रञ्च तीर्थचर्य्या प्रशंसनम् ॥
ततश्च सप्तपुर्य्याख्या संयमिन्या निरूपणम् ।
ब्रध्नस्य च तथेन्द्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्म्मणः ॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्वरुणसम्भवः ।
गन्धवत्यलकापुर्य्योरीश्वर्य्योश्च समुद्भवः ॥
चन्द्रोडुबुधलोकानां कुजेज्यार्कभुवां क्रमात् ।
सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि तपोयोगस्य वर्णनम् ॥
ध्रुवलोककथापुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम् ।

स्कन्दागस्त्यसमालापो मणिकर्णीसमुद्भवः ॥
प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानामसहस्रकम् ।
वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः ॥
दण्डपाणिज्ञानवाप्योरुद्भवः समनन्तरम् ।
ततःकलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम् ॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च ।
कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥
गृहस्थयोगिनो धर्म्माः कालज्ञानं ततः परम् ।
दिवोदासकथा पुण्या काशीवर्णनमेव च ॥
योगिचर्या च लोलार्कोत्तरशाम्बार्कजा कथा ।
द्रुपदार्कस्य तार्क्ष्याख्यारुणार्कस्योदयस्ततः ॥
दशाश्वमेधतीर्थाख्यो मन्दराच्च समागमः ।
पिशाचमोचनाख्यानं गणेशप्रेषणं ततः ॥
माया गणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः ।
विष्णुमायाप्रपञ्चाथ दिवोदासविमोक्षणम् ॥
ततः पञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधवसम्भवः ।
ततो वैष्णवतीर्थाख्यः शूलिनः कौशिकागमः ॥
जैगीषव्येन सम्वादो ज्येष्ठेशाख्यं महेशितुः ।
क्षेत्राख्यानं कन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥
शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः ।
देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः ॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ओंकारेशस्य वर्णनम् ।
पुनरोंकारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः ॥
केदाराख्या च धर्मेशकथा विश्वभुजोद्भवः ॥
वीरेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्तनम् ।

विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा ॥
सतीशस्यामृतेशादे भुजस्तम्भः पराशरे ।
क्षेत्रतीर्थकदम्बश्च मुक्तिमण्डपसंकथा ॥
विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ।
(५)---अतः परं त्ववन्ताख्यं शृणु खण्डञ्च पञ्चकम् ॥
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ।
प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः ॥
देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम् ।
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः ॥
तीर्थं कलकलेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
कुण्डमप्सरसंज्ञञ्च सर्गं रुद्रस्य पुण्यदम् ॥
कुटुम्बेशविरूपञ्च कर्कटेश्वरतीर्थकम् ।
दुर्गद्वारं चतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका ॥
सकरार्कगन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम् ।
दशाश्वमेधैकानंशतीर्थञ्च हरिसिद्धिदम् ॥
पिशाचकादियात्रा च हनूमत्कं यमेश्वरौ ।
महाकालेशयात्रा च वाल्मीकेश्वरतीर्थकम् ॥
शुक्रेशभेशोपाख्यानं कुशस्थल्याः प्रदक्षिणम् ॥
अक्रूरमन्दाकिन्यङ्कपादचन्द्रार्कवैभवम् ॥
करभेशकुक्कुटेशलड्डुकेशादितीर्थकम् ।
मार्कण्डेशं यज्ञवापी सोमेशं नरकान्तकम् ॥
केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम् ।
केशार्कं भक्तिभेदञ्च स्वर्णाक्षरमुखानि च ॥
ओंकारेशादितीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्तनम् ।
कालाख्ये लिङ्गसंख्या च स्वर्णशृङ्गाभिधानकम् ॥

पद्मावतीकुमुद्वत्यमरावतीति नामकम् ।
विशाला प्रतिकल्पा च विधाने ज्वरशान्तिकम् ॥
त्रिप्रास्नानादिकफलं नागोद्गीता शिवस्तुतिः ।
हिरण्याक्षवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥
नीलगङ्गा पुष्कराख्यं विन्ध्यावासनतीर्थकम् ।
पुरुषोत्तमाधिमासं तत्तीर्थं चाघनाशनम् ॥
गोमती वामने कुण्डे विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थके ॥
महिमा नागपञ्चम्यां नृसिंहस्य जयन्तिका ।
कुटुम्बेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्तनम् ॥
कर्कराजाख्यतीर्थञ्च विघ्नेशादिसुरोहणम् ।
रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥
यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ।
धर्मपुत्रस्य वैराग्ये मार्कण्डेयेन सङ्गमः ॥
प्राग्लयानुभवाख्यानमस्तृतापरिकीर्त्तनम् ।
कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्मदायाः प्रकीर्तितम् ॥
स्तवमार्षं नार्मदञ्च कालरात्रिकथा तथाः ।
महादेवस्तुतिः पश्चात्पृथक् कल्पकथाद्भुता ॥
विशालाख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा ततः ।
गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनं ततः ॥
देहपातविधानञ्च कावेरीसङ्गमस्ततः ।
दारुतीर्थं ब्रह्मवर्तं यन्त्रेश्वरकथानकम् ॥
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादं श्रीदारुकम् ।
देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्यं करञ्जकम् ॥
कुण्डलेशं पिप्पलेशं विमिलेशञ्च शूलभित् ।

शचीहरणमाख्यातमन्धकस्य वधस्ततः ॥
शूलभेदोद्भवो यत्र दारधर्माः पृथग्विधाः ।
आख्यानं दीर्घतपस ऋष्यशृंगं कथा ततः ॥
चित्रसेनकथा पुण्या काशिराजस्य मोक्षणम् ।
ततो देवशिलाख्यानं शवरीचरिताचितम् ॥
व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ।
आदित्येश्वरतीर्थश्च शक्रतीर्थकरोटिकम् ॥
कुमारेशमगस्त्येशं च्यवनेशञ्च मातृजम् ।
लोकेशं धनदेशञ्च नंगलेशञ्च कामजम् ॥
नागेशञ्चापि गोपालं गौतमं शंखचूड़जम् ।
नारदेशं नन्दिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम् ॥
दधिस्कन्दादितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्ततः ।
रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं पिंगलेश्वरम् ॥
ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम् ।
चण्डार्कयमतीर्थञ्च कह्लौड़ीशञ्च नान्दिकम् ॥
नारायणश्च कोटीशं व्यासतीर्थं प्रभासिकम् ।
नागेशं शंकर्षणकं मन्मथेश्वरतीर्थकम् ॥
एरण्यं संगमं पुण्यं सुवर्णाशिलतीर्थकम् ।
करञ्जं कामहं तीर्थं भाण्डीरं रोहिणीभवम् ॥
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमांगीरसाह्वयम् ।
कोटितीर्थमयोन्याख्यमंगराख्यं त्रिलोचनम् ॥
इन्द्रेशं कम्बुकेशञ्च सोमेशं कोहलेशकम् ।
नार्मदं चार्कमाग्नेयं भार्गवेश्वरसत्तमम् ॥
ब्राह्मं दैवञ्च भागेशमादिवारोहणं रवेः ।
रामेशमथ सिद्धेशमाहल्यं कङ्कटेश्वरम् ॥

शार्क्रं सौमञ्च नान्देशं तापेशं रुक्मिणीभवम् ।
योजनेशं वराहेशं द्वादशीशिवतीर्थके ॥
सिद्धेशं मंगलेशञ्च लिंगवाराहतीर्थकम् ।
कुण्डेशं श्वेतवाराहं भार्गवेशं रवीश्वरम् ॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुँकारस्वामितीर्थकम् ।
संगमेशं नारकेशं मोक्षं सार्पञ्च गोपकम् ॥
नागं शाम्बञ्च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके ।
कामोदशूलरूपाख्ये माण्डव्यं गोपकेश्वरम् ॥
कपिलेशं पिंगलेशं सूतेशं गांगगौतमे ।
अश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशञ्च पापनुत ॥
कनखलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम् ।
चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यञ्च हंसकम् ॥
मूलस्थानञ्च शूलेशमाग्नेयं चित्रदैवकम् ।
शिखीशं कोटितीर्थञ्च दशकन्यं सुवर्णकम् ॥
ऋणमोक्षं भारभूतिरत्रास्ते पुंखमुण्डितम् ।
आमलेशं कपालेशं शृंगेरण्डीभवं ततः ॥
कोटितीर्थं लोटनेशं फलस्तुतिरतः परम् ।
कृमिजंगलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः ॥
धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोस्य च ।
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः ॥
महिमास्य ततश्चण्डीशप्रभावो रतीश्वरः ।
केदारेशं लक्षतीर्थं ततो विष्णुपदिभवम् ॥
मुखारं च्यवन्धाख्यं ब्रह्मणश्च सरस्ततः ।
चक्राख्यं ललिताख्यानं तीर्थञ्च बहुगोमखम् ॥
रुद्रावर्तञ्च मार्कण्डं तीर्थं पापप्रणाशनम् ।

रावणेशं शुद्धपटं लवान्धुप्रेततीर्थकम् ॥
जिह्वोदतीर्थसम्भूतिः शिवोद्भेदं फलश्रुतिः ।
एषखण्डो ह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः ॥

(६)—अतः परं नागराख्यः खण्डः षष्ठोभिधीयते ।
लिंगोत्पत्तिसमाख्यानहरिश्चन्द्रकथा शुभा ॥
विश्वामित्रस्य माहात्म्यं त्रिशंकुस्वर्गतिस्तथा ।
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा ॥
नागबिलं शंखतीर्थमचलेश्वरवर्णनम् ।
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् ॥
गयशीर्षंबालशाख्यं बालमण्डं मृगाह्वयम् ।
विष्णुपादश्च गोकर्णं युगरूपं समाशयम् ॥
सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तर्षेयं ह्यगस्त्यकम् ।
भ्रूणगर्तं नलेशञ्च भीष्मदूर्वैरमर्ककम् ॥
शार्मिष्ठं शोभनाथञ्च दौर्गमानर्तकेश्वरम् ।
जलमग्निवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम् ॥
रामहृदं नागपरं जड़लिङ्गञ्च यज्ञभूः ।
मुण्डीरादित्रिकाकञ्च सतीपरिणयस्ततः॥
बालखिल्यञ्च योगेशं बालखिल्यञ्च गारुड़म् ।
लक्ष्मीशापः सासविशः सोमप्रासादमेव च ॥
अम्बावृद्धं पादुकाख्यं आग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ॥
गोमुख्यं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ॥
शानैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ।
कुशेशाख्यं लवणाख्यं लिङ्गं सर्गोत्तमोत्तमम् ॥
अष्टसृष्टि समाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम् ।
ततोस्वारैवती चात्र भट्टिकातीर्थसम्भवम् ॥

क्षेमङ्करी च केदारं शुक्लतीर्थं मुखारकम् ।
सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पला कथा ॥
अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्यं गाणेशमेव च ।
ततो वास्तुपदाख्यानमजागहकथानकम् ॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणपत्यत्रयं ततः ।
जावालिचरितञ्चैव मारकेशकथा ततः
कालेश्वर्यन्धकाख्यानं कुण्डमाप्सरसं तथा ।
पुष्पादित्यं रोहिताश्वं नगरोत्पत्तिकीर्त्तनम् ॥
भार्गवं चरितञ्चैव वैश्वामित्रं ततः परम् ।
सारस्वतं पैप्पलादं कंसारीशञ्च पौण्ड्रकम् ॥
ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याख्यानसंयुतम् ।
रैवतं भर्तृयज्ञाख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ॥
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम् ।
पौष्करं नैमिषं धार्ममरण्यत्रितयं स्मृतम् ॥
वाराणसी द्वारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीत्रयम् ।
वृन्दावनं खाण्डवाख्यमद्वैताख्यं वनत्रयम् ॥
कल्पः शालस्तथानन्दो ग्रामत्रयमनुत्तमम् ।
असिशुक्ला पितृसंज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥
अर्बुदो रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ।
नदीनां त्रितयं गङ्गा नर्मदा च सरस्वती ॥
सार्धकोटित्रयफलमेकैकञ्चैषु कीर्तितम् ।
कूपिकाशंखतीर्थञ्चामरकं वालमण्डनम् ॥
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् ।
शाम्बादित्यः श्राद्धकल्पः यौधिष्ठिरमथान्धकम् ॥
जलशायिचतुर्मास्यमशून्यशयनव्रतम् ।

भंकणेशः शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ॥
पृथ्वीदानं वाणकेशं कपालं मोचनेश्वरम् ।
पापपिण्डं सासलैङ्गं युगमानादिकीर्तनम् ॥
निम्बेशशाकंभर्य्याख्या रुद्रैकादशकीर्त्तनम् ।
दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्त्तनम् ॥
इत्येष नागरः खण्डः प्रभासाख्योधुनोच्यते ।
(७)—सोमेशो यत्र विश्वेशोर्कस्थलः पुण्यदो महत् ॥
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम् ।
अग्नितीर्थं कपर्दीशं केदारेशं गतिप्रदम् ॥
भीमभैरवचण्डीशभास्करागारकेश्वराः ।
बुधेज्यभृगुसौरेन्दुशिखीशा हरविग्रहाः ॥
सिद्धेश्वराद्याः पञ्चाग्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ।
वरारोहा ह्यजापाला मंगला ललितेश्वरी ॥
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चार्घीशः कामेश्वरस्तथा ।
गौरीशवरुणेशाख्यमुनीषश्च गणेश्वरम् ॥
कुमारेशश्च शाकल्यं नकुलोत्तंकगौतमम् ।
दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्याह्वयं तथा ॥
भूतेशादीनि लिंगानि आदिनारायणाह्वयम् ।
ततश्चक्रधराख्यानं शाम्बादित्यकथानकम् ॥
कथा कण्टकशोधिन्या महिषघ्न्यास्ततः परम् ।
कपालीश्वरकोटीशबालब्रह्माह्वसत्कथा ।
नरकेशसम्वर्तेशनिधीश्वरकथा ततः ॥
बलभद्रेश्वरस्याथ गंगाया गणपस्य च ।
जाम्बवत्याख्यसरितः पाण्डुकूपस्य सत्कथा ॥
शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः ।

दुर्वासार्कयदुस्थाने हिरण्यसंगमोत्कथा ॥
नगरार्कस्य कृष्णस्य संकर्षणसमुद्रयोः ।
कुमार्याःक्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ॥
पिंगलासंगमेशस्य शंकरार्कघटेशयोः ।
ऋषितीर्थस्य नन्दार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम् ॥
शशोपानस्य पर्णार्कन्यंकुमत्योः कथाद्भुता ।
वराहस्वामिवृत्तान्तं छायालिंगाख्यगुल्फयोः ॥
कथा कनकनंदायाः कुन्तीगंगेशयोस्तथा ।
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः ॥
मंकणेशत्रैपुरेशषण्डतीर्थकथा तथा ।
सूर्यप्राचीत्रीक्षणयोरुमानाथकथा तथा ॥
भूद्वारशूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा ।
अजापालेशबालार्ककुबेरस्तलजा कथा ॥
ऋषितोयाकथा पुण्या संकालेश्वरकीर्तनम् ।
नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम् ॥
तप्तकुण्डस्य माहात्म्यं मूलचण्डीशवर्णनम् ।
चतुर्वक्त्रगणाध्यक्षकलम्बेश्वरयोः कथा ॥
गोपालस्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुती तथा ।
मोक्षार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः ॥
कालमेघस्य रुक्मिण्या उर्वशीश्वरभद्रयोः ।
शंखावर्तमोक्षतीर्थगोष्पदाच्युतसेवनम् ॥
मालेश्वरस्य हुँकारकूपचण्डीशयोः कथा ।
आशापुरस्थविघ्नेशकलाकुण्डकथाद्भुता ॥
कपिलेशस्य च कथा जरद्गवशिवस्य च ।
नलकर्कोटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा ॥

नारदेशमंत्रभूतीदुर्गाकूदगणेशजा ।
सुपर्णैलाख्यो भैरव्योर्भल्लतीर्थभवा कथा ॥
कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ।
बहुस्वर्णेशशृङ्गेशकोटीश्वरकथा ततः ॥
मार्कण्डेश्वरकोटीशदामोदरगृहोत्कथा ।
स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्ती भीमेश्वरौ तथा ॥
मृगीकुण्डस्य सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ।
दुर्गाबिल्वेशगंगेश रैवतानां कथाद्भुता ॥
ततोऽर्बुदे शुभ्रकथा अचलेश्वरकीर्तनम् ।
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रमवर्णनम् ॥
भद्रकर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम् ।
केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्तनम् ॥
कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथास्ततः ।
सिद्धेशशुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीशकीर्तनम् ॥
पंगुतीर्थं यमतीर्थं वाराहीतीर्थवर्णनम् ।
चन्द्रप्रभासपिण्डोदश्रीमातुः शुक्लतीर्थजम् ॥
कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डार्ककस्य च ।
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः ॥
कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबन्धजा ।
गणेशपार्टेश्वरयोर्यात्राय मुद्गलस्य च ॥
चण्डीस्थानं नागभवं शिवःकुण्डमहेशजा ।
कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः ॥
उद्दालकेशसिद्धेशगर्ततीर्थकथा पृथक् ।
श्रीमद्देवमतोत्पत्तिर्व्यासगौतमतीर्थयोः ॥
चन्द्रोद्भेदेशानलिंगब्रह्मस्थानोद्भवोदहनम् ।

त्रिपुष्करं रुद्रहृदं गुहेश्वरकथा शुभा ॥
अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ।
महौजसः प्रभावस्य जम्बूतीर्थस्य वर्णनम् ॥
गङ्गाधरमिश्रकयोः कथा चाथ फलस्तुतिः ।
द्वारकायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथानकम् ॥
जागराद्याख्यव्रतं च व्रतमेकादशीभवम् ।
महाद्वादशिकाख्यानं प्रह्लादर्षिसमागमः ॥
दुर्वासं स उपाख्यानं यात्रोपक्रमकीर्तनम् ।
गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्यां स्नानादिजं फलम् ॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसंगमः ।
सनकादिहृदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः ॥
गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः ।
गोपीश्वरं समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्तनम् ॥
पञ्चनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमाचितम् ।
शिवलिंगमहातीर्थकृष्णपूजादिकीर्तनम् ॥
त्रिविक्रमस्य मूर्त्याख्या दुर्वासः कृष्णसंकथा ।
कुशदैत्यवधोर्चाख्या विशेषार्चनजं फलम् ॥
गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीर्तनम् ।
कृष्णमन्दिरसंप्रेक्षं द्वारवत्याभिषेचनम् ॥
तत्रतीर्थावासकथा द्वारकापुण्यकीर्तनम् ।
इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खण्डः प्राभासिको द्विज ॥
स्कान्दे सर्वोत्तरकथा शिवमाहात्म्यवर्णने ॥

नारदपुराण ॥

इसमें षण्मुखकर्तृक तत्पुरुष कल्प में सर्वसिद्धिविधायक माहेश्वर के सम्-धर्म प्रकाशित हुए हैं ।

(१—माहेश्वरखण्ड में) वृहत् कथा युक्त माहेश्वरखण्ड ही इस पुराण का आदि और सर्वपाप नाशक है । यह माहेश्वरखण्ड पुण्यजनक और कुछ कम बारह सहस्र श्लोकों में परिपूर्ण है यह स्कन्द माहात्म्यसूचक है । इसके केदार माहात्म्य के आदि में पुराणोपक्रम हुआ है । पश्चात् दक्षयज्ञ कथा, शिवलिंगार्चन में फल, समुद्र मंथनाख्यान, देवेन्द्रचरित, पार्वती का उपाख्यान और विवाह, कुमारोत्पत्ति, तारक युद्ध, पाशुपति का आख्यान, चन्डी का आख्यान, दूतप्रवर्तनाख्यान, नारद का समागम, कुमार माहात्म्य में पंचतीर्थ कथा, धर्म वर्मनृपाख्यान, महीसागर कीर्तन, इन्द्रद्युम्न कथा, नाड़ीजंघ कथा, महीप्रादुर्भाव, दमनककथा, महीसागर संयोग, कुमारेश कथा, तारक युद्ध, तारकवध, पंचलिंग निवेशन, द्वीपाख्यान, ब्रह्माण्डस्थितिमान, बर्करेश कथा, वासुदेव माहात्म्य, कोटितीर्थ, नानातीर्थ समाख्यान, पाण्डवों की कथा, महाविद्या प्रसाधन, तीर्थयात्रा समाप्ति, अरुणाचल माहात्म्य, सनक ब्रह्म सम्वाद, गौरीतपो वृत्तान्त, और उस २ तीर्थ का निरूपण, महिषासुराख्यान और वध तथा शोणाचल में शिवावस्थान वर्णित हुआ है ।

(२—वैष्णवखण्ड में) इसके प्रथम में भूमि बराह समाख्यान, रोचक कुध्र का माहात्म्य, कमला की कथा और श्रीनिवासस्थिति, फिर कुलाल आख्यान, सुवर्ण मुखरी कथा, नानाख्यानयुक्त भरद्वाज कथा, मतंगांजन सम्वाद, पुरुषोत्तम माहात्म्य, मार्कण्डेय और अम्बरीष आदि का समाख्यान, इन्द्रद्युम्नाख्यान, विद्यापति कथा, जैमिनीय उपाख्यान, नारदोपाख्यान, नरसिंह उपाख्यान वर्णन, अश्वमेध कथा, ब्रह्मलोक गति, रथयात्रा विधि, जन्मस्थान विधि, दक्षिणामूर्ति उपाख्यान, गुण्डिचा आख्यान, रथरक्षा विधान, वहथुत्सव निरूपण, भगवान् का दोलोत्सव, सम्वत्सर नामक व्रत, कामियों की विष्णु पूजा, उद्दालक नियोग, मोक्षसाधन, नाना योग निरूपण, दशावतार कथन, स्नानादि कीर्तन, पापनाशक बदरिका माहात्म्य, अग्नि आदि तीर्थ माहात्म्य, वैनतेय शिलाभव, भगवद्वास का कारण, कपालमोचन तीर्थ, पंचधारा नामक तीर्थ, मेरुसंस्थापन, मदनालस माहात्म्य, धूम्रकेश समाख्यान, कार्तिकमासीय दिन कृत्य, पंचभीष्म व्रताख्यान, और व्रत माहात्म्य में स्नानविधि, पुंड्रादि कीर्तन, मालाधारण, पुण्य पञ्चामृत स्नान, पुण्य घंटा नाद आदि के निमित्त फल, नाना पुष्प और तुलसीदलार्चन फल, नैवेद्य माहात्म्य, हरिवासर कीर्तन,

अखण्डैकादशी पुण्य, जागरण पुण्य, मत्स्योत्सव विधान, नाम माहात्म्य कीर्तन, ध्यानादि पुण्य कथा, मथुरा माहात्म्य, मथुरा तीर्थ माहात्म्य, द्वादशवन माहात्म्य, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, व्रज शाण्डिल्य माहात्म्य, स्नान दान और जप का फल, जल दानादि विषय, कामाख्यान, श्रुतदेव चरित, व्याधोपाख्यान, अक्षय्या तृतीयादि की कथा और विशेष पुण्य कीर्तन, चन्द्रहरि और धर्महरि वर्णन, स्वर्ण वृष्टि का उपाख्यान, तिलोदा, सरयूसंगम में सीताकुण्ड, गुप्तहरि, गोप्रचार, दुग्धोद, गुरुकुण्डादि पंचक, घोषार्कादिक त्रयोदश तीर्थ, सर्वपापनाशक गयाकूप माहात्म्य, माण्डव्याश्रम प्रमुख तीर्थ और मासादि तीर्थ, यह सम्पूर्ण विषय वर्णित है।

(३—ब्रह्मखण्ड में) हे मरीचे! पुण्यप्रद ब्रह्मखण्ड भी श्रवण करो। इसमें सेतु माहात्म्य स्नान और दर्शन का फल, गालव की तपश्चर्या, राक्षसाख्यान, चक्रतीर्थादि माहात्म्य, वेताल तीर्थ महिमा मंगलादि माहात्म्य, ब्रह्मकुण्डादि वर्णन हनुमत् कुन्ड महिमा, अगस्त्य तीर्थ फल, रामतीर्थादि कथन, लक्ष्मीतीर्थ निरूपण, शंखादि तीर्थ महिमा, धनुष्कोटयादि माहात्म्य, क्षीर कुण्डादि की महिमा, गायत्र्यादितीर्थ माहात्म्य, वामनाथ महिमा, तत्व ज्ञानोपदेश, यात्रा विधान, धर्मारण्य माहात्म्य, धर्मारण्य समुद्भव, कर्मसिद्ध समाख्यान, ऋषिवंश निरूपण, अप्सरातीर्थका माहात्म्य वर्णन और आश्रम समुदाय का धर्म निरूपण, देवस्नान विभाग, वकुल के कथा, इन्द्रेश्वरादि माहात्म्य, द्वारकादि निरूपण, लोहासुर का आख्यान, गंगाकूप निरूपण, श्री रामचरित, सत्यमन्दिर वर्णन, जीर्णोद्धार कथन, शासन प्रतिपादन, जाति भेद कथन स्मृति धर्म निरूपण, वैष्णव धर्म कथन, चातुर्मास्य सर्व धर्म निरूपण, दान प्रशंसा' व्रतमहिमा तपस्या और पूजा का सच्छिद्र कथन, प्रकृति का भिन्नाख्यान शालग्राम निरूपण, तारकवधोपाय, त्र्यक्षरार्चन महिमा, विष्णु वृन्दत्वशाप और पार्वतीय अनुनय, हर का ताण्डवनृत्य, रामनाम निरूपण, यवन कथा के निमित्त हर का लिंगपतन, पार्वती जन्म, तारका चरित, दक्ष यज्ञ समाप्ति, द्वादशाक्षर निरूपण जन्मयोग समाख्यान, और श्रवणादि पुण्य यह सम्पूर्ण वर्णित हुआ है।

ब्रह्मखण्ड के उत्तर भाग में—शिव महिमा, पंचाक्षर महिमा, गोकर्ण माहात्म्य, शिवरात्रि महिमा, भद्रायूत्पत्ति कथन, सदाचार निरूपण, शिवधर्म समुद्देश, भायुद्र का विवाह वर्णन, भद्रायु महिमा, भस्म माहात्म्य कीर्तन, शवराख्यान, उमामहेश्वर

व्रत, रुद्राक्ष माहात्म्य, रुद्राध्याय और श्रवणादिक पुण्य, यह सम्पूर्ण कीर्तित हुआ है ।

इसके अनन्तर अनुत्तम ४ चतुर्थ काशीखण्ड कहा जाता है । इसमें प्रथमतः विन्ध्य और नारद का सम्वाद, सत्यलोक प्रभाव, अगस्त्यावास में सुरागमन, पतिव्रता चरित्र और तीर्थचर्या प्रशंसा, पश्चात् सप्तपुरी, संयमिनी निरूपण, शिवशर्माको सूर्य इन्द्र और अग्निलोक प्राप्ति, अग्नि की उत्पत्ति, वरुणोत्पत्ति, गंधवती, अलकापुरी और ईश्वरी के समुत्पत्ति क्रम में चन्द्र, बुध, कुज, गुरु और सूर्यलोक, सप्तर्षि ध्रुव तथा तपोलोक का वर्णन, पवित्र ध्रुवलोक कथा, सत्यलोक वर्णन, स्कन्द और अगस्त्य का आलापन, मणिकर्णिका समुद्भव, गंगा का प्रभाव, गंगा के सहस्र नाम, वाराणसी प्रशंसा, भैरवाविर्भाव, दण्डपाणि और ज्ञानवापी का उद्भव, कलावती का आख्यान, सदाचार निरूपण, ब्रह्मचारी आख्यान, स्त्रीलक्षण, कृत्याकृत्य निर्देश, अविमुक्तेश्वर वर्णन, गृहस्थ और योगियों का धर्मकाल ज्ञान, दिवोदास कथा, काशी वर्णन, योगीचर्या, लोलार्क और शाम्बार्क की कथा, द्रुपदार्क, तार्क्ष्याख्य, अरुणार्क का उदय, दशाश्वमेध तीर्थाख्यान, मन्दर से यातायात, पिशाचमोचनाख्यान, गणेशप्रेरण, माया गणपति का पृथिवी में प्रादुर्भाव, विष्णु माया प्रपंच, दिवोदास विमोक्षण, पंचनदोत्पत्ति, बिंदुमाधव सम्भव, वैष्णव तीर्थाख्यान, शृङ्गिका कौशिकागम, ज्येष्ठेश! जैगीषव्य के साथ सम्वाद, क्षेत्राख्यान, कुन्दकेश और व्याघ्रेश्वरोत्पत्ति शैलेश, रत्नेश और कृत्तिवास का सम्बाद, देवताओं का अधिष्ठान, दुर्गासुर का पराक्रम, दुर्गा की विजय, ओंकारेश वर्णन, ओंकार माहात्म्य! त्रिलोचन समुद्भव, केदाराख्यान धर्मेश कथा, विल्वभुज कथा, वीरेश्वर समाख्यान, गंगा मांहात्म्य कीर्तन, सत्येश और अमृतेशादि पाराशर का भुजस्तम्भ, क्षेत्रतीर्थ समूह, मुक्ति मण्डप कथा, विश्वेश विभव और यात्रा ये सम्पूर्ण विषय निरूपित हुए हैं ।

इसके अनन्तर अवन्ती नामक ५ पंचमखण्ड सुनो । इस में महाकालाख्यान ब्रह्मशीर्षच्छेद, प्रायश्चित्त विधि. अग्नि उत्पत्ति, सुरागमन, देवदीक्षा शिवस्तोत्र, कपालमोचनाख्यान, महाकालवनस्थिति, कलकलेश तीर्थ, अप्सरा नामक कुण्ड, मर्कटेश्वर तीर्थ, स्वर्गद्वार, चतुःसिन्धु तीर्थ, शंकरवापिका, सकरार्क गन्धर्व तीर्थ, दशाश्वमेध तीर्थ, पिशाचकादि यात्रा, महाकालेश यात्रा; वल्मीकेश्वर तीर्थ, सुकेशऔर

नक्षत्रेश का उपाख्यान, कुशस्थली प्रदक्षिणा और अक्रूर मन्दाकिनी, अंशपातु, चन्द्र सूर्य का वैभव, करभेश, कुक्कुटेश और लड्डुकेश आदि तीर्थ, मार्कण्डेयेश, यज्ञवापी सोमेश, नरकान्तक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशार्क, और शक्तिभेद आदि तीर्थ, अन्धकस्तुति कीर्तन, क्षिप्रास्नानादिफल, शिवस्तुति, हिरण्याक्षवधाख्यान, सुन्दर कुण्ड, अघनाशन, पुरुषोत्तम तीर्थ विष्णु के सहस्र नाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरव तीर्थ, नागपञ्चमी महिमा, नृसिंह जयन्तिका, मुकुटेश्वर यात्रा, देवसाधक कीर्तन, कर्कराज तीर्थ रुद्रकुण्ड आदि में बहुतीर्थ निरूपण, रेवा माहात्म्य, धर्म पुत्र का मार्कण्डेय के साथ मिलन, पूर्वलयानुभवाख्यान, अमृत कीर्तन, कल्प २ में नर्मदा के नाम का पृथक्त्व, ऋषि और नर्मदा का स्तव, कालरात्रि कथा, महादेव स्तुति, पृथक् कल्प कथा, विशल्याख्यान, त्रिपुरदहन, देहपातविधान, कावेरीसंगम, दारुतीर्थ, अग्नितीर्थ, रवितीर्थ, नर्मदेश आदि शचीहरण, अन्धकासुरवध, शूल भेदोद्भव, भिन्न २ दानकर्म, दीर्घतपा का आख्यान, ऋष्यशृङ्ग कथा, चैत्रसेन कथा, काशिराज का मोक्षण, देवशिलाख्यान, शबरीचरित्र, व्याधाख्यान, पुष्करिण्यर्क तीर्थ, आदित्येश्वर तीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिश, कुमारेश, अगस्त्येश, च्यवनेश, मातृज, लोकेश, धनेश, मंगलेश, कामज, नारदेश, नन्दिकेश, और वरुणेश्वर आदि तीर्थ; दधिस्कन्दादि तीर्थ, रामेश्वरादि तीर्थ, सोमेश, पिंगलेश्वर, ऋणमोच, कपिलेश पूतिकेश, जलेशय और चंडार्कादि तीर्थ, कह्लोडीश, नन्दिक, नारायण, कोटीश और व्यास तीर्थ, प्रभासिक; नागेश, संकर्षणक, और मन्मथेश्वर तीर्थ, एरंडी संगम; सुवर्णशिला, करञ्ज और कामह तीर्थ, भांडीर तीर्थ, चक्रतीर्थ, स्कान्द, आंगिरस, अंगारक, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्बुकेश, सोमेश, कोहलेश, नार्मद, देवभागेश, आदिवाराह, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कंकटेश्वर, शात्रु, सौम, नान्देश, तापेश, रुक्मिणीभव, योजनेश, वराहेश, सिद्धेश, मंगलेश और लिंग, वाराह आदि तीर्थ कुंडेश, श्वेतवाराह, भार्गवेश, रवीश्वर और शुक्ल आदि तीर्थ, हुंकारस्वामि तीर्थ, संगमेश, नारकेश, मोक्ष, सार्प, गोप, नाग, शाम्ब, सिद्धेश; मर्कंड और अक्रूरादि तीर्थ, कामोद, शूलारोप, मांडव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिंगलेश भूतेश, गांगगौतम, अश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, कनखलेश, जालेश, शालग्राम वराह, चन्द्रप्रभा, श्रीगत्याख्य, हंसक, मूलस्थान, शूलेश, चित्रदेवक, शिल्पीश कोटि तीर्थ, दशकन्या, सुवर्णक, ऋणमोक्ष,

आदि तीर्थ, कृमिजंगल माहात्म्य, रोहिताश्व कथा, धुन्धुमार समाख्यान, चित्रमहोद्भव, चण्डीश प्रभाव और केदारेश, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, कयवन, अन्धाख्य, ब्रह्म, सरोवर, चक्राख्य, ललिताख्यान, बहुगोमय, रुद्रावर्त मार्कण्डेय, रावणेश, शुद्धपट, देवान्धु, प्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थोद्भव और शिवोद्भव आदि तीर्थ ये सम्पूर्ण वर्णित हुये हैं इसके श्रवण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं।

(६—नागरखण्ड) इसमें लिंगोत्पत्ति, हरिश्चन्द्र कथा, विश्वामित्र माहात्म्य, त्रिशंकु की स्वर्ग गति, हाटकेश्वर माहात्म्य, वृत्रासुर वध, नागबिल, शंखतीर्थ, अचलेश्वर वर्णन, चमत्कार पुराख्यान, गयशीर्ष, बालशाख्य, बालमण्ड, मृगाह्वय, विष्णुपाद, गोकर्ण, युगरूप, सिद्धेश्वर, नागसर, सप्तार्षेय, अगस्त्य कथा, भ्रूणगर्त, नलेश, शार्मिष्ठ, शोभनाथ, और जमदग्निवधोपाख्यान, निःक्षत्रिय कथा, रामह्रद, नागपुर, जड़लिंग, मुण्डीरादि त्रिकार्क, सती परिणय, बालखिल्य, योगेश, गारुड़, लक्ष्मीशाप, सोमप्रसाद, अम्बावृद्ध, पादुकाख्य, आग्नेय, ब्रह्मकुण्ड, गोमुख्य, लोहयष्ठ, आख्य, अजापालेश्वरी, शनैश्चर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश, कुशेश, और लवेश लिंग, रेवती, आदि तीर्थ, सत्य सन्धेश्वराख्यान, कर्णोत्पला कथा, अटेश्वर, याज्ञवल्क्य, गौर्य, गणेश और वास्तु समाख्यान, अजागह कथा, मिष्टान्नदेश्वराख्यान, और गाणपत्यत्रय, वाजिल चरित, मकरेशकथा, कालेश्वरी, अन्धकाख्यान, अप्सराकुण्ड, पुष्पादित्य, रोहिताश्व और नागरोत्पत्ति कीर्तन, भार्गव और विश्वामित्र चरित, सारस्वत पैप्पलाद, कंसारीश पौंड्रिक और ब्रह्मा की यज्ञ कथा, सावित्र्याख्यान, रैवत भतृ यज्ञ मुख्य तीर्थ निरूपण, कौरव, हाटकेश और प्रभास क्षेत्र, पौष्कर नैमिष और धर्मारण्य वाराणसी द्वारका और अवन्त्याख्य तीनपुरी, वृन्दावन खण्ड, और अद्वैकारण्य तीन वन कल्पशाख्य और नन्दाख्य तीन ग्राम, असिशुका और पितृसंज्ञक तीन तीर्थ, श्री अर्बुद और रैवत नामक तीन पर्वत, गंगा, नर्मदा और सरस्वती नामक तीन नदी, कूपिका, शंखतीर्थ, अमरक और बालमण्डन तीर्थ, शाम्बादित्य, श्राद्धकल्प, यौधिष्ठिर सम्वाद, अन्धक, जलशायी, चातुर्मास्य, अशून्यशयनव्रत, मंकणेश, शिवरात्रि, तुला-पुरुषदान, पृथ्वीदान, बालकेश, कपालमोचनेश्वर पापिण्डप, साप्तलिंग और युगमानादि कीर्तन, शाकंभर्याख्यान, एकादशरुद्र कीर्तन, दानमाहात्म्य और द्वादशादित्य कीर्तन यह सम्पूर्ण वर्णित हुये हैं अब प्रभासाख्य सातवां खण्ड कहा जाता है।

(७—प्रभासखण्ड में) सोमेश, विश्वेश अर्कस्थल, सिद्धेश्वरादि का आख्यान, अग्नितीर्थ, कपर्दीश, केदारेश तीर्थ, भीम, भैरव चक्रीश, भास्कार और अंगारकेश्वर आदि हर विग्रह, उस स्थान में सिद्धेश्वरादि के निमित्त और भी पंचरुद्र का अवस्थान, वरारोह, अजपाला, मंगला और ललितेश्वरी, लक्ष्मीश, बाड़वेश, अर्घ्येश, कामेश्वर, गौरीश, वरुणेश, गणेश्वर, कुमारेश, साकल्य, शकुन, उतंक, गौतम दैत्यघ्नेश, और चक्रतीर्थ, भूतेशादिलिंग, आदि नारायण, चन्द्रधराख्यान, शाम्बादित्य कथा, कण्टक शोधिनी कथा, महिषघ्नी की कथा, कपालीश्वर, कोटीश और बालब्रह्म नामक कथा, नरकेश, सम्बर्तेश, और निधीश्वर कथा, वलभद्रेश्वर कथा, गंगा, गणपति जाम्बवती नदी और पाण्डुकूप की कथा, शतमेध, लक्षमेध, और कोटिमेधकथा, दुर्वासादि की कथा, नगरार्क, कृष्ण, संकर्षण, समुद्र, कुमारी, मोक्षपाल और ब्रह्मेश की कथा, पिंगला, संगमेश संकरार्क, घटेश, ऋषितीर्थ और नन्दार्क, त्रितकूप कीर्तन, शाशोपान, पर्णार्क और न्यंकुमती की कथा, बाराह स्वामी वृत्तान्त, छाया लिंगाख्य और गुल्म कथा, कनकनन्दी, कुम्भी और गंगेशकथा, चमसोद्भेद, विदुर और त्रिलोकेश कथा, संकर्णेश, त्रिपुरेश, और षण्डतीर्थ कथा, सूर्य, प्राची, त्रीक्षण, और उमानाथ कथा, शृंगार, शूलस्थल, च्यवन और अर्केश की कथा, अजापालेश, बालार्क और कुबेर स्थलकथा, पवित्र ऋषितोया कथा, संगमेश्वर कीर्तन नारदादित्य कथन, नारायण निरूपण, तप्तकुण्ड माहात्म्य, मूलचण्डीश वर्णन, चतुर्वक्त्र गणाध्यक्ष और कलम्बेश्वर कथा, गोपालस्वामी और बकुल स्वामी, मरुतीकथा, क्षेमार्क, विघ्नेश, और जल-स्वामि कथा, कालमेध, रुक्मिणी, उर्वशीश्वर, भद्र, शंखावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पद, अच्युत गृह, मालेश्वर, हुंकार, और कूप चण्डीस कथा, कापिलेश कथा, जरद्गव शिवकथा, नल, कर्कटेश्वर और हाटकेश्वर, जरद्गवेश आदि की कथा, सुपर्णेश, भैरवी, और भल्लतीर्थ, कर्दमाल और गुप्त सोमेश्वर का कीर्तन, बहुस्वर्णेश, शृङ्गेश और कोटीश्वर कथा, मार्कण्डेश, कोटीश दामोदर कथा, स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश, भीमेश, मृगीकुण्ड, सर्वस्वक्षेत्र छत्राविल्वेश, गंगेश, रैवतादि की कथा, स्वभ्रकथा, अचलेश्वर कीर्तन, नागतीर्थ कथा, वसिष्ठाश्रम बर्णन, कर्णमाहात्म्य, त्रिनेत्र माहात्म्य, केदार माहात्म्य, तीर्थागमन कीर्तन, कोटीश्वर, रूपतार्थ, हृषीकेश कथा, सिद्धेश, शुक्रेश और मणिकर्णीश कोर्तन, पंकुतीर्थ, यमतीर्थ, और बाराही

तीर्थ वर्णन, चन्द्रप्रभा, सपिण्डोद, स्त्रीमाहात्म्य और शुक्लतीर्थ माहात्म्य, कात्यायनी माहात्म्य, पिण्डारक, कनखल, चक्र, मानुष औरकपिलाग्नितीर्थ कथा, चण्डी स्थानादि कथा, कामेश्वर और मार्कण्डेयोत्पत्ति कथा उद्दालकेश और सिद्धेशतीर्थ कथा, श्रीदेवमाता की उत्पत्ति, व्यास और गौतम तीर्थ की कथा, कुलसन्ता का माहात्म्य, चन्द्रोद्भेदादि कथा, काशीक्षेत्र, उमा और महेश्वर का वृत्तान्त, महौजा का प्रभाव, जम्बूतीर्थ वर्णन, गंगाधर और मिश्रक की कथा, द्वारकामाहात्म्य, चन्द्र शर्म कथा, जागराद्याख्य व्रत, एकादशीव्रत, महाद्वादशी आख्यान, प्रह्लादर्षि समागम, दुर्वासा का उपाख्यान, यात्रोपक्रम कीर्तन गोमती की उत्पत्ति कीर्तन, चक्रतीर्थ माहात्म्य, गोमती का समुद्र संगम, सनकादि ह्रदाख्यान, नृपतीर्थ कथा, गोप्रचार कथा, गोपियों का द्वारकागमन, गोपियों का समाख्यान, ब्रह्मतीर्थादि कीर्तन, पंचनद्यागमाख्यान, शिवलिंग, महातीर्थ और कृष्णपूजादि कीर्तन, त्रिविक्रम मूर्त्याख्यान, दुर्वासा और कृष्ण कथा, कुशदैत्यवध, विशेषार्चन में फल, गोमती औरद्वारका तीर्थ गमन कीर्तन, श्रीकृष्णमन्दिर संप्रेक्षण, द्वारवत्यभिषेचन, उस स्थान में तीर्थवास कथा एवं द्वारका पुण्य कीर्तन। हे द्विज, यह प्रभास नामक सप्तमखण्ड कहा गया है।

यह पुराण खण्डों में विभक्त है और उक्त सूची के समस्त लक्षण इसमें पाये जाते हैं किन्तु इसमें कहीं २ पर प्रक्षिप्त श्लोक भी संमिलित है।

भविष्य

तत्रादिमं स्मृतं सर्वं ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः।
सूतशौनकसम्वादे पुराणप्रश्नसंक्रमः॥
आदित्यचरितं प्रायः सर्वाख्यानसमाचितम्।
सृष्ट्यादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः॥
पुस्तकलेखकलेख्यानां लक्षणञ्च ततः परम्॥
संस्काराणाञ्च सर्वेषां लक्षणञ्चात्र कीर्तितम्॥
अक्षत्यादितिथीनाञ्च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः।
अष्टम्याद्या शेषकल्पा वैष्णवे पर्वणि स्थिताः॥
शैवेच कामतो भिन्नाः सौरे चान्त्यकथा च या।

प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमाचितम् ॥
पुराणस्योपसंहारसहितं सर्वपञ्चमम् ।
एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन्ब्रह्मणः महिमाधिकः ॥
धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापि शिवस्य च ।
द्वितीये च तृतीये च सौरी वर्गचतुष्टये ॥
प्रतिसर्गाह्वयं त्वन्यं प्रोक्तं सर्वकथाचितम् ।
सभविष्यं विनिर्दिष्टं पर्व व्यासेन धीमता ॥
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम् ।
गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि श्रुतिः ॥

नारद पुराण ।

इसके आदि में ब्राह्मपर्व है, इस पर्व में ही इसका उपक्रम है इसके प्रथम में सूत और शौनक सम्वाद में पुराण प्रश्न, सर्वाख्यान युक्त आदित्य चरित्र, सृष्टि आदि के लक्षणयुक्त शास्त्रस्वरूप, पुस्तक लेखक और लेख्य का लक्षण, संस्कार समुदाय का लक्षण; प्रतिपदादि तिथियों के सात कल्प पर्यन्त वर्णित हुये हैं। वैष्णवपर्व में अष्टमी आदि शैवकल्प, शैव पर्व में कामानुसार विभिन्नता, सौरपर्व में अन्त कथा समूह और पुराण के उपहार के साथ प्रतिसर्ग पर्व में नानाख्यान इसप्रकार पंचपर्व कीर्तित हुये हैं।

द्वितीय विष्णुपर्व में धर्म, काम और मोक्ष विषय में, तृतीय पर्व में शिव की और चतुर्थ में सूर्य की सर्व कथा एवं प्रतिसर्ग नामक शेष पर्व में अवशिष्ट संपूर्ण कथा कही है। धीमान् व्यास ने भविष्य में ये चार प्रकार के पर्व निर्दिष्ट किये हैं इनमें सर्व देव की कथा समभाव से कही है।

महात्मा आत्माराम की लायब्रेरी कोंच जिला जालौन में एक हस्त लिखित भविष्यपुराण देखा। इसके पश्चात् बंबई में मुद्रित हुआ भविष्य पुराण अवलोकन किया। इससे भिन्न और भी कई एक पुस्तकें भविष्य पुराण की देखीं किन्तु उपरोक्त भविष्यपुराण के पूर्ण लक्षण किसी में भी नहीं पाये गये; अधिक अंश लक्षण के अनुकूल होने पर भी बहुत अंश प्रतिकूल है।

आजकल जो भविष्य पुराण मुद्रित हुआ है वह व्यासकृत नहीं है। इसके व्यासकृत न होने में अनेक प्रमाण मिलते हैं (१) मुद्रित भविष्य पुराण नारद और मत्स्य पुराण की सूची से नहीं मिलता (२) इसमें आये हुये जो शब्द हैं वे आधुनिक हैं जैसे कि "देहलीं प्रति गच्छति" "बर्बरो नाम जायते" "अकबरश्च महाभागः"। (३) इस भविष्य पुराण में राजा और प्रसिद्ध पुरुषों का वर्णन चला है, चलते २ विक्टोरिया पर आकर रुक गया यदि यह पुराण वेदव्यासकृत होता तो फिर इसके विक्टोरिया पर आकर रुक जाने का कोई कारण नहीं था, एडवर्ड और पंचम जार्ज की भी कथा होती (४) तृतीय खंड के ३९ के अध्याय से इस ग्रन्थ में जो हुज्जत बाजियां चली हैं वे समस्त हुज्जतें एवं श्लोक निर्माण की शैली सब नवीन है। इस भविष्य को तो हम व्यास कृत नहीं कह सकते, संभव है कि असली भविष्य पुराण कहीं हो जिसको लेकर एच० एच० बिलसन साहब के "पुराण नवीन हैं" इस लेख को पाश्चात्य विद्वानों ने खंडन किया है (५) आजकल जो कई प्रकार के भविष्य पुराण मिलते हैं वे सब एक दूसरे से नहीं मिलते, इन के पाठ और कथाओं में बहुत अन्तर है। हम अपनी तुच्छबुद्धि से इस फल पर पहुंचे हैं कि मुद्रित भविष्य पुराण व्यासकृत नहीं है।

❋ ब्रह्मवैवर्त ❋

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव।
ब्रह्मवैवर्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम्॥
सावर्णिर्यत्र भगवान्साक्षाद्देवर्षयेर्थितः।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सारं प्रीतिर्हरौ हरे।
तयोरभेदसिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम्॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम्।
शतकोटिपुराणे तत्संक्षिप्य प्राह वेदवित्॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्तसंज्ञितम्।

अष्टादशसहस्रंतत्पुराणं परिकीर्तितम् ॥
ब्रह्मप्रकृतिविघ्नेशकृष्णखण्डसमाचितम् ।
तत्र सूतर्षिसंम्वादे पुराणीयक्रमो मतः ॥
सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः ।
विवादः सुमहान्यत्र द्वयोरासीत्पराभवः ॥
शिवलोकगतिः पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवान्मुने ।
शिववाक्येन तत्पश्चान्मरीचेर्नारदस्य च ॥
गमनं चैव सावर्णे ज्ञानार्थं सिद्धसेविते ।
आश्रमे सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणि ॥
एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।
ततः सावर्णिसंम्वादो नारदस्य समीरितः ॥
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरः ।
प्रकृतेरंशभूतानां कलानाञ्चापि वर्णितम् ॥
माहात्म्यं पूजनाद्यञ्च विस्तरेण यथास्थितम् ।
एतत्प्रकृतिखण्डं हि श्रुतिभूतिविधायकम् ॥
गणेशजन्मसंप्रश्न सपुण्यकमहाव्रतम् ।
पार्वत्याः कार्तिकेयेन सहविघ्नेशसंभवः ॥
चरितं कार्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् ।
विवादः सुमहान्पश्चाज्जामदग्न्यगणेशयोः ॥
एतद्विघ्नेशखण्डं हि सर्वविघ्नविनाशनम् ।
श्रीकृष्णजन्मसंप्रश्नो जन्माख्यानं ततोद्भुतम् ॥
गोकुले गमनं पश्चात्पूतनादि वधोद्भुतः ।
बाल्यकौमारजालीला विविधास्तत्र वर्णिताः ॥
रासक्रीड़ा च गोपीभिः शारदी समुदाहृता ।
रहस्ये राधया क्रीड़ा वर्णिता बहुविस्तरा ॥

सहाङ्कूरेण तत्पश्चान्मथुरागमनं हरे : ।
कंसादीनां वधे वृत्ते स्यादस्य द्विजसंस्कृतिः ॥
काश्यां सन्दीपनेः पश्चाद्विद्योपादानमद्भुतम् ।
यवनस्य वधः पश्चाद्द्वारकागमनं हरेः ।
नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोद्भुतः ।
कृष्णखण्डमिदं विप्र नृणां संसारखण्डनम् ॥

नारद पुराण ।

हे वत्स! सुनो, तुम्हारे निकट ब्रह्मवैवर्त नामक वेदपथानुदर्शक दशमपुराण कहता हूँ, जो कि साक्षात् सावर्णि ने प्रार्थित होकर देवर्षि नारद के निकट अलौकिक पुराणार्थ कहा था । धर्म, अर्थ, और मोक्ष इन सबका सार और भगवान् हरि तथा हरि की प्रीति, इन दोनों की अभेदसिद्धि के निमित्त ही यह उत्तम ब्रह्मवैवर्त प्रवर्तित हुआ है । हमने रथन्तरकल्प का जो वृत्तान्त कहा था, वेदवित् व्यास ने उसको शतकोटि पुराण में संक्षेपरूप से वर्णन किया है, वेदवित् व्यास ने इस ब्रह्मवैवर्तपुराण को ब्रह्म, प्रकृति, गणेश कृष्णखण्ड नामक चार भागों में विभक्त करके १८हजार श्लोकद्वारा कीर्तन किया है । सूत और ऋषि सम्वाद में पुराण का उपक्रम हुआ है ।

इसके प्रथम ब्रह्मखण्ड में सृष्टि प्रकरण, फिर नारद और वेधा का विवाद दोनों का पराभव, शिवलोक में गति, नारदमुनि को शिव से ज्ञानलाभ और शिव वाक्य से मरीचि और नारद के ज्ञान लाभार्थ सिद्ध सेवित परम पवित्र त्रैलोक्याश्चर्य कारी आश्रम में गमन, पापनाशक इस ब्रह्मवैवर्त में यह सब वर्णित है ।

दूसरा प्रकृतिखण्ड इसमें सावर्णि सम्वाद, कृष्णमाहात्म्ययुक्त नाना आख्यान और प्रकृति के अंशभूत कला समुदाय का माहात्म्य और पूजनादि का विस्तृतरूप से वर्णन हुआ है, इस प्रकृतिखण्ड के श्रवण करने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है ।

गणेशजन्म प्रश्न, पार्वती का पुण्यकव्रत, कार्तिकेय और गणेश की उत्पत्ति कार्तवीर्य और जामदग्न्य का अद्भुत चरित, गणेश और जमदग्न्य का घोर विवाद कथन, सर्वविघ्नविनाशक गणेशखंड में इतनी बातें कही हैं ।

श्रीकृष्णजन्म संप्रश्न, फिर जन्माख्यान, गोकुल में गमन पूतनादि वध'

बाल्य और कौमार की बिविध लीला, गोपियों के संग श्रीष्ण को शारदी रासक्रीड़ा निर्जन वन में राधाके साथ क्रीड़ा, फिर हरिके साथ अक्रूर का मथुरागमन, कंसादि का बध, काशी में सान्दीपनि के निकट विद्याग्रहण, यवन का वध, हरि का द्वारकागमन और कृष्ण का नरकासुरादि बध, यह सम्पूर्ण कथा कृष्ण जन्म खण्ड में वर्णित हुई हैं। हेविप्र ! इस सव वृत्तान्त के श्रवण करने से मनुष्यों का संसारबंधन कट जाता है।

वर्तमान समय में जो ब्रह्मवैवर्त छपा है वह एकदम अपना रूपान्तर कर गया है उसको आद्य ब्रह्मवैवर्त न कह कर आधुनिक वैष्णव ब्रह्मवैवर्त कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं और कोई दोष नहीं।

मार्कण्डेय

अथातः संप्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयाभिधं मुने।
पुराणं सुमहत्पुण्यं पठतां शृण्वतां सदा॥
यत्राधिकृत्यशकुनीन्सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कंडेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम्॥
पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्।
पूर्वजन्मकथा येषां विक्रिया च दिवस्पतेः॥
तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रौपदेयकथानकम्।
हरिश्चन्द्रकथापुण्या युद्धमाडीवकाभिधम्॥
पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः।
हैहयस्याथचरितं महाख्यानसमाचितम्॥
मदालसाकथा प्रोक्ता अलर्कचरितान्विता।
सृष्टिसंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम्॥
कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम्।
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपवंशानुकीर्तनम्॥

मनूनाञ्च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः ।
तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेन्तरे ॥
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजसमुद्भवः ।
मार्कण्डेयस्यजन्माख्या तत्माहात्म्यसमन्विता ॥
वैवस्वता च यश्चापि वत्संप्राचरितं ततः ।
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्यमहात्मनः ॥
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्तनम् ।
नरिष्यन्तस्य चरितं रामचन्द्रस्य सत्कथा ॥
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ।
पुरूरवाकथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ॥
ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ।
श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः ॥
द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजाः ।
ततः सांख्यसमुद्देशप्रपञ्चस्तत्वकीर्तनम् ॥
मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।

नारदपुराण ।

हे मुने ! अनन्तर तुम्हारे निकट मार्कण्डेयपुराण कहता हूं । इस पुराण के श्रोता और पाठक दोनों को ही महत्पुण्य होता है । जिसमें शकुनियों का अवलम्बन करके मार्कण्डेय मुनि ने समस्त धर्मों का निरूपण किया है और पक्षियों की धर्मसंज्ञा; जन्मनिरूपण और पूर्वजन्म कथा, दिवस्पति की विक्रिया; बलदेव की तीर्थयात्रा, द्रौपदेयकथा; हरिश्चन्द्रकथा, आडिबकाभियुद्ध, पिता पुत्र समाख्यान, दत्तात्रेयकथा, हैहयचरित, मदालसाकथा, अलर्कचरित, नवधा सृष्टि कीर्तन, कल्पान्तकाल निर्देश, यक्षसृष्टि निरूपण, रुद्रादिसृष्टि, द्वीपवंशानुकीर्तन; मनुओं की नाना विध पापहारक कथा, उनमें अष्टम मन्वन्तर में अत्यन्त पुण्यप्रद दुर्गा की कथा; प्रणवोत्पत्ति, त्रयीं तेज उद्भव, मार्कण्डेय का समाख्यान और उसका माहात्म्य; वैवस्वत चरित और वत्सप्राचरित । इसके पश्चात् पुण्यदायक, खनित्रकथा, अवि-

चिचरित, किमिच्छव्रतकीर्तन, नरिष्यन्तचरित, इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्र की सत्कथा, कुशवंश समाख्यान, सोमवंशानुकीर्तन, पुरूरवा की कथा, नहुष कथा, ययातिचरित, यदुवंशकीर्तन, श्रीकृष्ण का बाल्य और माथुरचरित, द्वारकाचरित, सांख्य समुद्देश, प्रपंच की असत्यता कीर्तन एवं मार्कण्डेयचरित, ये सम्पूर्ण कीर्तित हुये हैं।

मार्कण्डेयपुराण में प्रायः ये सब लक्षण ठीक हैं जितना वह कम है उतने ही लक्षण कम हैं।

वामन

पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः।
कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम् ॥
हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनं ततः।
प्रह्लादनारायणयोर्युद्धं देवासुराह्वयम् ॥
सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोषकम्।
ततः काम्यव्रताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः ॥
तपतीचरितं पश्चात्कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम्।
सत्माहात्म्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्तनम् ॥
तपस्तस्या विवाहश्च गौर्य्युपाख्यानकं ततः।
ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः ॥
ततोन्धकवधाख्यानं साधोपाख्यानकंततः।
जावालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता ॥
अन्धकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वं चान्धकस्य च।
मरुतां जन्मकथनं बलेश्च चरितं ततः ॥
ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममतः परम्।

प्रह्लादतीर्थयात्रायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः ॥
ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः ।
नक्षत्रपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ॥
त्रिविक्रमचरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः ।
प्रह्लादबलिसम्वादे सुतले हरिशंसनम् ॥
इत्येष पूर्वभागोस्य पुराणस्य तवोदितः ।
शृणु तस्योत्तरं भागं बृहद्वामनसंज्ञकम् ॥
माहेश्वरी भगवती सौरी गाणेश्वरी तथा ।
चतस्रः संहितास्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ॥
माहेश्वर्यान्तु कृष्णस्य तद्भक्तानाञ्च कीर्तनम् ।
भगवत्या जगन्मातुरवतारकथाद्भुता ॥
सौर्यां सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः ।
गणेश्वर्यां गणेशस्य चरितञ्च महेशितुः ॥
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रतम् ।
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ॥
ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ।
व्यासात्तु लब्धवान्वत्स तच्छिष्यो रोमहर्षणः ॥
स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च ।
एवं परम्पराप्राप्तं पुराणं वामनं शुभम् ॥

नारद पुराण ।

इसके प्रथम में पुराण प्रश्न, ब्रह्मशीर्षच्छेद और कपालमोचनाख्यान पश्चात् दक्षयज्ञध्वंस, हरकी कालरूपाख्या, मदनदहन, प्रह्लाद और नारायण का युद्ध, सुकेशी और अर्क समाख्यान, भुवनकोश, काम्यव्रताख्यान, श्रीदुर्गाचरित, तपतीचरित कुरुक्षेत्र वर्णन, सरोमाहात्म्य, पार्वतीजन्म कीर्तन, सती की तपस्या और विवाह, गौरी का उपाख्यान, कौसकी उपाख्यान, कुमारचरित, अन्धकवधाख्यान, साध्योपा-

ख्यान, जाबालिचरित, अन्धक और ईश्वर का युद्ध, अन्धक को गणत्वप्राप्ति, देव, गण की जन्मकथा, वलिचरित, लक्ष्मीचरित, त्रिविक्रमचरित, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा उपलक्ष में उसकी कथा, धुन्धुचरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्र पुरुषाख्यान, श्रीदामचरित त्रिविक्रम चरितान्त में ब्रह्मप्रोक्त उत्तमस्तव, तथा प्रह्लाद और वलिसम्वाद में सुतल में हरि का वास, यह सम्पूर्ण विषय पूर्वभाग में है।

इसका बृहद्वामन नामक उत्तर भाग सुनो—इसमें माहेश्वरी, भगवती, सौरी और गाणेश्वरी नामक चार संहिता हैं, प्रत्येक संहिता एक सहस्र श्लोक से पूर्ण है, माहेश्वरी में कृष्ण और उनके भक्तों का कीर्तन, भगवती में जगन्माता के अवतार की कथा, सौरी में पापनाशन सूर्यमाहात्म्य और गाणेश्वरी में गणेशचरित वर्णित है।

यह वामनपुराण प्रथम पुलस्त्य ने नारद के निकट कहा था पश्चात् नारदके निकट से महात्मा व्यास मुनि ने प्राप्त किया, हे वत्स, व्यास के निकट से उनके शिष्य रोमहर्षण ने इसको पाया और उन्होंने ही नैमिषारण्यवासी ऋषियोंके निकट इसको प्रकट किया इस प्रकार यह परम्परा से चला आता है। उपलब्ध वामनपुराण उपरोक्त सूची से बराबर मिलता है, कुछ अंश नहीं मिलते इसका कारण यह है कि उपलब्ध पुराण पूर्ण संख्या में नहीं मिला।

वराह

व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि।
तत्रादौ शुभसम्वादः स्मृतो भूमिवराहयोः॥
अथादिकृतवृत्तान्ते रैभस्य चरितं ततः।
दुर्जयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः॥
महातपस आख्यानं गौर्युत्पत्तिस्ततः परम्।
विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरपि॥

गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च।
आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम् ॥
अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्रुद्रगीता प्रकीर्तिता।
महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यं च त्रिशक्तिजम् ॥
पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम्।
इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमो देशनामकम् ॥
भगवद्धर्मे णितत्पश्चाद्व्रततीर्थकथानकम्।
द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम् ॥
तीर्थानाञ्चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्।
मथुरायां विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः ॥
वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसंगतः।
विपाकः कर्मणाञ्चैव विष्णुव्रतनिरूपणम् ॥
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम्।
इत्येष पूर्वभागोस्य पुराणस्य निरूपितः ॥
उत्तरे प्रविभागेतु पुलस्त्यकुरुराजयोः।
सम्वादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात्पृथक् ॥
अशेषधर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्व च।
इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम् ॥

नारदपुराण।

साक्षात् नारायणस्वरूप विद्याप्रवर व्यास ने इसके प्रथम में ही भूमि और बराह का सम्वाद, आदि वृत्तान्त में रैभ्यचरित, श्राद्धकल्प- महातपा का आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक नागगण, सेनानी (कार्तिकेय) आदित्य समुदायगण, देवी धनद और वृष का आख्यान, सत्यतपा का व्रत, अगस्त्य गीता, रुद्रगीता, महिषासुरध्वंस माहात्म्य, पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान इत्यादि वृत्तान्त प्रथम देशों के नाम और फिर भगवद्धर्म में व्रततीर्थ कथा, द्वात्रिंशत् अपराध का शारीरिक प्राय-श्चित्त समुदाय, तीर्थ का पृथक् २ माहात्म्य, मथुरा में विशेष रूप से श्राद्धादि की

विधि, ऋषिपुत्र प्रसंग में यमलोक वर्णन, कर्म बिपाक, विष्णुव्रतनिरूपण, और गोकर्ण माहात्म्य यह सम्पूर्ण वृत्तान्त इसके पूर्वभाग में निरूपित हुआ है। उत्तर भाग में पुलस्त्य और पुरुराज के सम्वाद में विस्तृत रूप से सर्वतीर्थ का पृथक् २ माहात्म्य, अशेष धर्माख्यान और पुष्कर नामक पुण्यपर्व इत्यादि कथित हुये हैं। तुम्हारे निकट यह पापनाशक वाराहपुराण कीर्तन किया।

वर्तमान समय में जो वराहपुराण मुद्रित हुये हैं वे इस सूची के अनुकूल नहीं हैं और श्लोक संख्या में भी वहुत न्यूनता है प्रतीत होता है कि यह आदि वाराह पुराण नहीं है यह नवीन संस्करण है अधिक विवेचन करना पण्डितमण्डली का काम है।

मत्स्य ।

मनुमत्स्यसुसम्वादो ब्रह्माण्डवर्णनं ततः।
ब्रह्मदेवासुरोत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च ॥
मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम् ।
मन्वन्तरसमुद्देशो वैन्यराज्याभिवर्णनम् ॥
सूर्य्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा ।
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च ॥
पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च ।
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा ॥
कार्तवीर्य्यस्य चरितं वृष्णि वंशानुकीर्तनम् ।
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दशधा जन्म च क्षितौ ॥
कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनः परः ।
क्रियायोगस्ततः पश्चात्पुराणं परिकीर्तितम् ॥
व्रतं नक्षत्रपुरुषं मार्कण्डशयनं तथा ।

कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम् ॥
तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च ।
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च ॥
तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीव्रतम् ।
तथैवानन्दकार्याश्च व्रतं सारस्वतं पुनः ॥
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीशयनं तथा ।
भीमाख्याद्वादशी तद्वदनंगशयनं तथा ॥
अशून्यशयनं तद्वत्तथैवाँगारकव्रतम् ।
सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादश.व्रतम् ॥
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च ।
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी ॥
तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा ।
संक्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम् ॥
षष्ठिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ।
प्रय.गस्य तु माहात्म्यं द्वीपलोकानुवर्णनम् ॥
तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ।
भवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुरोद्योतनं तथा ॥
पितृप्रवरमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः ।
चतुर्युगस्य सम्भूतिर्युगधर्मनिरूपणम् ॥
वज्रांगस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च ।
तारकासुरमाहात्म्य ब्रह्मदेवानुकीर्तनम् ॥
पार्वतीसम्भवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम् ।
अनंगदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च ॥
गौरीतपोवनं तद्वत्शिवेनाथ प्रसादनम् ।
पार्वतीऋषिसम्वादस्तथैवोद्वाहमंगलम् ॥

कुमारसम्भवस्तद्वत्कुमारविजयस्तथा ।
तारकस्य वधोघोरो नरसिंहोपवर्णनम् ॥
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् ।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम् ।
तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ॥
ततः सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मस्तथैव च ।
विविधोत्पातकथनं ग्रहशान्तिस्तथैव च ॥
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमंगलकीर्तनम् ।
वामनस्य तु माहात्म्यं वाराहस्य ततः परम् ॥
समुद्रमथनं तद्वत्कालकूटाभिशातनम् ।
देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च ॥
प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवतास्थापनं तथा ।
प्रसादलक्षणं तद्वन्मण्डपानां च लक्षणम् ॥
भविष्यराज्ञामुद्देशो महादानानुकीर्तनम् ।
कल्पानुकीर्तनं तद्वत्पुराणेस्मिन्प्रकीर्तितम् ॥

नारद पुराण

इसके प्रथम में मनु और मत्स्य का सम्वाद, पश्चात् ब्रह्मांड वर्णन, ब्रह्मा और देवासुर की उत्पत्ति, मारुत की मदनद्वादशी, लोकपाल पूजा, मन्वन्तर निर्देश, वैन्य राज्य वर्णन, सूर्य वैवस्वतोत्पत्ति, बुधसंगम, पितृवंशानुकथन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ प्रचार, सोमोद्भव, सोमवंश कीर्तन, ययाति चरित और वंशानुकीर्तन, भृगुशाप, विष्णु के दशावतार, पुरुवंश कीर्तन, हुताशनवंश, क्रियायोग, पुराणकीर्तन, नक्षत्र-पुरुषव्रत, मार्कण्डशयन, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्रव्रत, तड़ागविधिमाहात्म्य, पाद-पोत्सर्ग, सौभाग्य शयन, अगस्त्यव्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत, आनन्दकारी-व्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशीव्रत, अनंगशयनव्रत, अशू-न्य शयनव्रत, अंगारकव्रत, सप्तमी सप्तकव्रत, बिशोक द्वादशीव्रत, मेरुप्रदान, ग्रहशान्ति,

ग्रहस्वरूप कथन, शिवचतुर्दशी, सूर्यवारव्रत, संक्रांति स्नान, विभूति, द्वादशीव्रत, षष्ठीव्रत माहात्म्य, स्नान विधिक्रम, प्रयाग माहात्म्य, द्वीपलोकानुवर्णन, अन्तरिक्ष, ध्रुव माहात्म्य, सुरेन्द्रगण का भवन, त्रिपुर प्रभाव, पितृ प्रवर माहात्म्य, मन्वन्तर निर्णय, चतुर्वर्ग की उत्पत्ति, तारकोत्पत्ति, तारकासुरमाहात्म्य, ब्रह्मदेवानुकीर्तन, पार्वती सम्भव, शिवतपोवन, अनंगदहन, पार्वती ऋषि संवाद, विवाह मंगल, कुमारोत्पत्ति, कुमारविजय, तारकवध, नरसिंह वर्णन, पद्मोद्भव, विसर्ग, अन्धकवध, वाराणसीमाहात्म्य, नर्मदामाहात्म्य, प्रवरानुक्रम, पितृकथानुकीर्तन, उभयमुखीदान, कृष्णाजिन दान, सावित्र्युपाख्यान, राजधर्म, विविध उत्पात कथन, ग्रह शान्ति, यात्रा निमित्त कथन, स्वप्न मंगल कीर्तन, वामन और वाराह माहात्म्य, समुद्रमन्थन, कालकूटाभिशासन, देवासुर संघर्षण, वास्तुविद्या, प्रतिमा लक्षण, देवता स्थापन, प्रासाद लक्षण, मण्डपलक्षण, भविष्य राजगण का कथन, महादानकीर्तन और कल्पकीर्तन, इस पुराण में ये सम्पूर्ण विषय कीर्तित हुये हैं। उपलब्ध मत्स्यपुराण उपरोक्त सूची से मिलता है।

कूर्म

अथ आस्थां पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने।
नाना कथाप्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः॥
तत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा।
लक्ष्मीप्रद्युम्नसम्वादः कूर्मर्षिगणसंकथा॥
वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्तनम्।
कालसंख्यासमासेन लयान्ते स्तवनं विभोः॥
ततः संक्षेपतः सर्गः शाङ्करं चरितं तथा।
सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम्॥
भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च।
देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञहतिस्ततः॥
दक्षसृष्टिकथा पश्चात्कश्यपान्वयकीर्तनम्।
आत्रेयवंशकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम्॥

मार्कण्डकृष्णसम्वादो व्यासपाण्डवसंकथा ।
युगधर्म्मानुकथनं व्यासस्य जैमिनेः कथा ॥
वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम् ।
त्रैलोक्यवर्णनञ्चैव वेदशाखानिरूपणम् ॥
उत्तरेस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ।
व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रबोधिनी ॥
नानाविधानं तीर्थानां माहात्म्यञ्च पृथक् ततः ।
नानाधर्मप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता ॥
अतः परं भगवतीसंहितार्थनिरूपणे ।
कथिता यत्र वर्णानां पृथग्वृत्तिरुदाहृता ॥

(तदुत्तरभागीयभगवत्याख्यद्वितीयसंहितायाः पञ्चपादेषु)—

पादेस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्यविवर्द्धनी ॥
द्वितीये क्षत्रियाणान्तु वृत्तिः सम्यक् प्रकीर्तिता ।
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेच्छिवम् ॥
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ।
यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम् ॥
चतुर्थेस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।
यदा सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयो विवर्द्धनः ॥
पञ्चमेस्य ततः पादे वृत्तिः शङ्करजोदिता ।
यया चरितमाप्नोति भाविनीमुत्तमां जनिम् ॥
इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ।
तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी ॥
षोढा षट्कर्मसिद्धिः सा बोधयन्ती च कामिनाम् ।
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता ॥

चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ।

नारदपुराण ।

यहां अनेक प्रकार के ब्राह्मण धर्मों का कथन है और अनेक कथाओं के प्रसंग से कहे हुये धर्म मनुष्यों को सद्गतिदायक हैं ।

(पूर्वभाग में)—इसके प्रथम में पुराणोपक्रम, फिर लक्ष्मी और प्रद्युम्न सम्वाद, कूर्म और ऋषियों का सम्वाद, वर्णाश्रमाचारकथा, जगदुत्पत्ति कीर्तन, संक्षेप से कालसंख्या; लयान्त में भगवान् का स्तव, संक्षेप से सृष्टि, शंकरचरित, पार्वती के सहस्र नाम, योग निरूपण, भृगुवंश समाख्यान, स्वायंभुव और देवादि की उत्पत्ति, दक्षयज्ञध्वंस, दक्षसृष्टि कथा, कश्यपवंश कीर्तन, आत्रेयवंश कथन, कृष्ण-चरित, मार्कण्ड और कृष्णसंवाद, व्यास और पाण्डव संवाद, युगधर्मानुकथन, व्यास और जैमिनी की कथा, वाराणसी और प्रयाग माहात्म्य, त्रैलोक्य वर्णन और वेदशाखा निरूपण ।

(उत्तरभाग में)—इसमें प्रथमतः ईश्वरीगीता, व्यासगीता, नाना विधतीर्थ माहात्म्य, अनेक धर्म कथा और ब्रह्मसंहिता पश्चात् भागवती संहितार्थ निरूपण तथा सवर्ण समुदाय की पृथग् वृत्ति निरूपित हुई है ।

(उत्तर भाग की भगवत्याख्य दूसरी संहिता में)—इसके प्रथमपाद में ब्राह्मणों की व्यवस्थिति, द्वितीयपाद में क्षत्रियों की सम्यक् रूप से वृत्ति निरूपण, तृतीयपाद में वैश्य जाति की वृत्ति कथन, चतुर्थपाद में शूद्रों की वृत्ति कथन और पंचमपाद में संकरों की वृत्ति कल्पित हुई है । हे मुने, यह पंचपदी द्वितीय संहिता कही गई । इसकी तीसरी सौरी संहिता मनुष्यों को कामदायिनी और चौथी वैष्णवी संहिता मोक्षदायिका है । चतुष्पदी संहिता द्विजातियों को साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है ।

नारदपुराण में जो कूर्मपुराण का लक्षण लिखा है वह कूर्मपुराण में अनुमानन आधा पाया जाता है और इस कूर्मपुराण में आदि पुराण के भी कुछ लक्षण पाये जाते हैं इतने पर भी जो कूर्मपुराण उपलब्ध हुआ है वह छः हजार संख्या वाला है शेष बारह हजार का अभी पता ही नहीं चलता ।

ब्रह्माण्ड

प्रक्रियाख्योनुषङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः ।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोत्र समुदाहृतः ।
तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरोमतः ॥

तत्र पूर्वभागे प्रक्रियापादे—

आदौ कृतसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः ।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च ॥
एष वै प्रथमः पादो द्वितीयं शृणु मानद ।

पूर्वभागे अनुषङ्गपादे—

कल्पमन्वन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम् ।
मानसीसृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम् ॥
महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम् ।
अग्नीनां विषयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम् ॥
प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्यायामविस्तरः ।
वर्णनं भारतस्यास्य ततोन्येषां निरूपणम् ॥
जम्ब्वादिसप्तद्वीपाख्या ततोधोलोकवर्णनम् ।
ऊर्द्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् ॥
आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्तनम् ।
नीलकण्ठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम् ॥
अमावस्यानुकथनं युगतत्वनिरूपणम् ।
यज्ञप्रवर्तनं चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः ॥
युगप्रजालक्षणञ्च ऋषिप्रवरवर्णनम् ।
वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायम्भुवनिरूपणम् ।
शेषमन्वन्तराख्यानं पृथिवीदोहनं ततः ॥

चाक्षुषेऽपतने सर्गो द्वितीयोंऽशिः पुरोदले ।
अथोपोद्घातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्तनम् ॥
प्राजापत्याऽन्वयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवम् ।
ततो जयाभिव्याहारौ मरुदुत्पत्तिकीर्तनम् ॥
काश्यपेयानुकथनमृषिवंशनिरूपणम् ।
पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ॥
वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम् ।
मनुपुत्रान्वयश्चातो गान्धर्वस्य निरूपणम् ॥
इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः ।
अमावसोरान्वयश्च राजेश्चरितमद्भुतम् ॥
ययातिचरितञ्चाथ यदुवंशनिरूपणम् ।
कार्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम् ॥
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः ।
भार्गवस्याथ चरितं तथा कार्त्तवधाश्रयम् ॥
सगरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः ।
देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाववर्णने ॥
इलस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः ।
विष्णुमाहात्म्यकथनं बलिवंशनिरूपणम् ॥
भविष्यराजचरितं संप्राप्तेऽथ कलौ युगे ।
एवमुद्घातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे दले ॥
चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे ।
वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ॥
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते ।
भविष्याणां मनूनां च चरितं हि ततः परम् ॥
कल्पप्रलयनिर्देशः कालमानं ततः परम् ।

लोकाश्चतुर्दश ततः कथिता मामलक्षयौः ॥
वर्णनं नरकानां च विकर्माचरयौस्ततः ।
मनोमयपुराख्यानं लयप्राकृतिकस्ततः ॥
शैवस्याथ पुरस्यापिवर्णनञ्च ततः परम् ।
त्रिविधाद्गुणसम्बंधाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः ॥
अनिर्देश्या प्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम् ॥
इत्येष उपसंहारः पादो वृत्तः सचोत्तर ।
चतुष्पादं पुराणं ते ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ॥
अष्टादशमचौपम्यं सारात्सारतरं द्विज ।
ब्रह्माण्डं च चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते ॥
तदेव व्यस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ।
पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ॥
वस्तुदृष्टाथ तेनैव मुनीनां भवितात्मनाम् ।
मत्वा श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे ॥
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः ।
यथा वेदं पुराणं तु वसिष्ठाय पुरोदितम् ॥
तेन शक्तिसुतायोक्तं जातूकर्ण्यानुतेन च ।
व्यासलब्धं ततश्चैतत्प्रभञ्जनमुखोद्गतम् ॥
प्रमाणीकृतलोकेस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम् ।

नारदपुराण ।

प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार नामक इस पुराण के चार पाद हैं। दो पाद द्वारा इसका पूर्व भाग है, तीसरे पाद का मध्यभाग है और चौथे पाद द्वारा उत्तरभाग कल्पित हुआ है ।

(१ प्रक्रियापाद)–इसके प्रथम में कृत समुद्देश, पश्चात् नैमिषाख्यान, हिरण्यगर्भोत्पत्ति और कथन इत्यादि विषय वर्णित हैं ।

(२ अनुषंग पाद)—इसमें कल्प, मन्वन्तराख्यान, लोकज्ञान, मानसीसृष्टि-कथन, रुद्रप्रसववर्णन, महादेव विभूति, ऋषिसर्ग, अग्निगण का निश्चय, काल सद्भाव वर्णन, प्रियव्रताचार निर्देश, पृथिवी का दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्ष वर्णन, जम्ब्वादि सप्तद्वीपवर्णन, अधोलोक वर्णन, ऊर्द्ध्वलोकानुकथन, ग्रहचार, आदित्य व्यूह कथन, देवग्रहानुकीर्तन, नीलकण्ठाख्यान, महादेव का वैभव, अवस्था कथन, युगतत्वनिरूपण, यज्ञ प्रवर्तन, शेषयुग का कार्य, युग प्रजा लक्षण, ऋषि प्रवरवर्णन, देवगण का व्यसनाख्यान, स्वायम्भुव निरूपण, शेषमन्वन्तराख्यान और पृथिवीदोहन यह सम्पूर्ण कीर्तित हुआ है।

(मध्यम उपोद्घातपाद)—इसमें सप्तर्षि कीर्तन, प्रजापति समूह और उससे देवादि की उत्पत्ति, जयाभिव्याहार, मरुद्उत्पत्ति कीर्तन, काश्यपेयानुकथन, ऋषिवंश निरूपण, पितृकल्पानुकथन, श्राद्धकल्प, वैवस्वतोत्पत्ति वैवस्वत सृष्टि, मनुपुत्रसमूह, गान्धर्व निरूपण, इक्ष्वाकुवंश कथन, अत्रिवंश कथन, रजिचरित, ययातिचरित, यदुवंश निरूपण, कार्त्तवीर्यचरित, जामदग्न्यचरित, वृष्णिवंशानुकथन, सगर संभव, भार्गव चरित, समरचरित, भार्गव कथा, देवासुर संग्राम कथा, कृष्णाविर्भाव वर्णन, सूर्यस्तव, विष्णुमाहात्म्य, बलिवंशनिरूपण, और कलियुग उपस्थित होने पर भविष्य राजचरित, ।

(उत्तर भाग उपसंहारपाद) अनन्तर उपसंहार नामक चौथाखण्ड कहता हूँ।

इसके पूर्व में वैवस्वतान्तराख्यान विस्तृत रूप से उक्त होने पर भी इस स्थान में संक्षेप से कहा गया है और इसके पश्चात् भविष्य मनुगण का चरित, कल्पप्रलय निर्देश, कल्पमान, चतुर्दशलोक कथन, नरक समुदाय का वर्णन, मनोमय पुराख्यान, प्राकृतिक लय, शैवपुर का वर्णन, तीन प्रकार के गुण सम्पर्क में प्राणियों की गति कीर्तन और अनिर्देश्य तथा अप्रतर्क्य, परमात्मा ब्रह्म का अन्वय व्यतितिरेक वर्णित हुआ, है। यह उपसंहार नामक उत्तर भाग सम्पन्न हुआ, यह चार पादयुक्त ब्रह्माण्डपुराण तुम्हारे निकट वर्णन किया। यह अष्टादशवां पुराण सार से भी सार पुराण कहा गया है।

हे द्विज, यह पुराण चार लाख श्लोकरूप में भी पढ़ा जाता है। पराशरात्मज व्यास ने उसी को अठारह प्रकार विभक्त करके प्रकाशित किया है।

हे मानद, वस्तु द्रष्टा उस व्यास मुनि ने मेरे निकट से सम्पूर्ण पुराण सुन कर लोक में प्रकाश किये हैं मैंने यह पुराण पहिले वसिष्ठजी के निकट कहा था। पश्चात् उन्होंने शक्तिसुत और जातूकर्ण्य के निकट प्रकाश किया, अनन्तर व्यास ने प्रभंजन मुखोच्चरित इस ब्रह्मांड पुराण को प्राप्त कर इस लोक में प्रमाणीकृत करके प्रचार किया है।

कई एक प्रौढ़ विद्वानों को यह सन्देह है कि ब्रह्मांडपुराण की सत्ता है या नहीं। सन्देह होना ठीक भी है क्योंकि ब्रह्मांडपुराण को वायुपुराण समझ कर ब्रह्मांड पुराण की पुस्तक पर "वायुपुराण" इतना लिख दिया है और वह वायु पुराण के नाम से एशियाटिक सोसाइटी में छप गया है। यह वायु पुराण नहीं है किंतु ब्रह्मांडपुराण है। इसके ब्रह्मांडपुराण होने में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं। यह ब्रह्मांड पुराण है इसकी पुष्टि में नीचे लिखे प्रमाण मिलते हैं—

(१) नारदपुराणोक्त सूची के समस्त लक्षण (क) बारह सहस्र संख्या (ख) भाविकल्प की कथा, (ग) चतुष्पाद और (घ) आनपूर्वी कथा का वर्णन। एशियाटिक सोसाइटी के छपे हुये वायु पुराण में विद्यमान हैं इससे भिन्न मत्स्य-पुराण में इसके लक्षण जो लिखे हैं उनको नीचे देखिये—

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः ।
तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ॥
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥

ब्रह्माण्ड का माहात्म्य अवलम्बन करके जो पुराण कहा गया है वही बारह हजार दो सौ श्लोकयुक्त ब्रह्माण्ड है। जिस पुराण में ब्रह्मा कर्तृक भविष्यकल्प वृतान्त विस्तृत रूप से विवृत हुआ है वही ब्रह्माण्ड पुराण है।

मत्स्यपुराण में जो ब्रह्माण्ड का यह लक्षण लिखा है उसके अनुसार ब्रह्माण्ड पुराण के प्रथम अध्याय में लिखा है कि—

"पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम्"

मत्स्यपुराण में जो बतलाया है कि इसमें भविष्य पुराण की कथायें हैं तदनुसार ब्रह्माण्ड पुराण के सोलहवें, सत्रहवें, अट्ठारहवें अध्याय में यह लेख विस्तृत रूप से विद्यमान है। शिवपुराण में इसका लक्षण इस प्रकार है—

"ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद्ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्"

ब्रह्माण्ड अर्थात् भूगोल आदि विषय का वर्णन होने से इसका नाम ब्रह्माण्ड है। वास्तव में तेंतीसवें अध्याय से आरंभ करके अट्ठावन अध्याय में भूगोल आदि ब्रह्माण्ड का वर्णन जिस उत्तम रीति से इस पुराण में हुआ है ऐसा किसी भी पुराण में नहीं पाया जाता। इत्यादि अनेक लक्षण एशियाटिक सोसाइटी के छपे हुए वायुपुराण को ब्रह्मांड पुराण बतला रहे हैं अतएव यह निश्चय ही ब्रह्माण्ड पुराण है और आजकल जो ब्रह्माण्ड पुराण के नाम से छपा है वह उपपुराण है। महापुराण में एक ब्रह्माण्ड पुराण है और उपपुराण में एक ब्रह्माण्ड पुराण है। महापुराण वाले पर भ्रम से वायुपुराण लिखा गया और उपपुराण उसी नाम से छपा हुआ है—

❁ भ्रम होने का कारण ❁

ब्रह्माण्डपुराण की किसी किसी पुस्तक में प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में "वायुप्रोक्तसंहितायां" ऐसा लिखा हैइस ही लेख से ब्रह्माण्ड पुराण को वायु पुराण समझ लिया है यह भ्रम हुआ है और "वायुप्रोक्तसंहितायां"इतना लिखना कुछ अनुचित भी नहीं है क्योंकि नारदपुराण में लिखा है कि—

व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत्प्रभंजनमुखोद्गतम्।
प्रमाणीकृत्य लोकेस्मिन्प्रावर्त्तयदनुत्तमम्॥

अर्थात् वायु के मुख से प्रोक्त इस ग्रन्थ को व्यासजी ने पाया। वायुप्रोक्त होने के कारण "वायुप्रोक्तसंहितायां" ऐसा लिख दिया गया उसी भ्रम से ब्रह्माण्डपुराण को वायुपुराण समझ लिया किन्तु वास्तव में यह ग्रन्थ ब्रह्माण्ड पुराण है।

* उपपुराण ❁

जितने भी उपपुराण और औपपुराण हैं इन सबकी रचना पुराणों से ही हुई है प्राचीन सुविज्ञ पंडितों ने पुराणों की छाया लेकर इनका निर्माण किया है विस्तार न हो जावे इस भय से बड़ी बड़ी कथाओं को कहीं कहीं पर सूक्ष्म करके लिखा है और कहीं कहीं पर कथाओं को छोड़ भी दिया है कहीं कहीं पर विलक्षण कथाओं का समावेश है कहीं कहीं पर कथान्तर है यह इतना होने पर भी इनका मूल पुराण ही है इस विषय में देवी भागवत के टीकाकार स्वामी श्रीधर के शिष्य नीलकण्ठ ने

इस विषय का एक श्लोक उद्धृत किया है उसी श्लोक को हम नीचे लिखे देते हैं।

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते ।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम् ॥

अट्ठारह पुराणों से भिन्न जो पुराण और उपपुराण दीखते हैं हे द्विजश्रेष्ठो उन सबको इन अट्ठारह पुराणों से ही निर्गत समझना।

पुराण मानने से जान बचाने के लिए जो लोग ब्राह्मणभाग को ही पुराण कहने लग गये थे उनके लेख का ठीक २ विवेचन करने पर ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण न ठहर कर वेद ही ठहरते हैं। इसके पश्चात् हमने जो अट्ठारह पुराण का स्वरूप यहां पर दिखलाया वह साधारण नहीं है पुराण प्रतिपाद्य है, अकाट्य है, इतने पर भी जो मनुष्य इससे अच्छा विवेचन करेगा उसके हम ऋणी होंगे।।

पुराणसंख्या

कई एक मनुष्यों का कथन है कि संसार की लायब्रेरियों से पता लगता है कि पुराण अठारह ही नहीं किन्तु चालीस, बयालीस के लगभग हैं।

उत्तर—पुराणों की संख्या चालीस बयालीस कहना सिद्ध करता है इनको यह ज्ञान नहीं है कि कौन कौन ग्रन्थ पुराण हैं। पुराण जितने हैं उनकी संख्या नीचे देखिये—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम्॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥

(१) ब्रह्म (२) पद्म (३) विष्णु (४) शिव (५) लिंग (६) गरुड़ (७) नारद (८) भागवत (९) अग्नि (१०) स्कन्द (११) भविष्य (१२) ब्रह्मवैवर्त (१३) मार्कण्डेय (१४) वामन (१५) वाराह (१६) मत्स्य (१७) कूर्म और (१८) ब्रह्माण्ड।

ऊपर लिखे हुये श्लोक में पुराणों की संख्या अट्ठारह है इसी प्रकार प्रत्येक पुराण में पुराणों की संख्या लिखी है वह संख्या सर्वत्र ही अट्ठारह है, किसी भी पुराण में पुराणों की संख्या अट्ठारह से न्यून या अट्ठारह से अधिक नहीं है, फिर नहीं मालूम पुराणों की संख्या चालीस या बयालीस कैसे बतलाई जाती है। हम यही कह सकते हैं कि पुराणों की चालीस या बयालीस संख्या बतलाने वालों ने इस विषय में विचार नहीं किया और उनके मन में जो आता है सन्निपातग्रस्त मनुष्य की भांति कह डालते हैं।

जिस प्रकार पुराणों की संख्या अट्ठारह है इसी प्रकार उपपुराणों की संख्या भी अट्ठारह है उपपुराण संख्या आगे लिखते हैं।

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्॥१॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ॥२॥
कपिलं वामनं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च॥ ३ ॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम् ।
पाराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम् ॥४॥

(१) आदिपुराण—सनत्कुमार का बनाया (२) नरसिंहपुराण (३)स्कन्दपुराण कुमार का बनाया (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वासा पुराण (६) नारद पुराण (७) कपिलपुराण (८) वामन पुराण (९) औशनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) कालिकापुराण (१२) वारुणपुराण (१३) माहेश्वर पुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौर पुराण (१६) पाराशर पुराण (१७) मारीच पुराण (१८) भास्करपुराण—ये अट्ठारह उपपुराण हैं।

कोई कोई सज्जन कहते हैं कि उपपुराण नामक पुस्तकों की रचना नवीन है किंतु यह उनका कथन सर्वथा ही मिथ्या है क्योंकि खृष्टीय ११ शताब्दी के शेष भाग में षड्गुरु शिष्य ने अपनी बनाई वेदार्थदीपिका में नृसिंह उपपुराण के श्लोकों को उद्धृत किया है और उससे भी पहिले सन् १०३० ई० में मुसलमान जाति के पंडित अलबेरुणी ने नन्दा, आदित्य, सोम, साम्ब और नरसिंह इत्यादि उपपुराणों का उल्लेख किया है तब फिर हम इनको किस न्याय से नवीन कहने का साहस करें। प्रायः इनके निर्माता भी अति प्राचीनकाल के महानुभाव हैं अतएव इनको प्राचीन कहना न्यायसंगत बात है।

इनसे भिन्न अट्ठारह ग्रन्थ औपपुराण संज्ञक हैं उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत् ।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च ॥३७॥
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा ।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः ॥३८॥
बृहद्धर्मं परानंदं वह्निं पशुपतिं तथा ।

हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम् ॥ ३९ ॥

बृहद् ववेक अ० ३ श्लो० ३७-३८-३९

(१) सनत्कुमार पुराण (२) बृहन्नारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) मानवपुराण (५) नंदिकेश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवत पुराण (८) वाशिष्ठ पुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गलपुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवीपुराण (१३) महाभागवत पुराण (१४) बृहद्धर्मपराण (१५) परानन्दपुराण (१६) पशुपतिपुराण (१७) बह्निपुराण (१८) हरिवंश ये अट्ठारह औपपुराण हैं।

जो लोग पुराण, उपपुराणादि भेद से शून्य हैं वे लोग सभी को पुराण समझ लेते हैं इसी कारण अट्ठारह पुराणों के स्थान में चालीस, बयालीस कहते हैं शास्त्रकारों ने पुराण का लक्षण और लिखा है इसको पुराण स्वरूप में कह दिया, यहां पर केवल इतना ही दिखलाते हैं कि पुराण अट्ठारह ही हैं।

❀ भागवत ❀

कोई कोई सज्जन को इसका बड़ा सन्देह है कि अट्ठारह पुराणों में जो भागवत पुराण लिया गया है उस भागवत नाम से श्रीमद्भागवत लें या देवीभागवत लें। इसका उत्तर यह है कि भागवत नाम से पुराणों में देवीभागवत भी लिया जाता है और श्रीमद्भागवत भी लिया जाता है इसका कारण यह है कि पुराणों की गणना में केवल भागवत इतना ही नाम आया है न तो देवीभागवत ही नाम है और न श्रीमद्भागवत ही नाम है, जब कि 'देवी' और "श्रीमद्" ये दोनों ही अनुबन्ध नहीं लगाये गये तब तो [त्यक्तानुबन्धे सामान्य ग्रहणम्] इसका अर्थ यह है कि अनुबन्ध त्याग देने से समस्त का ग्रहण होता है। पुराण संख्या गिनवाते हुए "देवी" और "श्रीमद्" ये दोनों अनुबन्ध त्याग कर केवल भागवत नाम का ग्रहण हुआ है इस न्याय से देवी भागवत और श्रीमद्भागवत दोनों का ही ग्रहण होगा, और दोनों ही पुराण हैं, इसका प्रमाण अब आगे लिखेंगे, पहिले इतना कह देना है कि देवी भागवत पुराण है या श्रीमद्भागवत पुराण है, इसमें कल्पभेद भी है। श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव पाद्मकल्प और ब्राह्मय कल्प में हुआ है और देवीभागवत का प्रादुर्भाव सारस्वतकल्प में हुआ है। इन दो पुराणों में से जब एक ही का प्रादुर्भाव हुआ था तब वही पुराण था।

कोई कोई यह कहता है कि श्रीमद्भागवत न तो पुराण है और न प्राचीन ग्रन्थ है किन्तु बोपदेव निर्मित एक नवीन ग्रन्थ है व्यासजी इसके निर्माता नहीं। किन्तु पुराणों के देखने से यह कथन निर्मूल हो जाता है पुराणों ने श्रीमद्भागवत को पुराण माना है और व्यासकृत माना है देखिये—

पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुदर्शिभिः ॥३॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कृष्णेन भाषितम्।
परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ॥१५॥

पद्मपुराण उत्तर खण्ड १८९ अ०

अर्थ— सब पुराणों में श्रीमद्भागवत ही श्रेष्ठ है जिस ग्रन्थ के प्रति पद में ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से कृष्णमाहात्म्य कीर्तित हुआ है। कलिकाल में कृष्णद्वैपायन भाषित यह भागवत शास्त्र है।यह शास्त्र शुकदेव ने परीक्षित को कहा है।

और भी प्रमाण देखिये—

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम्।
सुरपादपरूपोयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः ॥
भगवानेव विप्रेन्द्र! विश्वरूपीत्समीरितः।
तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ॥
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च।
परीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥
परीक्षिच्छुकसम्वादे सृतिद्वयनिरूपणम्।
ब्रह्मनारदसम्वादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणञ्चैव सृष्टिकारणसम्भवः।

द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य संगमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ।
इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ॥
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो मतः ।
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ॥
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सप्तमो गदितो वत्सा वासना कर्मकीर्त्तने ॥
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितं अष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ।
सूर्य्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ॥
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ।
कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः ॥
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः ।
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ॥
नारदेन तु सम्वादो वसुदेवस्य कीर्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥

यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः।
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः॥
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम्।
सौरीविभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम्॥
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम्।
इत्येव कथितं वत्स! श्रीमद्भागवतं तव॥

नारदपुराण।

हे मरीचे! सुनो, मैं तुम्हारे निकट वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत नामक ब्रह्म सम्मित पुराण कहता हूँ, यह अट्ठारह सहस्र श्लोकों में पूर्ण और पापनाशक है। यह वारह स्कन्ध युक्त और कल्पवृक्ष स्वरूप है। हे विप्रेन्द्र! इस पुराण में विश्वरूपी भगवान् का ही कीर्तन किया गया है। उसके प्रथम स्कन्ध में सूत और ऋषियों का समागम, पुण्यजनक व्यास और पाण्डवों का चरित तथा परीक्षित का उपाख्यान, परीक्षित और शुक सम्वाद, सृतिद्वय निरूपण ब्रह्म और नारद सम्वाद में अवतार चरित, पुराण लक्षण और सृष्टिकारण सम्भव ये संपूर्ण व्यास द्वारा दूसरे स्कंध में कहे हैं। विदुरचरित्त और विदुर का मैत्रेय के साथ समागम तत्पश्चात् परमात्मा ब्रह्म का सृष्टि प्रकरण और कपिल का सांख्य योग कीर्तित हुआ है। प्रथम सती चरित पश्चात् ध्रुवचरित और पृथु का तथा प्राचीन वर्हि का पुण्याख्यान चौथे स्कन्ध में ये चार वातें कही गई हैं। प्रियव्रत और तद्वंशोत्पन्न दूसरों का पुण्यप्रद चरित ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकों का वर्णन और नरकस्थिति आदि पांचवें में वर्णित हुये हैं। अजामिलचरित, दक्षसृष्टि निरूपण, वृत्राख्यान और पुण्यप्रद मरुद्गणों का जन्म, छठे स्कन्ध में कीर्तित हुआ है। सप्तमस्कन्ध में पुण्यमय प्रह्लादचरित और वर्णाश्रम निरूपित हुए हैं। गजेन्द्र का मोक्षणाख्यान, मन्वन्तर निरूपण, समुद्रमंथन, वलिवन्धन, मत्स्यावतार चरित आदि सम्पूर्ण कथा अष्टम में कही हैं। नवस्कन्ध में सूर्यवंशाख्यान और सोमवंश निरूपण एवं वंशानुचरित आदि कहे गये हैं। कृष्ण का वाल्य और कौमारचरित, व्रज में स्थिति, कैशोर में मथुरावास, यौवन में द्वारकावास और भूभारहरण ये सब विषय दशम में वर्णित हुये हैं। वसुदेव नारद संवाद, दत्तात्रेय के साथ यदु का और उद्धव के साथ श्रीकृष्ण का सम्वाद

तथा यदुगणों का परस्पर विनाश एकादश में कीर्तित हुये हैं। भविष्य कलि निर्देश, राजा परीक्षित की मोक्ष, वेद शाखा प्रणयन, मार्कण्डेय की तपस्या, गौरी और सात्वती विभूति तथा पुराण संख्या कथन बारहें स्कंध में कहे गये हैं। हे वत्स यह द्वादश स्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत तुम्हारे निकट कही।

और भी प्रमाण देखिये—

पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम्।
अष्टादशसहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः ॥
स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेन विहिताशुभाः।
त्रिशतं पूर्णमध्यागा अष्टादशयुताः स्मृताः ।१२।

देवीभागवत अ० २

यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण सर्वोत्तम और पुण्यप्रद है यह अष्टादश सहस्र संख्यक विशुद्धश्लोकमालासंवलित ३१८ अध्याय पूर्ण सौर मंगलमय १२ स्कंधयुक्त है।

पुराणों में ऐसे ऐसे सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं जो श्रीमद्भागवत को पुराण सिद्ध करते हैं फिर हम किस प्रकार से मान लें कि श्रीमद्भागवत पुराण नहीं है, व्यासकृत नहीं है, प्राचीन नहीं है। कुमारिलभट्ट जगद्गुरु शंकराचार्य से कुछ दिन पहिले हुए हैं और वोपदेव शंकराचार्य के बहुत दिन बाद हुए हैं। कुमारिलभट्टने अपने बनाये "तंत्रवार्तिक" नामक पुस्तक में श्रीमद्भागवत के ऊपर की हुई बोद्धों की शंकाओं का उत्तर लिखा है। सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत कुमारिलभट्ट के समय में भी था और उससे पहिले श्रीमद्भागवत के होने में पुराण ही प्रमाण हैं, अब हम कैसे कहें कि श्रीमद्भागवत नवीन है और वोपदेव कृत है। श्रीमद्भागवत को नवीन वही कहेंगे कि जिन्होंने संस्कृत साहित्य नहीं देखा या जिन्होंने इसके नवीन सिद्ध करने में पान का बीड़ा चबा लिया है।

कई एक सज्जनों का कथन है कि श्रीमद्भागवत तो पुराण है किन्तु देवी भागवत पुराण नहीं है, अब इसका विवेचन करते हुये नीचे के लेखों को दिखलाने का उद्योग करते हैं—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।
तद्वृतान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्त्तितम् ।

मत्स्यपुराण ।

जिस ग्रन्थ में गायत्री का अवलम्बन पूर्वक विस्तार से धर्मतत्त्व वर्णित हुआ है, और जो वृत्रासुरवध वृत्तान्तपूर्ण है वही भागवत नाम से प्रसिद्ध है। सारस्वत कल्प में जिन समस्त मनुष्य देवताओं की कथा है उस वृत्तान्त से युक्त ग्रंथ ही मनुष्य समाज में भागवत नाम से विख्यात है। इसकी श्लोक संख्या अट्ठारह हजार है ।

स्पष्ट सिद्ध है कि सारस्वतकल्प की कथा देवीभागवत में ही है और श्रीमद्भागवत में नहीं अतएव देवीभागवत पुराण है। इन श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि देवीभागवत के पुराण होने में कोई सन्देह नहीं ।

और भी प्रमाण देखिये—

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते ।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं नतु देवीपुराणकम्॥

शिवपुराण उत्तरखंड ।

जिस ग्रन्थ में भगवती दुर्गा का चरित वर्णित है वही देवीभगवत नाम से प्रसिद्ध है परन्तु देवीपुराण पुराण नहीं है।

और भी प्रमाण देखिये—

यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम् ।

शैव नीलकण्ठधृत कालिकापुराण का हेमाद्रि प्रस्ताव ।

कालिका नामक जो पुराण है उसका मूल भागवत है। कालिका उपपुराण देवीभागवत से बना है।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से देवीभागवत का पुराण होना सिद्ध है अब मानना पड़ेगा कि देवी भागवत भी पुराण है और श्रीमद्भागवत भी पुराण है इन दोनों में से कोई भी उपपुराण नहीं है दोनों ही पुराण हैं ।

शंका केवल इतनी रह गई कि पुराण उन्नीस हो गये, इसके ऊपर उत्तर यह है कि जब आप श्रीमद्भागवत एक, देवीभागवत एक ऐसे गिनोगे तो उन्नीस हो ही जायंगे किन्तु पुराणों में श्रीमद्भागवत एक और देवीभागवत एक न गिन कर भागवत एक ऐसे गिना है उसी तरह से गिनने पर अट्ठारह ही रहते हैं। आप लोग अपनी नई गणना उठाकर क्यों गिनते हैं? जिस प्रकार पुराणों ने पुराणों की गणना लिख कर अट्ठारह सिद्ध किये हैं उसी गणना से आप चलिये। पुराणों ने जो प्रत्येक पुराण का नाम लिखा है वह व्यक्ति वाचक है किंतु भागवत जो शब्द लिखा है यह जातिवाचक है, भागवतशब्द से दोनों ही आ गये, दोनों को एक ही गिना तब तो अट्ठारह ही हुये। तुम अपनी नई गणना से उन्नीस बतलाते हो इससे तुम इतना ही तो कहोगे कि पुराणों का अट्ठारह बतलाना मिथ्या है, पुराण तो उन्नीस हैं। इसके ऊपर हम भी यह कहेंगे कि जिस गणना से पुराणों ने पुराणों को अट्ठारह लिखा है उस गणना से तो वे अट्ठारह ही हैं तुम्हारी गणना से यदि वे बाईस बन जावें तो हमें कोई प्रयोजन नहीं। पुराणों ने भागवत इस गणना में देवी भागवत और श्रीमद्भागवत इन दोनों को एक पुराण गिन कर अट्ठारह किए हैं इस प्रकार गिनने से न उन्नीस हो सकते हैं और न सत्रह हो सकते हैं अतएव पुराण अट्ठारह हैं। भागवत नाम का एक तीसरा भी ग्रन्थ है उसकी गणना औपपुराणों में है। देवीभागवत तथा श्रीमद्भागवत दोनों ही अपने स्वरूप में स्थित हैं इनमें न्यूनाधिकता नहीं हुई।

शिवपुराण

और और पुराणों में शिवपुराण को गणना में लिया है किंतु देवीभागवत, कूर्म और अग्निपुराण में वायुपुराण का नाम आया है। किसी पुराण में शिव और किसी पुराण में वायु इस प्रकार की गणना से अट्ठारह नहीं रहते किन्तु १९ हो जाते हैं इस शंका को लेकर बहुत से लोग उछला कूदा करते हैं और पुराणों की संख्या अठारह को मिथ्या सिद्ध करने का उद्योग करते हैं इसके ऊपर जो कुछ शास्त्रीयविचार है उसको हम नीचे लिखते हैं देखने की कृपा करें—

श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।

मत्स्यपुराण ५३ । १८

जिसमें श्वेतकल्प प्रसंग में वायु ने धर्मकथा और रुद्रमाहात्म्य वर्णन किया है वही वायुपुराण है इसकी श्लोक संख्या २४ हजार है ।

मत्स्यपुराण के इन श्लोकों से यह सिद्ध हुआ कि शंकर का माहात्म्य जिस पुराण में है ऐसा शिवपुराण वायु ऋषि ने कहा है इससे इसका नाम वायुवीय या वायुपुराण भी है । यदि कोई यह कहे कि नहीं वायुपुराण इस शिवपुराण से भिन्न अलग एक स्वतंत्र पुस्तक है, वही वायुपुराण देवीभागवत, कूर्म और अग्नि के मत से पुराण है । इसका उत्तर यह है कि मत्स्यपुराण में जो वायवीय पुराण का लक्षण बतलाया है कि श्वेतकल्प प्रसंग और रुद्रमाहात्म्य वर्णित है यह कथा शिव पुराण की वायुसंहिता में ही वर्णित है अतएव हम शिवपुराण को ही अट्ठारह पुराणों के अन्तर्गत कह सकते हैं और इसी के दूसरे नाम वायवीय या वायुपुराण हैं जिस का वायुपुराण नाम रख कर देवीभागवत, कूर्म और अग्निपुराण ने अट्ठारह पुराणों में गिनाया है वही यह शिवपुराण है । जो शिवपुराण वर्तमान समय में उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या १८ हजार है किन्तु और और पुराणों में शिवपुराणों की संख्या २४ हजार बतलाई गई है इसका उत्तर यह है कि उपलब्ध शिवपुराण की वायु संहिता में शिवपुराण की जितनी संहितायें लिखी हैं वे समस्त उपलब्ध नहीं होतीं यदि समस्त मिल जावें तो सम्भव है कि २४ हजार संख्या पूरी हो जावे या इससे अधिक होजावे और बारह संहितायुक्त शिवपुराण की श्लोक संख्या जो एकलक्ष कही है उसमें से मर्त्यलोक में चौवीस सहस्र ही संख्या रही ।

❀ ब्राह्मय ❀

कई एक सज्जन ब्राह्मय पुराण की श्लोक संख्या में भी अन्तर बतलाते हैं इनका कथन है कि ब्राह्मयपुराण की संख्या किसी पुराण में १० सहस्र और किसी पुराण में १३ सहस्र लिखी है । इसका उत्तर यह है कि जिस समय यह पुराण ब्रह्मा ने मरीचि, दक्षादि ऋषियों को सुनाया उस समय इसकी संख्या १३ सहस्र थी

और जिस समय इसको व्यास जी ने श्लोकबद्ध बनाया उस समय इसकी संख्या १० सहस्र होगई—

ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ॥

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने मरीचि से यह पुराण कहा था वही यह ब्राह्मय नाम से कीर्तित है इसकी श्लोक संख्या १३ हजार है । जब ब्रह्मा ने मरीचि से कहा तब १३ सहस्र था इसका प्रमाण तो हम ऊपर दे चुके अब व्यास के श्लोकबद्ध में यह १० हजार रहा इसको नीचे पढ़िये—

चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् ।
तथा अष्टसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम् ॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल ।
तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम् ॥
द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम् ।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च ।
चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञकम् ।
पंचविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥
पंचपंचाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम् ।
एकादशसहस्राणि लिंगाख्यं चातिविस्तृतम् ॥
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम् ।

सप्तदशसहस्त्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥
एकाशीतिसहस्त्राणि स्कंदाख्यं परमाद्भुतम् ।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः ॥

देवीभागवत स्कं० १ अ० ३

इन श्लोकों में ब्राह्मयपुराण की संख्या अयुत अर्थात् १० हजार कही है यह संख्या उस समय की है जब कि व्यास ने पुराणों को शृंखलाबद्ध, संहिताबद्ध, श्लोकबद्ध किया था। उपलब्ध ब्राह्मयपुराण में श्लोक संख्या दशसहस्र सातसौ है इसमें सातसौ श्लोक क्षेपक हैं।

◎ पाद्म ◎

एतदेव यदा पद्मं अभूद्धैरण्मयं जगत् ।
तद्वृत्तान्तादयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह पठ्यते ॥

इस पद्म की श्लोक संख्या ५५ हजार है इसमें हिरण्मय पद्म में जगदुत्पत्ति वर्णित है इस कारण इस पुराण को पण्डित लोग "पाद्म" कहते हैं। उपलब्ध पद्मपुराण में श्लोक संख्या पचपनसहस्र से कुछ अधिक बैठती है अतः कुछ क्षेपक है।

❋ विष्णु ❋

वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्प्राह धर्म्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः ।
त्रयोविंशतिसाहस्त्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥

मत्स्य पुराण ।

वराह कल्प के वृत्तान्त को लक्ष्य कर जो वैष्णव धर्मों को महर्षि पराशर ने कहा है उसका नाम "विष्णुपुराण" है। इसकी श्लोक संख्या विद्वानों ने २३ हजार कही है।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् ।
त्रयोविंशतिसाहस्त्रं सर्वपातकनाशनम् ॥

नारदपुराण ।

हे वत्स ! श्रवण करो मैं तुम्हारे निकट यह सर्व पापहर तेईस सहस्र श्लोक पूर्ण वैष्णव महापुराण कीर्तन करता हूँ । डाक्टर विलसन साहब को विष्णु पुराण में कुल सात सहस्र श्लोक मिले हैं । इस गणनामें डाक्टर साहब एक गलती खागये वह यह है कि विष्णुधर्मोत्तर को विष्णुपुराण की गणना में नहीं लिया, नारदीय पुराण के वचनानुसार अथवा मुसलमानोंके विद्वान् अलवेरुणी का लेख पढ़ने से यह ज्ञान होजाता है कि विष्णुधर्मोत्तर विष्णुपुराण के अन्तर्गत तेईससहस्र श्लोक संख्या में शामिल हैं । विष्णुधर्मोत्तर विष्णु पुराण का उत्तर भाग है, प्रचलित विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तर इन दोनों की श्लोक संख्या लगभग सोलह हजार के है । इतने पर भी सातसहस्र की न्यूनता है। सातहजार श्लोक कहां गये इसको हम नहीं जान सकते तथापि इतना तो कह सकते हैं कि प्रचलित विष्णुधर्मोत्तर जो मुद्रित हुआ है वह पूर्ण नहीं है अधूरा ही मिला है, नारदीय पुराण में जितने लक्षण लिखे गये हैं वे समस्त लक्षण विष्णुधर्मोत्तर में नहीं हैं अर्थात् वहुत से लक्षण उसमें विद्यमान् हैं और वहुतों का अभाव है । जिस विष्णुधर्म का ज्योतिषांश लेकर ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म-सिद्धान्त की रचना की, नारदपुराण में उसका परिचय होने पर भी प्रचलित धर्मो-त्तर में उसके अधिकांश का अभाव है किन्तु काश्मीर से प्राप्त विष्णुधर्मोत्तर में इसका अधिक परिचय पाया जाता है ।

पुराणों में बौद्ध, जैन और भविष्य राजवंश वर्णन होने से उनकी पश्चात् समय की रचना पुराण ग्रन्थ है ऐसा न जानना चाहिये किन्तु व्यासजी त्रिकालज्ञ थे, समाधि में स्थित होकर यदि कहीं कहीं भविष्य राजवंशों का संकेत और विधर्मी जनों तथा अन्य जैन, बौद्धों का निरूपण भूतकाल के शब्दों में अपनी योगशक्ति से कर दिया हो इसमें आश्चर्य नहीं मानना चाहिये । इस विषय में संस्कृत साहित्य का यह सिद्धान्त है—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति ॥

साधारण सज्जनों की वाणी इतिहास के पीछे जाती है और प्राचीनकाल के जो ऋषि हैं उन ऋषियों को वाणी के पीछे पीछे इतिहास दौड़ता है ।

नारद

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम्

हे विप्र ! सुनो, तुम्हारे निकट नारदीय पुराण कहता हूं, यह पुराण पच्चीस सहस्र श्लोकों में पूर्ण और बृहत्कल्प की कथा युक्त है । विलसन साहब ने नारद-पुराण के केवल ३ हजार श्लोक पाये थे, किन्तु आजकल जो पुस्तक है उसमें अनुमानन २२हजार श्लोक हैं । सम्भव है कि मुद्रित होने के समय इतने ही श्लोक मिले हों और किसी स्थान में हस्तलिखित पूर्ण पुस्तक भी रक्खी हो ।

मार्कण्डेय

यत्राधिकृत्य शकुनीन्धर्म्माधर्मविचारणा ।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्म्मचारिभिः ॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥

मत्स्यपुराण ।

जो ग्रन्थ धर्माधर्म विचारज्ञ पक्षियों के प्रसंग में आरम्भ होकर धार्मिक मुनिगण द्वारा कहा गया है और सब विषय मुनि प्रश्नानुसार में मार्कंडेय द्वारा कहे गये हैं, वही ९ हजार श्लोक युक्त मार्कंडेयपुराण है ।

इस समय जो मार्कंडेयपुराण उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या ६ हजार नौसौ है नारदपुराण के विषयानुक्रम से जाना जाताहै कि नरिष्यन्तचरित के पीछे इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकथा, कुशवंश, सोमवंश, पुरूरवा, नहुष और ययातिचरित, यदुवंश, श्रीकृष्ण की बाल्य और माथुरलोला, द्वारिका-चरित, सांख्यकथा, प्रपञ्चसत्व और मार्कंडेयचरित वर्णित था । किन्तु प्रचलित मार्कंडेयपुराण में नरिष्यन्तचरित के परवर्त्ती विषय समूह है ही नहीं । इन समस्त विषयों के एकत्र करने पर मार्कण्डेयपुराण की श्लोक संख्या पूर्ण होगी इसमें सन्देह नहीं ।

आग्नेय

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।

वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते।
तच्च षोडशसाहस्त्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥

मत्स्यपुराण।

ईशान कल्प के वृत्तान्त प्रसंग में अग्नि ने वशिष्ठ के निकट जो पुराण कहा है वही आग्नेय नाम से विख्यात है वह १६हजार श्लोक युक्त और सर्व यज्ञों का फल देने वाला है।

वर्तमान अग्निपुराण में श्लोक संख्या ठीक है लक्षण कहीं कहीं पर नहीं मिलते उसका विचार लक्षणपाद में किया जावेगा।

❁ भविष्य ❁

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम् ॥
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दशसहस्त्राणि तथा पंचशतानि च ॥
भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते।

मत्स्यपुराण।

जिस ग्रन्थ में चतुर्मुख ब्रह्मा ने सूर्य का माहात्म्य वर्णन करके अघोरकल्प वृत्तान्त के प्रसंग में जगत् की स्थिति और भूतग्राम के लक्षण वर्णन किये हैं जिसमें अधिकांश ही भविष्य चरित वर्णित और १४ हजार पांच सौ श्लोक युक्त है वह भविष्य पुराण के नाम से विख्यात है।

ब्रह्मवैवर्त

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः।
तदष्टादशसाहस्त्रं ब्रह्मवैवर्त मुच्यते ॥

मत्स्यपुराण।

रथन्तर कल्प के वृत्तान्त प्रसंग में जिस ग्रन्थ में सावर्णि ने नारद को

कृष्णमाहात्म्य और ब्रह्मवराह का चरित विस्तृत भाव से वर्णन किया है वही अट्ठारह सहस्र ब्रह्मवैवर्त पुराण है।

लिङ्ग

यत्राग्निलिंगमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थमाग्न्येयमधिकृत्य च॥
कल्पान्तं लिङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्।
तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति॥

मत्स्यपुराण।

जिस ग्रन्थ में देव महेश्वर ने अग्निलिंग मध्यस्थ होकर अग्निकल्पान्त में धर्म अर्थ, काम और मोक्षार्थ कथा प्रकाश की थी एकादश सहस्र श्लोक युक्त वह पुराण ही ब्रह्मा द्वारा लिंग नाम से वर्णित हुआ है। उपलब्ध लिंग पुराण अपने स्वरूप को ज्यों का त्यों धारण किये है।

वराह

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम्।
भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम्॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसंगं मत्कृतं पुरा।
निबबन्ध पुराणेस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके॥

नारद पुराण।

हे वत्स! सुनो, मैं बाराह पुराण कीर्तन करता हूँ। ये पुराण दो भागों में विभक्त और सदा विष्णुमाहात्म्य सूचक है। मानव कल्प का जो कुछ प्रसंग पूर्व में मेरे द्वारा वर्णित हुआ है साक्षात् नारायणस्वरूप, विद्या प्रवर व्यास ने वह सब इस चौबीस सहस्र श्लोक पूर्ण पुराण में ग्रथित किया है, बाराह पुराण इस संख्या में नहीं मिलता।

स्कन्द

यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं चरितैरुपबृंहितम्॥

स्कान्दं नाम पुराणं वै तदेकाशीति गद्यते ।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥

मत्स्य पुराण ।

जिस पुराण में षडानन (स्कंद) ने तत्पुरुष कल्प प्रसंग में अनेक चरित और उपाख्यान तथा माहेश्वर निर्दिष्ट धर्मप्रकाश किये हैं वही मर्त्यलोक में ८११०० श्लोक युक्त स्कंद पुराण नाम से विख्यात हुआ है । इस समय इसमें कुछ श्लोक अधिक पाये जाते हैं परन्तु इसके श्लोकों की शैली प्राचीन और आर्ष है सम्भव है कि जो पाठ अधिक है वह किसी पुराण या उपपुराण से लिया गया हो या क्षेपक हो ।

‡ वामन ‡

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् ।
त्रिविक्रमचरित्राढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम् ॥
कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गत्रयकथानकम् ।
भागद्वय समायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम् ॥

नारदपुराण

हे वत्स ! सुनों, मैं तुम्हारे निकट वामन नामक पुराण वर्णन करता हूँ यह पुराण त्रिविक्रमचरित सम्वलित और दशसहस्र श्लोक परिपूर्ण है, यह दो भागों में विभक्त है और इस में कूर्मकल्प का समाख्यान तथा तीन वर्ग की कथा निरूपित हुई है, इस के सुनने से वक्ता और श्रोता का मंगल होता है किन्तु उपलब्ध वामन पुराण दशसहस्र श्लोकयुक्त पूर्ण नहीं है कुछ न्यून है ।

+ कूर्म +

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपीजनार्दनः ॥
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ ।
अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥

मत्स्यपुराण ।

जिस पुराण में कूर्म रूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसंग में इन्द्र और ऋषियों के निकट वर्णन किया था तथा जिसमें लक्ष्मी कल्प का विषय वर्णित हुआ है वही अट्ठारहसहस्र श्लोक युक्त कूर्म पुराण है।

शृणु वत्स मरीचेऽद्य पुराणं कूर्मसंज्ञितम्।
लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक् पृथक्।
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो दयान्तिकम्॥
तत्सप्तदशसाहस्रं सचतुः संहितं शुभम्।

नारदपुराण।

हे वत्स मरीचे, लक्ष्मीकल्पानुचरित, कूर्म नामक पुराण सुनो, जिसमें हरि कूर्म रूपमें वर्णित और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन सब का माहात्म्य पृथक् पृथक् रूप से कीर्तित हुआ है। यह पुराण इन्द्रद्युम्न प्रसंग में ऋषियों के निकट कथित और सत्रह सहस्रश्लोक पूर्ण है।

वास्तव में कूर्मपुराण में १७६०० श्लोक हैं, नारदपुराण में ६०० श्लोकों की संख्या को न गिन कर १७००० लिखाहै और मत्स्यपुराण में ६०० श्लोकों को १००० मान कर १८००० लिखा किन्तु वर्तमान समय में जो कूर्मपुराण उपलब्ध होता है उसकी संख्या केवल ६००० है।

‡ मत्स्य ‡

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम।
यत्रोक्तं सत्यकल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले॥
व्यासेन वेदविदुषा नरसिंहोपवर्णनम्।
उपक्रम्य तदुद्दिष्टं चतुर्दशसहस्रकम्॥

नारदपुराण।

हे द्विजसत्तम? अनन्तर मैं तुम्हारे निकट मत्स्यपुराण कीर्तन करता हूँ। इस पुराण में वेदवित् व्यास मुनि ने नरसिंह वर्णनोपक्रम में चौदहसहस्र श्लोक द्वारा संक्षेप से सत्यकल्प का सम्पूर्ण वृत्तान्त कीर्तन किया है।

प्रथम जनार्दन ने जब यह पुराण कहा था तब इसकी संख्या १९००० थी किन्तु व्यास ने जब संहिता बनाई तब इसकी संख्या १४००० रही परंतु इस समय जो उपलब्ध होता है उसकी संख्या पन्द्रहसहस्र है एकसहस्र श्लोक इसमें किसी पुराण के मिले हों अथवा क्षेपक हों।

+ गरुड़ +

यदा च गारुड़े कल्पे विश्वाण्डाद्गरुड़ोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीद्विष्णुर्गारुड़ं तदिहोच्यते॥
तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठ्यते।

मत्स्यपुराण।

विष्णु ने गारुड़कल्प में गरुड़ के उद्भव प्रसंग में विश्वाण्ड से आरम्भ करके जो पुराण वर्णन किया है उसका नाम गारुड़ है इसके १८००० श्लोक हैं।

मरीचे शृणु वच्म्यद्य पुराणं गारुड़ं शुभम्।
गरुड़ायाब्रवीत्पृष्टो भगवान्गरुड़ासनः॥
एकोनविंशसाहस्रं तार्क्ष्य कल्पकथान्वितम्।

नारदपुराण।

हे मरीचे ? सुनो, मैं तुम्हारे निकट शुभ गरुड़पुराण कीर्तन करता हूँ। यह पुराण भगवान् श्रीकृष्ण ने गरुड़ के निकट कहा है। यह उन्नीस सहस्र श्लोक में पूर्ण और तार्क्ष्य कल्पीय कथा युक्त है। इसकी श्लोक संख्या १८५०० है अतएव कहीं पर अट्ठारह हजार और कहीं पर १९ हजार लिखा है किन्तु वर्तमान समय में जो गरुड़ पुराण उपलब्ध होता है उसकी श्लोक संख्या ११००० है।

× ब्रह्माण्ड ×

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्ड द्विशताधिकम्॥
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्रविस्तरः।
तद्ब्रह्माण्डपुराड़ं च ब्रह्मणा समुदाहृतम्॥

मत्स्यपुराण

ब्राह्मण्ड का माहात्म्य अवलम्बन करके जो पुराण कहा गया है वही १२०० श्लोक युक्त ब्रह्माण्ड है। जिस पुराण में ब्रह्मा कर्तृक भविष्यकल्प वृत्तान्त विस्तृत रूप से विवृत हुआ है वही ब्रह्माण्ड पुराण है। यह पुराण संख्या में ठीक है किन्तु एशियाटिक सोसाइटी मे छापते समय इसका नाम वायु पुराण लिख दिया।

❀ पुराणाधिक्य ❀

यदि एक पुराण दो प्रकार का मिल जावे तो कुछ आश्चर्य न समझना क्योंकि प्रत्येक द्वापर में एक व्यास होता है और वह पुराणों का निर्माण करता है सम्भव है कि पहिले द्वापर का निर्माण हुआ कोई पुराण सुरक्षित होकर दूसरे द्वापर के समय से भी आगे निकल जावे तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसी कल्प में अब अट्ठाईसवां कलियुग वर्तमान है इसी हिसाब से अट्ठाईस द्वापर व्यतीत हो गये अट्ठाईस द्वापरों में अट्ठाईस ही व्यास हो गये इसी कारण से देवीभागवत में लिखा है कि इस कल्प में अट्ठाईस व्यास हो चुके। व्यास भी कोई एक व्यक्ति नहीं होता, प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करता है। व्यास किसी का नाम नहीं किन्तु पदवी है। गोलवृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है उसका नाम व्यास है, इसी प्रकार वेदवृत्त में जो सीधा निकल जावे उसका नाम वेदव्यास होता है। जितने व्यास हुये हैं वे वेद और पुराणतत्व के पूर्ण ज्ञाता हुये हैं। गत द्वापर में जो वेदव्यास हुये वे पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन थे। आगामी द्वापर में अश्वत्थामा व्यास होंगे इस भेद से दो पुराण मिल जाना सम्भव हो सकता है।

❀ पुराणन्यूनता ❀

कई एक मनुष्यों की यह शंका है कि ये पुराण जो कम मिलते हैं अर्थात् जिनकी संख्या पुराणों में अधिक लिखी है और मिलने में वह न्यून संख्या में मिलते हैं इसका कारण क्या है? उत्तर इसका यह है कि प्रथम तो कागज ही नहीं था ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे अतएव पुराण घर घर नहीं थे। फिर कागज चला किन्तु उस समय में प्रेस नहीं थे, पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं, एक प्रति पुस्तक लिखने में कितना परिश्रम होता था यह अब भी अनुमान कर सकते हैं। भला इस अति परिश्रम के समय में पुस्तकों की बाहुल्यता कैसे हो सकती थी।

फिर इससे भिन्न बोद्ध और यवनों का समय हिन्दू साहित्य के लिये कैसा हुआ इसको समस्त संसार जानता है। वेदों की ग्यारहसौ इकत्तीस शाखायें थीं जिन में से आजकल कुल बाईस शाखायें उपलब्ध होती हैं शेष मिलती ही नहीं। जब कि वेदों के भण्डार के अधिक भाग का क्षय हो गया तो फिर पुराणों में धक्का पहुँच गया, वह बड़े स्वरूप को खोकर लघु स्वरूप में आगये इस में आश्चर्य ही क्या है। बोद्ध और यवनों के जमाने में ब्राह्मणों ने अपने शरीरों का बलिदान देकर वेद और पुराणों को बचाया है, जितने उनसे बचाये जा सके उतनों को बचालिया और जो नहीं बच सके उनका क्षय हो गया। बृटिश गवर्नमेन्ट तथा अन्य सुसाइटियों या अन्य पण्डितों की खोज से दिनोदिन संस्कृतसाहित्य कुछ न कुछ मिलता ही जाता है। एशियाटिक सुसाइटी कलकत्ता की खोज से बहुत सी प्राचीन पुस्तकें मिली हैं सम्भव है कि खोज करने पर किसी लायब्रेरी में या किसी पण्डित के घर रक्खे हुये वे समस्त पुराण मिल जावें कि जो इस समय अधूरे हैं।

देव विवरण

(१) कई एक मनुष्यों का कथन है कि प्रसिद्ध मनुष्य को देवता कहते हैं किन्तु पुराणों ने मनुष्यों से भिन्न देवयोनि को माना है यह निरी गप्प है। ऐसे गपोड़ों से भरे हुये पुराणों को हम तो मानने को तैयार नहीं हैं।

लोग शास्त्र से अनभिज्ञ हैं वे जो चाहे सो कहें किन्तु शास्त्र के देखने से तीन देवताओं का ज्ञान होता है (१) वेद मंत्र वर्णित विषय को देवता कहते हैं यह ऋग्वेद में पाया जाता है। इसके ऊपर निरुक्त लिखता है "यातेनोच्यते सा देवता" जो विषय जिस मंत्र में कहा जावे वही उसका देवता है। (२) मनुष्यों में नरपति को देव कहते हैं ब्राह्मण भी भूदेव कहलाता है। (३) मनुष्यों से भिन्न भी देव सृष्टि है इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि "द्विविधा देवा देव देवा मनुष्यदेवाश्च विद्वांसो हि देवा ३।७।३।१०" दो प्रकार के देव होते हैं वे जन्म से ही विद्वान् होते हैं।

इन तीन प्रकार के देवों में केवल देवदेवों पर विवाद है। शास्त्र इस विषय में क्या कहता है आज इसी का विवेचन होगा। मनु ने सृष्टिक्रम में मनुष्यों से भिन्न देवता माने हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२॥

अ० १

उस प्राणियों के प्रभु ब्रह्मा ने कर्मात्मा इन्द्रादि देवगण और साध्यगण सूक्ष्म सनातन यज्ञ को रचा ॥२२॥

इस २२ के श्लोक में देवोत्पत्ति कह कर आगे ३१ के श्लोक में मनुष्योत्पत्ति कही है देखिये—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ ३१॥

लोकों की वृद्धि के लिये मुख, बाहु, उरु, पाद से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उत्पन्न किया।

यज्ञ और वेद के साथ में देवताओं की उत्पत्ति और इसके पश्चात् मनुष्यजाति की उत्पत्ति पृथक् लिखी है। फिर हम कैसे मान लें कि मनुष्यों को ही देवता कहते हैं। मनुजी ब्राह्मणमहत्व कहते हुये एक श्लोक लिखते हैं—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः
कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः॥ ९५ ॥

मनु० अ० १

जिसके मुख से देवता हवि और पितर कव्य खाते हैं भला इस ब्राह्मण से बड़ा कौन हो सकता है।

इस श्लोक में मनु ने त्रिदिवौकस नाम देवताओं का लिखा है। एक तो यह नाम ही मनुष्यों का नहीं हो सकता फिर ब्राह्मण के मुख की खाई हुई हवि से किसी मनुष्य का पेट नहीं भर सकता अतएव यह मानना पड़ता है कि देवसृष्टि मनुष्यसृष्टि से भिन्न है और ब्राह्मण के मुख से खाई हुई हवि से उसकी तृप्ति होती है।

इस देव विषय में मनुजी लिखते हैं—

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम्। ८६।

अ० ८

कुल्लूक भटः—द्युलोकपृथिवीजलहृदयस्थजीवचन्द्रादित्याग्नियमवायुरात्रिसंध्याद्वयधर्माः सर्वे शरीरिणां शुभाशुभकर्मज्ञाः। दिवादीनां चाधिष्ठातृदेवतास्ति साच शरीरिण्यैकत्रावस्थापिता तत्सर्वं जानातीत्यागम प्रमाण्याद्वेदान्तदर्शनं तदंगी कृत्येदमुक्तम्।

इसके टीका में कुल्लूकभट्ट लिखते हैं—द्युलोक, पृथिवी, जल, हृदय में रहने वाला जीव, चन्द्र, आदित्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों संध्या, धर्म ये देवता समस्त शरीरधारियों के अशुभ कर्म को जानते हैं। दिन रात्रि संध्या प्रभृति जो लिये हैं ये जो जड़ दिवादिक हैं ये नहीं लिये किन्तु इनके अधिष्ठातृदेवता लिये

हैं। वे जो अधिष्ठातृ देवता हैं वे शरीर में स्थापित हैं, वे सब जानते हैं, इसमें वेद प्रमाण है। इसको वेदान्तदर्शन ने स्वीकार किया है उसी को अंगीकार करके हमने यह अर्थ किया है।

मनु के इस श्लोक से देवताओं का मनुष्यजाति से भिन्न होना सिद्ध है फिर नहीं मालूम मनुष्य ही देवता हैं यह बात किस आधार पर मानी जाती है।

व्याकरण मनुष्ययोनि से भिन्न ही देवयोनि मानता है और उसका यह प्रमाण है पढ़िये—

(सूर्यादेवतायां चाब्वाच्यः) सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम् (सूर्यागस्त्ययोश्छेचङ्याञ्च) यलोपः। सूरी। मानुषी।

देवताजाति में उत्पन्न हुई जो सूर्य की स्त्री है व्याकरण कहता है कि उसके लिए "सूर्या" ऐसा स्त्रीप्रत्ययान्त पद बनेगा और यदि सूर्य की स्त्री मनुष्यजाति में पैदा हुई हो तब फिर "सूर्या" नहीं बनेगा किन्तु "सूरी" बनेगा। यहाँ पर व्याकरण ने देवजाति को मनुष्यजाति से भिन्न माना है।

वेद भगवान् का एक मंत्र हम प्रमाण में देते हैं वह यह है—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।

यजु० १४। २०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसु देवता, रुद्र देवता, आदित्य देवता, मारुत देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता वरुण देवता,।

वेद ने ये देवता गिनाये हैं। कोई भी विचारशील मनुष्य इनको मनुष्य नहीं कह सकता और वेद ने किसी भी मंत्र में मनुष्य को देवता नहीं कहा फिर भी कई एक सज्जन मनुष्यों को ही देवता मानते हैं और देवसृष्टि को मानना गपोड़ा बतलाते हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं—(१) तो ये लोग पाश्चात्य-

शिक्षा के भक्त हैं (२) इन्होंने कभी भी वैदिक सिद्धान्त नहीं देखा अतएव ये मनुष्यों को ही देवता मानते हैं किन्तु हमने ये जो थोड़े से प्रमाण दिये हैं ये अकाट्य हैं। इन प्रमाणों के आगे अब कोई भी सज्जन यह सिद्ध नहीं कर सकता कि मनुष्य ही देवता होते हैं।

(२) कई एक सज्जन कहते हैं कि देवता मनुष्यों से भिन्न हैं किन्तु वे जड़ हैं और पुराणों ने देवताओं को चैतन्य माना है अतएव वे पुराण मानने के योग्य नहीं हो सकते।

जिस प्रकार पुराणों ने देवताओं को चैतन्य माना है उसी प्रकार वेद भी देवताओं को चैतन्य मानता है।

त्रयः देवा एकादशत्रयस्त्रिंशाः सुराधसः।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा ॥

यजु० अ० २० मं० ११

तीन देवता अथवा एकादश देवता अथवा तेंतीस देवता, अनेक संपत्तिवाले वृहस्पति हैं पुरोहित जिनके, सविता देवता की प्रेरणा से समस्त देवताओं के सहित ये देवता हमारी रक्षा करें।

यदि हम इनको जड़ मान लें और फिर रक्षा की प्रार्थना करें ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि वेद जड़ पदार्थों से प्रार्थना करने की आज्ञा देता है यह वेद पर कलंक होगा। फिर जड़ पदार्थ हमारी स्तुति को कैसे सुनेंगे यह दूसरा कलंक है। जड़ हमारी रक्षा कैसे करेंगे, जड़ों से रक्षा की आशा रखना यह तीसरा कलंक है। फिरजड़ देवताओं को हमारी रक्षा के लिये जड़ सविता देवता कैसे प्रेरणा करेगा। फिर जड़ों के पास विविध सम्पत्ति कहाँ से आई। इससे भिन्न जड़ देवताओं के जड़ वृहस्पति पुरोहित कैसे बन गये। जड़ों में ये समस्त घटनायें हो नहीं सकतीं अतएव मानना पड़ेगा कि ये देवता चैतन्य हैं।

देवता मनुष्यों को वर देकर रक्षा करते हैं इस विषय में निरुक्त का यह लेख है "देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थानो भवति,, भक्तों को अभीष्ट फल देने से, प्रकाशक होने से, द्युलोक में रहने से, देवता देवता कहलाता है। और निरुक्ति देखिये —

यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मंत्रो भवति ।

जिस बल आदिकी कामनावाले हुये ऋषि मंत्रद्रष्टा ने जिस देवता में उस बल आदि अर्थ का होना चाहते हुये (अर्थात् । अमुक देवता की कृपा से मैं इस अर्थ का स्वामी होऊंगा) इस बुद्धि से जिस देवता की स्तुति की है वह उस ऋचा के देवता ही की स्तुति प्रयोग की है उस देवतावाला वह मंत्र होता है ।

मंत्रद्रष्टा ऋषि ने मंत्र देवता की स्तुति की और उस देवता से अभीष्टकामना के मिलने की इच्छा की तो क्या इतने पर भी देवता जड़ ही रहे । यदि वास्तव में देवता जड़ हैं तो फिर जड़ों की स्तुति करनेवाला वेद सर्वोच्च गौरव को कैसे धारण कर सकता है । बात यह है कि वेद तो देवताओं को चैतन्य मानता है किन्तु जोलोग वेद नहीं जानते वह यही समझे बैठे हैं कि देवता जड़ हैं ।

देवताओं के चैतन्य होने के अन्य प्रमाण—

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या, इन्द्रमिद्गाथिनो बृहत् ।
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः इन्द्राय साम गायत ।
नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन, इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम् ।
इन्द्रे कामा अयंसतेति ।

इन्द्र द्यौ का और पृथ्वी का राज्य करता है । इन्द्र को सामगानेवालों ने बृहत्साम से स्तुति किया है । इन्द्र के साथ जुटे हुये यह तृत्सु छोड़े हुये जल की भांति नीचे दौड़े । इन्द्र के लिये साम गाओ । इन्द्र के बिना सोम किसी धाम प्रातः सवन आदि स्थान को नहीं पवित्र करता है । इन्द्र के वीर कर्मों को कहता हूँ । इन्द्र में हमारी कामनाये बंधी हैं ।

इस मंत्र को भगवान यास्क ने परोक्षकृता स्तुति में लेकर निरुक्त के उदाहरण में रक्खा है । इसका अर्थ भी नहीं बदल सकता । अब पाठक अपने मन से विचारें कि इस मंत्र में जिस इन्द्र का वर्णन है वह जड़ है या चैतन्य है ?

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि ।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ॥

हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। निरुक्त ने यह प्रत्यक्षकृता का उदाहरण दिखलाया है। इन्द्र के दो घोड़े हैं और उत्तम पत्नी है इतने पर भी इन्द्र जड़ है। इसको तो वही मानेगा जिसने बुद्धि को सर्वथा ही बेच डाला हो।

+ निरुक्त का निर्णय +

—:○○:—

अथाकारचिन्तनं देवतानाम्। पुरुषविधाः स्युरित्येकं चेतनावद्धद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाभिधानानि। अथापि पौरुष विधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते। अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः। अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः। अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति। यथो एतच्चेतनावद्धद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि। यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इत्यचेतनेष्वप्येतद्भवति। अभिक्रंदन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव। सुखं रथं युयुजे सिंधुरश्विनमिति नदीस्तुतिः। यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव। होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव। अपि वोभयविधाः स्युरपिवा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः।

निरुक्त दैवत कां० अ० १ पा० २

निरुक्त ने देवताओं का विचार करते हुये देवताओं के दो प्रकार के रूप बतलाये हैं। (१) पुरुषाकार और (२) जड़। ये दो प्रकार के रूप बतला कर निरुक्त ने इन दोनों की ही पुष्टि की। मनुष्याकार में निरुक्त कहता है कि—"पुरुषों की भांति हैं, शरीरधारी और चेतन हैं यह एक मत है क्योंकि चेतनवालों की भांति

उनकी स्तुतियें हैं तथा उनके बचन सम्भाषण भी चेतनावालों की भांति हैं और वे देवता पुरुषों के सदृश अंगों से स्तुति किये जाते हैं जैसे हे इन्द्र तुम्ह महान् की बड़ी वा दर्शनीय दोनों भुजायें हैं हे इन्द्र इन दोनों अपार द्यावा पृथिवी को भी जिस लिये तू पकड़े हुये है हे धनवाले यह तेरी एक मुट्ठी ही है। पुरुषों के सदृश द्रव्यों के संयोग से भी देवता पुरुषविध ही सिद्ध होते हैं जैसे हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। पुरुषविध न होने में स्त्री घर आदि नहीं बन सकते इस लिये पुरुषविध ही हैं। पुरुषों के कर्मों से भी पुरुषविध सिद्ध होते हैं। तेरी ओर प्रस्थित हुये पुरोडास और सोमरस को हे इन्द्र खा और पी। हे सब ओर से सुनने वाले कानोंवाले इन्द्र हमारे बुलावे को सुन। यह खाना पीना सुनना नहीं बन सकता, जब तक देवता मनुष्यों के सदृश अंगों वाले न हों। सो इन प्रमाणों से मन्त्रों के देवताओं का पुरुषविध होना सिद्ध है"। निरुक्तकार मुनि यास्क ने इस विषय में कई एक वेद के मन्त्र दिये हैं उन मन्त्रों से ही देवताओं का पुरुषाकार होना सिद्ध किया है। मन्त्रों के टुकड़े लेकर ही यह निरुक्त बना है। बस सिद्ध हो गया कि वेदों में देवता पुरुषाकार और चेतन हैं। यह वेद का एक मत है।

वेद का दूसरा मत है कि देवता जड़ हैं। इस विषय में निरुक्त लिखता है कि "अपुरुषविध हैं। यह दूसरा मत है जैसा कि पूर्व में कहा है कि जल और ज्योति के मिलने से वर्षा का कर्म होता है उस विषय में जो युद्ध के वर्णन हैं वे रूपकमात्र हैं किंच देवताओं का जो रूप दीखता है वह अपुरुषविध है। जैसे अग्नि वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा ये प्रत्यक्षतः अपुरुष विध हैं इन को पुरुषविध मानने में दृष्टहानि होती है इस लिये इन को पुरुषविध माना जा ही नहीं सकता। जब ये पुरुषविध नहीं तो इन्हीं की भांति इन्द्रादि परोक्ष देवता भी अपुरुषविध ही हैं। जो यह कहा है कि चेतनावालों की भांति स्तुतियें होती हैं इस लिये पुरुषविध हैं इस का उत्तर यह है कि अचेतन जड़ बा वे समक्ष भी इस प्रकार स्तुति किये जाते हैं जैसे अक्ष से लेकर ओषधियों पर्यन्त। और जो यह कहा है कि पुरुषों कैसे अंगों से स्तुति किये जाते हैं यह भी अचेतनों में होता है। यह सोमग्राव अपने हरे सोम रस से भीगे मुखों से देवताओं को यज्ञ में आने के लिये पुकारते हैं। पत्थरों के

मुख नहीं होते सो जैसे यहां औपचारिक वर्णन है वैसे इन्द्रादि में है और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश द्रव्यों के संबंधों से यह भी औपचारिक ही है। सिंधु ने जगत् के लिये सुख का हेतु घोड़े से युक्त रथ जोड़ा है। इस स्तुति में यथाऽभिहित अर्थ बन सकना असंभव है क्योंकि बहती हुई नदी की रथ में स्थिति नहीं होती है। जैसे असंभव होने से यहाँ रूपक कल्पना है वैसे अन्यत्र भी रूपक से स्तुतियें जाननी चाहिये। और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश कर्मों से यह भी वैसा ही है। जैसा होता अग्नि से भी पहिले ही खाने योग्य हवि को खाते हो यह ग्रावस्तुति ही है। पत्थरों में मुख्य खाना नहीं बन सकता इस लिये यह भी रूपक है"। यास्क ने जड़पक्ष को भी वेद ही से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहां पर श्रुति और स्मृति में भेद पड़ जाय वहाँ पर स्मृति को छोड़ देते हैं और श्रुति को मान लेते हैं किन्तु जहां पर श्रुति में भेद पड़ जाय वहां पर श्रुति के कहे हुये दोनों ही पक्ष आदरणीय होते हैं। इस विषय में धर्मशास्त्र की व्यवस्था यह है

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥

मनु० अ० २ श्लोक ० १४

श्रुतियों के जहां दो प्रकार हों अर्थात् भिन्न भिन्न अर्थ का प्रतिपादन हो वहां वे दोनों तुल्य बल के कारण ही धर्म हैं दोनों विकल्प से अनुष्ठेय हैं, यह ऋषियों ने कहा है।

इस सिद्धान्त को लेकर वेद मन्त्रोक्तदेवताओं में दो भेद मानने होंगे—(१) पुरुषाकार चैतन्य और (२) जड़। जहां पर मनुष्यों कैसे व्यवहारोंके साथ इन्द्रादिक देवताओं का ग्रहण होगा वहां पर चैतन्य और जहां पर ग्राव (पत्थर) आदि शब्द होंगे वहां पर देवता जड़ मानने होंगे। दोनों ही श्रुतियों का आदर करना होगा।

फिर यास्क स्वतः लिखते हैं कि "अथवा दोनों प्रकार के हो सकते हैं"। जिस प्रकार से धर्म शास्त्र दोनों ही पक्षों को स्वीकार करता है इसी प्रकार यास्क मुनि दोनों ही पक्षों को स्वीकार करते हैं। फिर इसके आगे यास्क लिखते हैं कि "अथवा पुरुषविध ही हुओं के यह प्रत्यक्ष दृश्य अग्नि आदि कर्मात्मा कर्मक्षेत्र हैं

जैसे यज्ञ यजमान का कर्मात्मा है यह ऐतिहासिकों का सिद्धान्त है" । यहां पर यास्क ने देवों को दृश्य और अभिष्ठातृ भेद से सर्वथा ही चैतन्य मान लिया है । यास्क के विरुद्ध कोई भी आस्तिक वैदिक मनुष्य जबान नहीं हिला सकता ।

† यक्षदेव प्रसंग †

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥१५॥ तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥१६॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीद ᳪं सर्वं दहेयम् । यदिदं पृथिव्यामिति ॥१८॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१९॥ अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥२०॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥२१॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीद ᳪं सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥२२॥ तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३॥ अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥२४॥

तलवकारोपनिषत् ।

(ब्रह्म) ईश्वर (ह) प्रसिद्ध (देवेभ्यः) देवताओं से (विजिग्ये) विजय प्राप्त करता भया (तस्य) उस (ह) प्रसिद्ध (ब्रह्मण.) ब्रह्म के (विजये) विजय में (देवाः) अग्नि आदि देवता (अमहीयन्त) महत्व को प्राप्त हुये (ते) वे देव (ह) निश्चय से (ऐक्षन्त) मानते हैं (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (विजयः) जीत है

और (अस्माकम्) हमारी (एव) ही (अयम्) यह (महिमा इति) महिमा है ॥१४॥ (एषाम्) इन देवताओं के (तत्) उस अज्ञान को (तत्) वह ब्रह्म (विजज्ञौ) जान गया (तेभ्यः) उन देवताओं के लिये (तत्) ब्रह्म (ह) निश्चय (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ (इदम्) यह (यक्षम्) यक्ष (किम्) कौन है (इति) यह (तत्) उसको (ते) वे देव (न) नहीं (व्यजानन्त) जानते भये॥१५॥ (ते) वे देव (अग्निम्) अग्नि देव को (अब्रुवन्) बोले (जातवेदः) अग्नि (एतत्) इसको (विजानीहि) तुम पहिचानो (किम्) कौन (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष है (इति) यह सुन कर अग्नि बोला (तथेति) बहुत अच्छा ॥१६॥ (तत्) उस तेजके पास अग्नि (अभ्यद्रवत्) गया (तम्) अग्नि को ब्रह्म [अभ्यवदत्] बोला (कः) कौन (असीति] है [अग्निः] अग्नि [वै] निश्चय से (अहम्) मैं [अस्मि] हूं [इति] यह [अब्रवीत्] बोला [जातवेदा] जातवेदा (वै) निश्चय [अहम्] मैं [अस्मि] हूँ ॥१७॥ [तस्मिन्] ऐसे [त्वयि] तुझमें (किम्) क्या [वीर्यम्) वीर्य परा क्रम है [इति] इसको सुनकर [अपि] बोला (इदम्) इस [सर्वम्] सब जगत् को (अग्नि) निश्चय से [दहेयम्] फूँक सकता हूँ (यत्) जो [इदम्] यह [पृथिव्याम्] पृथ्वी पर जो चराचर हैं उन सबको (दहेयम्) फूँक सकता हूं ॥१८॥ [तस्मै] उस अग्नि के लिये [तृणम्] एक तिनका (निदधौ) धरके [एतत्] इस को [दह] जला दे [इति] यह कहा [तत्] उस तृण के पास (सर्वजवेन) समस्त वेग से [उपप्रेयाय] अग्नि गया परन्तु [तत्] उसको [दग्धुम्] भस्म करने को [न शशाक] समर्थ न हुआ (सः) वह अग्नि [तत् एव] उसी समय उससे [निववृते] हटा और वायु आदि के पास आकर बोला [न, एतत्, असकं, विज्ञातुं, यत्, एतत्, यक्षम्, इति] यह सर्वोपरि बलवान् सर्वपूज्य कौन है मैं इसको नहीं समझ सकता ॥१९॥ [अथ] इसके आगे देवता [वायुम्] वायुको [अब्रुवन) बोले कि हे वायो ! (एतत्) इसको [विजानीहि] तुम जानो [किमेतत्, यक्षम्] यह सर्वोपरि पूज्य बलवान् तेजस्वी यक्ष कौन है ॥२०॥ वह वायु [तत्] उस ब्रह्म के [अभ्यद्रवत्] सन्मुख गया [तम्] उसको ब्रह्म ने कहा [कः, असि, इति] कौन है ऐसा (अभ्यवदत्) कहा कि [वै] निश्चय [अहम्, वायुः, अस्मि, इति] मैं वायु हूँ (अहम्) मैं (मातरिश्वा, अस्मि, इति) अंतरिक्ष में चलनेवाला मातरिश्वा हूँ (अब्रवीत्) बोला ॥२१॥ (तस्मिन्) उस (त्वयि) तुझमें (किम्) क्या (वीर्यम्) पराक्रम है (यत्) जो (इदम्) यह [पृथिव्यामिति] पृथ्वी पर है [तत्] उसको [आददीयम्]

पकड़ कर उड़ा दूं ॥२२॥ [तस्मै] उस वायु के लिये वह ब्रह्म [तृणम्] तृण को (निदधौ) धर कर बोला (एतत्) इसको (आदत्स्व इति) उठा कर उड़ा (तत्) उसको उड़ाने के लिये वायु (सर्व जवेन) पूर्ण वेग से (उपप्रेयाय) उसके समीप गया लेकिन (तत्) उसको (आदातुम्) उठाने को (न शशाक) नहीं समर्थ हुआ (सः) वह वायु (ततः, एव) उसी समय तृण से (निववृते) लौटा और अग्नि आदि से आकर कहा कि (यत् , एतत् यक्षम्, इति) यह प्रत्यक्ष तेजस्वी यक्ष कौन है (एतत्, विज्ञातुम्, न, अशकम्) इसको जानने की मेरी सामर्थ्य नहीं॥ २३ ॥ (अथ) वायु के लौट आने के पश्चात् देवताओं ने इंद्र से कहा कि हे (मघवन्) इन्द्र ! (एतत्, किम्, यक्षम्) यह यक्ष पूज्य कौन है ऐसा तू (एतत्) इसको (विजानीहि) जानो इन्द्र को देवता जब ऐसा [अब्रु-वन्] बोले तब इन्द्र [तथेति] बहुत अच्छा कह कर [तत्] उस ब्रह्म के समीप [अभ्यद्रवत्] गया [तस्मात्] उस इन्द्र से [तिरोदधे] वह ब्रह्म अन्त-र्धान होगया ॥ २४ ॥

इस आख्यायिका में यक्ष स्वरूप ईश्वर से अग्नि, वायु, इन्द्र प्रभृति देव-ताओं का विस्तृत वार्तालाप हुआ है और यह आख्यायिका भी वैदिक है फिर हम कैसे मानलें कि देवता जड़ हैं ।

+ देवपत्नी +

इन्द्राणीमासु नारीषु सुभगामहमश्रवम् ।
न ह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिः ॥

यजु० अ० ८ मं० ३

यज्ञ में आचार्य कहता है कि समस्त नारीगणों में हमने इन्द्राणी इन्द्र की स्त्री को सौभाग्यवती सुना है । इसका पति अन्य स्त्रियों के पति के समान जरा-वस्था में आकर नहीं मरता है अर्थात् इसका पति अमर है ।

उतग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिंद्राणी
अग्नायी अश्विनी राट् ।
आरोदसी वरुणानी शृणोतु
व्यन्तुदेवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥

यजु० अ० ७ मं० ११

इस मंत्र में इन्द्राणी, अग्नायी, अश्विनी, आरोदशी, वरुणानी इन पांच देवपत्नियों का वर्णन है। ग्ना स्त्री को कहते हैं। रुद्र की पत्नी रोदसी कहाती है। 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृड्' इस सूत्र से इन्द्रादि शब्दों से वाच्य होने पर आनुगागम होता है और ङीप् प्रत्यय होता है।

अन्य प्रमाण—

देवानां पत्नीरुपतीरवंतुनः।

यजु० अ० ४ मं० २८

इस मंत्र में भी देवपत्नी से रक्षा की प्रार्थना की गई है।

पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवान्।

अथर्व० ३। ६। ९

पत्नीवाले हैं तीस और तीन देवता।

जड़ पदार्थों के पत्नी नहीं होती। वेद देवताओं के पत्नी बतलाता हैं अत्र पाठक निर्णय करें कि देवता जड़ हैं या चैतन्य।

देवस्थान।

[३] कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों में देवताओं का निवास स्थान स्वर्ग विशेषलोक बतलाया है यह निरी गप्प है। सुखदायक अवस्था देश को स्वर्ग और दुःखदायक अवस्था देश को नर्क कहते हैं। स्वर्ग कोई विशेष स्थान नहीं है।

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवंति।

नि० दैवतकां० अ० ७ खं० ५

यह तीन देवता हैं—अग्नि पृथिवी स्थान में, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थान में और सूर्य द्युस्थान में इन महाभाग्यों के बहुत नाम होते हैं।

यह निरुक्त का लेख है। भौतिक अग्नि जो पृथिवी पर है यह देवता है और इसका अभिमानी साक्षात् अग्निदेवता चैतन्य है और वह स्वर्ग में रहता है। वही चैतन्य देवता यज्ञ की हवि को पृथ्वी से लेकर स्वर्ग में देवताओं के पास

पहुंचा देता है इसी कारण वेद ने अग्नि को देवदूत लिखा है। इसी प्रकार वायु जिसमें वहन क्रिया है यह अन्तरिक्ष में रहता है किन्तु इसका अभिमानी वायुदेवता जो तलवकारोपनिषद् में यक्ष से बातें करता था स्वर्ग में रहता है द्युलोक में दृश्यमान् सूर्य देवता है जिसके प्रकाश से जगत् स्थिर रहता है किन्तु सूर्याभिमानी देवता स्वर्ग में रहता है। भौतिक अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य आदि देवता जो दृश्यमान् हैं ये स्वर्गीयदेवताओं के शरीर हैं इन दृश्य देवताओं में किया हुआ पूजन स्वर्गीय देवताओं को पहुंच जाता है यह वेद की व्यवस्था है किन्तु वेद पितर और देवताओं का निवास भूतल पर नहीं मानता देखिये—

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥

अथर्व० कां० १८ अ० २ सू० २ मं० ४८

आकाश का जो प्रथम भाग है जहां तक जल के परमाणु, जाते हैं उस को उदन्वती कहते हैं और इसके ऊपर आकाश का जो मध्यम भाग है जहां पर सूर्य की किरणें अधिक पड़ती हैं उस को पीलु कहते हैं इस के ऊपर जो आकाश का तृतीय भाग है जिस में सूर्य और ताराओं का अधिक प्रकाश पड़ता है उस को प्रद्यौ कहते हैं उसी भाग में पितृलोक है वहां पर पितर रहते हैं।

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपियन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्   अ० ४। ३४।२

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः॥   ४। ३४ ६

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति
विहाय रोगं तन्वः स्वायाः

अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे

तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ ६ । १२० । ३

अस्थिरहित पवित्र वायुसे निर्मल, स्वच्छ हुये जीव स्वर्गलोक को पहुँचते हैं उनका शिश्न कामाग्नि जला नहीं सकता, स्वर्गलोक में इन के लिये बहुत स्त्रियां हैं जिन में घृत के तड़ाग हैं, जिन के किनारों पर शहद है, जिन में अमृत ही जल है, दूध से और दही से जो भरे हैं तेरे लिये ये सब धारा बन कर स्वर्ग में प्राप्त हों। जिस स्वर्ग में मित्रतायुक्त सुकृतीजन अपने शरीर का रोग छोड़ कर पुण्य शरीर से आनन्द करते हैं उसमें हम अपने माता पिता और पुत्रों का देखें।

पृथ्वी से स्वर्ग कितनी दूर है इसका विवेचन करते हुये वेद लिखता है कि—

सहस्राश्वीनेवाइतः स्वर्गो लोकः।

ऐतरेय० ब्रा० ७ । ७

बड़े मजबूत, पवन के समान वेग रखने वाले एक सहस्र घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है।

स्वर्ग का महत्व यह है—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके १२

कठोपनिषत्।

स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है वहां तुम बुढ़ापे से नहीं डरोगे क्योंकि स्वर्गस्थ देव बूढ़े नहीं होवे, भूख और प्यास इन दोनों को पार करके शोक को छोड़ कर तुम भोगों को भोगोगे। यम निचकेता से यह कह रहा है स्वर्ग के प्राणियों को कोई भय नहीं, स्वर्ग के प्राणी बूढ़े नहीं होते, स्वर्ग के प्राणियों को भूख और प्यास नहीं लगती, स्वर्ग के प्राणियों को शोक नहीं होता वे सर्वदा आनन्द भोगा करते हैं तुम हम से स्वर्ग प्राप्ति का बरदान मांग लो तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।

इसी स्वर्ग में देवता रहते हैं। वेद भगवान् इस विषय में लिखता है कि—

दिवि देवा दिविश्रितः।

अथर्व० ११ । ४ । ७ । २३

स्वर्ग में जो देवता हैं वे दिविश्रित हैं।

* देव संख्या *

(१) कई एक सज्जनों का कथन यह है कि देवता चैतन्य भी है और स्वर्ग में भी रहते हैं यह बात तो वेद से सिद्ध है किन्तु पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता लिखे हैं, देवताओं की इतनी संख्या लिखना पुराणों की अनभिज्ञता है, अधिक से अधिक देवता तेंतीस हो सकते हैं।

हमने अट्ठारह पुराणों का अवलोकन किया किन्तु पुराणों में तेंतीस करोड़ देव संख्या कहीं पर भी लिखी हुई नहीं मिली। पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता हैं इस कहने का और लिखने का प्रयोजन इतना है कि तेंतीस करोड़ देवसंख्या सुन कर मनुष्यों को पुराणों से घृणा हो जावे और संसार से पुराणों का मानना छूट जावे। देव संख्या कितनी है इसका विवेचन इस प्रकार है। निरुक्त ने अग्नि, वायु (इन्द्र) सूर्य ये तीन देवता माने और शेष समस्त देवता इनके अंग माने इसको हम "देवसत्ताविवरण" में लिख आये हैं। जिस प्रकार विराट् से समस्त सृष्टि का उद्भव होता है और फिर समस्त सृष्टि विराट् में मिल जाती है। जैसे विराट् को समस्त सृष्टि का निधान माना है इसी प्रकार अग्नि, वायु सूर्य इन तीन देवताओं में से समस्त देवता उद्भूत होते हैं और अन्त में इन्हीं में लय होते हैं अतएव निरुक्त ने प्रथम देवसंख्या तीन मानी है, इस तीन संख्या में ही समस्त देवताओं को ले लिया है।

वेद के एक मन्त्र में देवसंख्या त्रिविध है उस मन्त्र में प्रथम तीन देवता बतलाये हैं, फिर एकादश देव बतलाये हैं फिर तीस देवता बतलाये हैं। "त्रया देवा एकादशत्रयस्त्रिंशाः ११। २०" अर्थात् तीन देवता, ग्यारह देवता और तीस देवता। समस्त मन्त्र और उसका अर्थ हम देवसत्ताविवरण में लिख आये हैं वहां पर ही देखना चाहिए।

इस के आगे यजुर्वेद का एक मन्त्र कहता है कि—अग्नि १, वायु २ सूर्य ३, चन्द्रमा ४, अष्टवसु १२, एकादश रुद्र २३, द्वादश आदित्य ३५, सात मरुत ४२,

त्रयोदश विश्वे देवा ५५, एक बृहस्पति ५६, इन्द्र देवता ५७, वरुण देवता ५८ ये अट्ठावन देवता हैं।

इस देवसंख्या को गिनवाने वाला मन्त्र "अग्निर्देवता० १४। २० " देव-सत्ताविवरण में लिख आये हैं। कई एक सज्जन जो व्याकरण शून्य हैं वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, विश्वेदेव, मंत्र के इन पदों से एक एक देवता लेकर देवसंख्या बारह बतलाते हैं किन्तु यह उनकी अनभिज्ञता है क्योंकि ये सब पद बहुवचनान्त हैं, बहुवचनान्त होने से समस्त संख्या ली जाती है। समस्त संख्या को लेकर इस मंत्र में देवसंख्या ५८ अट्ठावन है।

अथर्व वेद के एक मंत्र में सपत्नीक तेंतीस देवता बतलाये हैं देखिये—'पत्नी-वतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवान् ३। ६। ९' तीस और तीन तेंतीस देवता पत्नीवाले हैं। देवताओं की पत्नी भी देवता ही होती हैं इस मंत्र ने देवसंख्या ६६ छासठ बतलाई है। इसके आगे एक मंत्र और देखिये—

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयंति सर्वे।
गंधर्वा एनमन्वायंस्त्रयस्त्रिंश-
त्त्रिशताः षट् सहस्राः।
सर्वान्स देवांस्तपसा पिपर्ति॥
११। ५। २

'ब्रह्मचारी जिस समय यज्ञ करने को उद्यत होता है उस समय सूक्ष्म रूप से पितर, गंधर्व और छै सहस्र तीन सौ तेतीस देवता अलग अलग उसके पास जाकर उपस्थित होते हैं और वह यज्ञ के द्वारा उन सब को तृप्त करता है।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि छः हजार तीन सौ तेंतीस देवता सूक्ष्मरूप से ब्रह्मचारी के पास आते हैं और वह उनको तृप्त करता है। आगे भी देखिये—

त्रीणिशतानि त्रीणिसहस्राण्यग्निन्त्रिंशच्च देवानवचा सपर्यन्।

औक्षन्घृतैरस्तृणर्हिरस्मा आदिद्धोतारन्यसादयन्त ॥

यजु० अ० ३३ मं० ७

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृकर्म में नियुक्त किया।

इस मन्त्र में तीनहजार तीनसौतीस संख्या तो पृथक् है और नव संख्या आगे है। किसी किसी आचार्य ने तीनहजार तीनसौ तीस में नव संख्या का योग कर दिया है उस के मत में तो ३३३९ देवता होते हैं किन्तु किसी किसी आचार्य ने तीन हजार को तीन सौ संख्या से गुणा किया और आगे तीस तथा नौ का योग किया है उस के मत में "९०००३९ देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने त से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुए होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया" अर्थ हुआ। किसी किसी आचार्य का मत है कि "३३३० इन चार अंकों को इन्हीं के स्वरूप में नव अंक कर दो, नौ अंक करने वालों के मत में ३३३३३३३३० देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुऐ होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया" यह अर्थ हुआ।

संसार में जो लोकोक्ति है कि देवता तेंतीस करोड़ हैं यह लोकोक्ति पुराणों को लेकर नहीं है किन्तु "त्रीणि शतानि" इस मन्त्र के तृतीय अर्थ को लेकर है इस बात को मनुष्य नहीं जानते और इसको गप्प समझ कर पुराणों के मत्थे मढ़ देते हैं वेद में देव संख्या के नव अंक हैं इस में प्रमाण भी मिलता है वह यह है—

नवैवाङ्कास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः ।
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदतः ॥

देवताओं के जो दश गण हैं उन से और ब्रह्मा विष्णु रुद्र और इनकी शक्ति तथा वर्ण इनके भेद से त्रिवृद्ध देव संख्या के नौ अंक हैं।

वेदों में लिखी हुई देव संख्या को पाठक अवलोकन कर चुके किन्तु पुराणों

में इस प्रकार देवसंख्या किसी पुराण के किसी भी स्थल में नहीं लिखी। बिना लिखे ही शोर गुल मचाया करते हैं। एक समय कमालगंज में एक मनुष्य शास्त्रार्थ करने को आया उसने अपने शास्त्रार्थ में कोई भी पक्ष स्थापन न करके यह पूछा कि पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता लिखे हैं तुम उनके नाम लिखवाओ। हमने इसके उत्तर में कहा कि पुराणों में तेंतीस करोड़ देवता कहाँ लिखे हैं प्रथम तुम लिखे हुये दिखलाओ। पन्ने तो बहुत उथले किन्तु तेंतीस करोड़ देवता किसी पुराण में लिखे नहीं मिले। जब नहीं मिले तब यह चुपचाप चल दिये। बस अब सिद्ध हो गया कि पुराणों में देव संख्या तेंतीस करोड़ नहीं है किन्तु "त्रीणि शतानि" इस मन्त्र के तृतीयार्थ से सिद्ध होती है उसी अर्थ को लेकर संसार में तेंतीस करोड़ देवता हैं यह लोकोक्ति है। देवता कोई अन्य बला नहीं है किन्तु ईश्वर के अंग हैं। देवताओं को जान लेना मनुष्य की बुद्धि से बाहर है, वेद ने जो संख्या बतलाई है उसी पर विश्वास करना यह आस्तिकों का काम है।

(२) किसी किसी सज्जन का कथन है हमने मान लिया कि तेंतीस करोड़ देवता हैं किन्तु उन तेंतीस करोड़ देवताओं के नाम बतलाओ।

तेंतीस करोड़ देवता किसी मनुष्य ने नहीं बतलाये, वेद ने बतलाये हैं। इस कारण वेद के प्रकट करने वाले जगदीश्वर से ही तेंतीस करोड़देवताओं के नाम पूछना चाहिये। देववाद परोक्षवाद है। मनुष्यों को तो यह भी पता नहीं कि देवता हैं या नहीं और यदि हैं तो कितने हैं। मनुष्यों को इस विषय का जो कुछ भी ज्ञान होता है वह वेद से होता है। यदि वेद ने देवताओं के बहुसंख्या में नाम नहीं लिखे तो फिर मनुष्य बतलावेगा कहाँ से अतएव जिस को देवताओं के नाम पूछने हों वह ईश्वर से पूछ ले। यदि ईश्वर की कृपा का पात्र नहीं बना है तो मौन धारण करके अपने घर में बैठे।

किसी वस्तु की संख्या बतलाई जावे और संख्या के अन्तर्गत आने वाले पदार्थों में से प्रत्येक का नाम न बतलाया जावे तो इससे संख्या गलत नहीं होती। एक मनुष्य ने किसी से कहा कि भूमण्डल पर दो अर्ब मनुष्य हैं। उस से पूछा कि तुमने कैसे जाना? जवाब दिया कि मर्दुमशुमारी की गणना से। फिर सवाल किया कि दो अर्ब मनुष्यों के नाम बतलाओ? उसने उत्तर दिया कि नाम हम नहीं जानते, तो नाम न जानने पर जनसंख्या की गणना अमान्य हो जावेगी? विज्ञानवेत्ताओं ने तारागण की संख्या अनुमानतः चालीस करोड़ बतलाई है यदि वे चालीस करोड़ ताराओं के नाम न जानें तो क्या इतने से संख्या भी अशुद्ध हो जावेगी? एक बड़ी संख्या में प्रत्येक का नाम पूछना यह केवल वितण्डा है।

* देवशक्ति *

(१) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि देवशक्ति पुराणों में एक अद्भुत शक्ति है जो बात मनुष्यों की बुद्धि में किसी प्रकार भी न आ सके उसको देवशक्ति की उपाधि दे दी जाती है । इसमें बड़ी २ गप्पों की रचना को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं प्रतीत होता ।

देवशक्ति की अद्भुत आश्चर्यजनक घटना पुराणों ने ही नहीं लिखी वेद ने भी लिखी है, नीचे देखिये——

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयत एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । अपि च सत्त्वानां प्रकृतिभूमिभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मान आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य ।

निरुक्त दैवत कां० अ० १ पा० १

जैसा कि यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि मनुष्यों के अश्व आदि आगन्तुक होते हैं नकि उनका अपना स्वरूप । यहां ऐसा नहीं किन्तु देवता का बड़ा ऐश्वर्य होने से एक आत्मा देवता अनेक प्रकार से स्तुति किया है (भिन्न देवतारूपों से भी अश्वादि साधनों से भी) । एक आत्मा के दूसरे देवता प्रत्यंग होते हैं किञ्च अश्वादि द्रव्यों की प्रकृति की महिमाओं से ऋषि स्तुति करते हैं । यह कहते हैं और प्रकृति के सारे नाम होने से भी देवता एक दूसरे से जन्मवाले होते हैं (जो एक देवता जिस देवता का पुत्र है उसी का पिता भी है) और एक दूसरे की प्रकृति होते हैं । कर्मों से इनके जन्म होते हैं, आत्मा से इनके जन्म होते हैं, आत्मा ही इनका रथ होता है, आत्मा ही अश्व, आत्मा ही शस्त्र, आत्मा ही बाण, आत्मा ही सब कुछ होता है देवता का ।

और देखिये—

यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति। "रूपं रूपं मघवा बोभवीति" इत्यपि निगमो भवति ॥

नि० अ० १० खण्ड १७

जिस जिस रूप को चाहता है वही वही रूप देवता हो जाता है। धनवान् इन्द्र रूप रूप (हर एक रूप) फिर फिर होता है यह भी निगम होता है।

कठोपनिषत् की "स्वर्गे लोके" इस श्रुति में लिखा है कि (१) स्वर्ग में किसी प्रकार का भय नहीं (२) स्वर्ग में बुढ़ापा नहीं आता (३) स्वर्ग में भूख और प्यास नहीं लगती (४) स्वर्ग में शोक नहीं होता (५) स्वर्गस्थ देवताओं को बड़े बड़े भोग भोगने के लिये मिलते हैं फिर निरुक्त में यास्क ने लिखा है कि (६) देवताओं के आगन्तुक वाहन नहीं होते, देवता अपने स्वरूप से ही अपना वाहन बना लेता है (७) एक देवता अनेक रूप रखता है इसी कारण वेद ने प्रत्येक देवता को अनेक रूपों से स्तुति किया है (८) देवता एक दूसरे से जन्म धारण करता है अर्थात् जो देवता जिस देवता का पुत्र है उसी का पिता भी है (९) इनके जन्म आत्मा से होते हैं (१०) यदि कोई कहे कि हम ये सब बातें जड़ में घटा लेंगे तो जड़ पदार्थ कर्म जन्मवाले नहीं होते। ये सब कर्म जन्मवाले हैं (११) आत्मा ही इनका रथ है (१२) आत्मा ही इनका घोड़ा है (१३) आत्मा ही आयुध है (१४) आत्मा ही बाण है (१५) देवता का सब कुछ आत्मा ही होता है (१६) देवता स्वर्ग में बने रहते हैं। स्वर्ग में रहते हुये भी सूर्य, अग्नि, चन्द्र प्रभृति मण्डलों में व्यापक रहते हैं (१७) देवता जैसा रूप चाहता है वैसा धारण कर लेता है। (१८) देवता जन्म से ही विद्वान् होता है। वेदों में ये देवताओं की अद्भुत शक्तियां हैं। जो शक्तियां वेदों में हैं वही शक्तियां पुराणों में हैं फिर नहीं मालूम देवताओं में विशेष शक्ति रहने के कारण पुराण क्यों अमान्य होगये और वेद क्यों मान्य हो गये। वास्तव में मनुष्य नास्तिक हो गये हैं यदि उनको यह मालूम हो जावे कि वेदों में भी अचिन्त्य देवशक्तियां हैं ऐसा समझने पर वे वेदों को तिलांजलि दे दें तो इसमें कुछ आश्चर्य न समझो। कोई इन शक्तियों को माने या न माने यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है।

हमको यहां पर इतना दिखलाना था कि जो अद्भुत देवशक्तियां पुराणों में लिखी हैं वे ही शक्तियां वेदों में वर्णित हैं।

मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जो लोग ईश्वरीय ज्ञान वेद को प्रमाण कोटि में नहीं लेते वे लोग देवशक्तियों को देख कर वेदों को भी अमान्य ठहराने का उद्योग करेंगे। विद्वत्ता को आगे रख कर वे वेदों के लिये एक अक्षर भी नहीं कह सकते तथापि 'ऐसा होना ही असम्भव है" अपने इस मनमाने सिद्धान्त को आगे रख कर वेदों के विषय में मनुष्यों की श्रद्धा को धक्का पहुंचाने का उद्योग करेंगे। ऐसा करना मूर्खों को ही शोभा देता है। विद्वान् लोग जब तक पूर्ण विचार न कर लें तब तक किसी ग्रन्थ पर भी असंभव होने का कलंक नहीं लगाते। देवता तो अदृश्य हैं, हम दृश्यसृष्टि को देखकर ही चकित हो जाते हैं। जैसे ईश्वर की दृश्य सृष्टि में एक बनमक्षिका दंश (डांस) नाम से प्रसिद्ध है वह प्रायः मनुष्य और पशुओं के रुधिर को ही खाती है उस बनमक्षिका के गुद नहीं होती। सर्प के कान नहीं होते किन्तु वह सुनता है। सहस्रों कीट चातुर्मास्य में बिना मां बाप के उत्पन्न होते हैं। जब दृश्यसृष्टि में ही अद्भुत चमत्कार देखने में आते हैं तब अदृश्य की कौन बातें करे। मनुष्य उत्पन्न होने के पश्चात् जब दश बारह वर्ष का हो लेता है तब वह तैरना सीखता है। तैरने की शिक्षा पाने के पश्चात् वह बड़े बड़े नदी नालों को तैर जाता है किन्तु गौ के बच्चे को तैरने की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। गाय का चार दिन का बच्चा छोटी नदी को पार कर जाता है। यह मनुष्य और गाय की शक्ती का भेद है। मंडूक शीतकाल में पृथ्वी के अंदर घुसते चले जाते हैं। बाज बाज मंडूक जमीन में पांच सात हाथ धंस जाता है। वहाँ पर वायु नहीं जाता तब भी मंडूक अपने जीवन को रखता है। बिना वायु के जीवन को धारण करना यह मंडूक की विशेष शक्ति है। जब दृश्यमान्सृष्टि में ही अद्भुत घटनायें दृष्टिगोचर हो रही हैं फिर हम कैसे मान लें कि देवताओं में अद्भुत शक्तियाँ नहीं हैं। अणिमा गरिमा, लघिमा आदि जो देवताओं की शक्तियां हैं योगी होने पर ये शक्तियाँ मनुष्य में भी आजाती हैं इस विषय में योगदर्शन बड़े जोर के साथ लिखता है कि योगी को अष्टसिद्धियां प्राप्त होती हैं जिसको शंका हो योगदर्शन देख ले।

देवताओं के वाहन ।

पुराणों में भिन्न २ देवताओं के भिन्न २ वाहन लिखे हैं। जैसे ब्रह्मा का वाहन हंस, सरस्वती का वाहन मोर, विष्णु का वाहन गरुड़, महादेव का वाहन वृष और गणेश का वाहन चूहा, दुर्गा का वाहन शेर आदि २ समझिये। जिस प्रकार देवताओं के भिन्न २ वाहन हैं इसी प्रकार दैत्यों के भी विचित्र वाहन हैं। समाजी लोग अपनी अनभिज्ञता से वाहन फिलास्फी को न जानकर लौकिक पशुपक्षियों से वाहनों की तुलना देकर वाहनों का खण्डन किया करते हैं ठीक ही है जो जिस के महत्व को नहीं समझता वह उसकी सर्वदा निन्दा ही किया करता है। भील जाति की स्त्रियां जवाहिरात जड़ित सुवर्ण आभूषणों को फेंक कर गुंजाभूषण धारण करती हैं क्योंकि वे रत्न और स्वर्ण के महत्व को नहीं जानतीं इसी प्रकार शिक्षा शून्य अज्ञ आर्यसमाजी नित्य ही अवतार देवता दैत्यों का खण्डन करते हैं जब वे वेदवर्णित अवतार देव दैत्य समुदाय का खण्डन करते हैं तो फिर वे अपनी अनभिज्ञता से वाहनों का खण्डन करदें तो क्या कोई आश्चर्य है और विचारशील मनुष्यों को इन के खण्डन का बुरा भी न मानना चाहिये क्यों कि ये लोग वेदशास्त्र रहित अनभिज्ञ हैं बुरा तब मानना चाहिये जब कोई विद्वान् जानता हुआ भी जान बूझकर मिथ्या ठहराने का उद्योग करे आज तक उत्सव में, मेलों में, वार्तालाप में आर्यसमाजी ही इन वाहनों का खण्डन किया करते थे किंतु अब इनके खण्डन में भारतधर्म महामण्डल काशी ने भी लेखनी उठाई है। सनातन धर्म सभा चन्दौसी के पुस्तकाध्यक्ष मु० डोरीलाल जी अपने पत्र में लिखते हैं कि "इसी प्रकार का एक लेख भारतधर्म में भी हाल ही में छपा है किन्तु देवताओं के वाहनों को किसी के रूपक द्वारा सिद्ध करना सनातन धर्म के सिद्धांत का घातक है"। यद्यपि वेद पुराणों में रूपक हैं किन्तु वे स्पष्ट मालूम होते हैं कि ये रूपक हैं इससे भिन्न वेद शास्त्र में जहां कहीं ऐसी बात आती है कि जो मनुष्य की समझ में नहीं बैठती मनुष्य स्वतः तो उसके अभिप्राय को समझता नहीं और संसार के सामने वह कह सकते नहीं कि मेरी समझ में नहीं आया ऐसा कहदें तो पोल खुल जाय अपने को विद्वान् सिद्ध करता हुआ अज्ञानी मनुष्य अज्ञात विषय में विचार

होकर रूपक मान बैठता है यही दशा भारतधर्म में लेख लिखने वाले की हुई है। भारतधर्म वाले करें भी क्या वे लोग शास्त्रों के इतने विद्वान् नहीं हैं कि जो देव बाहनों का विचार वेद पुराणों से करें विवश उनको देवबाहनों का रूपक मानना पड़ा किन्तु हमारा यह विश्वास है कि देव बाहन रूपक नहीं हैं। यदि देव बाहन रूपक हैं तब तो वेदशास्त्र दोनों ही गलत, क्यों कि वेद और पुराण में देववाहनों की विलक्षणता का वर्णन आता है जिस वर्णन में रूपकता का ढकोसला लग ही नहीं सकता। हम भारतधर्म के सम्पादक से नम्र प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे सनातन धर्म के घातक किसी मनुष्य के सड़ियल दिमाग से निकले हुए लेखों को न छापें! यदि उन को रूपक बना।बना कर सनातन धर्म को मार देना ही इष्ट है तो हमको विवश होकर भारत धर्म महामण्डल के लिखे हुये पुस्तकों का खण्डन करना पड़ेगा।

आज।कल हम देख रहे हैं शास्त्रानभिज्ञ लोग देवताओं के वाहनों की बड़ी हंसी करते हैं। कोई कहता है कि सनातनधर्म ब्रह्मा को ईश्वर का अवतार बतलाता है किन्तु उस ब्रह्मा ईश्वर को चढ़ने के लिये सवारी न हाथी मिला न ऊंट, न घोड़ा मिला न गाड़ी सवारी कौन मिली हंस। कहीं मनुष्य पक्षियों पर भी चढ़ा करते हैं। कोई कहता है कि विष्णु समस्त संसार का ईश्वर और उसका बाहन बनाया गया गरुड़, यह अच्छी दिल्लगी है। महादेव को कहते हैं कि ये सृष्टि के संहारकर्ता हैं ये साक्षात् विभु हैं सवारी क्या है बैल। बैल पर तो कोई भी हिंदू नहीं चढ़ता, हां शक्का, भिश्ती; धोबी बैल पर चढ़ा करते हैं, ये महादेव हैं या कौन हैं;जो बैल पर चढ़ते हैं।

इस प्रकार की अनेक हुज्जतें उठाकर देववाहनों की हंसी की जाती है इस हंसी का कारण यह नहीं है कि बाहन अयोग्य हैं। इसका कारण तो केवल यह है कि जनता ने सँस्कृत साहित्य को तिलांजलि दे दी और हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों से सर्वथा अनभिज्ञ हो गई, बस फिर क्या था अपनी अक्ल से लगी महाभारत मचाने।

इनकी दृष्टि में जैसे संसार में लौकिक हंस हैं ऐसा ही हंस ब्रह्मा का बाहन है। इन्होंने लौकिक हंस भी नहीं देखा केवल सुन रक्खा है कि कोई एक पक्षी हंस

होता है और वह मिले हुए दूध पानी में से दूध पी जाता है और पानी को छोड़ देता है वह मोती चुनता है कुछ सुफ़ेद सुफ़ेद होता है, वह कैसा होता है नहीं मालूम इन्होंने अपनी अक्ल से उसका स्वरूप कैसा बनाया और कैसा समझा।

विष्णु के वाहन गरुड़ का भी यही हाल है। हमने एक मनुष्य से पूछा कि तुम जानते हो विष्णु का वाहन कौन है उसने उत्तर दिया गरुड़। हमने फिर पूछा कि गरुड़ तुमने देखा है ? उसने कहा जी हाँ। हमने कहा हमको दिखलाओगे ? उसने कहा कल दिखलावेंगे। दूसरे दिन वह हमको बगीचे में लेगया नीलकंठ नामक पक्षी बैठा था उसको दिखलाकर बोला कि यह गरुड़ है।

महादेव के वाहन नन्दी को भी मनुष्य यही समझ बैठे हैं कि जैसे हल गाड़ी में जुतने वाले हमारे बैल हैं ऐसा ही महादेव का वाहन नन्दी है।

देववाहनों को लौकिक पशु पक्षी समझ बैठना ही भ्रम को उत्पन्न कर गया और इसी भ्रम से देवताओं के वाहनों पर शंका होगई, यदि थोड़ी देर के लिये ये लोग अपनी अक्ल को सन्दूक में बन्द करदें और शास्त्रों से वाहनों का विवेचन पूछें तो फिर कभी स्वप्न में भी शंका नहीं हो सकती।

हंस।

हम इनसे पूछते हैं क्या ब्रह्मा का वाहन हंस लौकिक पक्षी है यदि लौकिक पक्षी है तो तुम्हारी दृष्टि में तो यह पक्षी है ही नहीं। श्रीमद्भागवत स्कं० ११ अ० १३ में विष्णु ने ब्रह्मा के वाहन हंस में आवेशावतार धारण किया है, वहां पर हंस के द्वारा ही विष्णु ने सनकादिकों के गंभीर प्रश्नों का उत्तर दिया है। यहां पर बहुत क्लिष्ट प्रश्न हैं जो आजकल के मनुष्यों की बुद्धि में आने भी असंभव हैं उत्तर कितने कठिन हैं इनकी कठिनता को वे ही जान सकते हैं जिन्होंने वैदिक पद्धति के अनुसार वेद और दर्शनों का अध्ययन किया है, ये समस्त उत्तर विष्णु ने दिये हैं तो भी हंस के मुख के द्वारा दिये हैं। ऐसे गूढ़ उत्तरों को जो हंस अपने मुख से निकाले उस को लौकिकपक्षी कोई भी विचारशील कहनहीं सकता.

गरुड़।

रही बात गरुड़ की, जिसने तुलसीकृत रामायण पढ़ी है वह जानता है कि इस रामायण में कागभुशुण्ड गरुड़ सम्बाद है। यहां पर वक्ता काकभुशुण्ड हैं

श्रोता गरुड़ हैं। मत्स्य पुराण लिखता है कि—

यदा च गारुड़े कल्पे विश्वाण्डाद्गरुड़ोद्भवम् ।
अधिकृत्याब्रवीद्विष्णुर्गारुड़ं तदिहोच्यते ॥

विष्णु ने गरुड़कल्प में गरुड़ के उद्भवप्रसंग में विश्वाण्डसे आरम्भ करके जो पुराणवर्णन किया है उसका नाम गरुड़ पुराण है।

इस पुराण में विशेष कर गरुड़भगवान सम्वाद है गरुड़ पुराण के वक्ता भगवान् विष्णु और श्रोता गरुड़ हैं। नमूने के लिये गरुड़ पुराण के प्रेत कल्प के कुछ श्लोक हम आज पाठकों के आगे रखते हैं इनको पढ़ने की कृपा करें।

गरुड़ उवाच ।

न पत्नी न च भर्त्ता च नैव सम्बन्धिजनस्तथा ।
केन मुक्तिमवाप्नोति नरा नार्यस्तथा परे ॥
एवं मे संशयो जातस्तस्य यत्नं समाचर

अ० १ श्लो० २२। ५२

गरुड़ जी बोले कि भगवन् ! जिनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, स्त्री के पति, पुरुष के स्त्री न हो तो वृषोत्सर्ग कैसे करे ! हमारे इस सन्देह को दूर करो।

गरुड़ पुराण में इस भांति से गरुड़ ने समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया है। इस घटना को आगे रख संसार का कौन मनुष्य है जो गरुड़ को लौकिक पक्षी कहेगा।

नन्दी ।

अब हम महादेवके वाहन नन्दी के विषय में पुराणों के कुछ लेख उद्धृत करते हैं पाठक इन पर एक दृष्टि डालें। सभा में आये हुये दक्ष को महादेव ने प्रणाम नहीं किया इसके ऊपर दक्ष को बड़ा क्रोध आया, इस क्रोध में महादेव को अनेक कटुवाक्य कहे और अन्त में समस्त सदस्यों के रोकने पर भी दक्ष का क्रोध न रुका, दक्षने महादेव को शाप दे दिया कि तुमको यज्ञ भाग न मिलेगा। इस शाप को सुन कर महादेव कुछ नहीं बोले, शांत रहे। बड़ों का बड़प्पन यही है शक्ति रहने पर भी उस शक्ति के बल से दूसरों को हानि न पहुचावे किंतु निर्दोष महादेव के इस

अनादर को नन्दीश्वर महादेव का बाहन सहन नहीं कर सका। बोल उठा कि —

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः।
दक्षायशापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः॥ २०

श्रीमद्भागवत स्कं० ४ अ० २

दक्ष के इस शाप को जानकर महादेव के गण में अग्रणी नन्दीश्वर क्रोध के मारे लाल लाल होगया और अन्त में दक्ष को शाप देदिया जिन लोगों ने महादेव को दिये हुवे दक्ष के शाप का अनुमोदन किया था वे सन्नाटे में रहगये।

अब यहांपर बिचार करना चाहिये कि नन्दीश्वर यदि केवल लौकिक पशु होता तो दक्ष को शाप कैसे दे देता।

दक्ष यज्ञ विध्वंस में एक श्लोक और आता है कृपाकर पाठक उसकोभी पढ़लें।

भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम्।
चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत्॥ अ० ५ श्लोक १७

मणिमान् ने भृगु को, वीरभद्र ने प्रजापति दक्ष को, चण्डीश ने पूषादेवको और भगदेवता को नन्दीश्वर ने पकड़ कर बांध लिया।

नन्दीश्वर का दक्ष को शाप देना और युद्ध में नन्दीश्वर ने भगदेवता को पकड़ कर बाँध लिया इन कार्य विशेषों से कोई भी मनुष्य नन्दी को केवल लौकिक पशु नहीं कह सकता फिर हम कैसे मानलें कि महादेव का बाहन वैल केवल लौकिक पशु है।

ब्रह्मा के बाहन हंस में लौकिक हंसों से ज्ञान की बिचित्रता पाई गई, बिष्णु के बाहन गरुड़ में संसार जन के कल्याण के लिये धर्म जिज्ञासा जानी गई, महादेव के बाहन नन्दीश्वर में अनुग्रह निग्रह की शक्ति पाई गई। अब हम किस न्याय से उपरोक्त बाहनों को लौकिक पशु पक्षी मानें।

चेष्टा—स्वरूप

कई एक सज्जन यह कहते हैं कि निःसंदेह ऊपर के उदाहरणों से लौकिकता जाती रहती है किंतु पशु पक्षी पन बना रहता है अर्थात् बाहन दुनियावी पशुपक्षी नहीं हैं किंतु पशु पक्षी जरूर हैं। पुराणों में इनकी चेष्टायें और इनके स्वरूप पशु

पक्षीपन को सिद्ध कर देते हैं। जैसे बिष्णु को ऊपर चढ़ाकर पंख हिलाते हुये गरुड़ का आकाश में उड़ना (२) गरुड़ की जहां २ मूर्ति देखी जाती है वह पक्षी ही की है। इसी प्रकार हंस को जानो। महादेव का बैल आकाशमें नहीं उड़ता, इसका जमीन पर चलना और साक्षात् बैल के सदृश होना प्रसिद्ध है। चेष्टा और स्वरूप से वाहनों में पशु पक्षी पन पाया जाता है फिर हम उन्हें पशु पक्षी क्यों न कहें।

इ९के उत्तर में हमारा कथन है कि महिषासुर का स्वरूप और चेष्टाएं भैंसे की हैं इससे क्या वह भैंसा हो जावेगा इसी प्रकार अघ धेनुक, वत्स, अरिष्ट और केशी आदि दैत्यों के स्वरूप और चेष्टा पशु पक्षियों कीसी वरणन की हैं तो क्या ये दैत्य पशु पक्षी हैं जब अपनी स्वाभाविक प्रकृतिसे दैत्य पशुपक्षी रूपको ग्रहण करते हुये भी दैत्य बने रहते हैं तो फिर देव अपनी इच्छा से पशु पक्षी स्वरूप को ग्रहण करके पशु पक्षी कैसे बन जावेंगे।

कई एक लोगों का यह कथन है कि दैत्यों का पशु पक्षी स्वरूप धारण करना यह भी पुराणों का एक गपोड़ा है।

जिस समय मनुष्य बिना विचार किये किसी बात के बुद्धि में न समाने से गपोड़ा बतला देता है उस समय हमको हंसी आजाती है, यह गपोड़ा नहीं है किंतु इस को न समझना, समझने से दूर भाग जाना यह मनुष्यों की मूर्खता है। हम क्रम से इस बात की पुष्टि करेंगे (१) यह दिखलाते हैं कि देवयोनि की बात तो दूर रही संसारी मनुष्य भी योग में परिपक्व होकर इस कार्य को करता है। इसके ऊपर महाभारत लिखता है कि—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
कुर्याद्योगी बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥

योगी योगबल को पाकर अपने एक शरीर के बहुत शरीर बना लेता है और उन सब शरीरों से पृथ्वी पर विचरता हुआ बहुत कार्मों को करता है। यह योगी की शक्ति है। इस विषय में महाभारत का ही प्रमाण नहीं मिलता किंतु योगदर्शन का व्यास भाष्य और वेद इसकी पुष्टि करता है। जब एक मनुष्यही बहुत शरीर बनासकता है फिर देवताओं के अन्य शरीर बनाने में शंका कैसी ?

देव विषय में निरुक्त लिखता है कि—

यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति रूपं रूपं
मघवाबोभवीतीत्यपि निगमो भवति ॥

देवता जिस जिस रूप की इच्छा करता है उस २ रूप को धारण करता है (रूपं रूपं मघवा बोभवीति) यह वेद का प्रमाण इसमें मौजूद है।

निरुक्त इच्छानुसार देवताओं के रूप धारण करने को लिख रहा है और अपने कथन की पुष्टि में वेद का प्रमाण दे रहा है।

निरुक्त ने जो वेद मंत्र प्रमाण में दिया है वह यह है।

रूपं रूपं मघवाबोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्
त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्तमा॰ात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥

ऋ० मं० ३ अ० ४ सू० ५३ मं० ८

इन्द्र जिस २ रूप की इच्छा करता है उस उस रूप को धारण करता है। अनेक रूप ग्रहण की सामर्थ्य को करते हुये अपने शरीर को अपने शरीर से अनेक शरीर निर्माण करता अथवा अपने शरीर को नानाविध करता अपने स्तुति लक्षण वाले वाक्यों से आह्वान किया हुआ सोम का निरन्तर पानकर्त्ता सत्यवान् जिस कारण स्वर्गलोक से एक ही मुहूर्त में अनेक यज्ञों में तीनों सवनों में आता है।

जब वेद स्वतः कह रहा है कि देवराज इन्द्र अपने अनेक रूप बना लेता है। जब वेद ने इच्छानुसार देवता के रूप धारण करने की पुष्टि करदी फिर दैत्यों का इच्छानुसार रूप धारण करना गपाड़ा कैसे।

देवताओं के वाहन देव हैं ये समय २ पर अनेक रूप धारण किया करते हैं इनमें देव शक्तियां पाई जाती हैं फिर हम कैसे मान लें कि ये पक्षी हैं। इन को पक्षी मानना शास्त्रानभिज्ञता को छोड़ कर अन्य कोई दूसरा कारण हो ही नहीं सकता।

देव चरित्र ।

(१) किसी किसी सज्जन का कथन है कि देव चरित्र पुराणों में एक अद्भुत चरित्र है किसी भी देवता को कलंकित किये बिना नहीं छोड़ा । यह पुराणों की उच्च शिक्षा का आदर्श है ।

पुराणों में जिन कथाओं पर शंका हो सकती है उन समस्त कथाओं को हम नीचे उद्धृत करते हैं । कथाओं के पश्चात् उनका विवेचन लिखेंगे, पाठक ध्यान से पढ़ें ।

❁ चन्द्र तारा ❁

बृहस्पति की पत्नी तारा तथा चन्द्रमा की कथा पुराणों में इस प्रकार लिखी है—

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥
तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥
सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥
यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥
शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ।
हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥
सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥७॥
निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥८॥

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥९॥
तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥१०॥
ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥११॥
कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं नावोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥१२॥
ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१३॥
तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥१४॥

श्रीमद्भा० स्कं० ९ अ० १४

अनन्त शिर वाले विराट्पुरुष से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । उस ब्रह्मा से गुणों में पिता के समान अत्रि पुत्र हुये ।।२।। अत्रि की दृष्टि से अमृतमय चन्द्रमा पुत्र उत्पन्न हुआ । विप्र, औषधि, तारागण का पति ब्रह्मा ने चन्द्रमा को बना दिया ।।३।। उस चन्द्रमा ने तीनों भुवन का विजय किया और अश्वमेध यज्ञ करके विष्णु का यजन किया । घमंड से चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति को पत्नी तारा को छीन लिया ।।४।। गुरु बृहस्पति ने बार बार याचना की कि चन्द्र तुम हमारी पत्नी को हमें दे दो किन्तु घमंडमें चूर होकर चन्द्र ने तारा बृहस्पति को न दी इसी कारण देवता और दानवों में संग्राम उठा ।।५।। शुक्राचार्य ने बृहस्पति के द्वेष से चन्द्रमा को असुरों के पक्ष में कर लिया । शुक्राचार्य ने अत्रि से विद्या पढ़ी थी इस कारण भी गुरुसुत चन्द्रमा को अपने थोक में मिलाया ।।६।। समस्त देवगण को साथ में लेकर इन्द्र भी गुरु का पक्ष ग्रहण करके बृहस्पति की रक्षा के लिये संग्राम में उतरा । उधर दैत्यों की सेना युद्ध को कटिबद्ध थी अतएव युद्ध हुआ । इस युद्ध में देव दैत्य दोनों का ही नाश हुआ । इस युद्ध का नाम तारका संग्राम है ।।७।। अंगिरा ने इस युद्ध के रोकने

की ब्रह्मा से प्रार्थना की । ब्रह्मा ने चन्द्रमा को धमका कर गर्भवती तारा को उसके पति बृहस्पति को दे दिया ॥८॥ बृहस्पति तारा से बोले कि हमारे क्षेत्र में जो दूसरे का यह गर्भ है इसको त्यागदे त्यागदे यदि तू नहीं त्यागेगी तो मैं तुझ स्त्री को भस्म कर दूंगा, हे सति मैं संतान की इच्छा वाला नहीं हूँ ॥९॥ लज्जित तारा ने सुवर्ण सदृश कान्ति वाले कुमार को त्याग दिया । उस बालक को अति सुन्दर देखकर बृहस्पति ने बालक की इच्छा की कि इसको हम ले लें और इधर चन्द्रमा ने इच्छा की कि इसको हम लेंगे ॥१०॥ बृहस्पति बोले कि यह कुमार हमारा है । चन्द्रमा ने कहा कि नहीं हमारा है । जब वे दोनों आपस में उच्चस्वर से विवाद करने लगे तब ऋषि और देवता तारा से पूछने लगे कि यह पुत्र किसका है, लज्जावश तारा ने उत्तर नहीं दिया ॥११॥ तब लज्जित कुमार कोप करके माता से बोला कि हे असद्वृत्ते अपने आत्मा के पाप को तू क्यों नहीं कह देती ॥ १२ ॥ ब्रह्मा ने तारा को अपने पास एकान्त में बुलाया और शान्ति देकर उससे पूछा । तारा ने ब्रह्मा से कहा कि यह पुत्र चन्द्रमा का है । चन्द्रमा ने अपने पुत्र को ले लिया ॥ १३ ॥ ब्रह्मा ने इस कुमार की विलक्षण बुद्धि को देखकर इसका नाम बुध रक्खा और इसको उडुराट् बना दिया ॥ १४ ॥

यह आध्यात्मिक कथा है । जहां पर पुराण आध्यात्मिक कथा को इतिहास बनाकर वर्णन करता है उसको पुराणों ने आध्यात्मिकीय भाषा कहा है । यह आध्यात्मिकीय भाषा वेद और पुराण दोनों में ही पाई जाती है । श्रीमद्भागवत में पुरंजन की आख्यायिका अध्यात्म भाषा में ही वर्णन की थी जब समझ में न आई तब फिर उसी को इतिहास रूप में वर्णन कर दिया । जैसे पुरंजन की कथा अध्यात्म होने पर भी इतिहास रूप में वर्णन की है इसी प्रकार इस कथा को अध्यात्म होने पर भी इतिहास बद्ध किया है ।

यहाँ पर गुरु को बृहस्पति के नाम से याद किया गया है और आल्हाद युक्त शिष्य को चन्द्रमा कहा है । गुरु विद्या में रमण करता है इस कारण विद्या को गुरु पत्नी लिखा है वह साधारण नहीं है तारा है 'तारयति संसारसागरात् या सा तारा-विद्या ? संसार सागर से जो पार उतारती है उस विद्या का नाम तारा है शिष्य गुरु की विद्या को ग्रहण कर लेता है उस विद्या से शिष्य के अन्तः करण में ज्ञान पैदा होता है उस ज्ञान को यहां पर 'बुध' लिखा है । जब शिष्य को ज्ञान

पैदा हो जाता है तब उसको विद्या की आवश्यकता नहीं रहती अतएव वह विद्या फिर गुरु के पास चली जाती है यह चन्द्र तारा की कथा का आध्यात्मिक भाव है, साधारण मनुष्यों की बुद्धि में आजावे इस कारण से इसको इतिहास रूप में बद्ध करके लिख दिया ।

❁ भरद्वाजोत्पत्तिः ❁

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६ ॥
तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७ ॥
मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८ ॥
चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन्मरुतो बिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ९ अ० २०

गर्भवती भाई की स्त्री के पास छिप कर बृहस्पति मैथुन के लिये गये । मैथुन के लिये प्रवृत्त हुये, गर्भ ने निषेध किया । बृहस्पति ने गर्भ को शाप दे दिया और बृहस्पति का वीर्य स्खलित हो गया ॥ ३६ ॥ उससे उत्पन्न हुये बालक को पति के भय से त्यागने की इच्छा करनेवाली जो ममता है उससे देवताओं ने यह कहा ॥ ३७ ॥ हे मूर्खे दो से जायमान जो यह बालक है इसका तू पालन कर । ममता ने कहा कि बृहस्पति तू पालन कर । ऐसा परस्पर कहते हुये माता पिता दोनों चले गये । वह बालक पड़ा रह गया, उसका नाम भरद्वाज हुआ ॥ ३८ ॥ निरर्थक व्यभिचार होने से पुत्र को निरर्थक समझ ममता ने छोड़ दिया । पाठान्तर में पति से जो प्रथम उत्पन्न हुआ उस बालक को अपना समझ दूसरा बृहस्पति से उत्पन्न हुआ समझ कर इसको त्याग दिया । जब माता ने त्याग दिया तब मरुतों ने उसका पालन किया । मरुतों ने प्राप्त किया जो भरद्वाज वह भरत के वंश को दे दिया ॥ ३९ ॥

पुराणों पर कलंक लगाने वालों ने वेद और पुराणों के अध्यात्म विषय को नहीं समझा, जहां जहां पर पुराणों ने अध्यात्म विषय की आख्यायिका बना कर इतिहास रूप में लिखा है वहां वहां पर ही इन लोगों ने शंकायें उठाई हैं । यह कथा भी अध्यात्म कथा है उसको समझिये

ममता चित्तवृत्ति का नाम है, वह चित्त वृत्ति वास्तव में उतथ्यकी स्त्री है 'उत् ऊर्ध्वं तिष्ठतीति उतथ्यो ज्ञानम्, जो सबसे उच्च श्रेणी पर रहे उसका नाम' उत्तथ्य, है, उत्तथ्य ज्ञान को कहते हैं, उस ज्ञान की स्त्री ममता के साथ में जब गुरू का सम्बन्ध होता है अर्थात् जब वह गुरु के उपदेश को ग्रहण करती है तब उसके भरद्वाज पुत्र उत्पन्न होता है 'द्वाजं भरेति भरद्वाजः' दो से जायमान को पालन किया जाता है इससे' भरद्वाज, नाम कहा गया है । यहां' भरद्वाज, नाम कर्म काण्ड का है, ज्ञान और अज्ञान इन दोनों से मिश्रित कर्मकाण्ड है इसी से इसकानाम भरद्वाज रक्खा गया है । इस इतिहास में अध्यात्मिक भावको न समझने वाले मनुष्य केवल इतिहास को उठाकर शंका करते हैं यह उनकी भूल है ।

+ इन्द्र अहिल्या +

समस्त इतिहास हमने पुराणों से उद्धृत किये हैं किंतु इस इतिहास को हम तुलसीकृत रामायण से लिखते हैं—

एक दिन इन्द्र सुरन ते कहेऊ । मम प्रिय ते वर प्रिय कहुं लहेऊ ॥ १ ॥
देवन रवि रवि शशिहिं बतायो । अधिक अहिल्या तहं सुनि पायो ॥ २ ॥
सुनि मुनि गे तमचुर सम बानी । गौतम वपु वासव रति ठानी ॥ ३ ॥
कहेउ मर्म छल तुम्हरे गेहा । भवन आइ लखि कह वचनेहा ॥ ४ ॥
इक भगहित आयो तुम हमरे । होइँ सहसभग सब तन तुम्हरे ॥ ५ ॥
कहेउ अहिल्या तैं पविरूपा । है सब कष्ट रु हौं सुरभूपा ॥ ६ ॥
विनय सुनत बोले हरिचरणा । छुवत तोर होई निस्तरणा ॥ ७ ॥
इन्द्रस्तुति सुनि कह मुनि भाखी । धनु धुनि सुनि हुइहैं सब आंखी ॥ ८ ॥

एक दिन इन्द्र ने देवताओं से कहा कि तुमने कहीं मेरी स्त्री से अधिक रूपवती स्त्री देखी है ॥ १ ॥ देवताओं ने सूर्य का नाम बताया कि यह बातआप सूर्य से पूछो क्यों

कि वह सारे संसार को जानते हैं, तब सूर्य ने चन्द्रमा का नाम लिया तब चन्द्रमा ने इन्द्राणी की अपेक्षा अहल्या को अधिकरूपवती बताया ॥२॥ तब इन्द्र चन्द्रमा को साथ ले गौतमजी के आश्रम में गया। चद्रमा वहां जाकर मुर्गे की सी वाणी बोला, उसे सुन भोर हुआ जान मुनि स्नान करने को गंगाजी पधारे। तहाँ पीछे गौतम का स्वरूप बनाय इन्द्र ने अहल्या के साथ भोग किया ॥३॥ गंगाजी ने जाते ही गौतमजी से कहा कि हे मुनि आपके घर में छल हुआ है सो शीघ्र जाओ। तब घर पर आकर गौतम जी ने वह सब चरित्र देख कर ये वचन कहे ॥४॥ हे इन्द्र तू हमारे यहां एक भग के लिये आया है पर तेरे सारे शरीर में सहस्र भग हो जायेंगे ॥५॥ फिर अहिल्या से कहा कि तू शिला रूप होकर सब कष्ट सह ॥६॥ मुनि के वचन सुन अहल्या ने विनय किया। तब गौतमजी ने कहा कि हे पापिन ? तेरा उद्धार तो प्रभु के चरण छूते ही हो जायगा ॥७॥ फिर इन्द्र की स्तुति सुन मुनि ने कहा कि जब प्रभु धनुष तोड़ेंगे तब धनुष का शब्द सुनते ही तेरे भगों के नेत्र बन जायंगे, तब तेरा सहस्राक्ष नाम होगा ॥८॥

यह इतिहास वैदिक है। अहल्या के मिलने का इन्द्र का उद्योग करना जैसा पुराण में है वैसा ही ही वेद में है।

इन्द्रागच्छेति। गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जारेति।
तद्यान्येवास्य चरणानि तैरेवैनमेतत्प्रमुमोदयिष्यति ॥

शत० का० ३ प्र० ३ अ० ३ ब्रा० १ कं० १८

कुमारिल भट्टने अहल्या नाम रात्रि का लिखा है वह रात्रि गोतम चन्द्रमा की स्त्री है उसके पीछे जार भाव से नित्य इन्द्र नाम सूर्य दौड़ता है। अब इस कथा में क्या शंका रह गई।

योनि भेद

यदि हम इन आध्यात्मिकीय कथाओं को दुर्जनतोष न्याय से इतिहास ही मानलें तो भी देवताओं पर किसी प्रकार का कलंक नहीं लगता।

शास्त्रानाभिज्ञ लोग देवयोनि और मनुष्ययोनि को एक समझ कर मनुष्य को लगने वाले पुण्य पाप देवताओं को भी लगनेवाले समझ बैठते हैं इस अविवेक से जन समुदाय भ्रम में पड़ देवताओं को कलंकित समझने लगता है किन्तु वास्तव

में देवयोनि मनुष्ययोनि से भिन्न है प्रथम हम इसी को समझाते हैं । मनुष्य और देवताओं में बड़ा भारी अंतर है । देवता का जन्म उसी देवता के पुत्र से होता है इसको निरुक्त ने "इतरेतरजन्मान:" लिखा है । देवता खाद्य पदार्थ को नहीं खाते केवल सूक्ष्म रस का भोग करते हैं, मनुष्य खाद्य पदार्थों को खाता है । देवताओं को भूख प्यास नहीं लगती, मनुष्य को लगती है । देवता बूढ़े नहीं होते, मनुष्य बूढ़े होते हैं । देवताओं को पढ़ना नहीं पड़ता ये जन्म से ही विद्वान् होते हैं, मनुष्यों को पढ़ना पड़ता है । देवता इच्छानुसार एक या अनेक रूप बना सकते हैं मनुष्य नहीं बना सकते । मनुष्य को योग के द्वारा अष्टसिद्धियाँ मिलती हैं, देवों को यह शक्ति जन्मसिद्ध है । देवता अमर हैं, मनुष्य मरते हैं । देवताओं की विलक्षणता सिद्ध करती है कि देवयोनि मनुष्ययोनि से भिन्न है । जो कानून वेद विधि निषेध मनुष्ययोनि के लिये है वह विधि निषेध देवताओं पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता अतएव मनुष्यों के लिये जो दुष्कर्म हैं वे देवताओं के लिये दुष्कर्म नहीं हैं

× वेद पुष्टि +

वेद ने लिखा है कि—

> सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
> तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥
>
> ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४०

गर्भोत्पत्ति के समय से ही सोम देवता के प्रधान आदि कारण होने से [सोमः प्रथमो विविदे) सोमदेव कुमारी कन्या को पहले प्राप्त होता अर्थात् सब अंगों में विशेषता से प्रविष्ट होता है । (उत्तरः गन्धर्वो विविदे) उसके बाद गन्धर्व देवता विश्वावसु प्राप्त होता है । हे कन्ये (ते] तेरा (तृतीय अग्निपतिः) तीसरा अग्नि देव पति होता है और (ते) तेरा (तुरीयः मनुष्यजः पतिः) मनुष्य से उत्पन्न हुआ मनुष्य चौथा पति होता है ।

इस प्रकार के भोग में देवता को पाप नहीं लगता यह वेद सिद्ध है । अब पूछना यह है कि जब समस्त स्त्रियों का भोग करने पर देवताओं को पाप नहीं लगता तो फिर एक स्त्री के भोग से पाप लगेगा इसमें क्या प्रमाण है ।

+ भोगयोनि +

मनुष्ययोनि कर्मयोनि है और देवयोनि भोगयोनि है इस विषय में शास्त्र का विवेचन इस प्रकार है—

त्रैविद्या मां सोमपः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

श्रीमद्भगवद्गीता० अ० ९

वेदत्रयी में कहे हुये कर्म में परायण पुरुष अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा मुझको पूज कर यज्ञ शेष सोम को पीनेवाले जिनके पाप धुल गये हैं ऐसे होते हुये स्वर्ग में जाने की प्रार्थना करते हैं। वह साधक पुण्यफलरूप देवेन्द्र के लोक को पाकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं ॥ २० ॥ वह सकाम पुरुष उस बड़े भारी स्वर्ग लोक को भोग कर पुण्यफल के न्यून हो जाने पर इस पृथिवी पर आ जाते हैं इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुये काम्यकर्म को आग्रह के साथ करते हुये भोगों को चाहने वाले पुरुष आवागमन पाते हैं ॥२१॥

जिस प्रकार देवयोनि भोगयोनि है इसी प्रकार मनुष्य से भिन्न जितनी योनियां हैं सब भोगयोनियां हैं केवल मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है इस विषय में पुराण ने स्पष्ट कर दिया है —

देवः पतङ्गाः पशवश्च कीटा
भोग्याहि योनिरिति शास्त्रसिद्धम्।
मनुष्ययोनिः किल कर्मयोनि
र्निर्वाणपदवीमनया लभन्ते ॥

देव, पक्षि, पशु, कीड़े ये सब भोगयोनियां हैं केवल मनुष्य ही कर्मयोनि है। इसी मनुष्ययोनि से जीव मोक्ष को पाता है।

मनुष्ययोनि से ही मोक्ष मिलती है इसको सिद्ध करता हुआ श्रीमद्भागवत लिखता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

यह जो मनुष्य शरीर है यह आदि है और अब सहज में ही मिल गया है इसका मिलना बड़ा दुर्लभ है। यह मनुष्यशरीर क्या है संसारसागर से पार होने की नौका है। नौका भी कैसी टूटी फूटी नहीं बड़ी मजबूत और इसके ऊपर बड़ा होशियार गुरुरूप मल्लाह है। भगवान् कहते हैं कि इस नौका के चलाने में अनुकूल वायु मैं हूं ऐसा अवसर पाकर के भी जो मनुष्य संसारसागर को पार नहीं करता वह आत्महत्यारा है।

बस सिद्ध हो गया कि मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है। मनुष्य शरीर द्वारा किये हुये कर्म ही विधि निषेध में आकर पाप पुण्य के दाता होते हैं अन्य के नहीं क्योंकि अन्य योनियां केवल भोगयोनियां हैं। अर्थात् मनुष्य शरीर में किये जो सुकृत और दुष्कृत हैं उनको भोगने के लिये ही अन्य योनियां बनाई गई हैं अतएव वेद भगवान् की विधि और निषेध इन योनियों में अपना शासन नहीं कर सकता।

प्रत्यक्ष में उदाहरण देखिये गौ जाति में मातृगमन। महिषादि अनेक जातियोंमें तथा पक्षीजातियों में भगिनिगमन। बकरी हिरण बन्दर आदि जातियों में पुत्रिगमन। अश्व गर्दभादि अनेक जातियों में स्त्रीमात्र गमन प्रकृति सिद्ध है इस दुष्ट कर्म को वेद मनुष्यों के लिये निषेध करता हुआ पाप बतलाता है किन्तु पशु पक्षियों के लिये ईश्वर ने प्रकृति सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार ईश्वर आज्ञा वेद ने मनुष्य के लिये मनुष्य को मारना और मार कर खा जाना हत्या बतलाई है किन्तु शेर, चीता, तेंदु आदि हिंसक जातियों के लिये ईश्वर ने प्रकृति सिद्ध कर दिया है। बस सिद्ध हो गया कि अन्य जातियां भोगयोनियां हैं केवल मनुष्ययोनि कर्मयोनि है।

विधि निषेध का रहस्य

वेद और धर्मशास्त्र इन दोनों में ही जहां पर विधि आती है तथा निषेध आता है वहां पर मनुष्यजाति का ही ग्रहण है, देव, पशु, पक्षी आदि जातियों के लिये वेद ने न तो कोई पाप कर्म बतलाया है और न कोई पुण्यकर्म बतलाया है। पापों के प्रायश्चित्त भी मनुष्य जाति के लिये ही लिखे हैं। बुरा कर्म करने से अनिष्ट होगा तथा शुभ कर्म करने से सुख मिलेगा। अर्थात् सब प्रकार के कर्मों का फल जो वेद ने बतलाया है वह केवल मनुष्यजाति के लिये बतलाया है, अन्य जाति के लिये वेद ने कोई कर्म अच्छा बुरा या सुख दुःख का दाता नहीं बतलाया। फिर हम किस आधार पर यह समझ लें कि देवादि जातियों में किया हुआ कर्म फल देता है और उसका फल कर्म करने वाले देव, पशु, पक्षी को भोगना पड़ता है। मनुष्य अपनी अज्ञता से मनुष्य को शिक्षा देने वाले या मनुष्य को अच्छे बुरे कर्म का अच्छा बुरा फल उपदेश करने वाले वेद कानून को अन्य जाति के लिये कानून मानलें तो फिर मनुष्यों की ही मूर्खता कहें तो इसमें कोई दोष नहीं। इस विषय में हम एक उदाहरण देते हैं पढ़िये—

कल्पना करो कि एक म्यूनीसिपेलिटी ने जनता की स्वास्थ्यरक्षा के लिये यह कानून बनाया कि जो सड़क पर पुरीषोत्सर्ग करेगा या पेशाब करेगा तो वह इस कानून के अनुसार दण्डनीय होगा। इस कानून के देखने से यह साधारण मनुष्य को भी ज्ञान हो जाता है कि इस कानून के भंग करने वाले मनुष्य ही दण्डनीय होंगे किन्तु एक दिन १ हजरत बुद्धिके पहाड़ सड़क पर पेशाब करने बैठगये। कानिस्टेबिल ने आकर उस को पकड़ लिया। पुलिस ने उस पर कानून लगा कर मजिस्ट्रेट के यहां चालान कर दिया। मजिस्ट्रेटने इस अपराधी से पूछा कि क्या तुमने सड़क पर पेशाब किया? इसने उत्तर दिया कि जी हां। मजिस्ट्रेट ने कहा कि फिर तुमको दण्ड क्यों न दिया जावे? उसने प्रार्थना की कि यदि दण्ड दिया जावे तो समस्त अपराधियोंको दिया जावे, मुझ अकेले को दण्डक्यों दियाजावे। उस सड़कके ऊपर कितनों ही ने पाखाना फिरा कितनों ही ने पेशाब किया। इस कानिस्टेबिल ने उन सबको छोड़ दिया, केवल मुझे पकड़ लिया। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि ऐसा करने वाले और कौन कौन थे, तुम जानते हो तो लिखवादो। अपराधी ने लिखवाना शुरू किया कि दो बैल पुरीषोत्सर्ग कर

गये, दो चार गधे पेशाब कर गये, एक हाथी लीद कर गया। मजिष्ट्रेट ने कहा कि तुम यह जानते होकि यह कानून मनुष्य मात्र के लिये बना है अन्य के लिये नहीं, अतएव मनुष्य ही दण्डनीय होता है, सिद्ध हो गया कि जो कानून जिसके लिये बनता है उस कानून के तोड़ने पर वही दण्डनीय होता है। श्रुति, स्मृति रूप जो कानून है वह केवल मनुष्यों के लिये है उस के भंग करने पर मनुष्य ही अपराधी होता है फिर हम को नहीं मालूम कि मनुष्यों को मर्यादा में रखने वाली श्रौतस्मार्तविधि देवताओं के ऊपर किस प्रकार लागू होगी।

× भोगयोनि का भोग ×

कई एक सज्जन यह नहीं समझते कि भोगयोनि कहते किसको हैं। इसको न समझ कर अनेक प्रकार की शंकायें किया करते हैं–(१) एक मनुष्य ने कहा कि एक बैल किसी वृक्ष से बँधा था उसने झटका मारा, रस्सा टूट गया, बैल खेत को चल दिया, खेत में जाकर हरे हरे पेड़ों में पके हुये नाज को खाने लगा, बैल का पेट भर गया। बैल ने रस्सा तोड़ना, चलना, खाना रूप कर्म किया उसका फल पेट भरना था, भर गया, फिर कर्मफल कैसे नहीं मिलता। (२) एक शेर ने एक मनुष्य को मार कर खाया, खाते हुये शेर के गोली मार दी। यदि शेर मनुष्य को मार कर न खाता तो वहां क्यों ठहरता। उस ने मनुष्य को मारा फिर खाने लगा इसी कारण ठहरना पड़ा, ठहरने के कारण दूसरे मनुष्य ने गोली मारदी। यह कर्मफल नहीं हुआ तो क्या हुआ। (३) एक गधा किसी किसान के खेत में हरे हरे गेहूं के पेड़ खाने को घँस गया इतने में किसान आ गया। किसान ने गधे के पैर में जोर से लट्ठ मारा, गधे का पैर टूट गया। न गधा खेत में जाता, न यह दशा होती। टांग टूटना खेत में जाने रूप कर्म का फल है। (४) एक कुत्ते ने एक मनुष्य को काट खाया, वह मनुष्य मर गया, उस मनुष्य के भाई ने गुस्से में आकर एक लाठी मारी, कुत्ते की कमर टूट गई। दुःखित कुत्ता पन्द्रह दिन तक चिल्लाता रहा, फिर मर गया। यदि वह मनुष्य को न काटता तो फिर इतना कष्ट भोग कर क्यों मरता, यह मनुष्य के काटने का फल है। फिर हम कैसे मानलें कि भोगयोनियों को कर्मफल नहीं मिलता।

उत्तर—भोगयोनि के कर्म का निर्णय इस प्रकार है कि (१) पूर्वजन्म से शुभाशुभ कर्म जो इस शरीर के लिये लाता है उसको भोगता और इस शरीर में जो कर्म करता है उसको भी इसी शरीर में भोग डालता है अन्य शरीर के लिये गठरी नहीं बनाता। इसका उदाहरण यह है कि एक शेर ने अपने जीवन में दो मनुष्य, बीस भैंस और पचास बकरी मार खाई और वह मृत्यु आने पर मर गया। अब वह जीव शेरशरीर के किए हुए कर्म का फलभोक्ता नहीं है। (२) वेद में मनुष्यों को विधि निषेध द्वारा कर्मफल का प्रमाण बतलाया है उस प्रमाण से इसको दण्ड नहीं मिलता। कहीं कहीं पर हलके (छोटे) कर्म पर भयंकर फल मिल जाता है और कहीं कहीं पर भारी कर्म पर थोड़ा दण्ड मिलता है तथा कई एक स्थान में भयंकर कर्म करने पर बिलकुल ही दण्ड नहीं मिलता। इसका उदाहरण यह है—एक बैल ने एक मनुष्य को उठा कर फेंक दिया, मनुष्य मर गया, बैल-वाले को गुस्सा आया, बैल के दो चार लाठी मार दीं। कर्मफल तो अवश्य मिला किन्तु मनुष्यवध का जितना दण्ड शास्त्र ने लिखा है उतना नहीं मिला। कल्पना करो कि एक घोड़े ने एक अंग्रेज के लात मारी, उस अंग्रेज ने गोली मार दी, घोड़ेवाले को रुपये देदिए। यहां पर अंग्रेज के चोट थोड़ी लगी घोड़े को दण्ड विशेष मिला। एक भैंसे ने मनुष्य को उठा कर पटक दिया, वह मनुष्य मर गया, भैंसा भाग गया। मनुष्यों ने घरवालों को समझाया कि इसका मृत्यु ऐसा ही लिखा था। घर वालों ने भैंसे से कुछ न कहा, यहां बिलकुल ही दण्ड न मिला। इत्यादि अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध है कि भोगयोनि में शास्त्रानुकूल विधि निषेध नहीं है और शास्त्रानुकूल दण्डका विधान नहीं है तथा भोगयोनि में किए हुए कर्म का फल उसी शरीर में भोग लिया जाता है, भावी शरीर के लिये शेष नहीं रहता यह भोगयोनि का लक्षण है।

कई एक मनुष्य यह कह उठावेंगे कि दूसरा उदाहरण ठीक नहीं है। दूसरे उदाहरण में जो कर्म की अपेक्षा न्यूनाधिक दण्ड बतलाया है लालच या प्रेम या असावधानी पुलिस और अदालत की होने पर ऐसा मनुष्यों में भी हो जाता है। इसका उत्तर यह है कि मनुष्ययोनि में राजकीय दण्ड की प्रधानता नहीं है किन्तु ईश्वरीय दण्ड की प्रधानता है। यदि राजकीय दण्ड के मिलने में ठीक कर्मफल

भोग न हो तो ऐसी अवस्था में ईश्वरीय दण्ड से कर्मफल का भोग होता है। यह नियम भोगयोनि में नहीं है केवल कर्मयोनि में है।

जो नियम पशु पक्षी आदि भोगयोनियों में है वही नियम देवताओं में है। यम, वरुण, वायु, अग्नि, वृहस्पति, चन्द्रमा, वसु, विश्वेदेव आदि जितने भी देवता हैं इनको किसी भी कर्म का फल नहीं मिला। इन्द्र ने कई एक अश्वमेध शत का भंग किया। इन्द्र पद छीनने के भय से अनेक तपस्वियों का तप भंग किया। दिति के गर्भ में धंस कर इन्द्र ने उसके गर्भ के टुकड़े २ कर डाले (यह कथा श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कंध के अट्ठारवें अध्याय की है) तो भी इन्द्र को कोई पाप नहीं लगा। हां इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप अवश्य लगा है और दो बार लगा है। प्रथम हम पहिली ब्रह्महत्या की कथा लिखते हैं पाठक अवलोकन करें—

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः।
संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये॥
भूम्यम्बु द्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः॥ ६
भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै।
ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते॥ ७
तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः।
तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते॥ ८
शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः।
रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते॥ ६
द्रव्यभूयो वरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम्।
तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन्॥१०

षष्ठ स्कं० अ० ९

यद्यपि इन्द्र ईश्वर है, देवराज है, उसको कोई हत्या (पाप) नहीं लग सकता तो भी इन्द्र ने अपनी इच्छा से उस ब्रह्महत्या को अंजलि से स्वीकार कर लिया और एक वर्ष पर्यन्त वैसे ही रह कर सम्वत्सर के अन्त में लोक निन्दा को दूर करने के निमित्त उसने वह ब्रह्महत्या भूमि, जल, वृक्ष और स्त्रियों को चार भाग

कर बांट दी ॥ ६ ॥ उस समय 'यदि मेरे ऊपर खोदा हुआ गड्ढा आप ही भर जायगा तो मैं ब्रह्महत्या का चतुर्थ भाग ग्रहण करूंगी' ऐसा कह कर उस वरदान के साथ भूमि ने चतुर्थभाग ग्रहण किया। उस ब्रह्महत्या का स्वरूप भूमि के विषे खारी मृत्तिका में ऊसर रूप से दीखता है वहां अध्ययन आदि करने का निषेध है ॥ ७ ॥ तथा 'काटने पर फिर अंकुर उत्पन्न हो' ऐसा वरदान मांग कर वृक्षों ने ब्रह्महत्या का दूसरा भाग ग्रहण किया वह ब्रह्महत्या का स्वरुप उन वृक्षों में गोंदरूप से दीखता है इस कारण वृक्षों के गोंद को न खाना चाहिये ॥८॥ वैसे ही गर्भ को पीड़ा न हो और प्रसूतिकाल में पुरुषसे निरन्तर सम्भोग हो यह वरदान मांग कर स्त्रियोंने ब्रह्महत्या का चौथा भाग ग्रहण किया। वह पातक स्त्रियों में प्रत्येक मास में रजोरूप से दीखता है इस कारण ही उस समय उनका संग आदि न करे ॥९॥ तथा "दूध आदि में अपने को मिलाने पर उन पदार्थों की वृद्धि हो" ऐसा वर मांग कर जल ने पातक का चौथा भाग ग्रहण करा। वह पातक बुलबुले और झाग रूप से जल में दीखता है। इस कारण बुलबुले और झाग आदि को जल से बाहर निकाल कर उस जल में स्नान आदि कर्म करे तो वह जल पापों का नाश करता है ॥१०॥ यह विश्वरूप का बध है। विश्वरूप माता के कहने पर यज्ञ में दैत्यों के नाम की भी आहुति देने लग गया था इसको इन्द्र ताड़ गया। इन्द्र ने इसी अपराध में विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले और इस हत्या को चार जगह बाँट दिया।

विश्वरूप के मरने पर उसके पिता त्वष्टा को बड़ा दुःख हुआ। उसने यज्ञ किया। यज्ञ में आहुति दी कि इस अग्नि में से एक ऐसा पुरुष उठे जो इन्द्र को मारे। आहुति देते समय "इन्द्र शत्रुः" इस पद में स्वर का व्यत्यय हो गया जिसका अर्थ हुआ कि इन्द्र है मारने वाला जिसका। उस अग्नि से वृत्र उठा, इन्द्र ने संग्राम में उस वृत्रासुर को मार डाला, वृत्रहत्या इन्द्र के पीछे दौड़ी, इन्द्र डर कर भागा। कहीं भी सुख नहीं मिला। लाचार इन्द्र मान सरोवर के कमल की डंडी में सहस्रों वर्ष छिपा रहा। इन्द्र अग्निदूत है अर्थात् अग्नि का दिया यज्ञभाग खाता है वहां अग्नि यज्ञभाग न पहुंचा सका। इसके पश्चात्—

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत
ऋतंभरध्याननिवारिताघः।

पापस्तु दिग्देवतया हतौजा
स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

श्रीमद्भा० ष० स्कं० अ० १३

तदनन्तर ब्राह्मण के वचन से बुलाये हुये वह इन्द्र स्वर्ग लोक को गये, वह पहिले ही सत्यलोक के पालक श्री हरि के ध्यान से निष्पाप हो गये थे और ईशान दिशा में रहने वाले रुद्र देवता से निर्बल करा हुआ उनका वह ब्रह्महत्यारूप पाप, मानसरोवर में रहनेवाली लक्ष्मी के रक्षा करे हुये उस इन्द्र का तिरस्कार करने को समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ इन्द्र ने आकर अश्वमेध यज्ञ किया, इन्द्र निष्पाप हो गया, सिंहासन पर बैठ गया।

विश्वरूप की हत्या का फल इन्द्र को भोगना नहीं पड़ा। वह चार जगह बँट गई किन्तु वृत्रासुर की हत्या ने इन्द्र को बहुत कष्ट पहुँचाया। इसमें बड़ी बड़ी विलक्षणता हैं–(१) तो वृत्रासुर का मरना ही इन्द्र से सिद्ध हो गया था। (२) उसने देवताओं को भयंकर पीड़ा दी। संसार को दुःख पहुंचाने वाले आततायी के बध का दोष नहीं होता (३) इन्द्र ने वृत्र को संग्राम में मारा है संग्राम भी वह भयंकर कि इस युद्ध में इन्द्र को नानी याद आगई। ऐसे युद्ध में इतने प्रबल शत्रु को मारना वेदादि सच्छास्त्रों से कभी पाप हो नहीं सकता। (४) इन्द्र सामर्थ्यवान् है वह चाहता तो ब्रह्महत्या अपने ऊपर न लेता यह मूल " ब्रह्महत्या मंजलिना जग्राह यदपीश्वरः" से स्पष्ट है कि वह ईश्वर है, उस को ब्रह्महत्या नहीं लग सकती किन्तु उसने अपनी इच्छा से ली है इस के ऊपर श्री मद्भागवत के टीका कार श्रीधर जी लिखते हैं कि "तां वारयितुं समर्थस्तथापि जग्राह" इन्द्र उस ब्रह्म हत्या हटाने को सामर्थ्यवान् था तो भी उन्होंने ब्रह्महत्या अपने ऊपर लेली। इस से यह नहीं माना जा सकता कि देवताओं को कर्मफल भोगना पड़ता है इसमें हम अनेक हेतु दे चुके हैं, स्मरण के लिये उन को फिर उद्धृत करते हैं पाठक ध्यान से विचार करें। (१) अग्नि, वायु आदि समस्त देवताओं को कभी भी किसी कर्म का फल भोगना नहीं पड़ा। (२) इन्द्र ने सैकड़ों शताश्वमेधों का भंग कर दिया, सहस्रों तपस्वियों के तप भंग किये। गर्भ में ही वायु को काट डाला, किसी भी कर्म का फल इन्द्र को न

लगा । (३) निःशस्त्र विश्वरूप को यज्ञ करते में मारा उसकी हत्या जो अधिक लगनी चाहिये थी, कम लगी तथा उसको चार भागों में बांट दिया और इन्द्र ने उसका फल भी नहीं भोगा । (४) वृत्र से त्रिलोक पीड़ित था, वृत्र आततायी था, उस प्रबल शत्रु की हत्या कभी नहीं लगनी चाहिये थी, क्योंकि शास्त्र में संग्राम में युद्ध प्रवृत्त सन्मुख खड़े शत्रु का मारना पाप नहीं है। इस की हत्या अधिक लगी । (५) श्रीमद्भागवत में लिखा है कि इन्द्र चाहता तो ब्रह्म हत्या न लेता किन्तु इन्द्र ने अपनी इच्छा से उस को ले लिया । बस सिद्ध हो गया कि इन्द्र को ब्रह्महत्या नहीं लगी ।

इन्द्र ने ब्रह्महत्या को जो स्वयं स्वीकार किया है इसका कारण यह है कि अश्वमेधादि यज्ञ करते हैं मनुष्य और उन अश्व मेधादि यज्ञों में इन्द्रको मिलता है भाग तथा मनुष्यों में ब्रह्महत्या है महापातक । इन्द्र घबरा गया कि कहीं ऐसा न हो कि मनुष्य ब्रह्महत्यारा समझ कर हम को यज्ञभाग से बहिष्कृत करदें । यदि इन्द्र को कर्मफल लगता होता तो यज्ञध्वंस तथा तामभ्रंश वायु बध का भी लगता । फिर इससे भिन्न किसी भी देवता को आज तक किसी भी कर्म का फल नहीं लगा है अतएव देवयोनि भोगयोनि है और भोगयोनि के किये हुये कर्म का फल कभी लगता नहीं इस नियम के अनुसार इन्द्र को अहल्या गमन चन्द्र को गुरुपत्नी गमन, बृहस्पति को ममता गमन का पाप नहीं है परस्त्रीगमन का पाप वेद धर्मशास्त्र ने केवल मनुष्यों के लिये बतलाया है, भोगयोनि के लिये कोई भी कर्म पाप पुण्य नहीं है । फिर हम कैसे मान लें कि देवचरित्र भ्रष्ट है इसको तो केवल वही मानेंगे जिन को कर्मयोनि और भोगयोनि का ज्ञान नहीं है ॥

कई एक सज्जनों का कथन है कि यदि ऐसा है तो फिर गौतम ने इन्द्र को शाप क्यों दिया ?

उत्तर—बृहस्पति ने चन्द्रमा को शाप नहीं दिया और ममता के भोग से बृहस्पति को भी शाप नहीं हुआ केवल गौतम ने इन्द्र को शाप दिया है क्योंकि मनुष्य योनि में यह पाप है और इससे मनुष्य कलंकित होता है । गौतम की धर्मपत्नी अहल्या यदि व्यभिचारिणी हो तो इसका पाप कुछ न कुछ गौतम को भी लगता है अतः गौतम को क्रोध आया और उसने शाप देदिया । अहल्या और इन्द्र जब

गौतम के पैरों में गिर गये तब गौतम ने उनके शाप को वर बना दिया। अब हम कैसे मान लें कि शाप कर्म फल है। बुरे कर्म पर केवल हाथ जोड़ने से बरदान हो नहीं सकता। कर्म का भोग हुये बिना कभी छुटकारा हो नहीं सकता यहां इन्द्र ने व्यभिचार कर्म का फल भोग किया ही नहीं। सिद्ध हो गया कि शाप कर्मफल के प्रमाण से नहीं होता किन्तु क्रोध से होता है। अब यह सभी को मानना पड़ेगा कि देवयोनि के कानून के अनुसार कोई भी देवता पाप नहीं करता अतएव वे चरित्र भ्रष्ट नहीं हैं।

ईश्वरसत्ता

कोई सज्जन कह उठाता है कि इन पुराणों में ईश्वरसत्ता का बड़ा लम्बा चौड़ा वर्णन है। प्राचीन समय में इन बातों को चाहे कोई स्वीकार कर लेता परन्तु वर्तमान समय में जब कि संसार में साइन्स का दिवाकर उदय हो गया है इन पोच सिद्धान्तों को कोई भी मानने को कटिबद्ध नहीं है।

उत्तर—वास्तव में वर्तमान समय में प्राय: मनुष्य अपने उद्धार का ध्यान ही नहीं करते उनको ईश्वर की उपासना और भक्ति से कोई प्रयोजन नहीं। धीरे धीरे इतनी उन्नति कर गये हैं कि अब उनको ईश्वरसत्ता में भी सन्देह हो गया है इस सन्देह को मिटाना उनको कभी स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। आजकल के मनुष्य केवल स्वतंत्रता तथा सुख और आधुनिक ज्ञान इन तीन बातों को ही जानना चाहते हैं इनसे आगे एक पद भी बढ़ना नहीं चाहते।

प्रत्येक मनुष्य आज चाहता है कि मैं स्वतन्त्रता ग्रहण करूं, मुझे सुख मिले और मैं ज्ञानी बनूं। मनुष्य चाहे किसी मत का हो इन तीन चीजों की फिक्र में हमेशा रहता है, प्रत्येक लड़का जो पाठशाले में पढ़ने जाता है रविवार का दिन अंगुलियों पर गिना करता है, लड़का ही नहीं बल्कि आवे हुये रविवार को देख कर मास्टर भी आनंन्दित होते हैं शनिवार से ही उसकी प्रतीक्षा होने लगती है, दफ्तर के क्लर्क भी इतवार के इन्तजार में रहते हैं, इतना ही नहीं किन्तु बिना किसी वजह के मजिस्ट्रेट भी फूले नहीं समाते। क्यों क्या बात है, छुट्टी के दिन से इतना प्रेम क्यों? उत्तर यह है कि यह दिन इनकी स्वतंत्रता का है। तोता को पिंजरे से निकाल दीजिये फ़ौरन उड़ जावेगा, गौ के बछड़े को खूंटी से खोलिये कितना प्रसन्न होकर कूदता है क्यों क्या बात है स्वतंत्रता मिली है। अपराधी सैकड़ों उपाय कर और हजारहां रुपया खर्च कर अपील करता है इस गर्ज से कि सजा न हो सजा में स्वतन्त्रता जाती रहती है। शराबी की सब लोग निन्दा करते हैं और शास्त्रों में तो इसको महापातकी लिखा है इसके अलावा घर का रुपया भी जहन्नुम को जाता है, नशे में चलते फिरते समय चोट भी लग जाती है, मोरी में पड़े हैं और कुत्ता मुंह पर मूत रहा है, पुलिस का कान्सटेबिल पकड़ ले जाता है

इतने पर भी शराब नहीं छोड़ते क्यों इस के नशे में कुछ स्वतन्त्रता की लहर आती है। हाय स्वतन्त्रता, प्यारी स्वतन्त्रता, चाहे सर्वस्व जाता रहे परन्तु स्वतन्त्रता मिले सब जगत स्वतन्त्रता का प्यासा पड़ा है किन्तु स्वतन्त्रता रांड के नखरे का ठिकाना ही नहीं, इसका पता ही नहीं चलता कि यह है कहां आप समझते होंगे कि कैदी तो परतंत्र है लेकिन अदालत के आफीसर स्वतन्त्र हैं किन्तु आप का यह विचार गलत है जरा उनसे भी तो दर्याफ्त करें वे फौरन कह देंगे कि पिता की मृत्यु में तो घर नहीं जा सके फिर क्या खाक स्वतन्त्र हैं, यदि कुछ स्वतन्त्रता है तो गवर्नमेंट को है। गवर्नमेंट से जब पूछेंगे तो यही उत्तर मिलेगा कि हमसे तो अदालत के आफीसर ही स्वतंत्र हैं जिनकी कुछ भी जिम्मेदारी नहीं, टाइम पर काम बजाया कि बेफिकर, यहां पर तो मारे फिकर के दिन भर खाना तक भी अच्छा नहीं लगता, हमको कभी स्वप्न में भी स्वतन्त्रता नहीं मिलती अगर स्वतन्त्रता हो तो बादशाह को चाहे अजे हो। जब आप प्रजापालक बादशाह के पास जाकर स्वतन्त्रता का प्रश्न पेश करेंगे तो फौरन यही उत्तर मिलेगा कि यहां पर प्रजा के प्रबन्ध का विचार ही पूरा नहीं होता तुम्हें स्वतन्त्रता की पड़ी है यदि मैं स्वतंत्र ही होता तो क्या फलां गवर्नमेंट से सन्धि करता, यहाँ तो स्वतंत्रता का नाम भी तुम्हारे ही मुख से सुना है यदि तुमको स्वतंत्र मनुष्य की तलाश है तो मैं बतलाता हूँ, किसान स्वतंत्र है दिन में हल जोतता है और रात को वह घर्राटे की नींद लेता है कि जो बादशाहों को मिलना असम्भव है। लीजिये इतना खोजने पर भी स्वतंत्रता का पता नहीं चलता, पूर्ण स्वतंत्रता कहीं भी नहीं मिलती, हां अलबत्ते यह हो सकता है कि कैदी की अपेक्षा आफीसर स्वतंत्र और आफीसरों की अपेक्षा गवर्नमेंट गवर्नमेंट की अपेक्षा शहनशाह किंतु पूर्ण स्वतंत्र शहनशाह भी नहीं यह तो स्वतंत्रता की कथा है।

अब सुनिये सुख का समाचार—प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि मैं सुखी रहूँ, मुझे सुख मिले। आज संसार में जितने काम हो रहे हैं सबका प्रयोजन सुख ही है। एक किसान खेत में खाद (पांस) डाल कर जान तोड़ कर जोतता है बोता है, उसके रखाने के लिये जाड़े की ठंढी रात में उसी खेत पर सोता है क्यों यह क्या बात है? कुछ नहीं, केवल सुख की आशा है। सुख के लिये एक जवान घर से जाकर पल्टन में नौकर होता है, अपना सिर भी बेच डालता है। आज भी

संसार में रेल, तार, टेलीफोन, ट्राम्बे, मोटर, हवाई जहाज बन रहे हैं और अनेक प्रकार की मशीनें आविष्कृत हो रही हैं इन सबका प्रयोजन सुख प्राप्ति है। हाय सुख, प्यारे सुख तू कहाँ है किस कोठरी में छिप गया, आज तेरी तलाश में सारा संसार अग्रसर है, मनुष्य ही नहीं किन्तु पशु पत्नी भी तेरे लिये हैरान हो रहे हैं परन्तु तेरे दर्शन नहीं होते। इतनी खफगी, इतनी नाराजगी। प्यारे सुख आंखों के सामने आ और अपने मुखड़े को दिखादे, इस चिल्लाहट पर भी सुख नहीं सुनता। जैसे जैसे संसार सुख की खोज में फिरता है सुख भी वैसे ही दूर भागता चला जारहा है। भारतवर्ष में प्रचीन समय में बैलगाड़ी या घोड़ों के द्वारा मार्ग तै होता था उसमें किञ्चत् सुख नहीं मिलता था, समय अधिक व्यय होता था, तथा रुपये का खर्च भी अधिक था अतएव यह सवारी दुःख का कारण समझी जाती थी। इसके बाद घोड़ागाड़ी चली इस से रास्ता कम समय में तै होता था। इस को देख कर मनुष्य बड़े आनन्दित हुये और कहने लगे कि यह बहुत ही सुख हुआ जो घोड़ा गाड़ी चल पड़ी। इस के थोड़े दिन बाद रेल भगवती की कृपा हुई इसको देख कर मनुष्यों को बड़ा ही आनन्द हुआ घर घर में यही चर्चा सुनाई देती थी कि अब बड़ा भारी सुख हुआ, घोड़ा गाड़ी में तो बड़ा दुःख था, दाम के दाम अधिक लगते थे और शरीर व कपड़ों में धूल भर जाती थी, चलने के समय खड़खड़ शब्द होने से किसी की बात सुनाई न देती थी, अब रेल द्वारा महीनों का मार्ग दिनों में कट जाता है। इस के अनन्तर रेलवे कम्पनी ने मेलट्रेन (डाकगाड़ी) चलाई, इसको देख कर संसार का मन और भी प्रफुल्लित हो गया जिसे देखो यही कहता है कि पैसेंजर क्या है छकड़ा है जिस स्टेशन पर देखो उसी पर घण्टा भर खड़ी रहती है, गर्मी के मारे प्राण घुटने लगता है गाड़ी क्या है यमराज का जेल है, यदि कुछ सुख है तो डाकगाड़ी में है। हाय सुख वास्तव में तू अब तक प्राप्त नहीं हुआ अब भी यह तरकीब सोची जा रही है कि कोई ऐसी तरकीब निकल आवे जिससे हावड़ा से बम्बई तक का मार्ग पांच घंटे में ही कट जावे परन्तु प्यारे सुख तू तो तब भी न मिलेगा जब कि एक मिनट में १०० मील चलने वाली भी ट्रेन आविष्कृत हो जावेगी। आप सारे संसार को छान डालिये, नये से नये आविष्कार कीजिये, पर सुख का पता नहीं लगेगा। किसी

से भी पूछिये अपने को सुखी न कहेगा। यदि आप किसी गाँव में जाकर एक काश्तकार से पूछें कि क्यों भाई आप सुखी हैं, उत्तर मिलेगा कि हम करते करते मरे जाते हैं हमें सुख कहां, हां अगर सुखी है तो हमारे गांव का पटवारी है जिसे सरकार से तनख्वाह मिले, हम लोगों से फसलाना ले और मजे में हुकुम चलावे। अब चलिये पटवारी के पास वह क्या कहता है उससे सुख का प्रश्न करने में उत्तर मिलता है कि हम सुखी कैसे, तीन रुपये का तहसील का चपरासी भी हमारे ऊपर हुकूमत करता आता है, आज तहसीलदार की आमद है तो कल डिप्टी की, परसों कानूनगो की, उपरोक्त सज्जन तो अपने अपने घोड़ों पर सवार रहते हैं पीछे से एक गधे का बोझ लिये मुझे दौड़ना पड़ता है, खेतों में घूमते घूमते नाक में दम है, प्राण निकलता है, मुझसे तो डाक का हलकारा ही अच्छा जो तीन ही कोस आता है मुझे तो कठोर बंजर में घूमते दौड़ते पाँच कोस से भी अधिक पड़ जाता है, फिर भला मैं कैसे सुखी हो सकता हूँ, हां अगर सुखी होगा तो मेरे हलके का कानूनगो होगा। कानूनगो से पूछिये तो कहते हैं कि कैसा सुख, कर्म के भोग भोग रहे हैं, चक्की पीसते पीसते नाक में दम आगया काम खतम ही नहीं होता, हमसे तो पटवारी ही भला जो घर बैठे अपने कागजात की खानापुरी कर लेता है। सच तो यह कि कानूनगो का उहदा तो ऐसा हो गया है कि मजदूरी करके खा ले परन्तु यह नौकरी न करे। हाँ, अगर सुखी हैं तो तहसीलदार साहब, जो कई एक कागजात पर दस्तखत करके मजे में बैठे हैं। लीजिये कानूनगो ने तहसीलदार को सुखी बताया तहसीलदार मजिस्ट्रेट को कहेंगे, मजिस्ट्रेट लाटसाहब को कहेंगे, लाटसाहब बादशाह को, बादशाह भी अपने को पूर्ण सुखी न कह कर दूसरे पर इशारा करेंगे लेकिन पूर्ण सुखी कोई भी न मिलेगा। यह सही है कि पटवारी की निस्बत कानूनगो और कानूनगो की निस्बत तहसीलदार इसी तरह से बादशाह विशेष सुखी होंगे परन्तु पूर्ण सुख न पटवारी को, न बादशाह को। यदि बादशाही में पूर्ण सुख होता तो भर्तृहरी जैसे चक्रवर्ती राजा राजसिंहासन पर लात मार कर बन को न जाते, सुख की कथा आप सुन चुके।

अब ज्ञान की चर्चा चलती है—प्रत्येक मनुष्य की इच्छा है कि मैं ज्ञानी बनूं, मुझे ज्ञान मिले, हाय ज्ञान हाय ज्ञान। लड़का मदर्से से जाता है और जब

टां टां करता है इतने पर भी मास्टर मारता है, लड़का फीस भी कुछ देता है और मार भी खाता है, कभी कभी जुर्माना भी देना पड़ता है परन्तु मदर्से को नहीं छोड़ता-क्यों, इस वजह से कि वहां इसको ज्ञान मिलता है। जिस समय रेलगाड़ी स्टेशन के करीब आती है, ड्राइवर और गार्ड स्टेशन की ओर टकटकी लगाये देखते हैं और जब तक झंडी वाला झंडा नहीं दिखाता बराबर देखते ही रहते हैं, क्यों हीं झंडी के दर्शन हुये कि चुपचाप गाड़ी पर बैठ गये, क्या हुआ, पहिले क्यों तड़पते थे अब क्यों चुपचाप बैठ गये, कारण यह है कि झंडी से गाड़ी की चाल का ज्ञान मिल गया। बच्चा जिस चीज को देखता है फौरन प्रश्न करता है कि बाबू ? यह क्या है, एक ही चीज को नहीं पूछता आप बच्चे को अजायबघर में ले जाइये फिर उसके सवालात का मजा देखिये कि जब तक आप एक प्रश्न का उत्तर न दे सकेंगे कि दूसरा तैयार है। यह छोटा सा बच्चा आपके नाक में दम कर देगा, आप जवाब देते २ थक जावेंगे किन्तु बच्चा सवाल करने में न थकेगा, क्यों कि बच्चा चाहता है कि मुझे संसारी चीजों का ज्ञान हो। बाजार में जब लड़ाई होते देखते हैं तो सैकड़ों-बाज बाज मौके पर हजारों-मनुष्य एकत्रित हो जाते हैं और बार बार यही पूछते हैं कि लड़ाई क्यों होती है, हालांकि जिससे ये पूछते हैं वह भी इसको नहीं जानता और पूछनेवालों को कोई प्रयोजन भी नहीं परन्तु इतने पर भी प्रश्न पर प्रश्न करते हैं क्योंकि ज्ञान का अधिकरण आत्मा है, आत्मा ज्ञान चाहता है। एक दोस्त जब अपने दोस्त से मिलता है तो वह प्रश्न करता है कि आज आप क्या करते रहे। अगर वह यह कह दे कि हम अमृतबाजारपत्रिका देखते थे तो बस कम्बख्ती आ गई, मगज चाट जावेंगे और यही कहेंगे कि कोई ताजी खबर सुनाओ। यद्यपि वह ताजी खबर घण्टा भर के बाद पुरानी हो जावेगी परन्तु उसका पिण्ड न छोड़ेंगे पिण्ड जभी छूटेगा जब यह कहा लेंगे कि इसमें कोई और ताजी खबर न थी। यह बात क्या है बात वही है कि घर बैठे संसार का ज्ञान चाहते हैं प्रत्येक मनुष्य अपने आत्मा को ज्ञानी बनाना चाहता है। यह बात दूसरी है कि पुराने समय में विज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) की शिक्षा पाते थे और इस समय में प्राकृत ज्ञान की शिक्षा पाते हैं। यह भी बात भिन्न है प्रथम ब्रह्म की प्राप्ति के लिये और अब नौकरी के लिये ज्ञान है। लेकिन संसार में रात दिन ज्ञान की तरक्की हो रही है परन्तु इतने पर भी दुनियां में कोई पूर्ण ज्ञानी नहीं है। गर्ज यह है कि संसार में न तो कोई पूर्ण स्वतन्त्र है

और न कोई पूर्ण सुखी है और न कोई पूर्ण ज्ञानी है फिर यह अधूरी अधूरी तीनों चीजें कहां से आईं। इनके आने के लिये इनका कोई भण्डार मानना पड़ेगा क्योंकि साइंस का सिद्धान्त है कि जिस चीज को अधूरी देखो उसका भंडार मानो। जिसमें से यह चीज आई है, इनका जो भंडार है उसीका नाम ईश्वर है।

इसको फिर दूसरे प्रकार से समझिये—एक मनुष्य ने किसी जमीन के टुकड़े में एक बट के बीज को गाड़ दिया उसमें से अंकुर निकल कर शनैः शनैः पचास वर्ष के पश्चात् उस बट का एक ऐसा वृक्ष बन गया कि जिसने बीघा भर पृथ्वी को घेर लिया। यहां पर प्रश्न यह है कि वह बट का बीज तो सरसों के दाने से भी बहुत छोटा था उस बीज में से इतना बड़ा वृक्ष कैसे निकल पड़ा। इसके उत्तर में विज्ञानवेत्ताओं का यह सिद्धान्त है कि उस बट बीज के भीतर से ही इतना स्थूल वृक्ष नहीं निकला किंतु बट बीज में से निकले हुये अंकुर ने पृथ्वी, तेज, अप, वायु, आकाश इन पाँच तत्वों को खींच कर अपने रूप को स्थूल रूप बनाया। प्रश्न यह उठेगा कि यह पांच तत्व उसमें कहां से आ गये। उत्तर उसका यह होगा कि यह पाँच तत्व अपने अपने भण्डार से आकर वृक्ष में मिल गये। मिट्टी तत्व अपने भण्डार पृथ्वी में से आया। जल तत्व अपने भण्डार सर्वव्यापक जल में से आया और इसी प्रकार तेज, वायु, आकाश अपने भण्डार तेज, वायु, आकाश में से आकर इस वृक्ष में मिल गये। प्रश्न यह होगा कि वृक्ष के नष्टहोने पर ये तत्व कहां जावेंगे। इसका उत्तर यह है कि सब अपने अपने भण्डार में चले जावेंगे। उदाहरण में इस प्रकार समझिये कि एक वृक्ष को काट कर किसी मनुष्य ने उसको फूंक डाला, जलते समय उसका कुछ भाग हाईड्रोजन आदि होकर जल' अग्नि, वायु आकाशमें मिल गया शेष भाग राख होकर पृथ्वी में मिल गया। इस दृष्टान्त से यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गई है कि समस्त चीजें अपने अपने पूर्ण भन्डारों से आती है और समाप्ति पर अपने अपने उन्हीं पूर्ण भण्डारों में जाकर मिल जाती हैं। वृक्ष के बनने में पाच तत्व अपने अपने भण्डारों से आये किन्तु सुख दुःख का अनुभव करनेवाली ज्ञानशक्ति जो वृक्ष में विद्यमान है यह कहाँ से आई कहना पड़ेगा कि यह ज्ञानशक्ति ज्ञान के पूर्ण भण्डार से आई। बस हमारा यही तो कहना है कि ज्ञानशक्ति का जो पूर्ण भण्डार है वही ईश्वर है।

किसी किसी सज्जन का यह भी कथन है कि सुखदुखका अनुभव करने वाली

ज्ञान शक्ति ही वृक्ष में नहीं है इसका उत्तर हम यही देंगे कि यह प्रश्न यदि आजसे बीस वर्ष पहले उठता तो इसकेसमाधानमें शास्त्रों के प्रमाण तो हम सेकड़ों दे सकते थे किन्तु प्रत्यक्ष में तोषदायक हमारे पासकोई उत्तर नहीं था किन्तु वर्तमान समय जब कि भारत के विज्ञानमूर्ति जगदीशचन्द्र बोस ने अपने आविष्कृत यंत्रों से वृक्षों का सोना, जागना, रुग्ण, निरोग होना सिद्धकर दिया है फिर सुख दुःख के अनुभव करनेवाले वृक्षों के ज्ञान में क्या सन्देह रहगया यदि इतने पर भी किसी को तोष न हो तो वृक्षके स्थान में मनुष्य को ही उदाहरण में ले लेना चाहिये। एक बिन्दु वीर्य से पञ्चतत्वोंकी सहायता पाकर साढ़े तीन हाथ का मनुष्यशरीर बन जाता है और फूँक देने पर सब तत्व अपने अपने तत्वों में मिल जाते हैं इससे यह सिद्ध हो गया कि समस्त तत्व अपने अपने भण्डारों से आये थे और उन्हीं में जाकर मिल गये। हमने मान लिया कि तत्व तो भण्डारोंसे आयेथे किन्तुमनुष्य में जो चेतनशक्ति है वह कहाँ से आई ? तत्वों के नियम से मानना पड़ेगा कि वह अपने भण्डार से आई। बस इसी भण्डार का नाम तो ईश्वर है।

किसी किसी मनुष्य का कथन है कि चेतनात्मक शक्ति किसी भण्डारसे नहीं आती किंतु ठीक प्रमाण में पंचतत्वों के मिलने से वह स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। इसके ऊपर इतना ही कह देना तोषदायक है कि कोई शक्ति किसी समय में उत्पन्न नहीं होती और किसी शक्तिका किसी समयमें नाश नहीं होता सर्वदा प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर हुआ करता है। स्पष्ट रूप में इसको यों कहिये कि नेस्ति से हस्ति और हस्ति से नेस्ति कभी नहीं होती। गीता कहती है कि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" किसी अस्तित्व पदार्थ का अभाव नहीं होता और किसी अभावका अस्तित्व नहीं होता यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है फिर हम कैसे मान लें कि नियमित मात्रा में पंचतत्वों के मिलने से चेतनशक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि वह कहीं से आई है और पूर्व नियम के अनुसार अपने पूर्ण भण्डार से आई है इसी भण्डार को हम ईश्वर कहते हैं। यदि हम ईश्वर को न मानें तो चेतन शक्ति का आना और फिर चला जाना यह दोनों ही नहीं बनेंगे, तो चेतन शक्ति वाले प्राणी भी संसार में न होंगे इनकी सत्ता को देख कर चेतन भण्डार जगदीश्वर मानना ही पड़ेगा।

आसमान में जितने ग्रह उपग्रह तथा तारा पृथ्वी आदि मण्डल हैं वे सब

आरम्भ से आज तक बराबर घूमते हुए चले आते हैं कोई भी ग्रह अपनी कक्षा से बाहर नहीं निकलता तथा कोई भी ग्रह किसी ग्रह से कभी टकराता नहीं। ग्रह जड़ हैं इनमें ज्ञान नहीं ज्ञान न रहने पर भी यह अपनी मर्यादा में बंधे हुये सर्वदा एक चाल से चले जाते हैं कभी कोई अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता यह दशा सिद्ध कर रही है कि इनका नियन्ता कोई ज्ञानशक्ति है, इसी ज्ञानशक्ति का नाम ईश्वर है।

ग्रहों की रचना और उनमें आकर्षण शक्ति की स्थापना सिद्ध करती है कि इनका निर्माता कोई उत्कट ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति के बिना इनकी यह विलक्षण रचना अपने आप हो नहीं सकती जिसने इनको निर्माण किया है वह ईश्वर है। योरुप में एक महात्मा चार्ल्सब्रेडला हुआ है जो कि कट्टर नास्तिक था इन्होंने कई एक पुस्तकें ऐसी लिखी हैं जिनके देखने से ईश्वर से सबर करना पड़ता है किंतु ग्रहों की रचना और उनकी स्थिति तथा उनके भ्रमण को देख कर यह स्वतः ही नास्तिक से आस्तिक बन गया।

आजकल के स्कूल कालेजों के विद्यार्थी कहा करते हैं कि संसार रचना में ईश्वर को कारण मानना वाहियात है संसार ईश्वर ने कब बनाया है परमाणुओं के इकट्ठा होने पर अपने आप ग्रह बन जाता है इसमें ईश्वर के मानने की कौन आवश्यकता है। विद्यार्थियों के इस कथन को सुनकर एक प्रश्न अन्तःकरण में उठ बैठता है वह यह है कि परमाणु कहां से आये इसके उत्तर में कई एक विद्यार्थियों का कथन है कि पर माणु अनादि है, बने बनाये हैं। जो लोग परमाणुओं से ही संसार की रचना मानते हैं उनके ऊपर हमारा एक प्रश्न है वह यह है कि तुम्हारे परमाणु जिनसे संसार बनता है रूप वाले हैं या बिना रूप के? इसके उत्तर में यदि ये कहें कि हमारे परमाणु तो रूप रहित अर्थात् बेशकल के हैं तो हम यह कहेंगे कि आपके रूपरहित परमाणुओं के इकट्ठे हो जाने से रूपवाला संसार कैसे बन गया? यदि ये अन्य उत्तर दें कि हमारे परमाणु तो रूपवाले हैं तब हमारा कथन होगा कि "यत्र यत्ररूपत्वं तत्र तत्रानित्यत्वम्" संसार में जितने रूपवाले पदार्थ देखे जाते हैं वे सब अनित्य हैं अर्थात् उनकी उत्पत्ति और उनका नाश अवश्य है। जब कि समस्त ही रूपवाले पदार्थों की उत्पत्ति और नाश है तो तुम्हारे रूपवाले परमाणुओं की भी

उत्पत्ति और नाश अवश्य है। जब इनकी उत्पत्ति है तो फिर बतलाओ कि ये तुम्हारे परमाणु कैसे उत्पन्न हुये आपही आप बन गये या किसी ने बनाये ? जब रूपवाले मानोगे तो फिर ये परमाणु किसी प्रकार भी अनादि नहीं ठहरेंगे। हमने जो यह युक्ति दी है यही युक्ति योरुप के दार्शनिक "कान्ट" ने अपने दर्शन में लिखी है फिर उन परमाणुओं से अपने आप अनेक शक्तियुक्त नियमबद्ध ब्रह्माण्ड कैसे बना, परमाणुओं का ठीक २ नियम के अनुसार अपने जाति भण्डार में मिलकर अनेक चमत्कृत शक्ति का उत्पादन करना यह जड़ परमाणुओं की शक्ति से बाहर है। बिना कर्त्ता के परमाणु चमत्कृत मनमोहनी ज्ञान शक्ति को लेकर ब्रह्माण्ड तो क्या किसी वस्तु को भी नहीं बना सकते।

इसमें एक उदाहरण देखिये—

एक विश्वम्भरदत्त एम० ए०,एल० बी० एक रोज रात के आठ बजे अपने कमरे में बैठे थे उस समय उन्होंने अपने चिरंजीव पुत्र भोलानाथ को आवाज लगाई आवाज लगाने से बीस मिनट पश्चात् भोलानाथ आया और आकर पिताजी से कहा कि क्या आज्ञा है! पिता ने पुत्र की तरफ को देख कर पूछा कि क्या करते थे! पुत्र ने उत्तर दिया कि मैं ठाकुरजी की आरती कर रहा था। इतना सुनकर पिताजी को क्रोध आगया क्रोधित होकर बोले कि तुम मेट्रिक पास कर चुके किंतु सड़ियल हिन्दू धर्म की बू तुम्हारे दिमाग से अभी तक नहीं निकली। इसको सुनकर पुत्र ने कहा कि मैं समझा नहीं समझा दीजिये। पिता ने कहा कि तुम अब तक भी ईश्वर को मानते ही चले आते हो क्या साइंस में तुमको यही पढ़ाया गया है। लड़के ने कहा कि पिताजी यदि ईश्वर नहीं तो फिर इतना बड़ा ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन गया। पिता ने उत्तर दिया कि परमाणु अनादि हैं ये चलते फिरते जिस एक स्थान में जमा होगये एक ढेर बनगया धीरे २ वही ग्रह हो गया ग्रह में परमाणुओं की प्राकृतशक्ति से सृष्टि हुई इसमें ईश्वर के मानने की कौनसी आवश्यकता आ पड़ी। लड़का उस समय मौन रह गया किंतु अगले दिन लड़के ने पाठशाला से पहुंच कर अपना लिखना पढ़ना सब बन्द कर दिया और एक कमरे में बैठ बड़ी सावधानी के साथ एक अत्युत्तम ड्राइंग खींची और उसकी शोभा को चमत्कृत करने के लिये उसमें लाल, हरा, पीला, नीला, रङ्ग भरा। ड्राइंग को लाकर पिताजी की मेज पर रख दिया। रात्रि को पिता ज

कमरे में आये और बैठते ही मनमोहनी ड्राइंग पर दृष्टि पड़ी उसको हाथ में उठाकर लड़के को पुकारा लड़के के आजाने पर पिता ने प्रश्न किया कि यह ड्राइंग किसने निर्माण की है ? लड़के ने उत्तर दिया कि पिताजी यह ड्राइंग अपने आप बनगई। इतना सुनकर पिताजी क्रोधित होगये। लाल लाल आंखे करके बोले कि तुम हमको धोका देना चाहते हो कहीं ड्राइंग भी अपने आप बन जाती है। लड़के ने हाथ जोड़ कर नम्रता के साथ कहा कि पिताजी यह कागज पूर्व की तरफ रक्खा था और पश्चिम की ओर बनी हुई रङ्गीन पेन्सलें धरी थीं और पश्चिम का ही वायु चल रहा था उस वायु के धक्के से पेन्सलों के परमाणु उड़े और वे इस कागज पर जम गये यही कारण ड्राइंग के तैयार होने का है।

इसको सुन कर पिता ने कहा कि हमको सर्वथा ही मूर्ख मत बनाओ यह कभी सम्भव ही नहीं हो सकता कि पेन्सलों के परमाणु हवा से उड़ कर कागज पर जमा हो जावें और वे इस प्रकार जमें कि हरे हरे सब एक जगह और लाल लाल एक स्थान में जमा होकर एक उत्तम ड्राइंग खींच दें। यह कभी सम्भव ही नहीं कि ड्राइंग अपने आप खिंच जावे यह किसी न किसी मनुष्य की खींची हुई है बिना खींचे खिंच ही नहीं सकती। इसको सुन कर लड़का बोला कि पिताजी जब बिना खींचे एक ड्राइङ्ग भी नहीं खिंचसकती तो फिर बिना बनाये यह ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन जावेगा, इसका बनाने वाला कोई मानना पड़ेगा इसको सुनकर बाबूजी की समस्त हुज्जतें कूच कर गईं।

बिना ईश्वर के परमाणुओं से संसार का होना माननेवाले सज्जनों से हमारा एक और प्रश्न है। वह यह है कि आपके परमाणु विकारवाले हैं या निर्विकार यदि ये सज्जन उत्तर दें कि हमारे परमाणु निर्विकार हैं उनका किसी दशा में भी विकार नहीं होता तो फिर हमारा प्रश्न होगा कि ऐसा मानने पर प्रलय का होना ही असम्भव हो जावेगा जब तक परमाणुओं की दशा में विकार न मानोगे तो प्रलय न होगा। परमाणुओं की एक दशा तो वह है कि जब ये इकट्ठे होकर ग्रह बनाते हैं और दूसरी दशा यह है कि इकट्ठे रहते हुये भी ग्रह को बिगाड़ देते हैं। यह मानना पड़ेगा कि जब परमाणुओंने मिलकर ग्रह बनाया था उस समय जो इनमें शक्ति थी वह प्रलय के समय में नहीं रही उक्त शक्ति के अभाव से ही आज पर-

साणु बने हुए ग्रह को बिगाड़ रहे हैं और यदि परमाणुवादी परमाणुओं में विकार मानें तो फिर "यत्र यत्र विकारत्वं तत्र तत्रानित्यत्वम्" संसार में जितने पदार्थ विकारवाले हैं वे सब अनित्य हैं इसी नियम के अनुसार परमाणुओं को अनित्य मानना होगा। परमाणुवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं जब परमाणु अनित्य ठहरते हैं तो इनका भी बनना मानना ही पड़ेगा फिर परमाणुवादियों का पक्ष गिर जावेगा और परमाणुओं का निर्माता ईश्वर मानना पड़ेगा।

परमाणु परिच्छिन्न सद्द्रव्य हैं कोई भी पदार्थ परिच्छिन्न होकर अनादि नहीं हो सकता यह न्याय का अटल सिद्धान्त है। इस अटल सिद्धान्त के रहते हुये विचारशील मनुष्य परिच्छिन्न परमाणुओं को किस प्रकार अनादि मान सकता है। इस प्रकार की अनेक युक्तियां ऐसी मिलती हैं कि जो परमाणुओं की अनित्यता सिद्ध करतीं हैं।

फिर परमाणुओं को नित्य और अनादि तो आजकल के सज्जन भी नहीं मानते "न्यू नालेज" नामक पुस्तक में इसके निर्माता डंकन साहब ने लिखा है कि परमाणु अनादि नहीं हैं किन्तु कारपशल से बने हैं। कारपशल, ईथर और निगेटिव इलेक्ट्रीसिटी के यूनिटों से बनते हैं।

जब परमाणु ही स्वतः बनते हैं तो फिर उनको अनादि कहना यह भूल है। परमाणु घूमते फिरते थे वे एक स्थान में जमे उसी से ग्रह बना इसमें यह कहना है कि उनको घुमाता कौन था जड़ होने के कारण वे स्वतः घूम नहीं सकते जब वे स्वतः घूम नहीं सकते तो फिर उनका घुमाने वाला कोई अवश्य ही मानना पड़ेगा, जो घुमाने वाला है वही ईश्वर है।

इस ग्रन्थ में हम दो बातों का ध्यान रखते हैं [१] तो यह कि ग्रन्थ विस्तृत न हो जावे (२) रे यह कि कठिन न हो जावे क्योंकि यह ग्रंथ हमने विद्वानों के समझाने के लिये नहीं लिखा किंतु साधारण मनुष्यों के समझाने के लिये लिखा है, इसी नियम से इस ईश्वरसत्तापाद को हमने विस्तृत नहीं बनाया और गहरी युक्तियां नहीं दीं, इस विषय में जिसकी अधिक जानने की इच्छा हो वह "न्यायकुसुमाञ्जलि" तथा "श्वेताश्वेतरोपनिषद्" का व्याख्यान "आत्मपुराण" तथा "शारीरिक भाष्य" तथा इंगलिश की "क्रिजन्ट. थीईज्म" नामक पुस्तक देखनी चाहिये।

ईश्वरस्वरूप ।

पु

राणों के ऊपर साधारण लोगों का कटाक्ष है कि ईश्वरसत्ता निराकार होने पर भी पुराणों ने इसको साकार मान लिया है। यह कितनी अज्ञानता की बात है और इसको कौन मानेगा।

इसके ऊपर हमारा उत्तर यह है कि जिन लोगों ने ईश्वर को सर्वथा निराकार माना है वे लोग सर्वथा ही अज्ञानी हैं उन्होंने सृष्टिक्रम नहीं जाना, वेद का अध्ययन नहीं किया, ईश्वर के स्वरूप जानने में परिश्रम नहीं किया, अज्ञ लोगों के कहने से सुना कि ईश्वर निराकार है। बस उसी पर विश्वास किया और इसी का उपदेश कर चले "अन्धेन नीयमाना यथान्धाः" अन्धा अन्धे को मार्ग बतला कर ले चलता है इस कहावत को सत्य कर दिया। जो लोग ईश्वर को केवल निराकार मानते हैं उनके पास कोई प्रमाण नहीं कि वे ईश्वर के स्वरूप का पता लगालें फिर यह कहना कि पुराणों ने ईश्वर को केवल साकार माना है यह भी उनकी भूल है, पुराण केवल साकार नहीं मानते किन्तु साकार और निराकार ये दो रूप एक ईश्वर के मानते हैं इस विषय में जो कुछ पुराण मानते हैं वही वेद मानते हैं दोनों का ही एक सिद्धान्त है न इंच भर फर्क है न तिल भर अन्तर है। इस विषय को हम बड़े विस्तार के साथ नीचे लिखेंगे, विचारशील सज्जन इस पर अवश्य ही विचार करेंगे वेद ने ईश्वर स्वरूप कैसा बतलाया है इसको देखिये—

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यनिरुक्तमपरिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ।

श० का० १४ अ० १ ब्रा० २ श्रु० १८

परमेश्वर दो प्रकार का है परिमित, अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त। इस कारण जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो

तूष्णीं भाव सम्पन्न है अर्थात् अध्यात्म मंत्र का ही मनन करता है उससे परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है।

शतपथ ब्राह्मण की श्रुति ने साफ खोल दिया है कि ईश्वर दो प्रकार का है। शतपथ ब्राह्मण वेद है इसको हम द्वितीयपाद में स्पष्ट कर आये हैं कि मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद होते हैं। जब वेद ही ईश्वर के दो रूप बतलाता है तब केवल निराकार कहना प्रमाद नहीं तो और क्या है। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यह हमारी बुद्धि में नहीं आता कि ईश्वर एक और उसके रूप दो। इसके ऊपर हम यह कहेंगे कि पूछो वेद से। ईश्वर के दो रूप हमने नहीं बतलाये, वेद ने बतलाये हैं उत्तर के जिम्मेदार हम नहीं हैं वेद हैं। वेद हमारे प्रमाण के आधीन नहीं हैं श्रुति भगवती अपने कथन के उत्तर का भार किसी के ऊपर न छोड़ कर अपने ही ऊपर रखती है दूसरी श्रुति इसका विवेचन करती है कि एक ईश्वर के साकार, निराकार ये दो रूप कैसे बनें इसके ऊपर श्रुति बोलती है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि।
त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यजुः अ० ३१ मं० ३

इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है तथा इस ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टिरहित) है।

यहां पर प्रश्न उठता था कि जितना बड़ा ब्रह्म है क्या उस ब्रह्मके समस्त अंश में ब्रह्माण्डों की रचना है या एक दो अंश में ब्रह्माँडों की रचना है यदि सर्वांश में ब्रह्मांड रचना है तब तो ब्रह्मांड भी अपरिमित, अपरिच्छिन्न, लामहदूद होगया। इसके उत्तर में श्रुति ने बतलाया कि ब्रह्म के एक पाद में पञ्च महाभूतों की रचना है और ब्रह्म के तीन पाद अमृत हैं अर्थात् उनमें सृष्टि रचना नहीं है। श्रुति के इस कथन से यह नितान्त सिद्ध हो गया कि ब्रह्म के जिन तीन में सृष्टि नहीं है वहाँ पर ब्रह्म अनिरुक्त, अविज्ञेय, अपरिच्छिन्न सर्वथा निराकार है क्योंकि वहां पर आकार रखनेवाले अग्नि, वायु तत्व ही नहीं तो फिर इनके सर्वथा अभाव में ईश्वर साकार कैसे बनेगा ऐसे स्थान में तो सर्वथा ही निराकार मानना होगा। जिन अंशों में सृष्टि नहीं है वहां पर ब्रह्म निराकार है यह तो ऊपर सिद्ध हो गया।

अब विवेचन इस बात का करना है कि जिस अंश में सृष्टि है वहां ब्रह्म कैसा है साकार है या निराकार है इस के निर्णय में हम यह प्रश्न करेंगे कि जिस ईश्वर ने ब्रह्माण्ड रचा है वह ईश्वर रहता कहां है इस प्रश्न पर सबही मत (मजहब) यहउत्तर देते हैं कि तुम्हारा यह प्रश्न ही अशुद्ध है ब्रह्म कहां है क्या ब्रह्म एक ही स्थान में है वह तो ब्रह्माण्ड के एक २ परमाणु में व्यापक है । इसके ऊपर हम जोर देकर कहेंगे कि यदि वह वास्तव में प्रत्येक परमाणु में व्यापक है तब तो वह साकार है क्योंकि वह ठहरा व्यापक और परमाणु ठहरे व्याप्य, व्यापक का व्याप्य शरीर हुआ करता है । इसको आप इस प्रकार समझें कि एक पंडित मोहनलाल नामक सज्जन हैं यह सज्जन साढ़े तीन हाथ के हैं, ये तो साढ़े तीन हाथ के क्या हैं साढ़े तीन हाथ का तो इनका शरीर है इन महात्मा का तो पता ही नहीं कि कितने लम्बे चौड़े हैं इनके नाम का भी पता नहीं और पंडित मोहनलाल जो इनका नाम कहा जाता है यह नाम तो इनके माता पिता ने कल्पित कर लिया है अपने मन से ही गढ़कर जबरदस्ती का सांड़ नियत किया है, वास्तव में तो यह फ़र्ज़ी पं० मोहनलाल नाम शून्य, रूपशून्य, निराकार जीव हैं । निराकार होने पर भी अब यह साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक होगये हैं । यह व्यापक हैं शरीर व्याप्य है इसीकारण से इन का यह शरीर है क्योंकि यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि व्यापक का व्याप्य शरीरहोता है यह शरीर इनका है घसीटू धोबी का नहीं है क्योंकि जिसका कल्पित नाम घसीटू धोबी है वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं है दूसरे शरीर में व्यापक है। जिस शरीर में घसीटू धोबी नामक आत्मा व्यापक है वह शरीर घसीटू धोबी का है। इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, कृष्णदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तम रीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्य, व्यापक का शरीर होता है तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और पृथ्वी व्याप्य है । इस कारणपृथ्वी उसकाशरीर है । तुम्हारा ईश्वर व्यापकहै और जल व्याप्य है इस कारण जल उसका शरीर है । तुम्हारा ईश्वर व्यापक है अग्नि व्याप्य है इस कारण अग्नि उसका शरीर है । तुम्हारा ईश्वर व्यापक है वायु व्याप्य है इस कारण वायु उसका शरीर है । तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और आकाश व्याप्य है इस कारण आकाश उसका शरीर है ।

अब सिद्ध हुआ कि जहां केवल ब्रह्म रहेगा, जहाँ पर सर्वथा ही सृष्टिका अभाव होगा वहां पर ब्रह्म निराकार होगा और जहां पर सृष्टि रचना होगई है, पंच तत्व विद्यमान हैं वहां पर ब्रह्म सृष्टि के तत्वों में व्यापक होकर रहेगा अतएव वहां पर साकार होगा। कई एक सज्जनों का यह कथन है कि इस युक्ति में वेद प्रमाण नहीं है और यह युक्ति तुमने अपने मन से बनाकर तैयार की है फिर हम इस सिद्धान्त को कैसे मानलें। इस के ऊपर हमारा कथन यह है कि यह युक्ति अकाट्य है तुम्हारे पास इसका कुछ भी उत्तर नहीं अतएव तुम को विवश होकर मानना ही पड़ेगा और यदि आप अड़ियल टट्टू की भाँति आग्रह ही कर बैठें कि हम वेद प्रमाण के बिना कदापि नहीं मानेंगे तो फिर घबराने की कोई बात ही नहीं वेद प्रमाण भी नीचे देख लीजिये—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्यामृतः ॥ ७ ॥ योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्यामृतः ॥ ८ ॥ योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो यमग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्यामृतः ॥९॥ य आकाशे तिष्ठन् आकाशमन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १० ॥ यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं योवायुमन्तरो यमयति सतऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ११ ॥

श० कां० १४ अ० ६, ७, ६

जो पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी के मध्यमें जिसको पृथिवी नहीं जानती पृथ्वी जिसका शरीर है जो पृथ्वी को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥ ७ ॥ जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको जल नहीं जानता जल जिस का शरीर है जो जल को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥ ८ ॥ जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के

मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानती अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥ ९ ॥ जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥ १० ॥ जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिस का शरीर है जो वायु को अपनी अनंतशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ॥ ११ ॥

श्रुति के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि में ईश्वर व्यापक है अतएव वह साकार है व्यापकत्वेन ईश्वरको साकार कह दिया अब यह दिखलावेंगे कि सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे ब्रह्म को छोड़ कर अन्य कोई रूप ही संसार में नहीं है जितने रूप दृष्टिगत् होते हैं ये समस्त रूप ईश्वर के निज रूप हैं इसके विवेचन को आप नीचे देखने की कृपा करें।

हमको सबसे पहिले यह जानना चाहिये कि पृथ्वी किस चीज से बनी है जब हम पृथ्वी के बनने की खोज को उठाते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी जल से बनी इसमें प्राचीन और नवीन किसी को भी विरोध नहीं अब हमको इतना ज्ञान हुआ कि वास्तव में पृथ्वी कोई चीज नहीं है किंतु जब जल में सञ्चलन शक्ति उत्पन्न होती है, सञ्चलन शक्ति के प्रभाव से जल कठोर हो जाता है और वही पृथ्वी रूप धारण कर जाता है पृथ्वी की सत्ता कोई भिन्न सत्ता नहीं है किन्तु जलसत्ता का कठिन रूप पृथ्वी कहलाती है।

अब जल का विवेचन करिये। जल क्या चीज है अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बन जाता है, अग्नि का रूपान्तर ही जल है पाश्चात्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि यह पृथ्वी प्रथम आग का गोला थी उस अग्नि से जल बना, जल कठोर होकर पृथ्वी बनी, जल कोई वस्तु नहीं है किन्तु अग्नि का रूपान्तर ही जल है, जल का कारण अग्नि हुआ। अब अग्नि के निर्णय करने में हम इस फल पर पहुँचते हैं कि दो विरुद्ध धर्म वाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, अग्नि कोई पृथक् चीज नहीं है वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है। अब यह विचार

करना है कि वायु क्या चीज है ? इस निर्णय में हम यह जानते हैं कि आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें जब सञ्चलन शक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं और वे धक्का देने लगते हैं इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये, पंखे के हिलाने से आकाश के परमाणुओं में संचलन शक्ति उत्पन्न हो जावेगी वे परमाणु धक्का देंगे यही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है किन्तु आकाश का रूपान्तर है। बस फल निकला कि पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई जल अग्नि से बना, अग्नि वायु का कार्य है, वायु आकाश से बन जाता है अब निर्णय यह करना है कि आकाश किस चीज से बनता है। इसके ऊपर फ्लासफरों की और साइंसवेत्ताओं की बुद्धि विचार छोड़ देती है। यहां पर वेद से काम लेना होगा। कारण इसका यह है कि जहां पर संसार की फलसफियां चीं बोल जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं वहां से वैदिक विज्ञान का आरंभ होता है सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है, जहां पर सृष्टि नहीं है, जिसको अमृत कहा है उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है इससे आकाश उत्पन्न होता है अब सिद्ध होगया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुये हैं ब्रह्म से भिन्न किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, इन तीन ही तत्वों में रूप हैं और यह तीनों ही ब्रह्म से बने हैं अतएव पृथ्वीरूप ब्रह्म, जलरूप ब्रह्म, अग्निरूप ब्रह्म साकार है। इसको वेद ने जिस प्रकार लिखा है उसको हम नीचे लिखते हैं—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतःआकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ॥

तैत्ति० १ ब्रह्मा० बल्ली अनु० १

उस अदृश्य अमृत ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

संसार में जितने रूप दृष्टिगोचर होते हैं ये सब ईश्वर के रूप हैं अतएव सर्व स्वरूपता को लेकर इसको साकार मानते हैं। जब समस्त रूप ब्रह्म के रूप हैं

सृष्टि ही ब्रह्म रूप है तब इस ईश्वर को निराकार कहना भूल है, प्रमाद है, मूर्खता की परा काष्ठा है। पंचतत्व को वेद ने ईश्वर के रूप बतलाये हैं उस बतलानेवाली श्रुति को हम नीचे लिखते हैं आप पढ़ने की कृपा करें—

द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च। तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायो श्चान्तरिक्षात्॥ अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षम्।

बृह० अ० ४ ब्रा० कां० १।२।३

ब्रह्मके दो रूप हैं एक मूर्त (साकार) दूसरा अमूर्त (रूपरहित)। वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न पृथ्वी, जल, तेजात्मक ब्रह्म का मूर्त रूप हैं—आकाश वायु ये अमूर्त हैं।

पांच तत्वों की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है जिनमें से आकाश, वायु ये दो रूप अमूर्त हैं और अग्नि, जल, पृथ्वी, ये तीन रूप मूर्तिमान हैं। मूर्तिमान और अमूर्त दोनों प्रकार के तत्वों का उपादान कारण ब्रह्म है इस कारण तत्वों के रूपों को ब्रह्म के रूप कहा गया। जब तत्वात्मक है ब्रह्म तत्वों से भिन्न ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है ही नहीं तो फिर उसको केवल निराकार कहना क्या प्रमाद नहीं है। जब कि मूर्त रूप से ब्रह्म दृश्यमान है तब तो साकार सिद्ध ही है। कोई २ सज्जन मेरे घोड़े के तीन टांग इस न्याय को लेकर केवल मंत्रभाग को प्रमाण मानते हैं उनके तोष के लिये हम यजुर्वेद के पुरुष सूक्त का एक मंत्र लिखे देते हैं—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

यजु० अ० ३१

जो भूत हो चुका है और जो आगे को होगा यह समस्त पुरुष ही है।

जितने रूप संसार में दृष्टिगोचर होते हैं ये समस्त ब्रह्म के रूप हैं क्योंकि ब्रह्म इनका उपादान कारण है। जिस प्रकार घट, नाद, सराव, आदि बर्तन मिट्टी के रूप होते हैं तथा जिस प्रकार कटक, कुंडल आदि आभूषण सुवर्ण के रूप होते हैं क्योंकि बर्तनों का उपादान कारण मृत्तिका है वे मृत्तिका के रूप हैं, आभूषणों का उपादान कारण सुवर्ण है वे सुवर्ण के रूप हैं। वेद कहता है कि पंचतत्वों का उपादान कारण ब्रह्म है इस कारण ये सब ब्रह्म के रूप हैं। ब्रह्माण्ड में जितने रूप हैं सब ब्रह्म के रूप हैं जब कि ब्रह्म के सैकड़ों, सहस्रों, असंख्यक रूप हैं फिर वह

निराकार कैसा ? यह समझ में नहीं आता। जब कि सर्व आकृतियां ब्रह्म की ही हैं तब तो ब्रह्म सर्वस्वरूप है अतएव वह साकार है। अब सिद्ध हो गया कि जिस अंश में सृष्टि नहीं है उस अंश में ब्रह्म निराकार है और जिस अंश में सृष्टि है उस अंश में व्यापक और सर्वस्वरूप होने से ब्रह्म साकार है।

व्यापक और सर्वस्वरूप से हम ब्रह्म की साकारता वेद विज्ञान से सिद्ध कर दी। अब यह सिद्ध करेंगे कि ईश्वर अवतार लेता है अतएव वह साकार है। अवतार के विषय में लिखे हुए प्रमाणों को नीचे देखिये—

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तर्जायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा:॥

यजु० अ० ३९

प्रजापति ईश्वर गर्भ में आता है अजन्मा होकर भी वह बहुत प्रकार से जन्म धारण करता है उसके शरीर को धीर भक्त पुरुष देखते हैं वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं।

यद्यपि ईश्वर के गर्भ में आने के बहुत मंत्र हैं तथापि मानने वालों के लिये एक ही प्रमाण तोषदायक होजाता है इसी न्याय को आगे रखकर हमने केवल एक मंत्र प्रमाण में दिया है। प्रजापति ईश्वर गर्भ में कैसे आता है, अजन्मा होकर वह किस प्रकार जन्म धारण कर लेता है इसको वेद स्पष्ट रूप में दिखलाता है। पढ़िये—

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अथर्व० १९।२३।३०

(ब्रह्म) ब्रह्म ने (ज्येष्ठा) बड़े (वीर्याणि) बल (संभृता) धारण किये हैं (ब्रह्म) ब्रह्म ने ही (अग्रे) सृष्टि के आरम्भ में (ज्येष्ठं दिवम्) बड़े द्युलोक को (आततान) विस्तार किया है (भूतानाम्) सब प्राणियों में (प्रथमोत) पहले वही (ब्रह्म) ब्रह्मा रूप से (जज्ञे) प्रकट हुआ है (तेन) उस (ब्रह्मणा) ब्रह्म) से (स्पर्धितुम्) स्पर्धा करने को (कः) कौन समर्थ है।

वेद ने गर्भ में आने और प्रकट होने को स्पष्ट करने के लिये सबसे पहले

प्रथमावतार ब्रह्मा को लिखा है वही ब्रह्मावतार हमने पाठकों के आगे रख दिया। कई एक पाठक तो हमारे इस लेख को देख कर प्रसन्न होंगे और कई एक अप्रसन्न होकर इसका परिश्रम करेंगे कि किसी प्रकार इस मंत्रका और अर्थ करदें जिससे वेद में अवतार सिद्ध न हो। आजकल इसबात का रिवाज हो गया है कि वेदके अर्थ का विचार न करना, वेद की आज्ञा को न मानना किन्तु जहां तक बन सके वेद मन्त्र को तोड़ मरोड़ कर अपनी इच्छा के अनुसार मनमाना अर्थ गढ़ लेना इसी प्रणाली को स्वीकार करके आजकल के लोगों ने वेद में रेल, तार, ट्राम्बे, मोटर, स्वराज्य, एकता बनाकर वेदमहत्व को मिट्टी में मिला दिया। हमको सन्देह है कि कहीं हमारे सत्य अर्थ को बिगाड़ कर मनमाना अर्थ न कर बैठें इस सन्देह को दूर करने के लिये हम ब्रह्मा के अवतार की इतनी पुष्टि करेंगे कि सारा संसार मिल कर भी हमारे अर्थ को न बिगाड़ सके। हम अपने मन्त्र की पुष्टि में ब्रह्मा के अवतार धारण करने में फिर दूसरा प्रमाण देते हैं देखिये—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

मुन्डकोपनिषद्।

ब्रह्माजी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुए जो संसार के रक्षक और विश्व के बनानेवाले हैं।

जिस ब्रह्मावतार को अथर्व वेद ने कहा था उसी ब्रह्मावतार को मुन्डकोपनिषद् ने कहा और मुन्डकोपनिषद् ने यह भी बतलाया कि जिस ब्रह्मा ने अवतार धारण किया है वह कोई मनुष्य अथवा देवता नहीं है किंतु वह विश्व का बनाने वाला और भुवनों की रक्षा करनेवाला साक्षात् ईश्वर है अब हम इसकी और पुष्टि करते हैं।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु० १३।४

हिरण्यगर्भ प्रजापति सब से पहले वर्तमान था ब्रह्मा रूप से प्रकट होकर सब का पति हुआ वह ब्रह्मा पृथ्वी, दिवलोक को धारण किये है उस ब्रह्मा के निमित्त हम हवि देते हैं।

अवतार की और भी पुष्टि देखिये——

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

मनु० अ० १ । ९

यह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अंड में सर्वलोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ ।

कोई २ सज्जन यह कह दिया करते हैं कि ब्रह्मा का अवतार तो पुराण में नहीं है किन्तु उनका यह कहना सर्वथा ही मिथ्या है, पुराणों में ब्रह्मा का अवतार स्पष्ट रूप से लिखा है नीचे देखिये—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥

श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

वाष्परूप जल में शयन करनेवाले योगनिद्रा में निमग्न पुरुष के नाभिह्रद कमल से समस्त विश्व का रचनेवाला ब्रह्मा प्रकट हुआ ।

ऊपर दिये हुये प्रमाणों से ब्रह्मावतार इस प्रकार पुष्ट है कि किसी के हिलाये नहीं हिलता । न तो कोई यह कह सकता है कि ये प्रमाण वैदिक साहित्य में नहीं हैं और न कोई यह कह सकता है कि इनमें ब्रह्मावतार नहीं है और न कोई चालाकी से इन प्रमाणों के अर्थ को ही बदल सकता है यदि वह वेद को प्रमाण मानता है तो उसको विवश हो कर ब्रह्मावतार मानना होगा या वेद को ही छोड़ देना होगा इससे अधिक अवतार की पुष्टि हम क्या कर सकते हैं । अब वाराह अवतार लिखते हैं—

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥

श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

इस विश्व के उत्पन्न के निमित्त रसातल में गई हुई पृथ्वी को उठाते हुये

यज्ञेश भगवान् ने द्वितीय सूकरशरीर को धारण किया। जिस अवतार को श्रीमद्भागवत ने कहा है उसी को वैदिक सिद्धान्त में इस प्रकार लिखा है—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

हे भूमि ! तुझको असंख्य भुजावाले कृष्ण वाराह ने उद्धार किया है। और देखिये

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्या स प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोस्या पतिः प्रजापतिरिति ॥

श० १४। १। २। ११

पहिले भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई उसको वराह ने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति है। और देखिये

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ॥४८॥

अथर्व० कां० १२ अनु० १

अर्थात् वाराह सूकररूपधारी प्रजापति ने यह पृथिवी उद्धार की है। अब वामन अवतार का आलोचन करते हैं।

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० १ अ० ३

प्रभु पंद्रहवां वामनावतार धारण करके याञ्चा करने के लिये बलि की यज्ञ में गये तीन पैर पृथ्वी मांगने के बहाने से बलि को स्वर्गाधिप बनाया। इसमें वैदिक प्रमाण देखिये।

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।

कठ उ० वल्ली ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेव उपासना करते है। और प्रमाण देखिये

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥

यजु० ५ मं० १५

विष्णु ने इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पद रक्खा, इसके पद में समस्त संसार स्थित है।

यह मंत्र यजु, साम, ऋग इन तीनों वेदों में आया है और जो अर्थ हमने किया है वही अर्थ इस मंत्र का सायण ने किया है निरुक्तकार मुनि यास्क ने इसके ऊपर जो लिखा है उसको पढ़िये—

यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः। समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते। अपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यते इति। पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा।

इसी विषय में शतपथ लिखता है कि—

"वामनो ह विष्णुरास"। शत० कां० १

यद्यपि वैदिक सिद्धान्त में पुराणोक्त समस्त ही अवतारों का वर्णन आता है तो भी हमने यहां पर तीन ही अवतारों का वर्णन लिखा है इसका कारण यह है कि जिन लोगों को वेद प्रमाण है या यों कहिये कि वेद पर जिनका विश्वास है वे लोग वेद के एक मंत्र से ही मानने को तैयार हैं और जो लोग संसार को दिखलाने के लिये तो वेद मानना स्वीकार करते हैं और वास्तविक में अपने मानसिक सिद्धान्तों के सन्मुख वेद का कुछ भी गौरव नहीं समझते उनको वेद तो क्या समझावेगा यदि ईश्वर भी अवतार धारण करके आवे और उनको समझाने लगे तो वे अपनी मानसिक कल्पना के सन्मुख ईश्वरीय ज्ञान को भी तुच्छ समझेंगे। ऐसे महानुभावों के समझाने के लिये समस्त वेद मन्त्रों के प्रमाणों में भी शक्ति नहीं है। वाराह अवतार हमने इस कारण से लिखा कि आजकल वैदिक होने का दावा करने वाले वाराह अवतार को आगे रख पुराणों की हंसी उड़ाया करते हैं अतएव हमने वेद से वाराह अवतार लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि तुम पुराणोंकी हंसी नहीं उड़ाते किंतु हंस हंस कर तुम संसार से वेद का गौरव मिटा देना चाहते हो। कई एक

सज्जन ऐसे भी हैं कि जिनके चित्त में वेद का भी कोई गौरव नहीं है उनका कहना यह है कि यदि आप युक्ति द्वारा हमारी शंकाओं को मिटा दें तो फिर हम ईश्वर साकारवाद को मान लें। प्रायः उनकी शंकाओं को हम आगे रख कर उत्तर देने का उद्योग करेंगे (१) ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता है, (२) यदि अवतार धारण करेगा तो कर्मबन्धन के बिना किस प्रकार शरीर ग्रहण कर लेगा, (३) जब ईश्वर अजन्मा है तो फिर उसका जन्म कैसा, (४) निराकार ईश्वर साकार किस प्रकार होगा, (५) एकरस ईश्वर का अवतार कैसा, (६) जब ईश्वर शरीर धारण करके अयोध्या में आ गये तो अयोध्या को छोड़ कर शेष भूतल तो बिना ईश्वर का हो गया और (७) एक ही समय में ईश्वर के आठ आठ अवतार इतना अन्धेर, इसका क्या उत्तर है।

अब हम क्रम से इन सातों प्रश्नों का उत्तर देंगे। प्रथम प्रश्न ईश्वर को अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता है, इसका उत्तर देने से पहिले हम इनसे एक प्रश्न करेंगे कि तुम्हारा ईश्वर कैसा है, इस प्रश्न के ऊपर हमको उत्तर मिलता है कि ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है, इस उत्तर को पाकर हमारा प्रश्न होता है कि वह अवतार धारण करता है या नहीं, उत्तर मिलता है कि नहीं, इसके ऊपर हमारा कहना यह है कि फिर वह सर्वशक्तिमान् कैसा, क्योंकि उसमें अवतार धारण करने की तो शक्ति ही नहीं आप क्या उसको झूठ ही सर्वशक्तिमान् कहते हैं, जब अवतार धारण करने की उसमें शक्ति नहीं तब तो एक शक्ति कम सर्वशक्तिमान् हुआ, इसका इनके पास क्या उत्तर है ? दूसरा प्रश्न यह है कि ये जो अवतार की आवश्यकता पूछते हैं इन्होंने क्या ईश्वर के और कार्यों की आवश्यकताओं को जान लिया है यदि ये कहें कि हमने ईश्वर के किसी कार्य की आवश्यकता को नहीं जाना है तो फिर केवल अवतार की आवश्यकता जानने की इच्छा क्यों ? ईश्वर के समस्त कार्यों की आवश्यकता जानना चाहिये। यदि ये कहें कि और आवश्यकतायें तो हमने जान लीं केवल अवतार की आवश्यकता शेष है तो फिर हम प्रश्न करेंगे कि ईश्वर अनेक ब्रह्माण्डों को रचे और उनके पालन पोषण का भार अपने ऊपर रक्खे इसकी क्या आवश्यकता ? जल के "ग्राह" और "शेर" "सर्प" जो दुनियां के प्राणियों को यमराज की डाक में भेज दें इसकी क्या आवश्यकता ? कोई यही बतला दे कि ईश्वर

ने कई एक प्राणियों की ऐसी प्रकृति क्यों करदी कि जो अन्य प्राणियों का भोग लगा कर ही अपना पेट भरें ? ईश्वर ने 'बर्रे' 'ततैया' 'बिच्छू' क्यों बनाये ? इनके जरा से छूने पर मनुष्य गौहरजान के नाच को मात कर देता है। भगवती प्लेग और उसके दादा इन्फ्लूंजा की क्या आवश्यकता ? आप चार मनुष्य योरूप से और चार विद्वान् अमेरिका से एवं चार लामा जापान से तथा चार पण्डित भारतवर्ष से इकट्ठे करके इन सोलह के आगे यह प्रश्न कीजिये कि बबूर (कीकर) के काँटा क्यों लगाया, सबकी वाणी बन्द, सब की विद्या खतम, इतने विद्वान् होकर भी बबूर के काँटे की आवश्यकता को नहीं जानते। जब ईश्वर के किसी कार्य की आवश्यकता को भी मनुष्य नहीं जानता तो फिर अवतार की आवश्यकता को तत्काल समझ जावेगा यह हमारी बुद्धि में नहीं आता अस्तु इस अवतार की आवश्यकता पर एक मंत्र वेद ने लिखा है हम उसी को आगे रक्खे देते हैं—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥
ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

(इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनंत सामर्थ्यों से (पुरुरूपः) अनेक देहों के रूपवाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य) इस अपने (रूपम्) रूप का (प्रतिचक्षणाय) सब भक्तों पर विख्यात करने के लिये (रूपं रूपं प्रतिरूपः) जैसे जैसे प की इच्छा हो तैसा तैसा (बभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इस परमेश्वर के (हरयः) रूप (शत) सैकड़ों हैं (दश) दश मुख्य हैं।

इस मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि अपने भक्तों के दर्शनार्थ प्रभु रूप धारण करते हैं। गीता में लिखा है कि—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

सज्जनों की रक्षा के निमित्त, दुरात्माओं के नाशार्थ, धर्म की स्थापना के लिये हम समय समय पर अवतार लेते हैं।

यह मोटा लक्षण अवतार का मिलता है, सूक्ष्म लक्षण प्रत्येक अवतार का पृथक् पृथक् है जैसे ब्रह्मा होकर ईश्वरीयज्ञान संसार को उपदेश किया। नर नारायण

होकर अखंडित ब्रह्मचर्य की रक्षा कर आदर्श दिखलाया। जिस वेद धर्म का ब्रह्मा ने उपदेश किया था उसकी पूर्ण मर्यादा दिखलाने के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का अवतार धारण किया। वह सर्वशक्तिमान् है इसका परिचय देने के लिये वामनावतार। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में ईश्वर व्यापक है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देने के लिये नृसिंहावतार। ईश्वर के दर्शन से भवबन्ध टूट कर निर्वाणपद की प्राप्ति होती है इसको दिखलाने के लिये तथा ब्रह्मविद्या को गौ बना कर दूध निकाल कर दूध का पवित्र मक्खन गीता संसार को देने के लिये प्रभु कृष्णचन्द्रजी का अवतार, प्रजा की रक्षा के लिये आप विष खा जाना, संसार को विभूतियां देकर आप आत्माराम रहना इसकी शिक्षा के लिये शंकरावतार। ये समस्त कार्य भूतल पर तब तक नहीं हो सकते थे जब तक कि इनका प्रकाश करके ईश्वर अपने शरीर से न दिखला दे इन कारणों से प्रभु के अवतार हुये हैं।

बिना कर्मबन्धन के ईश्वर का संसार में आना इसके ऊपर एक श्लोक कहे देते हैं—

> कारागृहे गच्छति भूमिपालो
> हेतुर्दया तत्र न कर्मबन्धः।
> एवञ्च सर्वेश्वरदेवदेवो
> दयावतारो न च कर्मतन्त्रः॥

जैसे राजा कारागृह में बिना अपराध के जाता है उसके वहाँ जाने में कानून तोड़ने का अपराध हेतु नहीं है किन्तु कैदियों के ऊपर जो दया है वही हेतु है, इसी प्रकार समस्त देवों का देव जगदीश्वर दया को हेतु बना कर अवतार लेता है उसके शरीर धारण का हेतु कर्मबंधन नहीं है।

अजन्मा ईश्वर का जन्म कैसा? इसके उत्तर में हमको इतना ही कहना है कि जिस प्रकार ईश्वर अजन्मा है उसी प्रकार जीव भी अजन्मा है। अजन्मा जीव मनुष्य बन कर विद्या पढ़े, विवाह करे, दर्जनों बाल बच्चे पैदा कर दे, अदालत का हाकिम और महामहोपाध्याय बन जाय, लंगड़ा हो जाय, दांत टूट जायं, अन्धा हो जाय मर जाय, इतने पर भी अजन्मा का अजन्मा बना रहे, सब खेल खेल गया परन्तु अपने अजन्मापने को नहीं छोड़ा इसमें तुमको कभी शंका न हुई, ईश्वर शरीर धारण कर ले

तो तुम्हारे दिमाग में टोकरा भर शंका क्यों आजाती है क्या ईश्वर जीव कितनी भी शक्ति नहीं रखता ।

निराकार ईश्वर साकार किस प्रकार होगा ? इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त है कि दियासलाई जलाते समय निराकार अग्नि साकार कैसे हो जाता है। निराकार बिजली गिर जाने से वृक्ष में आग लग कर प्रत्यक्ष अग्नि कैसे बन जाता है । दो अरणियों के रगड़ करने से उन अरणियों में व्याप्त निराकार अग्नि साकार बन कर रुई में जलता हुआ कैसे दीख जाता है, लोहे को पत्थर में मारने से निराकार अग्नि निकल कर साकार बन चिलम कैसे प्या जाता है । सोच लीजिये कि जब निराकार अग्नि साकार बन जाता है, जब निराकार जीव साढ़े तीन हाथ का बन जाता है तो निराकार ईश्वर के शरीर धारण करने में क्या कोई पुलिस का कानून लग जाता है कि जो बलात्कार निराकार ईश्वर को शरीर धारण करने नहीं देता ।

और जो तुम कहते हो कि एकरस ईश्वर का साकार होना कैसा तो क्या तुम्हारी सम्मति में षट्रस ईश्वर का अवतार होता है । बाँस में मूल से लेकर शिरोभाग पर्यंत एकरस अग्नि रहता है फिर दो बांसों के घिसने से अग्नि शरीर धारण कर बन को क्यों फूक देता है । बांस में एकरस रहनेवाले अग्नि ने स्वरूप धारण क्यों किया । नीबू के पेड़ में एकरस रहनेवाली खटाई खटाई का स्वरूप लेकर नीबू के फल में क्यों आ गई ? इत्यादि उदाहरणों से सिद्ध है कि एकरस से व्याप्त वस्तु भी रूप धारण कर लेती है । इक्षु में रस एकरूप से रहता है यदि वह रूप धारण न करता तब तो तुम गुड़ शक्कर आदि मिठाई को तरस कर मर जाते । दूध में एकरस घृत यदि अपने साकार रूप को न बनाता तो तुम्हें हलुआ पूरी भी न मिलती । सांभर झील में एकरस रहने वाला क्षार यदि नमक न बनता तब तो तुम्हारी जीभ बुखार वालों की जीभ की तुल्यता धारण कर लेती । एकरस का रूप बना कर मजा उड़ाओ और फिर शंका भी करो तुम बड़े बुद्धिमान् हो ।

ईश्वर अवतार धारण करके जब अयोध्या में आगया तब अन्य देश में नहीं रहा यह तुम्हारा विचार बड़ा अच्छा है, तुम बड़े बुद्धिमान् हो परन्तु अपने मन में ही बुद्धिमान् बने रहो इसके उत्तर में हम एक ही तर्क देते हैं उसी से प्रश्न गायब—

अग्निर्यथैकः परिदृश्यतेऽत्र
मुंगेरदानापुरबंगदेशे ।
पेशावरे भेलम इन्द्रप्रस्थे
तथैव विष्णुश्च शरीरधारी ॥

जैसे एक निराकार अग्नि जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है सायंकाल मुंगेर में साकार बन कर सैकड़ों दीपों से प्रकाश करने लगा। वही अग्नि दानापुर में सहस्रों रूप धारण करके प्रकाश कर बैठा। बंगाल में इसने करोड़ों स्वरूपों से प्रकाश किया, पेशावर, भेलम और दिल्ली में लक्षों रूपों से इसने रात्रि का दिन बना दिया। इसके करोड़ों रूप धारण करने पर भी क्या अब संसार में निराकार व्याप्त अग्नि नहीं रहा यदि है तो दो चार अवतार धारण करने से व्यापक ईश्वर सब जगह से खिच के एक ही स्थान में आ जाता है इसमें कोई प्रमाण है ? बस ईश्वर के व्यापक और प्रकाश होने में अग्नि का ही एक दृष्टान्त पर्याप्त है कि उसके रूप धारण करने पर भी उसकी व्यापकता में किञ्चित् भी न्यूनता नहीं होती।

सातवें प्रश्न के उत्तर में यही युक्ति पर्याप्त है। जैसे एक निराकार अग्नि ने करोड़ों रूप धारण किये और वे छोटे बड़े सब प्रकार के किये और एक ने दूसरे रूप का अवरोध नहीं किया, करोड़ों रूप धारण करने पर कोई दोष नहीं आया फिर एक ईश्वर ने शंकर, ब्रह्मा, राम आदि अनेक रूप धारण कर लिये तो यहां शंका क्यों टूट पड़ी विचार कर प्रश्न करिये।

हमको यहां इतना और कहना है कि जो लोग ईश्वर को साकार नहीं मानते वे ईश्वर के सर्वव्यापक होने में कोई प्रमाण नहीं रखते, दूसरे जो लोग अवतार नहीं मानते उनके यहां ईश्वरीय ज्ञान जो ईश्वर ने मनुष्यों के लिये दिया उसकी सत्यता में कोई प्रमाण भी नहीं रखते। हम आगे इसी बात को स्पष्ट करेंगे। जो लोग ईश्वर को सृष्टि का उपादान कारण नहीं मानते या इसको यों समझिये कि जिन्होंने पंचतत्वों की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं मानी वे भिन्न भिन्न प्रकार से सृष्टि की रचना मानते हैं किन्तु विद्वानों के सन्मुख वह अपने सिद्धान्त को दृढ़ नहीं बना सकते उनका सिद्धान्त विचार करने पर कल्पित ठहर जाता

है। आप इसको इस प्रकार समझें कि ये लोग समस्त स्थान में अपने सिद्धान्त की पुष्टि करते करते तुम्हारा ईश्वर कहां है इस प्रश्न के उत्तर में गिर जाते हैं यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसको आगे रखकर वैदिक सिद्धान्त के आगे संसार के समस्त मत पांच मिनट में अपनी भूल सिद्ध कर बैठते हैं। हम समस्त मतों का उदाहरण न देकर केवल दो मतों का उदाहरण देंगे (१) वह मत है जो ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन को अनादि मानता है (२) वह मत है जो ईश्वर की आज्ञा से सृष्टि का होना समझता है।

प्रथम मत का कहना यह है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं, सृष्टि के आरंभकाल में ये तीनों विद्यमान थे उस अवसर पर ईश्वर की इच्छा हुई कि हम सृष्टि को रचें। ईश्वर ने प्रकृति को लेकर अपनी अनेक शक्ति से ब्रह्माण्ड तैयार किया इस प्रकार यह संसार रचा गया। जैसे कुंभकार मिट्टी को लेकर घट बना दे, जिस प्रकार स्वर्णकार सुवर्ण को लेकर कटक, कुण्डल बनादे, जिस प्रकार तन्तुवाय सूतको लेकर वस्त्र बनादे उसी प्रकार ईश्वर ने प्रकृति को लेकर संसार रचा जैसे घटका कुलाल, आभूषण का स्वर्णकार, वस्त्र का तन्तुवाय निमित्त कारण है उसी प्रकार संसार का निमित्त कारण ईश्वर है।

ऐसा माननेवाले महानुभावों से हमारा प्रश्न है कि जिस ईश्वर ने यह संसार बनाया है वह तुम्हारा ईश्वर कहां रहता है इसके ऊपर इनका उत्तर होता है कि ईश्वर तो समस्त ब्रह्माण्ड में है ऐसा कोई परमाणु भी न निकलेगा कि जिस स्थान में ईश्वर न हो इनके इस उत्तर को सुनकर हम यही कहेंगे कि बस हो चुका अब तुम्हारा मत विद्वानों के मानने योग्य नहीं रहा, असत्य सिद्ध हो गया।

यदि कोई हमसे पूछे कि यह क्या बात है, आपका मिजाज क्यों बिगड़ गया, आपने यह कैसे जान लिया कि इनका मत विद्वानों के मानने के योग्य नहीं रहा और वह असत्य होगया। इस प्रश्न पर हमारा उत्तर यह है कि कल्पना करो हम अपने पांच सात मित्रा सहित बुद्धू कुम्हार के यहाँ गये हमें बुद्धू कुम्हार से काम था उससे मिलना था। जब हम दरवाजे पर पहुँचे तो कुम्हार हमको न मिला उसका लड़का मिला हमने उस लड़के से पूछा कि तुम्हारे पिता कहाँ गये हैं, उसने उत्तर

दिया कि कल एक घट बनाया था उस घट के प्रत्येक अणु में हमारे पिता व्यापक हो गये हैं, हमारे कई बार पूछने पर भी बारबार उसने यहीउत्तर दिया हमने समझा कि यह भंग पी गया है अतएव कुछ का कुछ बकता है, क्या कभी घट के एक एक अवयव में कुलाल धंस सकता है। हम आगे को चल दिये। थोड़ी दूर चलने से एक जुलाहे का घर आगया हमको उससे भी कुछ काम था हमने उसको बुलाया तन्तुवाय कहीं गया था मकान के अन्दर से उसकी स्त्री निकली, हमने उससे पूछा कि तेरा पति कहाँ है, उसने उत्तर दिया कि कल कपड़ा बुना था उस कपड़े के एक एक सूत में धंस बैठा। हमने फिर कहा कि हम तेरे पति को पूछते हैं स्त्री ने उत्तर दिया कि जी हां मैंने उसी को बतलाया है, हम समझ गये कि यहां तो आज आबा का आबा ही बिगड़ गया, जैसा कुम्हार का लड़का प्रमाद में था वैसे ही यह स्त्री भी है आगे बढ़े। चलते चलते एक बढ़ई का घर आ गया हमको उससे भी काम था किन्तु वह मिस्त्री कहीं गया था और उसके घर के पास एक पंडित बैठा था पं० जी से हमने पूछा कि यह बढ़ई कहां गया है, पं० जी ने कहा कि कल एक साहबकी मेज बनाई थी उसके जर्रे २ में धंस बैठा। यह सुनकर हमको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने पं० जी से कहा कि अगर कुम्हार का लड़का कहे तो कोई आश्चर्य नहीं, तन्तुवाय की स्त्री कहे तो कोई शोक नहीं, शोक तो इस बात का है कि तुम लिखे पढ़े विद्वान् होकर कहते हो कि बढ़ई मेज के एक एक अवयव में धंस गया, यह कभी सम्भव है, कभी आज तक ऐसा हुआ है, कि आज ही अनोखा मिस्त्री मेज में लम्बी तानेगा। पं० जी को बड़ा क्रोध आया और आप बोल उठे कि वाह वाह शास्त्री जी आप भी खूब कहते हैं यदि घट का निमित्त कारण कुलाल घट में नहीं धंस सकता, वस्त्र का निमित्त कारण तन्तुवाय वस्त्र में व्यापक नहीं हो सकता, मेज का निमित्त कारण रथकार मेज में व्यापक नहीं हो सकता तो फिर याद रखिये कि संसार का निमित्त कारण ईश्वर भी संसारमें व्यापक न हो सकेगा जब कमण्डलु का बनाने वाला ठठेरा कमण्डलु में नहीं धंसता, आभूषण का बनाने वाला सुनार आभूषण में व्यापक नहीं होता, कुठार का निर्माता अयस्कार कभी कुठार में नहीं धंसा। जब कोई भी निमित्त कारण कार्यकर्त्ता कार्य में नही धंसता तो फिर संसार का बनानेवाला ईश्वर संसार में कैसे धंसेगा। इस उदाहरण से पाठक समझ गये

होंगे कि वस्तुओं के बनानेवाले जब वस्तुओंमें नहीं धंसते तो फिर ईश्वर कैसे धंसेगा। बस, जो ईश्वर को निमित्त कारण मानते हैं वे त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकते कि ईश्वर संसार में व्यापक है, उनका ईश्वर कहां रहता है इसका प्रमाण दें, सर्वव्यापक ईश्वर को न सिद्ध करने से विद्वानों के सन्मुख इनका सृष्टि क्रम सोलह आने असत्य और अमान्य हो गया। अब "कुन" वालों की कथा सुनिये, इनका कथन है कि जब ईश्वर की सृष्टि रचने की इच्छा हुई तब ईश्वर ने कहा कि। कुन (हो जा) ईश्वर के इतना कहने पर संसार बन गया ६ दिन में संसार बन गया और सप्तम दिन ईश्वर ने आराम किया। इनसे भी हमारा प्रश्न है कि जिस ईश्वर ने संसार के बनने की आज्ञा दी है वह तुम्हारा ईश्वर कहां है, यह भी उत्तर देते हैं कि सब जगह किन्तु इनका यह कहना पागल के भाषण से अधिक कुछ भी गौरव नहीं रखता। इसमें उदाहरण देखिये—भारतवर्ष में जो रेल बिछी है यह किसके हुक्म से बिछी है आप कहेंगे कि भारत गवर्नमेन्ट की आज्ञा से, हमने एक पुरुष से प्रश्न किया कि भारत गवर्नमेन्ट कहां रहती है, उसने उत्तर दिया कि रेल के एक एक परमाणु में व्यापक है, क्या यह उत्तर ठीक है। रेल के बनने की आज्ञा देनेवाली भारत गवर्नमेन्ट रेल में धंस बैठेगी, यदि नहीं धंसती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देनेवाला ईश्वर संसार में किस न्याय से धंसेगा।

दूसरा उदाहरण देखिये—कल्पना करो कि हम और आप शक्खर शहर के सिन्ध नदी के पुल पर पहुँचे। अद्वितीय पुल को देख कर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। हमने वहां पर खड़े हुए एक मनुष्य से पूछा कि यह पुल किसके हुक्म से बना, उसने उत्तर दिया कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के हुक्म से। हमने फ़िर प्रश्न किया कि वह ब्रिटिश गवर्नमेंट कहां है, उसने उत्तर दिया कि इस पुल में व्यापक है, हमने उससे पूछा कि कि क्या तुम पागल हो गये हो, ब्रिटिश गवर्नमेंट इसमें कैसे धंसेगी उसने, उत्तर दिया कि यदि पुल के बनने की आज्ञा देनेवाली ब्रिटिश गवर्नमेंट पुल के एक एक जर्रे में नहीं धंसती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देने वाला ईश्वर संसार के एक एक परमाणु में व्यापक कैसे होगा?

वास्तव में संसार में जितने पदार्थ बनते हैं उनके बनने की आज्ञा देनेवाला कोई भी सज्जन पदार्थ में नहीं धंसता, तो फिर संसार के बनाने की आज्ञा देनेवाला

ईश्वर संसार में कैसे धंसेगा, जरा इसका भी तो पता लगे। इन दो प्रकार की सृष्टि को मानने वाले सज्जन सृष्टि में ईश्वर के व्यापक होने का प्रमाण न आज तक दे सके हैं न आगे को दे सकेंगे। इनका ईश्वर कहां रहता है यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना है ठीक उत्तर न होने से विद्वानों की दृष्टि में ये दोनों मत कल्पित और असत्य ठहर जाते हैं तभी तो हम कहते हैं कि यदि ईश्वर को उपादान कारण न मानोगे, या यों कहो कि समस्त ही रूप ईश्वर के रूप से बने हैं ऐसा सिद्धान्त न स्वीकार करोगे, ईश्वर को साकार न मानेगे तो सृष्टिक्रम ही नहीं बनेगा।

अब हम पुराण के सिद्धान्त को लिखते हैं देखिये--

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यंति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० २

गर्भ में आये हुये पूर्णावतार प्रभु कृष्णचन्द्र की स्तुति करने के लिये समस्त देवता इकट्ठे होकर आये और स्तुति करते हुये कहते हैं कि भगवन् ये जो सत्प्रपंच है इसके केवल आपही प्रसूति हैं। जिस प्रकार घट की प्रसूति मृत्तिका है उसी प्रकार इस प्रपंच के जन्मदाता आप हैं और आपही इसके सन्निधान हैं, जैसे ध्वंस के पश्चात् सूक्ष्म कण बनकर घट मृत्तिका में लय हो जाता है इसी प्रकार यह समस्त प्रपंच आप में लय होता है और इस प्रपंच पर अनुग्रह करने वाले भी केवल आप ही हैं और आपकी माया से आच्छादित हो गया है चित्त जिनका वे आपको ईश्वर प्रकृति प्रभृति भेदों से अनेक देखते हैं किन्तु जो विद्वान् हैं वे अनेक नहीं देखते वे तो एक ही देखते हैं।

यह पुराणों का सिद्धान्त है, यही सिद्धान्त वेदों का है जिसको हम "तस्माद्वा एतस्मात्" इस श्रुति से साकार सिद्धि में दिखला आये हैं। पुराण और वेद ईश्वर को संसार का निमित्त कारण ही नहीं मानते किन्तु निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों ही मानते हैं इसको संस्कृत में "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" कहते हैं अर्थात् वेद पुराण का यह सिद्धान्त है कि इस प्रपंच का बनानेवाला ईश्वर

है और इस प्रपंच को बनने की सामग्री उपादान कारण भी ईश्वर है, इसको यों समझिये कि ईश्वर ने अपने शरीर से मेटर तैयार करके और अपने आप संसार को रचा है इसमें मकरी का दृष्टान्त है कि जाला किसने ताना मकड़ी ने, जाला तैयार होने की सामग्री क्या चौपटलाल पंसारी के यहां से आ गई, नहीं २ जाले की सामग्री मकड़ी के एक देश में विद्यमान है, मकड़ी ने ही जाला ताना है और मकड़ी में से ही जाले का मेटर निकला है। इसी प्रकार संसार के बनने को सामग्री ईश्वर में से आई और प्रपंच ईश्वर ने बनाया। यह सिद्धान्त ईश्वर के व्यापक होने का प्रमाण देता है। इस सिद्धान्त से पूछिये कि तुम्हारा ईश्वर कहाँ है, यह कहेगा कि संसार के एक एक परमाणु में विद्यमान है। फिर प्रश्न करिये कि कैसे, तो इस सिद्धान्त के लोग उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार घट के एक एक परमाणु में मिट्टी है क्योंकि घट मिट्टी से बना है और जिस प्रकार कपड़े के एक एक अणु में सूत है क्योंकि कपड़ा सूत से बना है और जिस प्रकार आभूषण के एक एक जर्रे में सोना है क्योंकि आभूषण सोने से बना है उसी प्रकार संसार के एक एक परमाणु में ईश्वर है क्योंकि संसार ईश्वर से बना है। पुराण और वेद का सृष्टिक्रम ही ईश्वर के सर्व व्यापक का प्रमाण दे सकता है क्योंकि इसने ईश्वर को संसार रूप से साकार माना है, जो केवल निराकार मान गये वे व्यापक का प्रमाण न देकर त्रिशंकु की भांति बीच में ही लटके रह गये।

जो लोग ईश्वर को सर्वथा ही निराकार मानते हैं उनके यहां ईश्वरदत्तज्ञान मनुष्यों के पास पहुँचने में बड़े २ सन्देह पैदा हो जाते हैं उनकी मान्य रीति से आये हुये ज्ञान को निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं कह सकते। इसको इस प्रकार समझिये कि ईश्वर के ज्ञान के संसार में आने के तीन मार्ग हैं (१) इलहाम (२) पैगाम (३) स्ववाच्य अर्थात् जो ईश्वर को निराकार मानते हैं उनके यहां ईश्वर ज्ञान या तो इलहाम से आवेगा या फिर पैगाम से आवेगा। जैसे कोई एक मनुष्य बैठा है उसमें ईश्वर की शक्ति आगई जैसे किसी मनुष्य पर भूत चढ़ बैठे। वह मनुष्य उस ईश्वर की शक्ति से संसार को ईश्वरीय ज्ञान समझाने लगा इसका नाम है इलहाम इस इलहामके आये हुये ज्ञान में कई एक सन्देह रहते हैं (१) यह वास्तव में ईश्वरशक्ति से कह रहा है या बेहोश होकर कह रहा है (२) वास्तव में इसमें ईश्वरशक्ति आई है या ईश्वरशक्ति आने का इसने

ढोंग रचा है, इन दो सन्देहों में तोषदायक कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिलता कि जो दोनों सन्देहों को दूर कर दे अन्धविश्वास से भले ही मानलो किंतु बलात्कार मनवाने का कोई प्रमाण नहीं है अतएव इस मार्ग से आये हुये ईश्वरीय ज्ञान को निर्भ्रान्त नहीं कह सकते।

दूसरा प्रकार पैगाम का है। इसमें यह होता है कि ईश्वर अपने ज्ञान को लिख कर किसी मनुष्य के जरिये से अपने प्रेमी भक्त के पास भेज देता है और वह भक्त संसार को बतला देता है इसमें भी बड़े सन्देह हैं (१) जब ईश्वर निराकार है, जब उसके हाथ ही नहीं तो ईश्वर ने इबारत कैसे लिखी, क्या भगडू धोबी के हाथ से लिखी (२) वह मनुष्य जो आदेश को लेकर आया है सम्भव है कि किसी मनुष्य ने उसको धोखा दिया हो अर्थात् बनावटी ईश्वर बन गया हो (३) यह भी सम्भव है कि आदेश लानेवाले ने चालाकी की हो, अपने आप अपने घर से लिख लाया हो और ईश्वर का नाम ले दिया हो इत्यादि कई एक भ्रम हो जाने से इसको भी निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं कह सकते जिनके यहां ईश्वर स्वरूप धारण नहीं करता उनके यहां ईश्वरीय ज्ञान आने के जितने मार्ग हैं वे सब अमान्य हैं।

तीसरा मार्ग ईश्वरीय ज्ञानप्राप्ति का यह है कि ईश्वर मनुष्यशरीर धारण करे और मनुष्यों को ईश्वर होने की शक्ति दिखलावे और इसके पश्चात् फिर वह ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश करे तिस ज्ञान का नाम स्वयाच्य ज्ञान है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता अतएव यह ज्ञान निर्भ्रान्त ज्ञान है। वेद पुराणों का सिद्धान्त है कि ईश्वर ब्रह्मा रूप में प्रकट हुआ और उसने अपने अलौकिक ज्ञान को ऋषियों से कहा, इस निर्भ्रान्त मार्ग में कोई शंका ही उत्पन्न नहीं हो सकती। सिद्ध हुआ कि जो ईश्वर का अवतार नहीं मानते उनके मार्ग से आया हुआ ईश्वरीयज्ञान भी निर्भ्रान्त नहीं है। आकारवाद के ऊपर यह कुछ थोड़ा सा लेख लिख कर, ग्रंथ बढ़ जाने के भय से अब इसको यहां पर ही समाप्त किये देते हैं।

* ईश्वरचरित्र *

नास्तिकता की सभ्यता में रंगे हुए सज्जनवर्ग जब ईश्वर के रूप को साकार समझ लेते हैं या विवश, मूकता धारण करते हैं तब कह बैठते हैं कि पुराणों में ईश्वर का चरित्र इतना घृणित और भ्रष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जिसको आजकल का कोई भी सभ्य पढ़ नहीं सकता लज्जित हो कर पुस्तक उठाकर ताक में रख देता है। एक चरित्रभ्रष्ट हो तो सह्य हो सकता है किन्तु जब बार बार इसी प्रकार की घटनायें पुराणों के पढ़ने से दृष्टिगोचर होती हैं तो फिर इन पुराणों को किस प्रकार सत्य मानें। उन समस्त घटनाओं को हम आगे दिखलावेंगे। जितने अवतार हुये हैं प्राय: उन सब को पुराणों ने कलंक लगाया है।

* पुराण *

यदि ईश्वर के इन रूपों ने ऐसा किया हो और पुराणों के कर्ता वेद व्यास ने उसको यथातथ्य लिख दिया हो तो सत्यतापूर्वक लिखनेवाले पुराणों को कलंकित क्यों बतलाया जाता है। यह तो पुराणों की गौरवता है कि जैसी घटना हुई उसमें किसी प्रकार का न्यूनाधिक न करके सर्वथा सत्य लिख दिया तो पुराण घृणित और बुरे क्यों। क्या आपकी यह इच्छा है कि पुराण इन घटनाओं को दबा कर लिखते। सत्यतापूर्वक लिखनेवाले पुराणों को कोई भी विचारशील बुरा नहीं कह सकता यदि कोई बुरा कहेगा तो वही कहेगा जो सत्यता का गला घोटना चाहता हो और सत्य होने पर भी किसी न किसी बहाने से पुराणों से पिण्ड छुड़ाना चाहता हो। सत्यतापूर्वक लिखने पर पुराणों का निष्पक्षपात सिद्ध है अतएव वे मान्य हैं।

* ब्रह्मा और बालखिल्य *

कई एक मनुष्यों का कथन है कि ब्रह्मा शंकर और पार्वती का विवाह करवाने गये वहां ब्रह्मा का मन मलीन हो गया, हवन की अग्नि में गीली लकड़ी लगा कर धुआँ कर दिया, शंकर आँख मलने लगे और ब्रह्मा ने पार्वती का मुख देख लिया, मुख देखते ही ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हो गया उससे बालखिल्यों की उत्पत्ति हुई, कितनी घृणित कथा है। अवतारों के लिये इतना कलंक ? ऐसा तो साधारण मनुष्य भी नहीं कर सकता।

अवतारों के चरित्र संसार की शिक्षा के लिये होते हैं। लक्ष्मण के शक्ति

लगने पर भगवान राम ने विकट रुदन किया किन्तु यह रुदन केवल लोक संग्रह के लिये था, वास्तव में रामजी को न दुःख था न सुख। इसी को हिन्दी साहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि—

उमा अखण्ड राम रघुराई।
नरगति भाव कृपालु दिखाई॥

हे उमा! रघुराज राम अखण्ड ब्रह्म हैं वे दयालु प्रभु इस प्रकार मनुष्य के भ्रातृप्रेम को दिखलाते हैं।

गीता और श्रीमद्भागवत प्रभृति संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में इसका विस्तृत वर्णन आता है उनमें से हम श्रीमद्भगवद्गीता का एक प्रमाण नीचे लिखते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

अ० ३ श्लो० २१

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं साधारण पुरुष उसी कार्य के करने की चेष्टा करता है और उसी को प्रमाण मानता है एवं उसी के पीछे समस्त संसार चलता है।

जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र जी का बिलाप संसार शिक्षा के लिये है इसी प्रकार ब्रह्मा का यह चरित्र भी लोकसंग्रह के लिये है। बातयह है कि पूर्वा-फाल्गुणी और पुष्य ये दोनों ही नक्षत्र किसी २ के मत से विवाह में लिये जाते थे किन्तु इनका फल अच्छा नहीं था। पूर्वा फाल्गुणी में जिसका विवाह होता था वह कन्या सर्वदा पतिदेव से दुःखित रहती थी। और पुष्य नक्षत्र में विवाह करने वाले पुरुष की काम भावना बढ़ जाती थी। ब्रह्मा ने अपना विवाह सरस्वती के साथ पुष्य नक्षत्र में किया और सती के विवाह में अपनी कामबृद्धि का कारण पुष्य नक्षत्र का विवाह दिखलाकर पुष्य नक्षत्र को शाप दे दिया इसी को 'विवाह वृन्दा-वन' इस प्रकार लिखता है कि—

प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं
सीता तदूढा न सुखं सिषेवे।
पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव
प्रजापतेराप स शापमस्मात्॥

प्राचेतस ऋषि पूर्वाफाल्गुणी को विवाह करने के लिये शुभ मानते हैं किन्तु उसमें विवाहित जगज्जननी जानकी ने सुख नहीं पाया, इस चरित्र से आदर्श दिखाया कि पूर्वाफालगुणी में विवाह करना दुःखित करता है। संसार ने इसमें विवाह करना छोड़ दिया। ब्रह्मा ने काम वृद्धि करने वाले पुष्यनक्षत्र में अपना विवाह किया और उसका फल बुरा दिखला कर पुष्यनक्षत्र को शाप दे दिया कि तुममें अब से कोई विवाह न हो।

इसी चरित्र में यह भी दिखला दिया कि जो पार्वती कैसी जगन्माता स्त्री पर बुरी भावना करेगा वह दूर से दूर खण्ड हो जावेगा, यह आदर्श ब्रह्मा ने दिखलाया किंतु इस पवित्रादर्श को जलंधर दैत्य ने नहीं माना, अन्त में उसका फल यही हुआ। कथा इस प्रकार है

एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः।
कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥३७॥
युद्धे शुंभनिशुंभाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ।
दश दोर्दण्ड पंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥३८॥
महावृषभमारूढस्सर्वथा रुद्रसंनिभः।
आसुर्या मायया व्यास स बभूव जलंधरः ॥३९॥
अथ रुद्रं समायातमालोक्य भववल्लभा।
अभ्यायचौ सखोमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥४०॥
यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः।
तावत्सवीर्यममुचे जड़ाङ्गश्चा भवत्तदा ॥ ४१॥

शिवपुराण युद्ध खं० अ० २२

दैत्य जलंधर इस प्रकार शंकर को एकाग्रभूत देख कर काम के वेग से मत्त होकर पार्वती के समीप गया ॥३७॥ युद्ध के लिये शुंभ निशुंभ दैत्य को स्थापन करके आप दश भुजा, पाँचमुख तीन नेत्र, जटाधारी होकर ॥३८॥ महावृषभ पर चढ़ कर साक्षात् रुद्र वह अपनी आसुरी माया से बन गया ॥२९॥ तब शिवप्रिया पार्वती

रुद्र को आया देख कर सखी जनों के मध्य से उठ कर उसके सन्मुख उपस्थित हुई ॥४०॥ ज्योंही उस दैत्येश्वर ने पार्वती को देखा कि उसका वीर्य पतित हुआ और उसके अंग जड़ी भूत हो गये ॥४१॥

इस प्रकार के आदर्श दिखलाने में क्या कोई दोष होता है ! ब्रह्मा ईश्वरावतार है, ईश्वर को श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य पुण्य पाप अपने पंजे में ले ही नहीं सकता फिर नहीं मालूम ब्रह्मा के इस चरित्र पर कटाक्ष क्यों किया जाता है।

कई एक सज्जन यह कहते हैं कि आपने ज्योतिष पर टाल दिया हम ज्योतिष के फल को कभी भी सत्य नहीं मानते। इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि तुम मानो या न मानो किन्तु ज्योतिष के फल को संसार के समस्त मजहब और वेद भगवान् सत्य मानता है देखिये—

सुहवमग्ने ! कृत्तिका रोहिणी चास्तु
भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो
भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥

अथर्व०।का० १९ अनु०१ मं०२

हे अग्नि आदि नक्षत्र देवताओ ? कृतिका रोहणी मृगशिर आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा मघा ये नक्षत्र मेरे लिये शुभ हों।

पुण्यं पूर्वाफाल्गुन्यौ चात्र हस्त-
श्चित्रा शिवा स्वातिसुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥

का० १९ अनु० १ मं० ३

पूर्वाफाल्गुनी हस्त चित्रा स्वाति राधा विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा अरिष्टकारक मूल मेरे लिये शुभ हों।

अन्नं पूर्वा रासनां मे अषाढ़ा
ऊर्जं देव्युत्तरा आवहं तु।

अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव
श्रवणःश्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥

कां० १९ अनु० १ मं० ४

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र मेरे लिये अन्न दे, उत्तराषाढ़ पराक्रम दे, अभिजित् पुण्य बढ़ावे, श्रवण बल दे, यह नक्षत्रों का अदृश्य फल है।

आमे महच्छतभिषग्वरीय
आमे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आरेवतीचाश्वयुजौ भगं मे
आमे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥

कां० १९ अनु० १ मं० ५

शतभिषा मुझे सुन्दरता दे, दोनों प्रोष्ठपदा सुख दें, रेवती अश्वयुज ऐश्वर्य दें, भरणी मुझको धन से पूरित करें।

नक्षत्रों से उत्थित भावी दुष्टफल को दूर करने के लिये वेद में विस्तृत रूप से उपाय लिखा है जिसको हम नीचे लिखते हैं पाठक अवलोकन करने की कृपा करें।

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलबर्हणात्परिपाह्येनम्
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

अथर्व० का० ६ अनु० ११ मं० २

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को विचृत कहते हैं इनमें हुआ पुत्र (मूलबर्हण) अर्थात् वंशोच्छेदक होता है। हे यम इन दोनों से इस बालक की रक्षा करो, इसके समस्त दुरित दूर करो और इसको दीर्घायु बनाओ।

व्याघ्रे अन्हि अजनिष्ठ वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।

स माऽवधीत्पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम् ॥
का० ६ अनु० ११ मं० ३

व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्रवाले दिन में उत्पन्न हुआ यह बालक मूलनामक पाप नक्षत्र से न मरे और उत्पन्न होकर माता पिता को (मा प्रमिनीत्) न मारे ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां
मूलबर्हणात्परिपाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान्विचृत प्रजानन्
तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे ॥
कां० ६ अनु० ११ मं० १

हे अग्ने ! मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई का मारक न हो, वंश का उच्छेद न करे (ग्राह्या) ग्रहण करनेवाली जो पिशाची है वह इसके पाशों को काट दे इस कार्य में सब देवता अनुमोदन करें ।

अब सिद्ध हो गया कि ज्योतिष सत्य है और नक्षत्रादि काल का प्रभाव जड़ चेतन पर पड़ता है ।

दुहितृ गमन

(२) कई एक मनुष्यों का कथन यह है कि पुराणों में बड़ी घृणित कथा हैं, ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती के पीछे व्यभिचार के लिये दौड़ पड़ा ।

वेद की दृष्टि में कोई भी चीज अनादि नहीं है केवल ब्रह्म जिसको प्रजापति और पुरुष कहते हैं एक वही अनादि है, वेद का इस विषय में यह लेख है

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म
न्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम् ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः

आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किंच नास ॥
ऋ० मं० १० अ० ११ सू० १२९ । १३०

सृष्टि के आरंभ में सत् जीव और असत् प्रकृति नहीं थी तथा रजोगुण तमोगुण, सत्वगुण एवं ब्रह्माण्ड के चारों तरफ जो तत्व समूह का आवरण है वह और वाष्पजल नहीं था उस समय न मौत, न जीवन, न रात्रि दिन का ज्ञान था किन्तु केवल अपनी शक्ति सहित एक ब्रह्म था, ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं था।

इसी ब्रह्म से यह समस्त संसार निर्माण हुआ, ब्रह्म संसार का निमित्त कारण नहीं है वरन 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' है अर्थात् ब्रह्म ही निमित्त-कारण है और ब्रह्म ही संसार का उपादान कारण है। इसी भाव को दिखलाने के लिये वेद ने पुरुष वाचक सत्ताओं को प्रजापति और स्त्री वाचक सत्ताओं को उसकी पुत्रियां माना है। जैसे सूर्य प्रजापति है और उषा जो प्रभातकाल में सूर्य निकलने की दिशा में पीलीरंगत धारण करती है वह प्रजापति की कन्या है, यह प्रजापति सूर्य अपनी कन्या उषा के पीछे दौड़ता है इसी प्रकार यज्ञ प्रजापति अपनी पुत्री पृथ्वी के पीछे २ घूमता है। भाव यह है कि प्रजापति पुरुष वाचक बन कर अनेक स्त्री वाचक अपनी पुत्रियों के पीछे दौड़ा करता है वे पुत्रियां इसकी मैथुनोद्भूत असली पुत्रियां नहीं हैं किन्तु इसके शरीर से पैदा होने के कारण वे पुत्रियां कहीं जाती हैं।

शतपथ के सृष्टिक्रम में लिखा है कि—

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्, स ह एतावानास, यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं द्विधा पादयत, ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्, ततो मनुष्या अजायन्त। साह इयमीक्षां चक्रे कथं नु मां आत्मन एव जनयित्वा संभवति, हंत तिरोसानीति। सागौरभवत् वृषभइतरः सतामेव समभवत्ततो गावोऽजायन्त। वडवा इतरा अभवदश्व इतरः। गर्दभी इतरा अभवद्गर्दभ इतरः, स तामेव समभवत्तत एक सफा अजायन्त। अजा इतरा अभवत्

बस्त इतरः । अधिरितरा मेष इतरः । स तामेवसमभवत्ततः अजा अवयश्च अजायन्त यदिदं किंच मिथुनं आपिपीलिकाभ्यः तत्स- र्वमसृजत। सो वेद,अहं वावसृष्टिरस्मि, अहं हि इदं सर्वं असृ- क्षीति । ततः सृष्टिरभवत् ।

शत० १४

उसको अकेले में आनन्द नहीं आया इसी लिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता है। उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिलकर होते हों फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो विभाग किये एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना उससे मनुष्य पैदा हुये। पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझसे रमण किया इस खेद से वह छिप गई। छिप कर गौ हुई पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया उससे गो जाति उत्पन्न हुई। फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना, फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टापवाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुए, फिर पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना, पत्नी फिर भेंड़ बनी पुरुष मेंढ़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी इसी प्रकार दोनों चीटी तक बनते गये और संसार बनता गया। फिर उस आत्मा ने जाना मैं ही सृष्टि हूँ, मैंने ही इस सबको पैदा किया इसलिये उस आत्मा का नाम, सृष्टि, हुआ इसलिये सृष्टि स्वरूप ही ईश्वर है। ईश्वर में और सृष्टि में कुछ अन्तर नहीं है केवल अज्ञान का ही भेद है।

यहां पर शतपथ ने सिद्ध कर दिया कि प्रजापति अर्थात् पुरुष वाचक पदार्थ स्त्री वाचक पदार्थों से सम्बन्ध करके प्रजाको उत्पन्न करते हैं। यह कथा केवल वेद में ही नहीं आती बरन इसीको मुसलमान ईसाइयों के यहां आदम और आदम की बांई पसली से हउआ की उत्पत्ति हुई। आदम ने हउआ से भोग किया और उसकी संतान आदमी हुये। मुसलमानों के यहाँ आदम की बांई पसली से हउआ हुई और शतपथ में मनुष्य के बाम भाग से स्त्री एवं बैल के बाम भागसे गौ, इसी प्रकार घोड़ा घोड़ी तथा गधा गधी, चीटी तक की स्त्रियाँ प्रजापति के बाम भाग से बनी हैं और उनमें प्रजापति ने भोग करके संतानें पैदा की हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि—

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य ॥
आहुरुषसमित्यन्येतामृश्यो भूत्वारोहितं भूतामभ्यैत् ।
तस्य यद्रेतसः प्रथममुदुदीप्यत तदसावादित्यो भवत्
ऐ० पं० ३ कं० ३३ । ३४

प्रजापति अपनी लड़की के पीछे दौड़ा, दिव को प्रजापति और उषा को उसकी पुत्री जानो, प्रजापति ने उषा में गर्भ स्थापित किया तो सूर्य पुत्र उत्पन्न हुआ।

इसी को शतपथ लिखता है।

प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथु न्येनया स्यामितिताथंसम्बभूव ॥१॥

तद्वै देवानामागऽआस । यऽइत्थथंस्वां दुहितरमस्माकथं स्वसारं करोतीति ॥२॥

ते ह देवा ऊचुः । योऽयं देवः पशूनामीष्टेऽतिसन्धं वाऽअयं चरति यऽइत्थथं स्वां दुहितरमस्माकथं स्वसारं करोतिविध्येममिति तथं रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामिरेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास ॥३॥

अर्थ—(प्रजापतिः) प्रजापतिदेव ने (ह) इतिहासद्योतक अव्यय है (वै) निश्चय वाचक अव्यय है (स्वां) अपनी (दुहितरं) वेटी की (अभिदध्यौ) स्पृहा की अर्थात् कामेच्छा से उसको चाहा (दिवं) द्युलोक को (वा) और (उषसं) उषःकाल को (मिथुनी) मैं अकेला हूं इससे जोड़ा (स्याम्) हो जाऊं (इति) इससे (तां) उससे (सम्बभूव) मिला अर्थात् संगम किया (तद्) वह (वै) ही (देवानां) देवताओं का (आगः) अपराध अर्थात् पाप (आस)। हुआ ब्रह्माजी से (यः) जो यह प्रजापति (इत्थम्)इस प्रकार (स्वां) अपनी (दुहितरं) वेटी को (अस्माकं) हमारी (स्वसारं) बहन को (करोति) करता है अर्थात् अपनी वेटी से जो हमारी बहन लगती है उससे ऐसा करता है(इति) बस (ते) वै निश्चय करके (ह) प्रसिद्ध है कि (देवाः) देव लोग (ऊचुः)

बोले उससे (यः) जो (अयं) यह (देवः) देव (पशूनां) पशुओं का (ईष्टे) मालिक है ईश्वर है अर्थात् शिवजी ने उनसे कहा कि (वै) निश्चय करके (अयं) यह प्रजापति (अति सन्धं) सन्ध्या मर्यादा उसको उल्लंघन करके (आचरति) आचरण करता है (इत्थम्) इस प्रकार (यः) जो यह प्रजापति अपनी पुत्री जो हमारी बहन है उसको मैथुनार्थ चाहता है (इति) इसलिये (इमम्) इसको (विध्य) बींधो अपने बाण से अनन्तर (रुद्रः) शिव (तं) उसको (अभ्यापत्य) उसके पास में चारों तरफ से पहुँच (विव्याध) बींधते हुये और इस समय ही (तस्य) उस प्रजापति का (सामि) अधर्म्मे ही अर्थात् बीच में ही (रेतः) वीर्य्य (प्रचस्कन्द) गिर गया (तथा) वैसे (इत्) ही (नूनं) निश्चय (तत्) वह (आस) हुआ।

यहां पर जो ऋषियों ने प्रजापति का पुत्री के पीछे दौड़ना पाप बतलाया ऐसा बतलाने वाले ऋषि निवृत्ति मार्ग के भक्त हैं और प्रजापति ने सृष्टि में प्रवृत्ति का आश्रय लिया है, प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही मार्ग सृष्टि के आरम्भ से चले हैं, निवृत्ति मार्ग वाले संसार की समस्त स्त्रियों को बहिन की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उनमें संसार प्रवृत्ति की भावना ही नहीं और प्रवृत्ति मार्ग वाले समझते हैं कि यह सोहनलाल की लड़की है और हम गिरधारीलाल के लड़के, ऐसा समझ कर गिरधारीलाल का लड़का सोहनलाल की लड़की से विवाह करवा लेता है। निवृत्ति वाले ऋषियों की दृष्टि में यह पाप है इसी कारण प्रजापति के कृत्य को ऋषियों ने पाप बतलाया।

ऋग्वेद भी लिखता है कि प्रजापति अपनी पुत्री के पीछे दौड़ता है। मंत्र देखिये—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्।

ऋग्वेद अ० ८ अ० १ वर्ग २७ सू० ६१ मं० ७

पिता अपनी लड़की के पीछे भागा।

श्रीमद्भागवत का सृष्टिक्रम सर्वथा शतपथ के अनुकूल है, जिस श्लोक पर यह कटाक्ष है वह यह है

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्॥

श्रीमद्भा० स्क० ३ अ० १२ श्लो० २८

काम की इच्छा रखनेवाला प्रजापति अपनी शरीर रहित लड़की वाणी जो मन को हरण करती थी और जो अकामा थी उसके पीछे दौड़ा।

यहाँ पर वाणी (बोलना) इसको लड़की और वेद को प्रजापति माना है अर्थात् वेद सुन्दर वाणी के पीछे दौड़ता है।

इस विषय में वेद ने जितना चक्कर दिया है उतना ही पुराण ने दिया है। इस चक्कर देने का अभिप्राय केवल यह है कि प्रजापति ब्रह्म संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है इसको मनुष्य उत्तम रीति से समझ लें। कोई भी मनुष्य औरत, घोड़ी, गधी, वाणी, उषा आदि को साक्षात् पुत्री सिद्ध नहीं कर सकता, न यह सिद्ध हो सकता है कि प्रजापति की अमुक स्त्री थी और उसके साथ मैथुन करने से ये पुत्रियाँ उत्पन्न हुई वरन प्रजापति के शरीर से उत्पन्न हुई हैं। शरीर में फोड़ा, फुंसी, तिल, लहसन, जुवां आदि उत्पन्न होती हैं किन्तु वे मनुष्य की पुत्रियां नहीं हो जातीं इसी प्रकार वास्तव में ये सब ब्रह्म की पुत्रियाँ नहीं हैं केवल अभिन्ननिमित्तोपादानकारण, सिद्ध करने के लिये इनको पुत्रियां कहा गया। जो लोग इस बात को नहीं समझते वे ही शंका किया करते हैं।

विष्णु।

तीसरा प्रश्न है कि विष्णु ने कृष्णावतार में चोरी की। जिन ग्रन्थों में आदर्श पुरुषों का इतना पतित चरित्र हो वे ग्रन्थ सभ्य लोगों की दृष्टि में सदा और सर्वथा अमान्य रहते हैं।

टेढ़ापन।

सामान्य लोगों के लिये भगवान् श्रीकृष्ण बड़े टेढ़े हैं भगवान् श्रीकृष्णके टेढ़ेपन को क्या कहूं, कैसे कहूँ, भगवान् कृष्ण की कभी आपने प्रतिमा देखा है यदि देखी होगी तो आपको मालूम होगा कि वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण टेढ़े हैं, खड़े रहते भी उनकी एक टांग टेढ़ी है, टांग ही नहीं टेढ़ी बल्कि बंशी भी टेढ़ी मुख भी टेढ़ा, मुकुट भी टेढ़ा और हाथ भी टेढ़े हैं जिस प्रकार यह स्वतः टेढ़े हैं जो लोग मर्यादावतार, लीलावतार प्रभृति अवतारों के भेद को नहीं जानते उनकी दृष्टि में उसी प्रकार इनकी कथा भी टेढ़ी है।

जब बच्चा गर्भ में आता है तब उसको बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता

है। एक तो माता के गर्भ में निवास करना कालकोठरी की सजा से भी कठिन है, कालकोठरी में हाथ पैर हिल सकते हैं किन्तु गर्भ में हिलने की जगह ही नहीं, इतने पर भी समाप्ति नहीं गठरी बंधकर उलटा लटकना और भी कठिन है। इतना ही दुःख नहीं माता की जठराग्नि के मारे शरीर में आंच लगती है फिर माता जो तीक्ष्ण पदार्थ खाती है उसकी तीक्ष्णता शरीर में आग लगा देती है इससे अधिक गर्भ के छोटे छोटे प्राणी नोंच नोंच खाते हैं इससे और भी पीड़ा बढ़ जाती है, जी घबड़ा उठता है, ऐसे समय में जब उसको कोई रक्षक नहीं मिलता तब वह अपनी प्राचीन कथा को आगे रख जगदीश्वर से पुकार करता है और उस पुकार के साथ ही साथ अपने इकरारनामे को भी ईश्वर के कान तक पहुँचाता है इसका विवरण निरुक्त में इस प्रकार है—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।
साङ्ख्यं योगं समभ्यस्येत्पुरुषं वा पञ्चविंशकम्॥

अर्थ—मरा हुआ मैं फिर उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर फिर मरा, अनेक सहस्र योनियां मैंने धारण कीं, अनेक प्रकार के आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया, अनेक प्रकार की मातायें देखीं, अनेक प्रकार के पिता और मित्र मिले। आज मैं नीचे को मुख करके लटका हूं और पीड़ाओं से पीड़ित हो रहा हूँ ऐसा हो कर के यह प्राणी जीव ईश्वर से कहता है कि यदि मैं इस बार गर्भ से छूट जाऊंगा तो फिर सांख्य योग और पुरुष का अभ्यसन करूंगा।

उसके विरुद्ध जिस समय भगवान् कृष्ण गर्भ में आते हैं वे किसी की भी स्तुति नहीं करते वरन ब्रह्मा, महादेव समस्त देवता भगवान् की स्तुति करने को आते हैं और बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति करके अन्त में प्रार्थना करते हैं कि—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।

इत्थं पासि नरिस्त्रभुवनं च यथाधुनेष
भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥

ईश ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामन अवतार धारण करके आप हमारी और त्रिभुवन की रक्षा करते हो ऐसी ही अब आप रक्षा करना और पृथ्वी का भार उतारना हम आप को प्रणाम करते हैं ।

संसार में जो बच्चा पैदा होता है दाई उसको साफ करती है, नाल काटती है, दो एक महीने के पश्चात् उसको कपड़े पहनाये जाते हैं । पांच छः महीने में वह बैठना सीखता है, आठ नौ महीने का जब हो जाता है, तब वह घुटनों से चलता है, वर्ष सवा वर्ष के पश्चात् खड़ा होना आता है किंतु उत्पन्न होते ही भगवान् कृष्ण को जब वसुदेव ने देखा तो वह कैसे थे इसको देखिये—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

वसुदेव ने कमल जैसे नेत्र, चतुर्भुजाधारी चारो भुजाओं में क्रम से शंख चक्र गदा पद्म धारण किये, छाती में श्रीवत्स चिन्ह और गले में कौस्तुभ मणि, पीत-पट धारण किये, नीलमेघ सदृश स्वरूप, बड़े मूल्य की वैदूर्यमणि मुकुट में लगाये, कुंडल पहिने, मुकुट और कुंडलों के प्रकाश से चमक रहे हैं ग्रथित केश जिनके, बड़े मूल्य की कर्धनी और बाजूबंद तथा कंकणों से मकान को प्रकाशित कर देने वाले अद्भुत बालक को देखा । यहाँ पर गर्भ में आने में टेढ़ापन और उत्पत्तिकाल के स्वरूप में टेढ़ापन ।

संसार में जो बच्चा पैदा होता है उसके कुछ बड़े होने पर पिता माता उस-को संसारी पदार्थों का ज्ञान करवाते हैं जब वह रोटी-दाल-लोटा-गिलास प्रभृति वस्तुओं का ज्ञान पा चुकता है तब उसको अक्षर सिखाते हैं किन्तु प्रभु श्रीकृष्ण जी प्रकट होते ही माता पिता को कहते हैं कि—

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥

प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी माता से कहते हैं कि माता ! इस सृष्टि से पहली सृष्टि में जब कि स्वायंभुव मनु वर्तमान थे उस समय जो आपका जन्म हुआ आपका नाम पृश्निः था और पिताजी का नाम सुतपा था, आप दोनों ने घोर तप किया उस तप से मैं जगन्नियन्ता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ। मैंने कहा कि वर मांगो तुमने वर माँगा कि तुम्हारे ही जैसा हमारे पुत्र हो मेरे जैसा तो मैं ही हूँ यह समझ कर मैंने आपके यहाँ जन्म लिया। तुम्हारे यहाँ मेरे दो जन्म और हो चुके हैं अब यह तीसरा जन्म है। जिस चतुर्भुजी रूप से मैंने तुमको वरदान दिया था उसी चतुर्भुजी रूप से मैं आपके आगे खड़ा हूँ आपने दर्शन कर लिये अब मैं प्राकृत शिशु बनता हूं। कहिये कुछ टेढ़ापन है या नहीं ?

संसार में तीन महीने के बच्चे में कुछ भी शक्ति नहीं होती। हमने ग्रामों में सुना है कि अमुक पुरुष का तीन महीने का बच्चा था उसको जम्बुक (गीदड़) भगवान् उठा कर ले गये किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी तीन महीने की अवस्था में भयंकरी प्राणघातिनी देवदैत्यमदमर्दिनी पूतना की छाती पर चढ़े हैं वह बलवती छुड़ाना चाहती है किंतु यह छोड़ना नहीं चाहते, आखिर वह विकल होकर कहने लगी-

सा मुंच मुंचालमिति प्रभाषिणी,
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥

वह पूतना चिल्ला कर कह रही है कि छोड़ दे, छोड़ दे, मेरे मर्म स्थानों में पीड़ा हो रही है, इतने पर भी जब नहीं छोड़ा तो मारे कष्ट के शरीर में पसीना आगया, हाथ पैर फेंकने लगी, आंखें फट गई अंत में प्राण त्याग कर दिये। यह भगवती स्तनों पर विष लगा कर दूध पिलाने आई थी इसको ऐसे गुरू मिले कि दूध के साथ प्राण भी पी गये। है बात टेढ़ी। व्यासजी लिखते हैं कि "क्व सप्त-हायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्" कहां सात वर्ष का बच्चा और कहां उसका गोवर्धन पर्वत उठा लेना क्या इसमें टेढ़ापन नहीं है ?

आजकल हम और आप माया के फंदे में फंसकर बन्दर की भांति नाच नाचते हैं। हम आये थे ओंकपद पाने के प्रयत्ने से उसको तो गये भूल किन्तु नाच

में फंस गये, हमारी वही दशा हुई कि "आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास" भगवान् कृष्ण का कथन है कि तुमको नाच नाचते कई जन्म बीत गये किन्तु तुमको नाच नाचना न आया, आओ अब हम तुम्हें नाच सिखावें, प्रभु इतना कह कर जमुना के दह में कूद गये, फिर वंशी में राग को गाते हुये सर्प के फन पर वह नाच नाचे कि ससार दंग है। यथा। संसार में बहुत से नचैया हैं क्या इन नचैयों में से कोई सांप के फन पर नाचने को तैयार है ? तैयार क्या है सच पूछिये तो सर्प के दर्शन होते ही सारे नाच पर धूल फिर जाती है, जितना नाच हमने सीखा है वह भूल जाता है, छाती धड़कने लगती है, होश ठिकाने नहीं रहता। कहिये सांप के फन पर नाचना कुछ टेढ़ा है या नहीं ? प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी की तो सभी कथा टेढ़ी हैं आप ईश्वरचरित्र को मनुष्यचरित्र से मिलावेंगे तो बराबर धोखा खायंगे। भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी तो जगन्नियंता हैं इनका चरित्र तो विलक्षण ही हुआ करता है वह लीलावतार हैं इनका चरित्र तो मर्यादावतार से भी नहीं मिलेगा फिर आप मनुष्यों से कैसे मिलाते हैं।

❁ माखनचोरी ❁

आप अपने मनमें कहते होंगे कि जिन भगवान् कृष्ण ने चोरी की उनको आप जगन्नियंता कहते हैं। इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि भगवान् चोर तो जरूर हैं किन्तु जगन्नियंता भी जरूर हैं; आप जो भगवान् को चोर कहते हैं आपका क्या कोई ट्रंक चुरा लिया या भैंस खोल ली यदि ऐसा नहीं किया तो आप उनको चोर क्या कहते हैं आपका क्या सत्व है कि आप बिना सिद्ध किये किसी को चोर की डिगरी दे दें। आपका केवल यही कथन होगा कि हमारा तो कुछ नहीं चुराया किंतु गोपियों का तो मक्खन चुराया क्या मक्खन चुरानेसे चोर नहीं कहलावेंगे। क्या मसखरी की बात है, इसको हम एक दृष्टाँत से समझावेंगे, सुनिये—

एक रोज सात बजे प्रातःकाल बा० शम्भूनाथ जी बी० ए० थाने में पहुँचे और वहाँ पर सबइंसपेक्टर से कहा दरोगाजी ? हमारे यहाँ चोरी हो गई है रिपोर्ट लिख लीजिये। दरोगाजी बोले क्या सचही चोरी होगई ? बा० शंभूनाथ बोले जी हां, सच नहीं होती तो रिपोर्ट लिखवाने क्यों आते। जाड़े के दिन थे, दरोगा जी पाखाने भी नहीं गये थे बेचारे वैसे ही बैठ गये। कलम, दवात, रजिस्टर मंगवाया

और लिखने लगे कि बोलिये आपका क्या नाम है ? बाबू जी ने कहा शम्भूनाथ, आपके पिता का क्या नाम ? बाबू जी ने कहा लाला रामसहाय, आपकी उम्र क्या है ? बाबूजी बोले ३६ वर्ष की। दरोगाजी ने पूछा कौन जात ? बाबूजी ने कहा वैश्य, आप कहां रहते हैं ? बाबूजी ने उत्तर दिया इसी अलीगढ़ शहर के जयगंज मुहल्ले में, दरोगाजी ने पूछा आपका मकान नम्बर ? लाला जी ने कहा २४०, दरोगाजी ने पूछा कि क्या चोरी घर से हुई है ? शम्भूनाथ जी ने कहा कि जी हाँ, किस वक्त चोरी हुई ? बाबूजी ने कहा कि अठारह मिनट मुझको घर से चले हुये हुआ और उससे दो मिनट पहिले चोरी हुई, दरोगा जी ने पूछा क्या क्या माल गया ? बाबूजी बोले लिखिये मैं सब लिखवाये देता हूँ। पैसा डबल २, इक-न्नी १, दुअन्नी ३, चवन्नी १, अठन्नी २, पंद्रह रुपये की सोने की अंगूठी १, घड़ी १ पौनेचार रुपये की, बस इतना ही माल गया है दरोगाजी बोले किसी पर शुबा भी है ? बाबू जी बोले अजी चोर ही आंख से देख लिया, मैं पाखाने के हाथ धो रहा था, कि इतने में चोर आया, चारपाई के पाये पर वास्कट रक्खी थी उस पर हाथ मारा और लेकर भागा मैं जब तक उठा तब तक चोर भाग गया। वास्कट तो दरवाजे पर पड़ी मिली और उसकी जेब में का इतना माल गायब हो गया। वास्कट की जेब में १६) रुपये और भी थे वे वहीं पर पड़े मिल गये। दरो-गाजी बोले चोर का क्या नाम ? बाबूजी ने कहा बंशीधर, अच्छा चोर के बाप का क्या नाम ? बाबू जी ने कहा आनरेबिल रायबहादुर लाला धर्मदत्त, दरोगा जी ने कहा कि चोर की उम्र क्या ? बाबूजी ने कहा करीबन पौने पांच वर्ष की। इतना सुनते ही दरोगा झुंझला कर बोले कि बड़े बेवकूफ हो, मनहूस कहीं के सुबह ही सुबह चल दिये और साथ ही साथ हमारी भी अक्ल मारी गई, कागज पर लिख लेते तो फाड़ कर ही फेंक देते, हमने तुमको ग्रेजुवेट समझ कर रजिस्टर पर ही लिख लिया था, अब जिस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब रजिस्टर को देखेंगे हमको क्या कहेंगे, चले आये सुबह ही रिपोर्ट करने जाहिल कहीं के, वह कौन दफा है कि जिसके जरिये से पौने पांच वर्ष के बच्चो को हम चोर ठहरा दें, जाइये कदम बढ़ाइये; हमारा जो कुछ होना होगा सो होता रहेगा किन्तु अब आप यहाँ तशरीफ न रखिये आपको देख कर हमको गुस्सा आता है।

पाठक वर्ग! आज भी ब्रिटिश गवर्नमेंट के कानून में कोई भी ऐसी दफा नहीं है कि जिसके जरिये से हम पांच वर्ष के बच्चे को चोर करार दे दें। जब कोई भी कानून पांचवर्ष की उम्र से कम मनुष्य को चोर करार नहीं देता फिर साढ़े तीन वर्ष की उम्र में या चार वर्ष की उम्र में भगवान् कृष्ण ने किसी गोपी का मक्खन चुरा लिया तो वे उस मक्खन के चुराने से किस तरीके से चोर कहला सकते हैं। हमको संसार में कोई कानून ऐसा नहीं दीखता कि जिस के जरिये से चार वर्ष की उम्र में मक्खन चुराने वाले कृष्ण को चोर कहा जाये।

गोपियाँ बैठी बैठी अपने मन ही मन प्रार्थना किया करती थीं कि नहीं मालूम वह दिन कब आवेगा कि जिस दिन भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी माखन खाने के लिये पधारेंगे और हमारे अपवित्र घर को पवित्र करेंगे। जब इस तरह की प्रार्थना करती हैं और प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र जी पधारते हैं फिर हमको नहीं मालूम कि इनको चोर क्यों कहा जाता है? क्या कोई मनुष्य अपने घर में चोर के बुलाने की प्रार्थना करता है, क्या आपने भी कभी प्रार्थना की है कि हे चोर जी! तुम हमारे घर में आना और बक्स में जो नोट और गिन्नियाँ रक्खी हैं उनको उठा ले जाना; अलमारी में का सब जेवर भी उठा लेना, शाल दुशाला सब कपड़े ले लेना, तुम जल्दी आना और हमारे घरको पवित्र करना, आपके आये बिना हम बड़े दुखी हैं।

चोर को कोई बुलाता नहीं और जो हजार बार बुलाने पर आवे वह चोर नहीं हो सकता फिर नहीं मालूम संसार के पालक श्रीकृष्ण भगवान् पर माखन-चोरी का दोष क्यों आरोपण करते हैं?

यदि कहो कि भगवान् कृष्ण चोर हैं और जगन्नियंता भी हैं। इसका उत्तर यह है कि चोर ही नहीं किंतु भगवान् को तो हम चोरराज मानते हैं। कहो क्यों? उत्तर होगा कि "तस्कराणां पतये नमोनमः" वेद लिखता है यों (भगवान् को वेद ने चोर राज बतलाया है। चोर तो दीखने वाली वस्तुओं को ही चुराता है किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उस वस्तु को चुराते हैं कि जो कभी आंख से दीख नहीं सकती)।

हमको वेद का एक एक अक्षर प्रमाण है। वेद कहता है कि ईश्वर चोर-

राज है फिर वह कौन कारण है कि जिस से हम वेद को न मानें और जगदीश्वर भगवान् कृष्णचंद्र को चोरराज न कहें। वेद के मानने में हमको लज्जा नहीं आती, वेद के मानने में हम अपनी अक्ल को नहीं लगाते, वेद के अक्षरों के हम अर्थ नहीं बदलते वरन वेद के सीधे सीधे अर्थ मानने में हम अपना गौरव समझते हैं और यही कारण है कि जिससे हम भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को चोरराज मानते हैं। भगवान् को वेद ने चोरराज बतलाया है। चोर तो दीखने वाली वस्तुओं को चुराता है किन्तु भगवान कृष्णचन्द्र जी उस वस्तु को चुराते हैं कि जो कभी आंख से दीख नहीं सकती। नीचे देखिये वह क्या चुराता है—

> नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
> अनेकजन्मार्जितपापसञ्चयं हरत्यशेषं स्मरतां सदैव॥

मनुष्य के नायक जो नारायण हैं वे संसार में प्रसिद्ध चोर हैं जिसके अन्तःकरण में एक बार घंस बैठते हैं फिर वे अनेक जन्मों के कर्मों को एकदम चुरा ले जाते हैं और मनुष्य के कर्मबंधन को काट कर फेंक देते हैं इसी से उनको चोरराज कहा गया है।

दुष्ट पापों को चुराने से भगवान् चोरराज कहे गये हैं, मक्खन चुराने से नहीं। यह तुम्हारी बुद्धि की जड़ता है जिससे तुम असली भाव को न समझ कर मक्खन चुराने से चोर कहते हो। मक्खन के चुराने से तुम भगवान् कृष्णचंद्रजी को तो क्या चोर ठहरा सकोगे तुम आज भी उसी उम्र के किसी साधारण बच्चे को भी चोर नहीं ठहरा सकते।

एक दिन दोपहर में जब कि भयंकर धूप पड़ रही थी भगवान् कृष्ण एक गोपी के घर में मक्खन खाने को घुसे। भगवान् ने मक्खन का लोंदा उठाया ही था कि भीतर की कोठरी से गोपी निकल आई, भगवान् उस गोपी को देख कर भागे, मक्खन हाथ में है और पैर जल रहे हैं इतना होने पर भी कृष्ण जोर से भाग रहे हैं इस प्रकार भागते हुये कृष्ण को देख कर गोपी भगवान् कृष्ण से कहती है कि—

> नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं च किं तेन।
> आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव॥

बच्चा और कहां बड़े भारी पर्वत का धारण करना। सिद्ध हो गया कि छः वर्ष की उम्र में कामोत्पादक मानसिक शक्तियों का संचार ही नहीं होता। जब इस अवस्था में मानसिक भावनायें कामोत्पादक नहीं बन सकतीं तब तो यही कहना पड़ेगा कि इन सज्जनों ने विचार को ताक में रख कर ही मिथ्या कलंक लगाने का साहस किया है। और यदि ये यह कहें कि हम तो कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तो इन कृपा की खीलों से पूछो कि ब्रह्म तो सर्वदा सबके अंगों को देख ही रहा है फिर शंका कैसी? यदि ये लोग यह प्रश्न करें कि ऐसा किया क्यों? तो इसके उत्तर में इतना ही कहना तोषदायक होगा कि ब्रजभूमी में प्रचलित नग्न स्नान की कुरीति को दूर कर देने के लिये। अब इनका कोई भी प्रश्न शेष नहीं रहता। बस सिद्ध हो गया कि कुरीति हटाने वाली एक साधारण सी घटना को आगे रख ये लोग कृष्ण को कलंकित करने का साहस करते हैं जिसमें ये विफल हो जाते हैं और भगवान श्रीकृष्ण के चीरहरण में किसी प्रकार का कलंक नहीं रहता।

× रास क्रीड़ा ×

जब ये लोग चीर हरण पर भी मौन धारण कर लेते हैं तब एक दौड़ रास लीला पर लगाते हैं और कहने लगते हैं कि (५) रासलीला की भ्रष्ट कथा को सभी जानते हैं।

रासलीला में कथा भ्रष्ट नहीं है मन भ्रष्ट होने के कारण कथा भ्रष्ट प्रतीत होती है। जैसे तिरछे शीशे में मुख तिरछा दीखने लग जाता है उसी प्रकार भ्रष्ट मन में पवित्र चरित्र भी भ्रष्ट दीखने लगते हैं, यही दशा रासक्रीड़ा में है। श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीका कार स्वामी श्रीधरजी रासपंचाध्यायी का टीका करते हुये लिखते हैं कि—

ब्रह्मादिजयसंरूढ़दर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमंडलमंडनः ॥

कामदेव ने ब्रह्मा से लेकर पशु पक्षियों तक का विजय कर लिया इस से कामदेव का दर्प बढ़ गया और वह कामदेव भगवान् कृष्ण के पास आया। काम देव की इच्छा थी कि हम भगवान् कृष्ण का भी विजय करें। इसी अभिप्राय से कामदेव कृष्ण के पास आया और आकर बोला कि हमने समस्त संसार को विजय

कर लिया अब हमारी इच्छा है कि हमारा और आपका संग्राम हो जाय किंतु इस मैदानी लड़ाई लड़ेंगे, लंबा चौड़ा मैदान हो, आपके सामने हमारे बड़े बड़े सेनापति खड़े हों, हमारे बड़े २ वीर सिपाही हों, हमारे योग्य काल हो और हमारी विजय कर देनेवाली समस्त युद्ध की सामग्री हो, तब हमारा आपका युद्ध हो, फिर देखिये किसका विजय होता है। किले के युद्ध में धोका खा चुके हैं इस कारण हम किले की लड़ाई नहीं लड़ेंगे। एक दिन दिव्य दिव्य अपने युद्ध के शस्त्र और बड़े २ वीर सिपाहियों को लेकर हम महादेव पर चढ़े। उस समय शंकर महादेव समाधि रूप किले में छिप गये, हमारे योद्धा काम न कर सके हम लाचार हो गये। फिर महादेव ने समाधि खोल कर एक दम हम को भस्म कर दिया अतएव इस प्रकार के किले की लड़ाई न लड़ कर आप के साथ में हमारा मैदान का समर होगा फिर हम देखेंगे कि आपका विजय होता है या हमारा। मैदान का युद्ध ठना और उसमें भगवान् कृष्ण ने कामदेव के घमंड को चूर कर दिया। ऐसे श्रीपति भगवान् गोपियों के रासमंडल के मण्डल की जय हो। श्रीधर जी इस भाव को लेकर ऊपर का श्लोक लिखते हैं और रासमण्डल रूपी युद्ध में कृष्ण का विजय दिखलाते हैं यह एक ही श्लोक पता देता है कि रासमण्डल में कामदेव ने भगवान् को नहीं जीत पाया किंतु जितेन्द्रिय रह करके कामदेव के घमंड को चूर कर दिया। जब ऐसा हुआ तब तो रासमण्डल में व्यभिचार की शंका करना अविवेक और अनभिज्ञता सिद्ध कर रही है॥

× अजेय काम ×

वास्तव में कामदेव का विजय करना कुछ हँसी खेल नहीं है। जिस समय यह हजरत हाथ फेंकते हैं उस समय बड़े बड़े काम धूल में मिल जाते हैं और इन का शिकार हो जाना पड़ता है॥ इसकी पुष्टि में कुछ उदाहरण हम नीचे लिखते हैं, देखिये—

उडुराजमुखी मृगराजकटी, गजराजविराजत मंदगती।
यदि सा वनिता हृदये रमिता, क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः

चन्द्रमा के तुल्य मुख और सिंह के तुल्य कमर, हस्ति के तुल्य मस्त चाल चलनेवाली यदि ऐसी वनिता एक बार हृदय में समा जावे फिर जप कहां, तप कहां

समाधि का स्मरण कहां। सब छूट जाते हैं और यह हजरत मनीराम वनिता के सच्चे भक्त बन जाते हैं। इस हजरत कामदेव ने कैसे कैसे तपस्वियों को धूल में मिलाया है, जरा उनका भी फोटू देखिये—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना
स्तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥

विश्वामित्र, पराशर प्रभृति अनेक ऋषि कितने ही केवल वायु मात्र का भक्षण करते और कितने ही केवल जल पान करते तथा कई एक तो सूखे पत्ते ही खाते ऐसे ऋषि भी शोभन स्त्रीमुखकमल को देख कर मोह को प्राप्त हो गये। जो लोग घृत दुग्ध दधि मिश्रित तण्डुल खाते हैं यदि वे कहें कि हम इन्द्रियों को जीत लेंगे तो उनकी इन्द्रियों का निग्रह हो जाना उतना ही असंम्भव है जितना कि विंध्याचल पर्वत का हिन्दमहासागर तैर कर पार होना है।

तावदेव विदुषांविवेकनी,
बुद्धिरस्ति भवबन्धभेदिनी।
यावदिन्दुवदना न कामिनी,
वीक्षिता रहसि हंसगामिनी ॥

विद्वानों की बुद्धि विवेकवाली तथा संसारबंधन को तोड़नेवाली तभी तक रहती है जब तक हंस की चाल चलनेवाली चंद्रमुखी वनिता का एकान्तदेश में समागम नहीं होता। इस दुर्जेय कामदेव ने केवल मनुष्यों को ही अपने वश में नहीं किया किंतु इसके पंजे से पशु पक्षियों का बचना भी असाध्य है। मान्य योगी भर्तृहरि एक दिन किसी गांव के करीब बैठे थे उनके सामने से एक कुत्ता निकला उस कुत्ते की दशा को वर्णन करते हुये इस प्रकार लिखते हैं—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः
क्षुधाक्षामो जीर्णोऽपिकरककपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥

दुर्बल, एकाक्षी, लंगड़ा, दोनों कान कटे हुये, पूंछ कटी हुई, जिसके शरीर में सैकड़ों घाव हो रहे हैं और उन घावों से पीव निकल रहा है तथा उन घावों में सैकड़ों कीड़ा पड़े हैं, भूखा हो रहा है, बूढ़ा और दुर्बलेन्द्रिय है, किसी ने उस कुत्ते के हंड़िया मारी है, हंड़िया तो फूट गई है और हंड़िया का गला कुत्ते के गले में उलझ गया है, इस दुर्दशा में पड़ा हुआ कुत्ता भी कुतिया के पीछे भागता चला जाता है। भर्तृहरि कहते हैं अरे दुष्ट कामदेव इस मुर्दा कुत्ते को तू क्यों मारता है ऐसे दुर्जेय काम को जीतने का कौन साहस कर सकता है? जो समस्त संसार को विजय करता है उसको रासमंडल में भगवान् कृष्णचन्द्रने विजय किया है। इसी से स्वामी श्रीधरजी भगवान् के लिये जय शब्द लिखते हैं और एक ही श्लोक में यह सिद्धकर देते हैं कि भगवान् कामदेव के पंजे में नहीं आये किंतु कामदेव को ही उनके चरण चूमने पड़े! अब हम ऐसा कोई कारण नहीं देखते कि जिससे रासक्रीड़ा में भगवान् कृष्ण को व्यभिचार का कलंक लगा सकें तो भी साधारणजन के बोध के लिये हम रासपंचाध्यायी के कुछ प्रकरण पाठकों के आगे रखते हैं, देखिये—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

भगवान् ने शरदऋतु की मल्लिका जिन में फूल रही है और जिन रात्रियों में कामदेव से युद्ध का वचन दे दिया उन रात्रियों को देख कर योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की। यहाँ पर योगमाया का आश्रय इस कारण लिया कि योग दशा में पहुँच कर कोई भी कामदेव के वशमें नहीं आ सकता। भगवान् ने अपनी मजबूती पहले की पश्चात् क्रीड़ा को तैयार हुये। फिर देखा कि कामदेव का जैसा कथन था समय उसके अनुकूल है या नहीं इसको दूसरे श्लोक में दिखलाते है—

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमंडलं
रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

उसी समय उन श्रीकृष्णजी की प्रीति के निमित्त, जैसे बहुत दिनों में दर्शन देनेवाला प्रियपति विनोद के समय अपनी स्त्री का मुख लालवर्ण के केशर से लिप्त करता है तैसे ही सब प्राणियों के ताप और ग्लानि को दूर करनेवाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा अपनी अति सुखकारिणी किरणरूप हाथों से उदय के रंग करके पूर्वदिशा रूप स्त्री का मुख लाल लाल करता हुआ उदय हुआ ॥ २ ॥तब श्रीकृष्ण जी ने लक्ष्मी के मुख कान्ति के समान कान्ति वाले नवीन केशर के समान लाल लाल और कमलिनियों को प्रफुल्लित करने वाले तिस पूर्ण चन्द्रमा और उसकी सुखकारी किरणों से शोभायमान हुये वृन्दावन को देख कर स्त्रियों के मन को हरनेवाला मधुर गान करा ॥३॥ भगवान् ने काल सर्वथा कामदेव के अनुकूल समझा तबहीं वंशी बजाई । भगवान् समझते थे कि ऐसा न हो कि किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय और कामदेव हमको उलहना दे कि इतनी कमी के कारण हमारा पराजय हो गया । प्रथम तो शरद ऋतु यह स्वतः ही कामोत्पादक होती है फिर शरद ऋतु में भी रात्रि यह उससे भी अधिक कामोत्पादक है और फिर चंद्रमा का प्रकाश-युक्त दर्शन जो विरही मनुष्य के लिये यमराज का दादा बतलाया गया है इससे भी अधिक कामोत्पादक बन और उसमें भी असंख्य प्रकार के पुष्पों की सुगंधि जो स्वभावतः ही विषयवर्द्धिनी है फिर मंद, शीतल, सुगंधि युक्त वायु का संचलन ये समस्त साधन युद्ध में कामदेव के सहायक हैं इनको समझ करके ही आज कामदेव को ससैन्य युद्ध में उतारने के लिये भगवान् ने मनमोहिनी वीणा बजा दी। यह वीणा थो, होगी योगियों के लिये वीणां, यह तो कामदेव के लिये संग्राम का बिगुल है । बिगुल के बजते ही कामदेव की सेना में उद्विग्न होगया, तत्काल ही तैयारियां, फौरन ही चढ़ाई के सामान हो गये । जब युद्ध का बिगुल बज जाता है फिर जो सिपाही खाना खाता हो खाने को छोड़ कर वर्दी पहिन लेता है । रोटी पकाने वाला सिपाही चौका छोड़ युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाता है, बन्दूक को साफ

करने वाला सिपाही हाथ में बंदूक लेकर तुरंत खड़ा हो जाता है । अभिप्राय यह है कि युद्ध के बिगुल को सुन करके सिपाही लोग समस्त कामों को छोड़ देते हैं और अति शीघ्रता से युद्धस्थल में पहुँचने का उद्योग करते हैं । इस वर्तमान नियम के अनुसार कामदेव के प्रबल योद्धा भ्रूभङ्गमात्र से इंद्रादिकों का विजय कर देनेवाले गोपियों के यूथ वंशी के बजते ही अपने कृत्यों को छोड़कर जिस प्रकार समर की उपस्थिति में शीघ्रता करते हैं उनकी शीघ्रता का वर्णन भगवान् वेदव्यास जिस प्रकार लिखते हैं उसके पढ़ने का पाठक कष्ट उठावे ।

निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥
दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥
परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥
लिंपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजंत्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ।७।
ता वार्यमाणाःपतिभिः पितृभिर्भ्रातृबंधुभिः ।
गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्तंत मोहिताः ॥ ८॥

उस कामदेव की वृद्धि करने वाले गान को सुनकर जिनके मन कृष्ण ने खींच लिये हैं और सापत्न्यभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार जिन्हों ने अपना कृष्ण के समीप जाने का उद्योग परस्पर जताया नहीं है ऐसी वह गोकुल में की स्त्रियें जहां वह श्रीकृष्ण जी थे तहां गान की ध्वनि के मार्ग से चली गईं उस समय जाने की शीघ्रता से उनके कानों के कुंडल हिलते थे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी को जताने वाले शब्द के सुनने से श्रीकृष्णजी की ओर को चित्त लगानेवाले पुरुषों के धर्म, अर्थ, काम के प्रतिपादन करने वाले कर्मों की तत्काल निवृत्ति होती है यह दिखाने के

लिये गोपियें आधा आधा हुआ ही अपना काम छोड़ कर चली गईं यह वर्णन करते हैं, कितनी ही गोपियें गौओं का दूध दुह रही थीं उन्होंने आधा दूध दुहा इतने ही में श्रीकृष्ण की मुरली का शब्द सुनाई दिया सो वह श्रीकृष्णजी को पाने में उत्कंठित होकर वह दूध का पात्र तहां ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही गोपियें दूध की हांडी में के दूध को चूल्हे पर चढ़ा कर वह औट गया या नहीं सो बिना देखे ही तैसे ही चली गईं, [illegible]री कितनी ही गोपियें चूल्हे के ऊपर होते हुये हलुआ को बिना उतारे तैसे ही चली गईं ॥ ५ ॥ कितनी ही पति पुत्रों को भोजन परोस रही थीं सो अन्न-परोसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने बालकों को स्तनों का दूध पिला रही थीं सो तैसा ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही अपने पति की सेवा कर रही थीं वह अधबीच में ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही भोजन कर रही थीं, वह भोजन को छोड़ कर चली गईं ॥ ६ ॥ कितनी ही शरीर में चन्दन आदि मल रही थीं, कितनी ही शरीर में उबटना लगा रही थीं और दूसरी कोई नेत्रों में काजल आंज रही थीं वह अपना काम आधा आधा ही छोड़ कर उन श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं, कितनी ही वस्त्र आभूषण धारण कर रही थीं वह उलटे ही वस्त्र पहिन कर, गले के आभूषण चरणों में और चरणों के आभूषण गले में पहिन कर, नाक की नथ कानों में और कानों की बाली नाक में पहिन कर श्रीकृष्णजी के समीप को चली गईं, ॥ ७ ॥ अब जिनके मन श्रीकृष्णजी ने खींचे हैं उनको विघ्न नहीं होते हैं ऐसा वर्णन करते हैं। गोविंद द्वारा चित्त को खिंचने के कारण मोहित होकर श्रीकृष्णजी के समीप को जाने वाली वह स्त्रियें पति माता पिता और भाई बान्धवों के निषेध करने पर भी पीछे को न लौटीं किन्तु श्रीकृष्णजी के समीप को ही चली गईं ॥ ८ ॥ जो दशा समरभूमि में युद्ध का बिगुल सुन कर सिपाहियों की होती है वही दशा आज गोपियों की हो गई है। कई एक गोपियों को उनके बान्धवों ने नहीं जाने दिया उनकी भी दशा देखिये—

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥
दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षीणमंगलाः ॥१२॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबंधनाः ॥ ११ ॥

उस समय कितनी ही गोपियें तो घर में ही थीं उनको उनके पति-पुत्रादिकों ने द्वारों में जंजीर ताले आदि लगा कर कृष्ण के समीप जाने से रोक लिया इस कारण उनको मार्ग नहीं मिला सो वह पहिले ही श्रीकृष्ण का ध्यान करनेवाली थीं परन्तु उस समय उन्होंने नेत्र मूंद कर एकाग्रता से श्रीकृष्णजी का ध्यान करा ॥ ९ ॥ और वह अति प्रिय श्रीकृष्णजी के दुःसह विरह से होनेवाली तीव्र ताप करके अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पाप कर्मों का फल (दुःख) एक साथ भोग कर शुद्ध चित्त हुई तैसे ही ध्यान से प्राप्त हुये श्रीकृष्णजी के आलिंगन के परमसुख करके अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पुण्य कर्मों का फल (सुख भी) भोग कर क्षीणपुण्य हुई इस प्रकार तत्काल जिनके पुण्य पापरूप बंधन सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसी वह गोपियें जार बुद्धि से भी इन परमात्मा श्रीकृष्णजी को प्राप्त होकर अपने गुणमय शरीर को त्याग सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुई ॥ १० । ११ ॥

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हंत शिरसा तत्रापि याचे वरम् ।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गणे
व्योम्नि व्योमतदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेनिलः ॥

भीतर घर में बंद हुई गोपी मरने के समय प्रार्थना करती हैं कि मेरा जो शरीर है वह पंचतत्व को प्राप्त हो और मेरे शरीर में जो तत्व समूह है वह अपने अपने तत्व में प्रवेश करे ऐसा होते समय में भी मैं नम्र होकर के अपने शिर को जगदीश्वर के चरणों में झुकाती हुई एक बर माँगती हूँ कि मेरे जो शरीर का जल है वह उस वापी के जल में जाय जिस में कृष्ण स्नान करते हैं, मेरे शरीर की जो ज्योतिः है वह उस दर्पण में जावे जिसमें भगवान् मुख देखते हैं, मेरे शरीर का जो आकाश है वह उस आंगन में जाय जिसमें भगवान् खेलते हैं, मेरे शरीर का जो पृथ्वी तत्व है वह उस मार्ग में जाय जिस पर भगवान् चलते हैं, मेरे शरीर का जो वायु तत्व है वह उस तालवृन्द में जाय जहाँ भगवान् को शीतल मंद सुगंध वायु स्पर्श करता है । मुरली की ध्वनि से मोहित होकर अपने समीप आई हुई उन गोपियों को देख

कर कहनेवालों में श्रेष्ठ वह भगवान् श्रीकृष्ण जी अपनी वाणी की छटाओं से उनको मोहित करते हुये कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि हे महाभाग्यवतियो! तुम मेरे समीप आई यह बड़ा सुन्दर हुआ, मैं तुम्हारा प्रिय कौन कार्य करूं, इतने ही में सब गोपियाँ घबड़ाई हुई सी आई हैं ऐसा देख कर भयभीत हुये से कहने लगे कि हे गोपियो मेरे प्रिय गोकुल का कल्याण ता है, तुम्हारे आने का क्या कारण है सो कहो ॥ १८ ॥ लज्जा से मंद मंद हँसती हुई गोपियों को देख कर कहने लगे कि अरी सुकुमारियो! इस बन में स्त्रियों को रहना उचित नहीं है इससे तुम लौट कर गोकुल को चली जाओ क्योंकि यह रात्रि भयंकर है और इसमें व्याघ्र आदि भयंकर प्राणी फिरते हैं ॥ १९ ॥ और तुम्हें न देखते हुये तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता और पति तुम्हें ढूँढ़ते होंगे इससे उन बांधवों को अपने न मिलने का कष्ट न दो ॥ २० ॥ तब वह थोड़े से प्रेमयुक्त कोप से दूसरी ओर को देखने लगीं तब उनसे कहने लगे कि तुमने पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित हुये और यमुना के जल को स्पर्श करके आनेवाले मंद मंद पवन से कंपायमान होनेवाले वृक्षों के पत्तों से शोभायमान दीखनेवाले और प्रफुल्लित हुये वृन्दावन को भी देख लिया ॥ २१ ॥ इससे हे सतियो तुम अब गोकुल में जाओ, बिलंब न करो, पतियों की सेवा करो, तुम्हारे बालक भूंखे होकर रो रहे होंगे उनको दूध पिलाओ और गौओं के बछड़े रंभाते होंगे उनको दूध पिला कर गौओं को दुहो ॥ २२ ॥ फिर आवेश से क्षुभित दृष्टिवाली देख कर गोपियों से कहने लगे अथवा मेरे स्नेह से तुम मेरे वश में चित्त हो जाने के कारण आई होओ तो यह तुम्हें योग्य ही है क्योंकि मुझमें सब ही प्राणी प्रीति करते हैं ॥ २३ ॥ हे कल्याणियो निष्कपट भाव से पति की सेवा करना और पति के जो बंधु आदि हों उनसे प्रेमभाव के साथ यथा योग्य बर्ताव करना और बालकों का पालन करना यह स्त्रियों का उत्तम धर्म है ॥ २४ ॥ जुआ आदि खेलने वाला होने के कारण दुष्ट स्वभाव वाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी और दरिद्री भी पति को, पुण्य लोक की इच्छा करने वाली स्त्रियें न त्यागें, ब्रह्महत्यादि महापातकों से दूषित हो तब भी उसकी दूर से ही सेवा करें संपर्क न करें ॥ २५ ॥ कुलीन स्त्री को पर पुरुष से मिलने वाला जो सुख वह परलोक में स्वर्ग का और इस लोक में यश का नाश करने वाला, तुच्छ, दुःखदायक, भयकारी और लोक में तथा स्त्रियों में भी निन्दित है ॥२६॥ हे स्त्रियो मेरे विषे जैसा सुनने से, देखने से, ध्यानसे

और मेरे गुणों को वर्णन करने से स्नेह अधिक होता है तैसा अंग के संग से नहीं होता है इस कारण तुम अपने अपने घरको चली जाओ ॥ २७ ॥

छलें लेख से यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि गोपियों में भक्ति और कामभावना विद्यमान है किन्तु भगवान् में कामभावना का लेशमात्र नहीं है। इस अध्याय के अंत तक जो कुछ गोपियों ने कहा उसमें भक्ति और कामभावना ये दोनों ही स्पष्ट रूप से झलकते हैं। अंत में जब गोपियां अत्यन्त दुखी हुई तब भगवान् कृष्ण आतमाराम हो करभी रमण को तैयार हुये। भगवान् कृष्ण के पवित्र वायु के स्पर्श से गोपियों की कामभावना क्षय होने लगी तब श्रीकृष्णजी ने गोपियों की कामभावना को फिर उद्दीपन किया। इसका विवरण इस प्रकार है—

बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरु
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणा
मुत्तंभयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥

दूरवाली को पकड़ने के निमित्त भुजा फैलाना, बलात्कार से खींच कर आलिंगन करना, हाथ, केश, जंघा, वस्त्र का बंधन और स्तनों का स्पर्श करना, हास्य की वार्ता करना, नखों के अग्र भागों से नोचना, क्रीड़ा के साथ देखना और हँसना इस प्रकार उन व्रज सुंदरियों के कामदेव को उद्दीपित करते हुये श्रीकृष्णजी ने उन को क्रीड़ा कराई ॥ ४६ ॥

भगवान् कृष्ण से आदर मिलने पर गोपियों को अभिमान हो गया, भगवान् कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये, गोपियां बड़ी दुखी हुई। वन वृक्षों से पूछती हुई यमुना तट पर पहुँची वहां कृष्ण की विविध प्रकार की, लीला की फिर कृष्ण को खोजती हुई वन को चलीं। ज्ञात हुआ कि एक गोपी कृष्ण के साथ गई है वह भी मिलगई, यमुना तट में आकर कृष्ण के गुणगान करने लगीं। इकतीस के अध्याय में गोपियों ने कृष्ण में अलौकिक प्रेम दिखलाया है किंतु इस अध्याय में भी गोपियों मेंकामभावना सिद्ध होती है। बत्तीस के अध्याय में कृष्ण का प्रादुर्भाव होना और गोपियों

के साथ में कृष्ण के वार्तालाप का वर्णन है और तेंतीस के अध्याय में रासक्रीड़ा है। इन पांच अध्यायों में एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिसको आगे रख कर कोई भी गोपियों के साथ कृष्ण का व्यभिचार सिद्ध कर सके। भगवान् कृष्ण शुद्ध थे और वे किसी प्रकार से भी काम के वश में नहीं हुए। इसकी पुष्टि में श्री मद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधर जी नीचे लिखे प्रमाण देते हैं (१) "भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः" ॥ इस श्लोक में भगवान् व्यास जी ने "योगमायामुपाश्रितः" पद दिया है अर्थात् रासक्रीड़ा करने के लिये भगवान् ने योगमाया का आश्रय लिया। योगमायी पुरुष को "विषय" अपने काबू में नहीं कर सकते क्योंकि सांसारिक विषय में उस आनन्द का लेश मात्र नहीं है जो आनन्द योग में होता है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा
स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

समाधि से हुये पवित्र मन को जिसने आत्मा में लगा दिया उसको जो सुख होता है उस सुख को जबान से नहीं कह सकते, वह सुख अन्तःकरण से ग्रहण होता है।

इस अलौकिक आनंद में मग्न होकर भगवान् ने रासक्रीड़ा का आरंभ किया इसका अभिप्राय यह है कि योगियों को काम सता नहीं सकता, जब तक भगवान् रासक्रीड़ा में रहेंगे योगमाया का आश्रय लिए रहेंगे। इस भाव को दिखलाने के लिए व्यासजी ने "योगमायामुपाश्रितः" यह पद दिया है (२) फिर भगवान् वेद व्यासजी ने "इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्" इस श्लोक को लिख कर यह सिद्ध किया है कि भगवान् कृष्णचंद्र आत्माराम हैं। जो आत्माराम है उसको सांसारिक विषय अपने काबू में नहीं ला सकते। इस विषय में प्रमाण भी मिलता है–

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम्।

सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

हे वरद ! आप कैसे हैं कि यदि कोई आप के घर की सामग्री की संभाल करे तो आपके घर में इतनी सामग्री पावे । बूढ़ा बैल, खटिया का एक पाया, कुठार, मृगचर्म, भस्म, सांप, मुर्दे की खोपड़ी बस आपके घरमें इतनी सामग्री है और देवता लोग आपकी भृकुटि के चलाने से उत्पन्न हुई बड़ी बड़ी ऋद्धि सिद्धियों को धारण करते हैं यह बात क्या है ? बात यह है कि आत्मा में है रमण जिसका उसको यह मृगतृष्णा अपने चक्कर में नहीं डाल सकती ॥ ३ ॥ वेदव्यास जी लिखते हैं कि "तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः । पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः । इस श्लोक में वेदव्यासजी ने यह सिद्ध किया है कि जीवों के मन को कामदेव मथ डालता है और कामदेव को चूर्ण कर देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी हैं । जब "मन्मथमन्मथः" पद श्लोक में विद्यमान है फिर किस हेतु को लेकर भगवान् कृष्ण पर व्यभिचार का कलंक लगा सकते हैं [४] आगे वेदव्यासजी लिखते हैं "एवं शशाँकांशुविराजिता निशा स सत्यकामोऽनुरतावलागणः । सिषेव आत्मन्य वरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ इस प्रकार प्रेम करनेवाली स्त्रियों के समूह में रहनेवाले, सत्यसंकल्प और अपने में ही वीर्य को रोकनेवाले (अस्खलित वीर्य) तिन श्रीकृष्णजी ने चंद्रमा की किरणों करके प्रकाशयुक्त हुई और शरद ऋतु में होनेवाले तथा काव्य में कहे हुये रसों की आश्रय उन सकल रात्रियों में इस प्रकार क्रीड़ा करी।

इन चार प्रमाणों से श्रीमद्भागवत संहिता के निर्माता भगवान् वेदव्यास और श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधरजी भगवान् कृष्ण को अखंडित ब्रह्मचर्य सिद्ध करते हैं । वर्तमान समय में जो भगवान् की पवित्र लीला मर्यादा को कलंकित करने का मिथ्या साहस करते हैं उनके पास उनके पक्ष की पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं है । उनके मन स्वतः अपवित्र हो गये हैं इस कारण उनको समस्त संसार और भगवान् कृष्णचंद्र की लीला भी अपवित्र जान पड़ती है । इससे भिन्न और इनके पास एक भी प्रमाण नहीं है । श्रीधरजी इस विषय में जो लिखते हैं वह लेख यह है—

ननु विपरीतमिदं परदारविनोदेन कंदर्पविजेतृत्वप्रतीतेः। मैवम्। योगमायामुपाश्रितः। आत्मारामोऽप्यरीरमत्। साक्षान्मन्मथमन्मथः। आत्मन्यवरुद्धसौरत इत्यादिषु स्वातंत्र्याभिधानात् तस्मद्रासक्रीड़ाविडंबनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्वम्। किंच। शृंगारकथोपदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पंचाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः।

दूसरे की स्त्रियों के साथ विनोद करके कामदेव का विजय करना यह भी विपरीत है अर्थात् दूसरे की स्त्रियों के साथ में रह कर कामदेव का विजय करना असंभव है। यदि कोई इस प्रकार की शंका करता हो तो मत करे क्योंकि "योगमायामुपाश्रितः" "आत्मारामोऽप्यरीरमत्" "साक्षान्मन्मथमन्मथः" "आत्मन्यवरुद्धसौरत" इत्यादि श्लोकों में कृष्ण को स्वातन्त्र्य कहा है इस कारण से रासक्रीड़ा जो है काम के विजय करने के लिये है यही हम टीका में स्पष्ट करेंगे और शृङ्गार रस के उद्देश से रासपंचाध्यायी निवृत्तिपरक है प्रवृत्तिपरक नहीं है।

(५) राजा परीक्षित का प्रश्न है कि—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९ ॥

हे शुकदेवजी धर्म को भली प्रकार स्थापन करने और अधर्म को दूर करने को ही अपने अंशरूप बलरामजी के साथ उन जगदीश्वर भगवान् ने अवतार धारा था ॥ २७। फिर हे ब्रह्मन् उपदेश करके दूसरों से धर्म की मर्यादा को प्रवृत्त करने वाले, आप आचरण करके दिखानेवाले और विरोधियों का तिरस्कार करके सब प्रकार के धर्म की रक्षा करनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने ही परस्त्री का स्पर्शरूप यह बड़ा धर्म विरुद्ध कार्य कैसे किया, यदि कहो कि पूर्ण मनोरथों को यह अधर्म नहीं

होता है तो पूर्णकाम भी निन्दित कर्म नहीं करते हैं, तब पूर्ण मनोरथ श्रीकृष्णजी ने किस अभिप्राय से यह परस्त्री स्पर्शरूप निन्दित कर्म करा, हे सदाचार इस हमारे संदेह को तुम काटो ॥ २९ ॥

इसका उत्तर श्रीशुकदेव जी ने जो दिया है वह यह है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

सामर्थ्य वालों का साहस और धर्मव्यतिक्रम भी देखा जाता है किन्तु तेजधारियों को उसका कुछ दोष नहीं होता जैसे अग्नि दूषित पदार्थ को खाकर दूषित नहीं होता ।

सामर्थ्यवान् को दोष नहीं होता शास्त्र में इसके तीन दृष्टान्त आते हैं एक अग्नि का, दूसरा सूर्य का और तीसरा गङ्गा जी का। हिन्दी साहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी तुलसीकृत रामायण में तीनों दृष्टान्त इकट्ठे कर दिये हैं ।

चौपाई इस प्रकार है—

समरथ को नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

समरथ को दोष नहीं होता जैसे सूर्य अग्नि और गंगा जी को दोष नहीं लगता । पृथ्वी पर पड़े हुये "मल" से जब सूर्य संयोग करता है तो उसके बदबूदार गीलेपन को मल से खींच लेता है फिर प्रशंसा यह है कि अपनेमें उसको ग्रहण नहीं करता । यह सूर्य में सामर्थ्य है कि जिस दूषित पदार्थ के साथ वह संयोग करे दूषित अंश को उसमें रहने नहीं देता और अपने में आने नहीं देता । यही सामर्थ्य अग्नि में भी है । कल्पना करो कि अग्नि में किसी ने सूखा "मल" डाल दिया वह अग्नि सूखे मल में उस दूषित पदार्थ को रहने नहीं देगा और अपने में ग्रहण नहीं करेगा किन्तु मल में प्रवेश करके दूषितांश को हाइड्रोजन बना के उड़ा देगा । यही सामर्थ्य गंगा जी में भी है । गंगा जी में जब दूषित पदार्थ पड़ेगा तो संयोग करते ही गंगा जी उसमें से दूषितांश के निकालने का उद्योग आरंभ कर देगी और शनैः शनैः उसको शुद्ध बना देगी और वह दूषितांश अपने में आने नहीं देगी । इस प्रकार की सामर्थ्य जिसमें हो उसको समर्थ कहा गया है । धन, विद्या,

राज्य आदि सामर्थ्य को लेकर यहाँ सामर्थ्यवान् नहीं लिया जाता है। सूर्य, अग्नि, जान्हवी में जो यह सामर्थ्य है कि संयोग वाले पदार्थ में से दूषितांश निकाल देंगे और संयोग वाले पदार्थ में से दूषितांश को अपने में लेंगे नहीं। भगवान् कृष्ण ने रासपंचाध्यायी में इसी शक्ति को दिखलाया है। गोपियों में उत्कट भक्ति रहने पर भी कामभावना थी इस कामभावना को जगदीश्वर ने गोपियों में से निकाल डाला और अपने तक आने नहीं दिया इसी भाव को लेकर श्रीशुकदेवजी लिखते हैं कि "तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा" सिद्ध होगया कि गोपियों में काम भावना थी और कृष्ण में काम के विजय करने की इच्छा थी। अखंड ब्रह्मचर्य धारण किये रहते गोपियों के कामको विजय किया है जैसा कि कोई भी सामान्य पुरुष कर नहीं सकता। इसी गूढ़ अभिप्राय को आगे रख भगवान् को "जार शिरोमणि" कहा गया है।

हम पीछे दिखला चुके हैं कि भगवान् ने छठे वर्ष में चीर हरण और सप्तम वर्ष में गोवर्धन को धारण किया है। सप्तम वर्ष में ही यह रासलीला हुई है इसका प्रमाण इस प्रकार है।

> न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
> भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६
> याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
> यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७
>
> श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० २२

मेरे में जिनकी बुद्धि लग गई है उनका काम काम के लिये नहीं होता वरन मेरे में काम भावना करना निवृत्ति के लिये प्रवृत्ति है जैसे भुने और पके हुये धान फिर नहीं जमते। २६। तुम सिद्ध मनोरथ हुई अब व्रज को जाओ आनेवाली रात्रियों में तुम मेरे साथ रमण करना, तुम इस लिये पूर्ण मनोरथ हुई हो कि तुमने आर्या कात्यायनी देवी का अर्चन और व्रत किया है। २७

छः वर्ष की अवस्था में भगवान् ने आनेवाली रात्रियों में रमण का होना कहा है इस कारण से रासलीला के वक्त भगवान् की आयु सात वर्ष की थी, साथ ही साथ यह भी कह दिया कि जो मेरे में काम भावना करता है वह

काम भावना काम के लिये ऐसे नहीं रहती जैसे कि भुना और पका अन्न नहीं जमता। हमको नहीं मलूम कि शंका करने वाले लोग इन प्रकरणों को क्यों नहीं देखते? पूरा प्रकरण देखने से रासलीला में मैथुन की शंका ही नहीं रहती।

+ कुब्जासमागम +

(६) किसी किसी सज्जन का कथन है कि कुब्जा के साथ में तो कृष्ण का व्यभिचार मानोगे? इसका निर्णय करने के लिये हम कुब्जा की आख्यायिका लिखते हैं।

अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः।
सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ॥ १॥
महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम्।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः॥
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपिमंडितम्॥२॥
गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासना
त्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा।
यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः॥३॥
तथोद्धवः साधु तथाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम्।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः॥४॥
सा मज्जनालेपदुकूलभूषण
स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोरिस्मतविभ्रमेक्षितैः॥५॥

आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया
विशंकितां कंकणभूषिते करे।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥६॥
साऽनंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाऽक्ष्णो
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजंती।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त
मानंदमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥
सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम्।
अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥
आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥

श्रीमद्भा० स्क० १० अध्या० ४८

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! तदनन्तर सर्वात्मा और सर्वदर्शी उन भगवान् श्रीकृष्णजी ने कामतप्त हुई कुब्जा का कामसंताप जान कर उसका प्रिय करने के निमित्त उसके घर गमन करा ॥१॥ वह उसका घर बहुत मूल्य के पात्र आदिकों से युक्त कामशास्त्र में कहे हुये कामोद्दीपक पदार्थों से बढ़ा हुआ और मोतियों की माला, ध्वजा, कपड़छत, शय्या कोमल आसन, अगर के धूप, मणियों के दीपक, फूलों की माला और चंदन के लेप आदि से शोभित था ॥२॥ घर आने वाले उन श्रीकृष्ण को देखते ही घबड़ाई हुई वह कुब्जा आसन पर से उठ कर सखियों के साथ यथायोग्य रीति से सन्मुख जाकर उसने श्रीकृष्णजी की उत्तम प्रकार से आसन पाद्य आदि सामग्री समर्पण करके पूजा करी ॥३॥ तैसे ही उद्धवजी का भी उसने उत्तम प्रकार से पूजन करा सो वह आसन को स्पर्श करके भूमि पर ही बैठ गये, तदनन्तर लोकरीति का वर्ताव करनेवाले श्रीकृष्णजी ने भी नवीन (जिसके ऊपर पहिले किसी ने भी शयन नहीं करा ऐसे) बहुत मूल्य के पलंग पर प्रवेश करा ॥४॥ तब वह कुब्जा भी स्नान करना, अंग को उबटन लगाना, उत्तम वस्त्र पहिरना,

भूषण और माला धारण करना, ताम्बूल और अमृत की समान मधुर मदकारी वस्तु का सेवन करना इत्यादि प्रकारों से भगवान् के साथ क्रीड़ा करने को अपने शरीर सम्हाल कर, लज्जायुक्त मंदहास्य और विलास के साथ देखती हुई श्रीकृष्णजी के समीप आई ॥५॥ श्रीकृष्णजी के नवीन समागम के कारण लज्जा से स्वयं समीप आने में लज्जा युक्त हुई तिस कुब्जा को श्रीकृष्णजी ने अपने समीप बुला कर उसके कंकणों से भूषित हाथ को पकड़ कर शय्या पर बैठाया और उसके साथ क्रीड़ा करी, चंदन का लेपन करने के सिवाय जिसका दूसरा कोई भी पुण्य नहीं था, उस कुब्जा का देखो कितना भाग्य है ॥६॥ तदनन्तर अनन्तशक्ति श्रीकृष्णजी के चरणों की सुगंध ही सूँघती है मानो ऐसी तिस कुब्जा ने मदन से तप्त हुए अपने स्तन वक्षःस्थल और नेत्रों में उनके चरणों को रख कर तिससे अपने स्तनादि की कामपीड़ा दूर करके स्तनों के मध्यभाग में प्राप्त हुये उन आनन्द मूर्ति अतिप्रिय श्रीकृष्णजी के भुजाओं से आलिंगन करके अपना बहुत दिनों का ताप दूर कराया,७॥ अहो ! इस प्रकार चंदन का लेपन अर्पण करने से ही उन दुष्प्राप्य भी मोक्ष के स्वामी श्रीकृष्ण जी को पाकर भाग्यहीन भी वह कुब्जा उनसे यह याचना करने लगी कि ॥८॥ हे अतिप्रिय कमलनयन ! तुम्हारा संग छोड़ने को मैं उत्साह नहीं कर सकती हूं इस कारण कुछ दिनों पर्यन्त तुम मेरे साथ क्रीड़ा करो और इस मेरे घर में ही रहो ॥९॥

मैं आप से पूछता हूँ कि ये जो श्रीमद्भागवत पर व्यभिचार का दोष लगाते हैं इनको इतना भी तो विचारना चाहिये कि श्रीमद्भागवत के वक्ता कौन ? और श्रोता कौन ? तथा समय क्या ? श्रीमद्भागवत के वक्ता वह श्रीशुकदेवजी हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मज्ञानी, जिनको कभी स्वप्न में भी संसारी विषय मोहित नहीं कर सकते, जो स्त्री पुरुषों के ज्ञान से भी अनभिज्ञ हैं, जो संसारी विषयों की तरफ से बिल्कुल मन इन्द्रियों को हटा कर ब्रह्म में लीनकर बैठे हैं, जिनको बड़े ऋषि, मुनि जीवनमुक्त की दृष्टि से देख रहे हैं यह कथा तो रही वक्ता की । अब जरा एक दृष्टि श्रोता पर भी डालें । श्रोता कौन हैं, वही राजा परीक्षित, जो यह जानते हैं कि अब मेरी आयु सात दिन की है, अब मुझे क्या करना चाहिये कि जिससे आत्मा को सद्गति मिले, इसी विचार में जिसने राज्य पूज्य देवश्लाघ्य राजसिंहासन और संसारी विषयों पर लात मार दी, जो बिल्कुल संसार से विमुख हो गया, वही राजा परीक्षित श्रोता हैं । समय

भी वह है कि एक दिशा में परमपावनी भारतवर्ष के यज्ञोपवीत का स्वरूप धारण करनेवाली भागीरथी बह रही है और तट पर श्रीशुकदेवजी के सम्मुख परीक्षित बैठा हुआ है तथा आस पास ऋषि मुनियों के आसन लगे हैं। क्या कोई बुद्धिमान, सभ्य, विचारशील यह अनुमान कर सकता है कि यह समय व्यभिचार की बातें करने का है ! क्या राजा परीक्षित ने अपना घर, संतान, स्त्री आदि इसी कारण से छोड़े थे कि व्यभिचार की दो दो बातें सुनेंगे। क्या राजा परीक्षित ने बड़े २ ऋषि मुनियों को इसी कारण बुलाया था कि दौड़ो यहां पर व्यभिचार की कथा होगी। क्या श्रीशुकदेवजी इसी कारण से विरक्त और ज्ञानी, जितेन्द्रिय हुवे थे कि परीक्षित के यहां व्यभिचार की कथा बांचनी होगी। इस समय इस सभा में अत्यन्त व्यभिचारी भी उपदेशवश या लज्जावश उसकी बात भी न करेगा। भला अब इनसे पूछो तो सही कि क्या आपने कभी एक दृष्टि इस पर डाली, कभी नहीं। यदि इस पर जरा भी विचार करते तब तो व्यभिचार की शंका ही न उठती।

(२) यह व्यभिचार का दोष किस पर है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर ? इन्द्रियों को अपने आधीन लाकर विषय से विमुक्त होना ही जिनका दृढ़ सिद्धान्त है, क्या वही श्रीकृष्णचन्द्रजी व्यभिचारी हैं ? यह कथन बचों का सा बकवाद नहीं तो और क्या है ? गीता के प्रकरण पर भी एक दृष्टि डालें।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी से अर्जुन ने प्रश्न किया कि—

अथ केनप्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः। ३६।

श्रीकृष्णचन्द्र ! भला यह तो बतलाओ कि यह पुरुष किसके उभारने (बहकाने) से पाप करता है। हे वार्ष्णेय ! यह पाप करना चाहता भी नहीं तथापि इसको कोई दूसरा ही पाप करने में जबरन प्रवृत्त करता है वह कौन है ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी की तरफ से उत्तर—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। ३७।

रजोगुण से उत्पत्ति जिसकी बहुत खानेवाला यह काम (मन की इच्छा) और बड़ा पापी यह क्रोध जबर्दस्ती पाप करवाता है इसको ही तू शत्रु जान ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथा दर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् । ३८ ।

जैसे धुवां आग को ढक लेता है और जैसे मैल शीशे को आच्छादित कर लेता है । जैसे झिल्ली बच्चे को ढक लेती है ठीक उसी प्रकार यह पवित्र आत्मा को आच्छादित कर लेता है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च । ३९ ।

इस कामरूप ने जो ऐसी आग है जिसका भरना कठिन है और जो ज्ञानी का सदा बैरी है, ज्ञान को ढक रक्खा है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् । ४० ।

इन्द्रियां और मन तथा बुद्धि इसके रहने की जगह हैं इन में बैठ कर इनके द्वारा यह ज्ञान को दबा कर और इनको उभाड़ कर आत्मा को इन्द्रियों के विषय में मोहित कर देता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।४१ ।

श्रीमद्भाग० अ० ३

हे भरत के वंश में श्रेष्ठ ! इस लिये तू पहिले इन्द्रियों को रोक कर इस ज्ञान और विज्ञान के नाश करनेवाले इस पापी का नाश कर ॥ ४१ ॥

इन सज्जनों को इतना भी तो सोचना चाहिये था कि इन्द्रियों को वश में कर लेना ही जिनका इष्ट है क्या वे ही श्रीकृष्ण इन्द्रियों में फंस कर व्यभिचार करेंगे । धन्य है इनके विचार को और इनकी विचारशालिनी बुद्धि को जो किंचित् भी विचार नहीं करते ।

इस कथा में भगवान् का कुब्जा के यहाँ आना और शय्या पर बैठना, कुब्जा को भी शय्या पर बिठलाना, कुब्जा का आलिंगन करना इतना सिद्ध है, भोग करना नहीं। यदि कोई यह कहे कि हम "रमस्व" क्रिया से भोग भी ले लेंगे। इसका उत्तर यह है कि रमस्व क्रिया "रमु क्रीडायाम्" धातु की है जिसका अर्थ मैथुन नहीं होता (२) कृष्ण अकेले नहीं थे साथ में उद्धव भी थे (३) कुब्जा भी अकेली नहीं थी उसके साथ में अनेक सखियां थीं, इस समुदाय में भोग की शंका भी नहीं हो सकती (४) कृष्ण की आयु भी भोग के योग्य नहीं थी इस समय भगवान् कृष्ण की आयु ११ ग्यारह वर्ष की है। ग्यारह वर्ष की अवस्था में दो प्रमाण मिलते हैं [क] भगवान् कृष्ण पवित्र चन्द्रवंश क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुये हैं इस जाति में धर्मशास्त्रों ने १२ बारहवें वर्ष में उपनयन विधि लिखी है। अभी भगवान् कृष्ण का उपनयन नहीं हुआ इस कारण इस समय भगवान् कृष्ण ग्यारहवें वर्ष में हैं [ख] श्रीमद्भागवत में स्पष्ट लिखा है देखिये—

ततो नंदव्रजमितः पित्रा कंसाद्वि विभ्यता।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

स्कं० ३ अ० २

कंस से भयभीत हुये पिता वसुदेव ने भगवान् कृष्ण को व्रज में नन्द के यहां पहुँचा दिया। यहां पर सबल भगवान् कृष्ण ने ग्यारह वर्ष तक इस प्रकार निवास किया जैसे राख में ढकी हुई अग्नि रहती है।

इनसे यह पूछो कि तुम श्रीकृष्ण को मनुष्य मानते हो या ब्रह्म ? यदि ये कहें कि हम तो मनुष्य मानते हैं तो इनसे कहो कि आपने किसी वैद्य हकीम या डाक्टर से पूछा कि क्या ग्यारह वर्ष की अवस्था में जो इस समय कृष्ण भगवान् की अवस्था थी उसमें मनुष्य के शरीर में भोगशक्ति का संचार हो जाता है या नहीं, संसार भर के डाक्टर एक जबान होकर उत्तर देंगे कि नहीं नहीं। जब इस अवस्था में भोगशक्ति का संचार ही नहीं तो फिर शंकावालों ने बुद्धि को कहां रक्खा और यदि ये यह कहें कि हम तो कृष्ण को ब्रह्म मानते हैं तो इन कृपा के झीलों से पूछो कि सर्वत्र व्यापक ब्रह्म में शंका कैसी। संसार के पदार्थों में से ऐसा एक भी पदार्थ

नहीं है कि जिसके प्रत्येक परमाणु में ब्रह्म की सत्ता न हो।

यहाँ पर एक शंका यह करते हैं कि वास्तव में ब्रह्म कृष्ण में कामभावना नहीं है किन्तु कुब्जा ने तो भगवान् का पतिभाव से आदर किया है, ऐसी स्त्री के साथ बैठना क्या पाप नहीं है ? ऐसी शंका वही पुरुष कर सकता है जिसको लीलावतार के प्रयोजन का ज्ञान नहीं है। लीलावतार का मुख्य प्रयोजन मनुष्यों को मोक्ष देना होता है इसको श्रीमद्भागवत ने इस प्रकार लिखा है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

स्कं० १० अध्या० २९

राजन् ! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, गुणों के आधार भगवान् का जो कृष्ण रूप में प्रकट होना है वह केवल मनुष्यों को मोक्ष देने के निमित्त है ॥१४॥ जो मनुष्य भगवान् में काम, क्रोध, भय, प्रेम, ऐक्यता, मित्रता को धारण करता है वह तन्मयता को प्राप्त होता है ॥१५॥

बस लीलावतार भगवान् कृष्ण के चरित्र में यह नियम अबाध्यरूप से पाया जाता है। बकी स्तनों में विष लगा कर भगवान् को मारने के लिये आई किन्तु भगवान् ने ऐसा करने पर भी उसको मोक्ष दी। अघासुर गोप और कृष्ण को खाने के लिए आया उसको भी सारूप्यता मिली। शिशुपाल ने युधिष्ठिर के यज्ञ में अनेक दुर्वचन कहे किन्तु उसको तन्मयता मिली। बकी के विष और अघासुर के द्वारा मृत्यु, शिशुपाल के द्वारा मिली हुई गालियां इन पर कुछ भी ध्यान न देकर भगवान् ने इनका संसार बंधन काट दिया। इसी प्रकार कुब्जा के कामभाव पर दृष्टि न देकर कुब्जा को मोक्ष की अधिकारणी बनाया है बस इतना अभिप्राय था।

÷ कृष्णोद्वहन ÷

(७) कोई सज्जन यह भी कहते हैं कि यह तो ठीक है किन्तु भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार एक सौ आठ विवाह करवाये यह अनुचित और सभ्यता के बाहर था।

"लक्षं वेदाश्चत्वारो लक्षमेकं तु भारतः" चारों वेद के मंत्र एक लक्ष हैं और एक ही लक्ष श्लोक महाभारत में हैं। वेद के एक लक्ष मंत्रों में कौन विषय है, इसके विवेचन से यह उपलब्ध होता है कि वेद काण्डत्रय में विभक्त है। कर्मकाण्ड उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड यही तीन विषय वेद में हैं। जिस समय बटुक उपनयन को धारण करता है वह उपनयन छियानवे चउवे का बनता है इसका कारण यह है कि वेद के कहे हुये कर्मकाण्ड के उत्पादक अस्सी हजार वेद मंत्र हैं और उपासना काण्ड को कहनेवाले वेदमंत्र सोलह हजार हैं,अस्सी और सोलह को मिलाने से छियानवे होते हैं उपनयन धारण करने के समय बटुक यह संकल्प करता है कि अस्सी हजार वेद मंत्रों में कहे हुये कर्मकाण्ड को और सोलह हजार वेद मन्त्रों में कहे हुये उपासना काण्ड को आज मैं अपने कंधे रखता हूँ शेष चार हजार ज्ञानकाण्ड है। मनुष्य जब उसमें प्रवेश करता है तब शिखा सूत्र दोनों का परित्याग कर देता है। काण्डत्रय में सोलह हजार श्रुतियां जो बतलाई हैं यह स्थूल हिसाब है, सूक्ष्म हिसाब से सोलह हजार एक सौ सात श्रुतियाँ हैं। जिस समय भगवान् ने लीलावतार श्रीकृष्ण का रूप धारण किया उस समय इनकी उपासना करने के लिये सोलह हजार एक सौ सात श्रुतियों की अधिष्ठात्री देवताओं ने स्त्री रूप धारण कर के श्रीकृष्ण से पाणिग्रहण किया इस प्रकार १६१०७ सोलह हजार एकसौ सात स्त्रियां तो ये हुई और एक भगवती रुक्मिणी रूप धारण करके लक्ष्मी अवतरित हुई। इस कारण से भगवान् श्रीकृष्ण की १६१०८ स्त्रियां हुईं। अब शंका यह रही कि क्या अधिष्ठात्री देव भी होते हैं ? हां होते हैं। यदि हम अधिष्ठात्री देव को न मानें तो फिर पृथ्वी का गौरूप धारण करना नहीं बनता और वेद इस बातको मानता है कि पृथ्वी ने गौरूप धारण किया एवं पृथु ने उसको दुहा। इस विषय का वेद मंत्र हम इसी ग्रन्थ में पहिले लिख आये हैं वहां पर ही देख लेना।

× पृथु का विवाह ×

(८) कई एक सज्जनों का कथन है कि महाराज पृथु का विवाह उनकी भागिनी अर्चि के साथ हुआ था।

हम प्रथम पृथु और अर्चि की उत्पत्ति लिखते हैं देखिये—

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः।

बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत । १ ।
तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ।
ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः ।

एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी ।
इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी । ३ ।
अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥
इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती । ५ ।

श्रीमद्भा० स्कं० ४ अध्या० १५

निषाद उत्पन्न होने के पश्चात् पुत्रहीन राजा वेन के शरीर को ऋषियों ने फिर मथा । वेन की भुजाओं से एक जोड़ा पैदा हुआ ॥ १ ॥ ब्रह्म के ज्ञाता ऋषि उस मिथुन को देख कर परम संतुष्ट हो बोले और उन्होंने भगवत्कला को जाना।२। ऋषि बोले कि यह भगवान् विष्णु की भुवन पालन करनेवाली कला है और यह जो कन्या है यह पवित्र लक्ष्मी की कला है ॥ ३ ॥ इनमें जो यह प्रथम पुमान है यह राजाओं के यश को विस्तृत करेगा इस कारण इसका नाम महाराज पृथु होगा और यह अलौकिक चरित्र वाला होगा ॥ ४ ॥ तथा यह जो सुदती देवी है गुणभूषण स्त्रियों की भूषण होगी और यह वरारोहा पृथु को ग्रहण करने वाली है इसका नाम अर्चि होगा ॥ ५ ॥

इस कथा से अर्चि का पृथु की भगिनी होना कदापि सिद्ध नहीं होता। भगिनी भ्राता का व्योहार संसार और शास्त्रों में उस समय लिया जाता है जब कि सृष्टि योनिज हो । यहां पर पृथु और अर्चि दोनों ही अयोनिज हैं ॥ हम ब्रह्मा सरस्वती की कथा में स्पष्ट रूप से दिखला आये हैं कि मुसलमान, ईसाई, दयानंदी और वैदिकसृष्टि तथा साइंस सृष्टि अयोनिज होने के कारण भाई-बहिन और पिता पुत्र व्योहार वहां नहीं रहता तथा पृथु की कथा में तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि

महाराज पृथु ईश्वर का अवतार हैं और अर्चि लक्ष्मी का अवतार है अतएव ये पति पत्नी हैं भाई बहिन नहीं हैं। लक्ष्मी ईश्वर की स्त्री है इसको सभी पुराण कहते हैं इतना ही नहीं किंतु यजुर्वेद अध्याय ३१ के अंतिम मंत्र में वेद ने स्पष्ट कर दिया है कि "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ" हे भगवन् श्री और लक्ष्मी ये दो तेरी पत्नी हैं। जब वेद ने लक्ष्मी को ईश्वर की पत्नी बतला दिया तो फिर वह भगिनी कैसे हुई? यदि कहो कि हम यह मानते हैं कि ईश्वर की पत्नी लक्ष्मी है किंतु अर्चि पृथु की पत्नी नहीं है ऐसा मान लेना अक्ल को बाजार में नीलाम कर देना है क्योंकि पृथु ईश्वर है और अर्चि लक्ष्मी है अतएव किसी प्रकार से भी पृथु और अर्चि में भाई बहिन का संबंध नहीं घट सकता।

❀ विष्णुवृन्दाचरित्र ❀

(९) किसी किसी सज्जन का कथन है कि विष्णु ने बलात्कार वृन्दा का पातिव्रत धर्म भंग किया, यह व्यभिचार है और घोर पाप है।

उत्तर—शिवपुराण रुद्रसंहिता युद्धखण्ड में जलंधर की कथा आती है। यह प्रबल वीर था किन्तु वीरशक्ति का इसने दुरुपयोग किया। देवताओं के अधिकारों को छीन कर यह वेदमार्ग को लुप्त करना चाहता था। एक दिन यह राक्षस पार्वती का पातिव्रत धर्म भंग करने के लिये कैलास पर्वत पर पहुँचा। इस कथा को शिवपुराण ने इस प्रकार लिखा है—

> एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः।
> कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत्। ३७
> युद्धे शुंभनिशुंभाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ।
> दश दोर्दण्ड पंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥३८॥
> महावृषभमारूढस्सर्वथा रुद्रसंनिभः।
> आसुर्य्या मायया व्यास स बभूव जलंधरः ॥३९॥
> अथ रुद्रं समायातमालोक्य भववल्लभा।
> अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥४१॥
> यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः।

तावत्स वीर्यमुमुचे जड़ागश्चाभवत्सदा ॥४१॥

युद्ध खं० अ० २२

दैत्य जलंधर इस प्रकार शंकर को एकाग्रभूत देख कर काम के वेग से मत्त होकर पार्वती के समीप गया ॥ ३७ ॥ युद्ध के लिये शुंभ निशुंभ दैत्य को स्थापन करके आप दश भुजा, पांच मुख, तीन नेत्र, जटाधारी होकर ॥ ३८ ॥ महावृषभ पर चढ़ कर साक्षात् रुद्र वह अपनी आसुरी माया से बन गया ॥ ३९ ॥ तब शिवप्रिया पार्वती रुद्र को आया देख कर सखीजनों के मध्य से उठ कर उसके सन्मुख उपस्थित हुई ॥ ४० ॥ ज्योंही उस दैत्येश्वर ने पार्वती को देखा कि उसका वीर्य पतित हुआ और उसके अंग जड़ीभूत हो गये ॥ ४१ ॥

श्रीमती जगदम्बा अंतर्धान होकर उत्तर मानस को चली गई। जलंधर शंकर से युद्ध करने को चला गया। उत्तर मानस में पार्वतीजी ने विष्णु का स्मरण किया, विष्णु आये, पार्वती को प्रणाम किया। पार्वती ने पूछा कि आप को जलन्धर की विचित्र घटना ज्ञात हो गई ? विष्णु बोले हां माता हो गई। पार्वती ने कहा कि अब इसको मारो। यह मरेगा तब, जब इसकी स्त्री का पातिव्रतधर्म भंग होगा। पातिव्रतधर्म के भंग करने का इसने आरम्भ कर दिया है इसके आरम्भ किये हुये मार्ग का आचरण करो और इसको मारो। विष्णु ने छल के साथ वृन्दा का पातिव्रतधर्म भंग कर दिया। भोग के अन्त में वृन्दा विष्णु को शाप दे गई और आप अग्नि में जल कर मर गई। अग्नि में जलते समय विष्णु ने बहुत रोका किन्तु कालनेमि की पुत्री वृन्दा चिता में प्रवेश कर गई। उस समय ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता अपनी स्त्रियों सहित वृन्दा की सद्गति देखने को आये। सब के देखते ही देखते वृन्दा के शरीर से कुछ प्रकाशपुंज निकला और वह तेज पार्वती के शरीर में प्रवेश कर गया इस प्रकार जब वृन्दा की मोक्ष होगई तब विष्णु बहुत देर तक उसकी चिता की भस्म में लोटते रहे यह वृन्दा की कथा है।

इस कथा में जलंधर का मारना उचित है क्योंकि वह वेद मार्ग का लोप करके संसार में अत्याचार फैलाता था यदि इसकी धर्मपत्नी वृन्दा का पातिव्रत-धर्म भंग न किया जाता तो नहीं मालूम यह राक्षस कितनी स्त्रियों का पातिव्रत धर्म भंग करता। और को तो क्या कहें यह जगदम्बा पार्वती का ही पातिव्रतधर्म भंग करना चाहता था। अनेक स्त्रियों का धर्म बचाने के लिये एक वृन्दा का पाति-

व्रतधर्म भंग हो गया तो यह धर्ममर्यादा रखने के लिये हुआ है इस कारण पाप नहीं, विष्णु ने जलंधर का रूप धारण करके वृन्दा से भोग किया है इस में पातिव्रतधर्म तो अवश्य भंग हो गया किंतु वृन्दा ने तो जलंधर समझ कर भोग किया है और जिस समय विष्णु जान लिया उसी समय शरीर नहीं रक्खा अतएव सर्वांश में पातिव्रत धर्म का भंग नहीं हुआ इसी कारण वृन्दा की मोक्ष हो गई, जलंधर का मारना आवश्यकीय था उसके मारे बिना स्त्रियों के धर्म की मर्यादा नहीं रह सकती थी, धर्ममर्यादा रखने के लिये ही विष्णु ने वृन्दा का पातिव्रत धर्म भंग किया किंतु विष्णु को पातिव्रत धर्म भंग करने का पश्चात्ताप हुआ अतएव वह माननीया पूज्या वृन्दा की चिता में लोटते रहे, नहीं मालूम इसमें कलंक क्या है, इस कथा में तो संसार में धर्ममर्यादा का रखना और पातिव्रत धर्म का महत्व वर्णित हुआ है इस में कोई पाप की बात नहीं है।

किसी किसी सज्जन का कथन है कि यह तो सब ठीक है किंतु विष्णु ने जो वृन्दा का पातिव्रत धर्म भंग किया है इसका पाप तो विष्णु को लगा, इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि विष्णु को पाप नहीं लगा। देखिये—

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबंधाः ॥
स्वैरं चरंति मुनयोऽपि न नह्यमाना
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बंधः ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भागवत दशम स्कं० अ० ३३

जिस विष्णु के चरण कमल के पराग से तृप्त भक्त विष्णु के चरणयोग के प्रभाव से अखिल कर्मबंधनों को काट देते हैं और फिर कर्मबंधन से छूट कर वे मुनि स्वेच्छा तनु बन जाते हैं भला कहीं ऐसे जगदीश्वर कोभी कर्मबंधन होता है ?

ईश्वर के किये हुये अनेक कर्म संसार में होते रहते हैं। कहीं प्लेग, कहीं इनफ्लूँजा, कहीं युद्ध, कहीं भूचाल क्या इन कर्मों का फल ईश्वर को मिलता है, यदि मिलता है तब तो कर्म के भोग से ईश्वर कभी छुटकारा ही नहीं पा सकेगा। ईश्वर को कर्मफल किस कानून से मिलता है। वेद शास्त्र में जो शुभाशुभ कर्म कहे हैं यह श्रुति स्मृति रूपी कानून मनुष्यों के लिये है ईश्वर के लिये नहीं है फिर

नहीं मालूम वह कौन कानून है जिस कानून से ईश्वर को पापी ठहराया जाता है फिर कर्म का फलदाता कोई और होता है और भोक्ता कोई और होता है यदि ईश्वर कर्म फल भोक्ता है तो फिर कर्म फलदाता कौन है ? कई एक सज्जन यह कहते हैं कि प्लेग इनफ्लूँजा आदि रोग ईश्वर मनुष्यों के कर्मों के अनुसार देता है इस कारण ईश्वर को ऐसे कामों के करने का फल नहीं मिलता । यह भी गप्प है । ईश्वर मनुष्यों के कर्मों को बिना भोगे भी मिटा देता है । वेद कहता है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यै स आत्मा वृणुते तनूंस्वाम् ।

बहुत बकवाद से आत्मा नहीं मिलता, अत्यन्त बुद्धिमान् होने से ईश्वर नहीं मिलता, बहुत श्रुत से आत्मा नहीं मिलता, जो अनन्य भक्त होकर ईश्वर की शरण जाता है उसको मिलता है और यह आत्मा उसी को अपना शरीर दिखलाता है । यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में लिखा है कि—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पंथा विद्यते यनाय ॥

यजु० अ० ३१ मं० १८

इस महान् पुरुष को हमने जाना जो सूर्यसदृश वर्ण वाला और तम से परे है इसी को जान करके पुरुष मृत्यु को जीतता है इससे अन्य कोई मार्ग ऐसा नहीं है जिस मार्ग से चल कर मृत्यु का विजय कर सके ।

वेद की इन दो श्रुतियों में ईश्वर का दर्शन होना लिखा है । ईश्वर के दर्शन का क्या फल होता है उसको मुंडकोपनिषद् लिखता है—

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

जब उस परावर ईश्वर का दर्शन हो जाता है तब हृदय की ग्रंथि टूट जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं, समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं।

ईश्वर के दर्शन से अथवा ईश्वर की कृपा से किये हुये जीव के कर्म बिना भोगे ही क्षय हो जाते हैं वेद में भी इस प्रकार की प्रार्थना मिलती है देखिये—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

यजुर्वेद के इस मंत्र का अर्थ करते हुये यास्क मुनि लिखते हैं कि "त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् । सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारकमिवो-र्वारुकमिव फलं बंधनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषापरा भवति ॥

हम तीन नेत्रोंवाले रुद्र (परमात्मा) को पूजते हैं जो पुण्यगंध से युक्त है (धन धान्यादि) की पुष्टि का बढ़ाने वाला है (जिससे कि उसकी कृपा से) खर-बूजे की नाईं हम बंधन से छूटें मत अमृत से।

ईश्वर के दर्शन होने पर कर्मों का क्षय हो जाता है यह "भिद्यते हृदय-ग्रंथिः" इस श्रुति द्वारा सिद्ध है। ईश्वर की कृपा से कर्मबंधन कट जाता है यह "त्र्यम्बकं" इस मन्त्र की प्रार्थना से सिद्ध है। यही बात श्रीमद्भागवत के श्लोक में सिद्ध की गई है। जब ईश्वर के दर्शन और ईश्वर की कृपा से जीव का ही कर्म-बंधन कट जाता है तब ईश्वर का कर्मबंधन में बंध कर पुण्य पाप भोगना नितान्त चण्डूखाने की गप्प या बुद्धि की मूर्खता है। ईश्वर कर्मबंधन में नहीं आता इस कारण वृन्दा के पातिव्रत भंग करने का पाप ईश्वर को नहीं लगा।

कोई कोई सज्जन कहते हैं कि विष्णु को शाप लगा। शाप भी तो कर्मबं-धन है। इसके उत्तर में इतना कहना पर्याप्त है कि कर्म का फल कर्म प्रमाण से होता है और शाप इसके विपरीत होता है। बड़े भयंकर कर्म करने पर थोड़ा शाप और थोड़े पाप कर्म पर बहुत बड़ा शाप होता है। चित्रकेतु योगाभ्यास से समस्त सिद्धियों को पा गया था अतएव यह लब्धप्रतिष्ठ गिना जाता था। एक दिन यह एक सभा में गया उस सभा में ब्रह्मेन्द्र प्रभृति समस्त देवता बिराजमान थे। महा-देव जी भी दिगम्बर बन पार्वती को लेकर उस सभा में बैठे थे। महादेव की

देख कर चित्रकेतु ने कहा—

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया । ६ ।

यह शंकर संसार का गुरु है और शरीरधारियों के लिये धर्म का वक्ता है ऐसा होकर के भी यह सभा में सभापति बन दिगम्बर स्त्रीसहित बैठा है । इस वाक्य को सुन कर पार्वती बोली—

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ।१५ ।

अतएव तू आसुरी पापी योनि को प्राप्त हो जा जिससे बेटा तू फिर किसी महात्मा का अनादर नहीं करेगा ।

यहां पर चित्रकेतु का अपराध बहुत न्यून था और जगदम्बा ने क्रोध में आकर शाप जो दिया उसके कारण चित्रकेतु को भयंकर आपत्ति में पड़ जाना पड़ा । पार्वती के शाप से ही चित्रकेतु वृत्रासुर बना । यह कथा श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्ध के सप्तदश अध्याय में लिखी है ।

एक दिन विश्वसृज सत्र में दक्ष आये उनको देख कर समस्त देवता उठे किन्तु ब्रह्मा और रुद्र न उठे । ब्रह्मा की आज्ञा से दक्ष बैठ गया, शंकर को देख कर उसको बड़ा क्रोध आया । दक्ष बोला कि देवताओ तुम सब सुनो न तो मैं मत्सरता से कहता हूँ और न अभिमान से कहता हूं किन्तु यह लाल लाल आंख करे जो निर्लज्ज शंकर बैठा है इसने सन्मार्ग का लोप कर दिया, इसने हमारी कन्या को बिवाहा है क्या यह उठ कर वाणी से भी हमारा सत्कार नहीं कर सकता था, इसने वेद की क्रिया का लोप कर दिया, यह अपवित्र है, मर्यादाओं का तोड़ने वाला है । हमने इसको बिना इच्छा के अपनी कन्या ऐसे दे दी जैसे शूद्र को वेद पढ़ा दे । यह प्रेतों में रहता है, घोर प्रेत इसके साथ रहते हैं, यह पागल की तरह केशों को फैला कर कभी हंसता हुआ और कभी रोता हुआ घूमा करता है, यह मुर्दे की भस्म शरीर में लगाता है, मुर्दे की अस्थि शरीर में धारण करता है, इसका नाम तो शिव है पर सच पूछिये तो यह अशिव है, यह बेहोश है, बेहोश लोग ही इसको प्यारे हैं इत्यादि अनेक कटु शब्द शंकर को कहे और अन्त में शाप दे दिया

कि इसको यज्ञभाग न मिले। शाप देते समय सब देवताओं ने दक्ष को रोका किन्तु किसी की न सुनी रुद्र को शाप दे दिया। अब भी दक्ष का क्रोध शान्त न हुआ अतएव वह अपने घर को चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध के द्वितीय अध्याय में लिखी है। दक्ष ने शंकर का अपराध किया और शंकर को ही शाप दे दिया किंतु शंकर ने उनको शाप नहीं दिया और कटु शब्दों को सह लिया अतएव शाप का सम्बन्ध कर्म से नहीं है क्रोध से है। यहां शंकर का भारी अपमान हुआ किन्तु शंकर ने हलका भी शाप नहीं दिया इससे सिद्ध हो गया कि हलके अपमान पर भारी शाप, भारी अपमान पर हलका शाप वा शापाभाव भी हो जाता है।

जिसको शाप दिया जावे उसको यदि क्रोध आ जाय तो वह भी शाप दे देता है इसके लिये श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में दक्षयज्ञ विध्वंस देखना चाहिये जहाँ पर अनेक शापों के बदले में अनेक शाप हैं। शाप देनेवाला यदि प्रसन्न हो जावे तो शाप हलका हो जाता है या बिना भोगे बिलकुल ही चला जाता है इसके लिये इन्द्र प्रभृति देव तथा मनुष्यों की आख्यायिकायें देखनी चाहिए। इन्द्र के सहस्रभग के सहस्रनेत्र हो गये और हलके शाप के लिये श्रीमद्भागवत के नवमस्कंध में सुद्युम्न की कथा देख लेनी चाहिए। सिद्ध हो गया कि शाप का संबंध कर्म से नहीं है किंतु क्रोध से है अतएव वृन्दा के शाप से विष्णु का कर्मफल भोगना सिद्ध नहीं होता।

रुद्रचरित्र।

लिङ्ग शब्द की व्याख्या

शिव पुराण में शिवलिंगों का वर्णन है, नास्तिक लोग लिंग शब्द से मूत्रेन्द्रिय अर्थ कर लेते हैं और वह जनता को समझा देते हैं कि मूत्रेन्द्रिय को ही लिंग कहते हैं। जनता को यह तो खबर नहीं कि लिंग शब्द से किन किन वस्तुओं का बोध होता है, वह समझ बैठती है कि वास्तव में शिव पुराण में बड़ी भद्दी कथायें हैं कहीं पर तो महादेव का लिंग बढ़ गया और कहीं पर मकान में आग लग कर लिंग जल गया एवं कहीं पर महादेव हाथ में लिंग लेकर घूमते फिरे। आज हम प्रथम यह दिखलाते हैं कि लिंग मूत्रेन्द्रिय को ही कहते हैं या इससे

भिन्न कोई और वस्तु भी लिंग कहलाती है पाठक नीचे लिखे दर्शनों के लेख को देखें।

विषाणीककुद्मान्प्रान्ते बालधिस्सास्नावानिति गोत्वे दृष्टं लिंगम्।

वै० द० अ० २ आन्हि०१ सू० ८

विषाण [सींग] ककुद [ऊंचा कंधा] पूंछ सींग के नीचे बाल, सस्ना गले में लटकती खाल ये सब गोत्व जाति में लिंग हैं।

और भी देखिये—

न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्ट लिंगो वायुः।

वै० द० अ० २ अ०१ सू० ११

दो वायु या अनेक वायुओं का जो संयोग विशेष है वह वायु के अनेक होने का लिंग है।

आगे देखिये—

आकृतिर्जातिलिंगाख्या।

न्याय० द० अ० २ अ० २ सू० ७०

जाति के लिंग का नाम आकृति है।

और पढ़िये

लिंगतो ग्रहणान्नानुपलब्धिः।

न्याय० द० अ० ३ आ० २ सू० १६

लिंग द्वारा उत्पत्ति, विनाश, कारण के पाये जाने से उसकी उपलब्धि का अभाव नहीं हो सकता।

आगे पढ़िये—

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात्।

सां० द० अ० १ सू० १३७

लिंग जो महत्तत्वादि हैं उनसे प्रकृति अव्यक्त सूक्ष्म है।

हमने दो चार नमूने लिंग शब्द के यहां पर दिखला दिये, संस्कृत साहित्य में अनेक पदार्थों को लिंग के नाम से याद किया गया है, व्याकरण के आचार्यों ने तो गजब ही ढा दिया, इन्होंने तो प्रत्येक शब्द में स्पष्ट रूप से लिंग दिखला दिया

पुल्लिंग, स्त्री लिंग, नपुंसकलिंग ये तीन लिंग अजन्त और हलन्त भेद से वैयाकरणों ने षट् संख्या में पूरित कर दिये। संस्कृत के व्याकरण में ही लिंगों के दर्शन नहीं होते किन्तु भूतल पर जितनी भी भाषायें हैं उन सब में लिंग विद्यमान हैं, तीन नहीं तो दो ही सही। पुराणों ने और भी मजा कर दिया, पुराणाचार्य ने तो एक लिंग पुराण ही बना डाला जो लोग अपनी मूर्खता से लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय समझ गये हैं उनकी विलक्षण बुद्धि के अनुसार लिंग पुराण का क्या अर्थ होगा इसका निर्णय तो वे ही अक्ल के हिमालय करेंगे। इन विलक्षण बुद्धि वालों के आगे हम एक व्याकरण का वार्तिक रखते हैं, महर्षि कात्यायनि जी लिखते हैं कि—

"प्रथमलिंगग्रहणं च"

नहीं मालूम ये अक्ल के ढेर इस वार्तिक का क्या अर्थ करेंगे, हमारे उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि मूत्रेंद्रिय से भिन्न अनेक पदार्थ लिंग शब्द से याद किये गये हैं।

शिवपुराण के लिंग।

लिंगानाँ च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः।
तदेव लिंग प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्।२७।
सूक्ष्म प्रणवरूपं हि सूक्ष्म रूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिंगं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते।२८।
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिंगानि सुबहूनि च।२९।
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः।
भूविकाराणि लिंगानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः।३०।
स्वयंभूलिंगं प्रथमं विन्दुलिंगं द्वितीयकम्।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिंगं तु पंचमम्।३१।
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै।
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः।३२।

स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्य व्यक्त एव सः ।
स्वयंभूतं जातमिति स्वयंभूरिति तं विदुः ।३३।
तल्लिंगपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते ।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थंडिलेऽपि वा ।३४।
स्वहस्तात्लिखितं लिंगं शुद्धप्रणवमंत्रकम् ।
यंत्रलिंगं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ।३५।
बिन्दुनादमयं लिंगं स्थावरं जंगमं च यत् ।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ।३६।

शिवपुराण विद्येश्वर सं० अ० १८

शंकर का प्रथम लिंग प्रणव (ओंकार) है, गीता, उपनिषद् और पुराणों में भूरि भूरि इस लिंग का महत्त्व वर्णन किया गया है, शंकर का यह लिंग आर्यसमाजियों को बड़ा प्रिय है, जो कोई आर्यसमाजी किताब, विज्ञापन, चिट्ठी लिखता है इन सब लेखों में सबसे ऊपर इस लिंग की स्थापना करता है, यह इतना प्रिय है कि प्रत्येक आर्यसमाजी पीतल का बनवाकर शंकर के इस लिंग को मस्तक पर टोपी में लगाकर अपना गौरव समझता है । कहिये, अब तो लिंग को बुरा बतलाने वालों के मस्तक में ही शिव लिंग चढ़ बैठा, क्या इसको शिव की मूत्रेंद्रिय समझ कर आर्यसमाजी मस्तक पर धारण करते हैं ? यह लिंग केवल आर्यसमाजियों की कामनाओं का परिपूर्ण करने वाला नहीं है वरन् चाहे कोई मनुष्य किसी मत का हो। जो भक्ति द्वारा इसका पूजन करेगा यह उसकी कामनाओं को परिपूर्ण कर देगा । २७। प्रणव रूप जो शंकर का लिंग है वह अति सूक्ष्म है अतएव निष्कल है और शंकर का स्थूल लिंग यह समस्त ब्रह्माण्ड है, इसी को पंचाक्षर लिंग कहते हैं ।२८। सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों लिंगों की जो पूजा है ये दोनों ही पूजा तप हैं एवं साक्षात् मोक्ष की देने वाली हैं । पौरुष (विराट् रूप) प्रकृति तथा 'भूतानि' आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सादा और पाषाण रूप ये शंकर के अनेक लिंग हैं । २९ । इन लिंगों के वर्णन में इतनी आधिक्यता है कि उनका वर्णन शिव ही कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं परन्तु पृथ्वी विकार के लिंग में मति अनुसार तुमसे कहता हूँ । ३० । स्वयंभू लिंग १ बिन्दु लिंग २ प्रतिष्ठा किये लिंग ३ चरलिंग ४ गुरुलिंग ५ ।३१।

देवता और ऋषियों के तप से संतुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होने को पृथ्वी के अन्तर्गत बीज और नादरूप से रहने हारे शिव जी ।३२। जिस प्रकार अंकुर पृथ्वी को भेद कर निकलते हैं इसी प्रकार पृथ्वी के अन्तर से निकले हुये लिंग को स्वयंभू लिंग कहते हैं ।३३। उस लिंग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है, सुवर्ण चांदी, पृथिवी अथवा वेदिका में ।३४। अपने हाथ से लिखे हुये शुद्ध प्रणव युक्त मंत्र को और लिंग को यंत्र पर लिखकर उसको प्रतिष्ठा तथा आवाहन करे ।३५। यही बिन्दु नादमय लिंग स्थावर और जंगम रूप है, भावना से ही इसमें निःसन्देह शिव का दर्शन होता है ।३६। लिंगवृद्धि और दारुवन में जो लिंग का वर्णन आया है वे अग्नि रूप से ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हुये हैं और वैश्यनाथावतार में जिस लिंग का वर्णन है वह भूविकार लिंग है, इतना जान लेने पर फिर लिंग विषय में कोई शंका नहीं रहती किन्तु इतना जान कर भी कथाओं से बुरे भाव पैदा कर पबलिक को भ्रम में डालना इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि मनुष्यों की शिवपुराण से अश्रद्धा करवा कर उनको नास्तिक बना दिया जावे । नास्तिकों के इस अभिप्राय को मन में रख हम प्रत्येक कथा का विवरण विवेचन भी पाठकों के आगे रक्खेंगे हमें आशा है कि पाठक वृन्द हमारे लेख को पढ़कर नास्तिकों के बनावटी जाल में न फंसेगा ।

❀ लिंग वृद्धि ❀

(१०) किसी किसी सज्जन का कथन है कि एक समय महादेव का लिंग इतना बढ़ा कि उसका पता लगाने के लिये ऊपर को ब्रह्मा और नीचे को विष्णु गये ।

उत्तर—अज्ञ लोग शास्त्र में धंसते हैं किन्तु बुद्धि न होने के कारण कुछ का कुछ अर्थ कर बैठते हैं इस कारण से सन्देह उत्पन्न हो जाता है, इसी सन्देह से ये लोग शास्त्रों को अमान्य, घृणित और अश्लील ठहरा देते हैं अतएव जनता को शास्त्र अरुचिकर हो जाते हैं । शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता के अध्याय चार से अध्याय नौ तक लिंगबेर की पूजा और कथा है । बुद्धि की अज्ञानता से अज्ञ लोगों ने लिंगबेर को पेशाब करने का लिंग समझा है इस भ्रांति से अनेक शंकायें पैदा हो गई हैं किन्तु शिवपुराण में मूत्रेंद्रिय का कहीं पता ही नहीं यहां पर लिंग का जैसा स्वरूप है उसके श्लोक शिवपुराण से उद्धृत करके हम नीचे लिखते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें ।

महानलस्तंभविभीषणाकृति
र्बभूव तन्मध्यतले स निष्कलः ॥११
ते अस्त्रे चापि सज्वाले लोकसंहरणक्षमे।
निपेततुः क्षणेनैव ह्याविर्भूते महानले। १२।
दृष्ट्वा तदद्भुतं चित्रमस्त्रशान्तिकरं शुभम्।
किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्च परस्परम्। १३।
अतीन्द्रियमिदं स्तम्भमग्निरूपं किमुत्थितम्।
अस्योर्ध्वमपि चाधश्च आवयोर्लक्ष्यमेवहि। १४।

अध्याय ७

विष्णु और ब्रह्मा का युद्ध हो रहा था विष्णु ने ब्रह्मा के मारने के लिये माहेश्वर अस्त्र उठाया इसको देख कर ब्रह्मा ने पाशुपत अस्त्र ले लिया इन दोनों अस्त्रों के तेज से जगत् व्याकुल हो गया, देवता घबड़ा कर शंकर की शरण गये यह कथा षष्ठ और सप्तमाध्याय में है। इन अस्त्रों के तेज को खाने के लिये शंकर ने अग्निमयलिंग स्वरूप धारण किया उस स्वरूप का वर्णन करते हुये शिवपुराण में ऊपर के श्लोक लिखे गये हैं। इनका अर्थ है कि महाअग्नि के स्तंभ के और महाभयंकर आकृति के समान उन दोनों के बीच में वह निर्गुण ब्रह्म स्थित हुये ॥ ११ ॥ वह लोकक्षय करने में समर्थ अस्त्र उस महाअग्नि के प्रकट होते ही क्षणमात्र में निपतित हो गये ॥ १२ ॥ यह अस्त्र शान्त होने का अद्भुत चित्र देख यह अद्भुत आकार क्या है ऐसा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर कहने लगे ॥ १३॥ यह इंद्रिय अगोचर स्तंभ अग्निरूप सा क्या उठा है हम दोनों को इसका ऊपर और नीचे का भाग देखना चाहिये कि यह कहां से हुआ है ॥ १४ ॥

इस कथा को आगे रख कई एक सज्जन यह कहते हैं कि महादेव की मूत्रेन्द्रिय इतनी बढ़ी कि जिसका पता लगाने के लिये नीचे को विष्णु और ऊपर को ब्रह्मा गये किन्तु उसका आदि अंत न पाया। विचारशील मनुष्य देखें कि यहां कोई मूत्रेंद्रिय का कहनेवाला शब्द है ? कोई नहीं इतना न होने पर भी ये बलात्कार अपनी तरफ से मूत्रेन्द्रिय कल्पना करते हैं। ये सरासर नेत्रों में धूल झोंक रहे हैं।

ज्योतिर्मय लिंग।

(११) कई एक सज्जनों का यह कहना है कि महादेव नंगे होकर हाथ में लिंग लेकर दारुवन में ऋषिपत्नियों के पास गये, ऋषियों ने शाप दे दिया, लिंग कट कर गिर गया फिर उसको पार्वती ने अपनी योनि में धारण किया; आजकल जो शिवलिंग पूजे जाते हैं, लिंग शिव की मूत्रेन्द्रिय है और जलहरी पार्वती की योनि है इसको पूजना निर्लज्जों का काम है।

ऋषय ऊचुः।

सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः।
तवाज्ञातं न विद्येत तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥१
लिंगं च पूज्यते लोके तत्त्वया कथितं च यत्।
तत्तथैव न चान्यद्वा कारणं विद्यते त्विह ॥२
बाणरूपा श्रुता लोके पार्वती शिववल्लभा।
एतत्किं कारणं सूत कथय त्वं यथाश्रुतम् ॥३

सूत उवाच

कल्पभेदकथा चैव श्रुता व्यासान्मया द्विजाः।
तामेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तमाः ॥४
पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तं तु द्विजन्मनाम्।
तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम् ॥५
दारुनाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः।
शिवभक्तास्सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ॥६
त्रिकालं शिवपूजां च कुर्वन्तिस्म निरन्तरम्।
नानाविधैः स्तवैर्दिव्यैस्तुष्टुवुस्ते मुनीश्वराः ॥७
ते कदाचिद्वने यातास्समिधाहरणाय च।
सर्वे द्विजर्षभाश्शैवाश्शिवध्यानपरायणाः ॥८
एतस्मिन्नन्तरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः।

विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥९
दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः ।
सचेष्टां सकटाक्षां च हस्ते लिंगं विधारयन् ॥१०
मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् ।
जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥११
तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः ।
विह्वला विस्मिताश्चान्यास्समाजग्मुस्तथा पुनः ॥१२
आलिलिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्वा तथापराः ।
परस्परं तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥१३
एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन् ।
विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥१४
तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयं कोऽयं तथाऽब्रुवन् ।
समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः ॥१५
यदा च नोक्तवान्किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः ।
ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥१६
त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपि यत् ।
ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले ॥ १७ ॥

। सूत उवाच ।

इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात् ।
अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः । १८ ।
तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्ददाह पुरः स्थितम् ।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत्पुनः । १९ ।
पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च ।
भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् २० ॥
लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽतिदुःखिताः ।

न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ २१
स ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः ।
दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२
तत्र गत्वा च ते सर्वे नत्वा स्तुत्वा विधिं द्विजाः ।
तत्सर्वमवदन्वृत्तं ब्रह्मणे सृष्टिकारिणे ॥ २३
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा शिवमायाविमोहितान् ।
ज्ञात्वा ताञ्छंकरं नत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् ॥२४

ब्रह्मोवाच ।

ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्वते गर्हितं द्विजाः ।
अज्ञातारो यदा कुर्य्युः किं पुनः कथ्यते पुनः ॥२५
विरुद्ध्यैवं शिवं देवं कुशलं कस्समीहते ।
मध्याह्नसमये यो वै नातिथिं च परामृशेत् ॥२६
तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयं च दुष्कृतं पुनः ।
संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनः शिवमेव वा ॥२७
यावल्लिंगं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् ।
जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम् ॥२८
भवद्भिश्च तथा कार्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह ।
शिवलिंगस्य ऋषयो मनसा संविचार्यताम् ॥२९

सूत उवाच ।

इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुर्ब्रह्माणमृषयश्च वै ।
किमस्माभिर्विधे कार्यं तत्कार्यं त्वं समादिश ॥३०
इत्युक्तैश्च मुनीशैस्तैस्सर्वलोकपितामहः ।
मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥३१

ब्रह्मोवाच ।

आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराश्शिवम् ।

योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥३२
तद्विधिं प्रवदाम्यद्य सर्वे शृणुत सत्तमाः ।
तामेव कुरुत प्रेम्णा प्रसन्ना सा भविष्यति ॥३३
कुम्भमेकं च संस्थाप्य कृत्वाष्टदलमुत्तमम् ।
दूर्वायवांकुरैस्तीर्थोदकमापूरयेत्ततः ॥३४
वेदमंत्रैस्ततस्तं वै कुंभं चैवाभिमंत्रयेत् ।
श्रुत्युक्तविधिना तस्य पूजां कृत्वा शिवं स्मरन् ॥३५
तल्लिंगं तज्जलेनाभिषेचयेत्परमर्षयः ।
शतरुद्रियमंत्रैस्तु प्रोक्षितं शान्तिमाप्नुयात् ॥३६
गिरिजां योनिरूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः ।
तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभिमंत्रयेत् ॥३७
सुगन्धैश्चन्दनैश्चैव पुष्पधूपादिभिस्तथा ।
नैवेद्यादिकपूजाभिस्तोषयेत्परमेश्वरम् ॥३८
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्वाद्यैर्गानैस्तथा पुनः ।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा जयेति व्याहरेत्तथा ॥३९
प्रसन्नो भव देवेश जगदाह्लादकारक ।
कर्ता पालयिता त्वञ्च संहर्ता त्वां निरन्तरः ॥४०
जगदादिर्जगद्योनिर्जगदन्तर्गतोपि च ।
शान्तो भव महेशान सर्वांल्लोकांश्च पालय ॥४१
एवं कृते विधौ स्वास्थ्यं भविष्यति न संशयः ।
विकारो न त्रिलोकेस्मिन्भविष्यति सुखं सदा ॥४२

सूत उवाच ।

इत्युक्तास्ते द्विजा देवाः प्रणिपत्य पितामहम् ।
शिवं तं शरणं प्राप्तास्सर्वलोकसुखेप्सया ॥४३
पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तदा ।

सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ॥४४

महेश्वर उवाच ।

हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ।
योनिरूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखं ॥४५
पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा ।
तया धृतं च मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति ॥४६

सूत उवाच ।

तच्छ्रुत्वा ऋषिभिर्देवैस्सुप्रसन्नैर्मुनीश्वराः ।
गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा ॥४७
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च ।
पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥४८
मंत्रोक्तेन विधानेन देवाश्च ऋषयस्तथा ।
चक्रुः प्रसन्नां गिरिजां शिवं च धर्महेतवे ॥४९
समानर्चुर्विशेषेण सर्वे देवर्षयः शिवम् ।
ब्रह्मा विष्णुः परे चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५०
सुप्रसन्नः शिवोजातः शिवा च जगदंबिका ।
धृतं तया च तल्लिंगं तेन रूपेण वै तदा ॥५१
लोकानां स्थापिते लिंगे कल्याणं चाभवत्तदा ।
प्रसिद्धं चैव तल्लिंगं त्रिलोक्यामभवद्द्विजाः ॥५२
हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवाशिवमित्यपि ।५३

शिवपुराण कोटिरुद्र संहिता अ० १२

ऋषि बोले कि हे सूतजी ! आप व्यास जी के प्रसाद से सब वस्तु को जानते हैं , आप को कुछ अज्ञात नहीं है इस कारण हम आप से पूछते हैं । १ । संसार में उन लिंगों की पूजा होती है जो आपने पहिले बतलाये सो उसका कारण यही है क्या और इसका कोई कारण है ? । २ । हे सूतजी ! लोक में शिव की

प्रिया पार्वती जो बाणरूपा कही है सो इसका क्या कारण है ? आपने जैसा सुना है वैसा कहो । ३ । सूत जी बोले हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! हे श्रेष्ठ ऋषियो ! मैंने व्यास जी से जो कल्प भेद की कथा सुनी है उसी को आज तुमसे कहता हूं सो सुनो ।४। पहिले दारुवन में ब्राह्मणों का जो वृत्तान्त हुआ सो सब अच्छे प्रकार सुनो, जैसा मैंने सुना है वैसा कहता हूँ । ५ । हे ऋषिसत्तम ! जहां दारु नामक श्रेष्ठ वन है तहां नित्य शिव के ध्यान में तत्पर हुये शिवभक्त ऋषिगण रहते थे । ६। वे मुनीश्वर तीनों कालों में निरन्तर शिव जी का पूजन करते तथा अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते थे । ७ । वे शिव जी के ध्यान में परायण, शैव द्विजर्षिगण समिधाओं को लेने के निमित्त कभी दारुवन में आये ।८। इसी अन्तर में साक्षात् नील लोहित शंकर विकट रूप धारण कर उनकी परीक्षा के निमित्त प्राप्त हुये । ९ । साक्षात् दिगम्बर अति तेजस्वी विभूति भूषण से शोभायमान कामियों के समान चेष्टा को किये हाथ में ज्योतिर्लिंग को धारण किये । १० । स्वयं भक्तों से प्रसन्न हुये शिव जी मन से उन वनवासी मुनियों की भलाई करने की प्रसन्नता से उस वन में प्राप्त हुये ।११। उनको देख कर ऋषिपत्नियां परम त्रास को प्राप्त हो व्याकुल हुईं तथा कोई विस्मित हो वहाँ आईं ।१२। एवं कोई हाथ पकड़ के परस्पर आलिंगन करने लगीं इस प्रकार वे स्त्रियां परस्पर आलिंगन करने से अति प्रसन्न हुईं ।१३। इसी अवसर में वे श्रेष्ठ ऋषि भी आगये, उसके विरुद्ध रूप को देख कर वे दुःखी तथा क्रोध से व्याकुल हुये ।१४। उस समय दुःखित हुये, शिव जी की माया से मोहित हो वे ऋषि आपस में बोले कि यह कौन है ? यह कौन है ? इस प्रकार कहने लगे ।१५। जिस समय वह अवधूत दिगम्बर कुछ न बोले तो वे परम ऋषि उस भयंकर पुरुष से कहने लगे ।१६। तुम वेद मार्ग का लोप करने वाले विरुद्ध कार्य को करते हो इस कारण यह तुम्हारा लिंग भूमि पर गिर पड़े ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, ऐसा उन ऋषियों के कहने पर उन अवधूत, अद्भुत रूप धारी शिव का वह लिंग उसी क्षण गिर पड़ा ।१८। और वह लिंग आगे स्थित हुआ अग्नि के समान जलने लगा एवं जहां जहां वह जाता तहां तहाँ जलाता था ।१९। वह लिंग पाताल और स्वर्ग लोक में भी उसी प्रकार प्रज्वलित हो भ्रमण करने लगा, कहीं पर भी स्थिर न हुआ । २० । सम्पूर्ण लोक व्याकुल हुए तथा वे ऋषि दुःखित हुये कोई देवता तथा

ऋषि कल्याण को नहीं प्राप्त हुये । २१ । जिन्होंने शिव जी को नहीं जाना वे सम्पूर्ण देवर्षि दुःखित हुये परस्पर मिलकर तत्काल ब्रह्मा के शरण में गये ।२२। वहां जाकर वे सब ऋषि आदि ब्रह्मा को नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति करके सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी से वह सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मा जी उन के बचन को सुन के शिव की माया से मोहित हुये ऋषिश्रेष्ठों को जान कर शिवजी को प्रणाम कर उन से बोले । २४ । ब्रह्मा जो बोले हे ब्राह्मणो ! जानने वाले भी आप लोग ऐसे निन्दित काम को करते हैं, यदि बिना जानने वाले ऐसा करें तो कोई कहने की बात नहीं है । २५ । इस प्रकार शिव देव से विरोध करके कौन पुरुष अपनी कुशलता चाहता है जो मनुष्य मध्याह्न समय में प्राप्त हुये अभ्यागत का सत्कार नहीं करता है ।२६। तो वह अतिथि उसके पुण्य को लेकर तथा उसे अपने पापों को देकर लौट जाता है, यदि साक्षात् शिवजी आवें तो फिर क्या है ? ! २७ । मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं कि जब तक तीनों लोकों में वह शुभ लिंग कहीं स्थिर नहीं होता है ।२८ । तब तक आप ऐसे उपाय करें कि जिससे इस लोक में स्वस्थ्य हो, हे ऋषियो ! शिव ज्योतिर्लिंग को मनसे ध्यान करो । २९ । सूत जी बोले, इस प्रकार कहे हुये वे ऋषि ब्रह्मा जी से बोले कि हे ब्रह्मन् ! अब हमको क्या करना उचित है सो आप आज्ञा करो । ३० । उन मुनीश्वरों के ऐसा कहने पर वह सब लोगों के पितामह ब्रह्मा जी उस समय उन ऋषियों से स्वयं बोले । ३१ । ब्रह्मा जी बोले हे देवताओ ! देवी पार्वती की आराधना करके पश्चात् शिव जी की प्रार्थना करो, यदि पार्वती साक्षात् योनिरूपा हो जाय तो ज्योतिर्लिंग स्थिरता को प्राप्त हो । ३२ । हे ऋषिसत्तम ! मैं उस विधि को इस समय कहता हूँ आप सब सुनें और इसी विधि को करो तब वह पार्वती जी प्रसन्न होंगी । ३३ । एक घट को स्थापन करके उत्तम आठ दल कर के दूर्वा यवों के अंकुरों सहित उसमें तीर्थों के जल को भरो । ३४ । तत्पश्चात् वेद मन्त्रों से उस कलश को सेचन कर शास्त्रोक्त विधि से शिव का स्मरण करके उसकी पूजा करो । ३५ । हे ऋषियो ! शतरुद्रिय मंत्रों से उस कलश के जलसे उस लिंग को स्नान करा उक्त मन्त्रों से मार्जन करके शान्ति को प्राप्त हो ! ३६ । फिर योनिरूप वाली गिरिजा तथा बाण को स्थापन कर वहां उसी लिंग का स्थापन और मार्जन करो । ३७ । और सुगंध तथा चन्दनों से पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य आदिपूजा से परमेश्वर शिव को संतुष्ट करो । ३८ । प्रणाम तथा पुण्य स्तुतियों से बाजे गानों से धूम

कर मंगला चरण करो तत्पश्चात् जय का उच्चारण कर । ३९ । यह प्रार्थना करो कि हे देवेश हे संसार को प्रसन्न करने वाले ! आप प्रसन्न हों, आप संसार के कर्ता हैं तथा पालन करने वाले हैं, आपही अविनाशी संहार करने वाले हैं । ४० । हे महेश्वर ! आप संसार के आदि हैं तथा जगत् के उत्पन्न करने वाले, संसार के अन्तर्यामी हैं, आप शान्त हो सम्पूर्ण लोकों का पालन करो ।४१। इस विधि को करने पर निःसन्देह स्वास्थ्य होगा, तीनों लोकों में विकार (उत्पात) न होगा किन्तु सुख होगा ॥४२॥ सूत जी बोले ऐसा सुन कर वे देवता तथा ऋषि ब्रह्मा जी को प्रणाम करके, सब लोकों के सुख की इच्छा से उन शिव जी की शरण को प्राप्त हुये ॥४३॥ उस समय परम भक्ति से पूजित और सत्कार किये हुये शिवजी अति-प्रसन्न होकर उन ऋषियों से बोले ॥ ४४ ॥ महादेव जी बोले हे सम्पूर्ण देव-ताओ ! हे ऋषियो ! आप सब मेरे बचन को आदर से सुनो, यदि मेरा ज्योतिर्लिंग योनिरूप से धारण किया जाय तो सुख होगा ॥४५॥ बिना पार्वती के और कोई मेरे ज्योतिर्लिंग को धारण करने को समर्थ नहीं है उन देवी पार्वती जी से धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त होगा ॥४६॥ सूत जी बोले हे मुनी-श्वरो ! यह सुन कर देवता तथा ऋषियों ने ब्रह्मा जी को ग्रहण कर उस समय पार्वती जी की प्रार्थना की ॥४७॥ पार्वती जी तथा शिव जी को प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग की स्थापना की ॥४८॥ मंत्रों में कही हुई विधि के अनुसार देवता तथा ऋषियों ने अपने धर्म के हेतु पार्वती तथा शिवजी को प्रसन्न किया ॥४९॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा सब देवर्षि, त्रिलोकी के चर अचर सहित सबने शिवजी की विशेष पूजा की ॥५०॥ उस समय शिव जी प्रसन्न हुये और जगत् की माता पार्वती जी सन्तुष्ट हुई एवं उन्होंने उस रूप से उस लिंग को धारण किया ॥५१॥ उन योनिरूप पार्वती में लिंग के स्थापित होने पर उस समय बड़ा आनन्द होने लगा और हे द्विजो ! वह ज्योतिर्लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गया ॥५२॥ पार्वती तथा शिव की प्रतिमा हाटकेश नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५३

नीमच के शास्त्रार्थ में बुद्धदेव ने दारुवन की कथा रक्खी थी उसका उत्तर भी हो चुका, दूसरे दिवस पं० बालमकुन्द जी आर्यसमाज के मन्दिर में पहुँचे, नमस्ते झाड़ने के बाद बुद्धदेव जी से कुछ बात होने लगी, बालमकुन्द ने कहा कि

रात का शास्त्रार्थ तो अच्छा न रहा, इस शास्त्रार्थ से तो वेदों के ऊपर से हमारा विश्वास हट गया, जिस प्रकार आप शिव पुराण को लेकर योनि और लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय करते थे और इस अर्थ से शिव पुराण को अश्लील एवं व्यभिचार वर्धक कहते थे उसी प्रकार योनि और लिंग शब्द के आजाने से वेद भी अश्लील तथा व्यभिचार वर्धक हो जावेंगे क्योंकि वेदों में भी ये दोनों शब्द आये हैं। यजुर्वेद में 'तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः ३१। १९' लिखा है तो क्या अब इसका अर्थ यह होगा कि उस ईश्वर की योनि मूत्रेन्द्रिय को विद्वान् लोग देखते हैं? इसी प्रकार ऋग्वेद में "योनि-सेक आससाद ६। २।३६" लिखा है। इसी प्रकार और भी कई स्थान में 'योनि शब्द आया है, वेद में दो एक स्थानों में लिंग शब्द भी है वे मन्त्र मुझे कंठ नहीं हैं नहीं तो मैं मन्त्र बतला देता किंतु हैं अवश्य, यदि आप आग्रह करेंगे तो मैं वैदिक कोष निकाल कर बतला भी दूंगा, बड़ी कठिनता की बात यह हुई कि वेदों में भी स्त्री और पुरुष दोनों की मूत्रेन्द्रिय का वर्णन है, जो कलंक आप शिव पुराण पर लगाते थे वही कलंक वेद पर आजावेगा? इसको सुनकर बुद्धदेव ने कहा कि वेद में योनि और लिंग ये दोनों शब्द अवश्य आये हैं किन्तु ये मूत्रेन्द्रिय के वाचक नहीं। बालमकुन्द ने कहा कि जो उत्तर आप दे रहे हैं यही तो कालूराम देते थे कि इस कथा में लिंग और योनि मूत्रेन्द्रिय के वाचक नहीं हैं और उन्होंने अपनी पुष्टि में यह भी कहा था कि यहां पर जो आप कहते हो कि 'पार्वती ने शिवलिंग को योनि में धारण किया' आप का यह कहना सर्वथा असत्य है, इस प्रकरण में यह कहीं नहीं लिखा वरन् यह लिखा है कि पार्वती स्वतः योनिरूपा बनी, कालूराम ने यह भी सबूत दिया था कि यहां पर लिंग मूत्रेन्द्रिय का वाचक नहीं ज्योतिर्मय लिंग है, यदि मूत्रेन्द्रिय लिंग होता तो वह संसार को भस्म कैसे करता? इसके ऊपर आपने कुछ उत्तर भी नहीं दिया यह क्या बात है? इसको सुन कर बुद्धदेव जी बोले कि ये तो शास्त्रार्थ की बातें हैं वहां की वहां ही समाप्त हो जाती हैं अब इनके छेड़ने से कोई लाभ नहीं। बालमकुन्द जी ने उत्तर दिया कि छेड़ो या न छेड़ो किन्तु यदि योनि और लिंग केवल मूत्रेन्द्रिय को ही कहते हैं तो शिव पुराण की आपत्ति वेदों पर आपड़ी?

बालमकुन्द जी वहां से उठ कर आये और हम से ज्यों का त्यों समस्त समा-

चार कह दिया । पाठक वर्ग ! आप समझ गये होंगे कि धर्म और पुराणों को संसार से मिटा देने के लिये आर्यसमाजी पुराणों पर झूठे कलंक लगा, साधारण पब्लिक को धोखा दे किस प्रकार नास्तिकता फैला रहे हैं ।

प्रथम तो इस कथा में इतना ही सन्देह किया करते थे जितना कि हमने पहिले पूर्वपक्ष की शंका में दिखलाया है किन्तु अब कुछ नये नये सन्देह और भी पैदा किये हैं आज हम सभी सन्देहों का दूरीकरण करेंगे पाठक वृन्द क्रम से अवलोकन करें ।

(१) महादेव दिगम्बर (नग्न) होकर स्त्रियों के पास क्यों गये ?

एक दिन हम वृन्दावन की यात्रा कर रहे थे, साथ में सहस्रों यात्री थे, उनमें से दश पांच हमारे मित्र भी थे वे थोड़ा आगे निकल गए थे। आगे चल कर एक शंकर की मूर्ति आई. शंकर के एक हाथ में मूत्रेन्द्रिय थी और दूसरे हाथ में जीभ , इस विलक्षण मूर्ति को देख कर हमारे मित्र खड़े हो गए, इतने में हम भी पहुँचे, शंकर के दर्शन किये और प्रणाम किया जल चढ़ा कर जब चलने लगे तब हमारे मित्रों ने कहा कि शास्त्री जी यह बड़ी विकट मूर्ति है, हमने कहा कि बड़ी ज्ञानप्रद है, मित्रों ने पूछा कैसे ? हमने कहा कि जो मनुष्य मूत्रेन्द्रिय और जीभ को जीत लेता है वह शंकर बन जाता है, यह सुन कर हमारे मित्र बड़े प्रसन्न हुये वास्तव में शंकर ने जिह्वा और मूत्रेन्द्रिय को उत्तम रीति से जीता है इस कारण शंकर सदा ही दिगम्बर रहते हैं, केवल दारुवन में ही वे दिगम्बर नहीं आये हैं बड़ी बड़ी सभाओं में भी वे दिगम्बर रहते हैं , शंकर प्रवृत्ति मार्ग के गुलाम नहीं हैं वे निवृत्ति मार्ग की पराकाष्ठा पर पहुँच गये हैं । निवृत्तिमार्ग वालों को प्रकृति की सौन्दर्य चमत्कृत रचना लुभा नहीं सकती उनके लिये जैसा लोहा वैसा सोना। उनके लिये पंचतत्व जनित समस्त पदार्थ एक तुल्य हैं न उन को कोई लुब्ध कर सकता है और न कोई क्षुब्ध कर सकता है । तत्वों के समस्त भेद उत्तम रचनायें उनके आगे नटी प्रकृति की बाजीगरी है जो निवृत्ति मार्गवाले पुरुष की दृष्टि पड़ते ही अपनी चाँचल्यता और अपने आकर्षण को खो बैठती है । जब निवृत्ति मार्ग वालों के ऊपर प्रकृति का प्रभाव ही नहीं पड़ता तब उनके नग्न रहने में क्या दोष ? यदि कोई मनुष्य यह कहे कि लोक मर्यादा की रक्षा के लिये ही वस्त्रादि धारण

करना अच्छा है तो हम यह कहेंगे कि जन्म जन्मातर से प्रवृत्ति के फन्दे में पड़े हुये जीवों को निकाल कर निवृत्ति मार्ग में ले जाने के लिये निवृत्तिमार्ग वाले मनुष्यों को नग्न ही रहना अच्छा है उनके आदर्श को देख कर विषयों के गुलाम जीव प्रवृत्ति मार्ग से निकल कर निवृत्तिमार्ग में जाने की इच्छा करेंगे। बस सिद्ध हो गया कि निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करने वाले शंकर का नग्न रहना दूषित नहीं है।

कई एक सज्जन यह कहते हैं कि फिर ऋषियों ने शंकर को यह क्यों कहा कि वेदमार्ग के लोप करने वाला यह कौन है ? जब कि शंकर का नग्न रहना दूषित नहीं था तो फिर उसको वेदमार्ग का लोप करने वाला क्यों कहा गया ?

इसका उत्तर यह है, ऋषियों ने यह नहीं समझा कि यह शंकर है किन्तु उन्होंने यह समझा कि यह कोई उन्मत्त है और वह स्त्रियों में नग्न होकर जाता है। प्रवृत्ति मार्गवालों को नग्न रहने का वेद ने निषेध किया है इस कारण यह कहा गया कि यह वेदमार्ग का लोप करने वाला कौन है, शंकर को नहीं पहिचाना इस विषय में "शिवमायाविमोहिताः" यह प्रमाण है अर्थात् वे ऋषि शिव जी की माया से मोहित रहे और वे शंकर को नहीं पहिचान सके। समस्त मनुष्यों को वेद की आज्ञा का पालन करना यह उनका मुख्यकर्तव्य है किंतु जो मनुष्य रागद्वेष प्रभृति अभिलाषाओं से रहित हो गया है उसके लिये वेदाज्ञा का पालन करना आवश्यकीय नहीं है, इसी को भगवान् कृष्णचन्द्र महाराज ने अर्जुन से गीता के उपदेश में कहा है कि—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

शंकर निस्त्रैगुण्य हैं अतएव उनके नग्न रहने से वेद धर्म का लोप नहीं होता।

(२) कई एक सज्जनों का प्रश्न है कि फिर वे ऋषिपत्नियां शंकर के क्यों लिपट गईं ?

श्रुति-स्मृति आर्यसमाज का साथ नहीं देती, ये लोग पढ़ते हैं नहीं इस कारण इनका अवलम्बन केवल चालबाजी और झूठ बोलना, धोखा देना मात्र है इससे भिन्न इनके पास किसी प्रकार का भी अवलम्ब नहीं कि जिस को ये शास्त्रार्थ में रक्खें। नीमच के शास्त्रार्थ में बुद्धदेव ने जनता को धोखे में डालने के लिये यही पद

दिया कि फिर वे ऋषिपत्नियां शंकर के क्यों लिपटीं ? ऐसा कहना सर्वथा शिव-पुराण के विरुद्ध है, शिवपुराण कहता है कि—

तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः ।
विह्वला विस्मिताश्चान्यास्समाजग्मुस्तथा पुनः ॥१२
आलिलिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्वा तथा पराः ।
परस्परं तु संघर्षात्सं मग्नास्ताः स्त्रियस्तदा॥१३

शिव० कोटि० अ० १३

उनको देख कर ऋषिपत्नियाँ परमत्रास को प्राप्त हो व्याकुल हुईं तथा कोई विस्मित हो वहां आईं ॥ १२ ॥ एवं कोई हाथ पकड़ के परस्पर आलिंगन करने लगीं इस प्रकार वे स्त्रियां परस्पर आलिंगन करने से अति प्रसन्न हुईं ॥१३॥

प्रकरण के दोनों श्लोक हमने फिर यहां दुबारा लिख दिये, पाठकवृन्द खूब ध्यान से पढ़े, इन श्लोकों में कहीं पर भी स्त्रियों का शंकर से लिपटना नहीं लिखा किन्तु परस्पर में आलिंगन करना लिखा हुआ है, वास्तविक बात को छोड़ कर उसके स्थान में झूठी बात बना कर पबलिक् के आगे रखना आर्यसमाज का यह ऋषि मान्य धर्म है ? इस प्रकार के मिथ्या कलंक ईश्वर पर लगाना इससे अधिक संसार में दूसरी निर्लज्जता हो नहीं सकती ?

(३) कई एक सज्जनों का कथन यह है कि ऋषियों ने क्रोध में आकर महादेव को शाप दे दिया, शंकर का लिंग कट कर जमीन पर गिर गया ?

यहां पर अज्ञ लोग यह समझे हैं कि महादेव की मूत्रेन्द्रिय गिर गई, समझ की बलिहारी है, मूत्रेन्द्रिय नहीं गिरी किन्तु शंकर के हाथ में जो लिंग था उसको शाप हुआ है वह गिर गया। शंकर हाथ में लिंग रखते हैं यह बात महानन्दा वेश्या की कथा से स्पष्ट हो जाती है । जिस समय वे महानन्दा के यहाँ पहुँचे तो अपने हाथ का लिंग वेश्या को दे दिया और कह दिया कि इसको सुरक्षित रखना, यहां पर भी शंकर के हाथ में लिंग का होना लिखा है उसी लिंग को शाप हुआ है और वह जमीन में गिर गया, मूत्रेन्द्रिय नहीं गिरी इसकी पुष्टि में हम कुछ प्रमाण देते हैं उनको पाठक अवलोकन करें।

[क] शाप लिंग गिरने का हुआ है, कटकर गिरने का नहीं हुआ, मूत्रेन्द्रिय बिना कटे गिर नहीं सकती और नास्तिक लोगों ने जो यह लिखा है कि महादेव का लिंग कट कर गिर गया, यहां पर 'कट कर' यह शिव पुराण का कथन नहीं है। नास्तिकों ने संसार को अपने बनावटी जाल में फांसने के लिये "कट कर" इतने अक्षर अपनी तरफ से मिलाये हैं इस चालबाजी के लिये हम क्या कहें।

(ख) शिव पुराण का टीका करते हुये स्वर्गवासी हमारे मित्र विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र इस लिंग को ज्योतिर्मयलिंग के नाम से याद करते हैं फिर हम इसको मूत्रेन्द्रिय कैसे मानलें।

(ग) विद्येश्वर संहिता में जहां पर शिव के लिंगों का वर्णन है वहां पर मूत्रेन्द्रिय का ग्रहण नहीं किया गया फिर शिव पुराण के कथन के विरुद्ध इन निरक्षर सज्जनों के कथन मात्र से हम कैसे मानलें कि मूत्रेन्द्रिय कट कर गिर गई।

(घ) जब यह लिंग पृथिवी पर गिरा तो इसके गिरने से पृथ्वी पर आग लग गई, वह लिंग समस्त पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल को घूमता हुआ ब्रह्माण्ड को भस्म करने लगा, क्या यह शक्ति मूत्रेन्द्रिय में होती है ? यह वही तेजोमय ज्योतिर्लिंग है जिसका वर्णन अग्नि तत्वद्वारा विद्येश्वर संहिता के लिंगों में किया गया है, इसको मूत्रेन्द्रिय कहना सिद्ध करता है कि आस्तिकता, विद्या, बुद्धि विचार सब को तिलांजलि देकर कुछ लोग 'नीचे पड़े की ऊंची टांग' की भांति अपने दुराग्रह में ऐसे बंध गये हैं कि वे किसी की कोई बात न सुन कर अपने दुराग्रह को ही सत्य सिद्ध करने का साहस करते रहते हैं।

नवीन दो चार शंकायें जो तत्काल बनाई गई हैं उनका उत्तर तो हम दे चुके, अब वह असली शंका जिसके ऊपर यह कथा दिखलाई जाती है और जिसको कथा से प्रथम पूर्व पक्ष में रख आये हैं उस पर विचार करना है। वह शंका यह है कि—

महादेव का लिंग कट कर गिर गया और वह लिंग पार्वती की योनि में

स्थापित किया गया तब से यह लिंग जो जलहरी से चारो तरफ से घिरा है इसका पूजन चला।

शंकर का पूजन तो अनादि है इसको वेद ने बड़े विस्ताररूप में वर्णन किया है जिस किसी को इसमें सन्देह हो वह 'अर्चा प्रकरण' में लिखे हुये अथर्व वेद के १८ मंत्रों को देख ले। इस कथा में यह कहीं नहीं लिखा कि आज से शंकर का पूजन संसार में आरंभ हुआ ? लिंग पार्वती ने योनि में धारण किया यह कथा मनगढ़न्त शिवपुराण के विरुद्ध है, शिवपुराण तो यह कहता है कि "गिरिजां योनि-रूपां च" गिरिजा (पार्वती) योनिरूपा बनी अर्थात् संसार के उत्पन्न और प्रलय की शक्ति को धारण कर गिरिजा ने बाण रूप पंचतत्वात्मिका स्वरूप धारण किया उसमें यह तेज पुंज लीन होकर ठहर गया। आज भी यही देखने में आता है कि विद्युत्‌रूप तेजपुंज पंचतत्व में व्यापक होते हुये भी जल और पर्वतश्रेणी में आधि-क्यता से रहता है। पार्वती की योनि में शिवलिंग का स्थापित करना चण्डूखाने की गप्प और जलहरी के बीच में आज से शंकर का पूजन होना यह भी गप्प क्योंकि शिवपुराण में इसका कोई जिक्र नहीं, कथा में कहीं पर कोई अश्लीलता नहीं और न कहीं जलहरी-लिंग का प्रकरण है, नास्तिकों के अन्तः करण मलीन हो गये मैं उन मलीन भावों को कथाओं में मिलाते हैं यह इनका कर्तव्य अन्याय और धोखे के नाम से याद किया जा सकता है।

वैश्यानाथावतार।

(१२) किसी किसी सज्जन का यह कथन है कि भगवान् शंकर ने रंडी-बाजी की ऐसे अधम चरित्रवाले कभी अवतार कहला सकते हैं ?

हम प्रथम इस कथा को पाठकों के आगे रक्खेंगे और फिर उसका उत्तर लिखेंगे कथा यह है।

नन्दीश्वर उवाच।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं परानन्दं वैश्यनाथाह्वयं मुने ॥१
नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता।
बभूव वारवनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी ॥२

महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोज्ज्वला ।
नानारत्नपरिच्छिन्नश्रृंगाररसनिर्भरा ॥३
सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा ।
तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्ञो राजान एव च ॥४
समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा ।
शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा ॥५
शिवं संपूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम् ।
ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यश: ॥६
रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ।
करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा ॥७
नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा ।
वेश्या स्म विहसत्युच्चैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता ॥८
रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डनः ।
मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत् ॥९
शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ।
नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन् ॥१०
एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकं परमादरात् ।
शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराऽभवत् ॥११
शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्यायाः मुनिसत्तम ।
बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः ॥१२

शिवपुराण शतरुद्र सं० अ० २६

नन्दीश्वर बोले हे तात ! हे मुने ! परमात्मा शिव के वैश्यनाथात्मक, परम आनन्द देने वाले अवतार को वर्णन करता हूं ।१। पहिले कोई नन्दीग्राम में शिव-भक्ता, अति सुन्दर, महानन्दा नामवाली प्रसिद्ध वेश्या स्त्री रहती थी ।२। वह बड़े ऐश्वर्य से पूर्ण, बड़ी धनाढ्य, उज्ज्वलवर्णवाली, अनेक प्रकार के रत्न जटित शृंगार

रस से भरी हुई ।३। सम्पूर्ण गान विद्याओं में निपुण अति मनोहर थी, उस वेश्या के गाने से सब राजा और रानियां प्रसन्न होती थीं ।४। वह शिव नाम जपने में तत्पर, भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वाली वेश्या सदैव पार्वती समेत शिव का पूजन करती थी ।५। वह शिव का पूजन करके नित्य जगदीश्वर का सेवन करती, शिव के सुन्दर यश को गाती हुई परम भक्ति से नृत्य करती थी ।६। वह वेश्या एक बन्दर और एक मुर्गे को रुद्राक्ष से शोभित करके हाथ के ताल (खड़ताल बाजे) से गीतों के साथ नचाती थी ।७। तब शिवभक्ति में लगी हुई वह वेश्या सब सखियों से युक्त हो उस बन्दर और मुर्गे को नाचता हुआ देखकर अति प्रेम से उच्च स्वर पूर्वक हंसती थी ।८। रुद्राक्षों से बनाये बाजूबंद कान के गहनों (करनफूला) से शोभित हुआ वानर सिखाने से उसके आगे बालक के समान नाचता था ।९। जिसकी शिखा (चोटी) में रुद्राक्ष बंधा था ऐसा मुर्गा भी बन्दर के साथ नाचने में चतुर होकर नाचता था और देखने वालों को प्रसन्न करता था ।१०। यह शिव भक्ति में तत्पर हुई महा आनंद में पूर्ण वेश्या आदर से इस कौतुक को करती थी ।११। हे मुनि सत्तम ! शिव की भक्ति करने वाली उस वेश्या का बड़े सुख से बहुत समय बीत गया ।१२।

एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवस्स्वयम् ।
परीक्षितुं च तद्भावमाजगाम शुभो व्रती ।१३
त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षाभरणः कृती ।
शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत् ।१४
स बिभ्रद्भस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम् ।
महारत्नपरिस्फीर्णं राजते परकौतुकी ।१५
तमागतं सुसंपूज्य सा वेश्या परया मुदा ।
स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत् ।१६
तत्प्रकोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम् ।
तस्मिञ्जातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता ।१७
महानन्दोवाच ।
महारत्नमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः ।

मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥१८

नन्दीश्वर उवाच ।

इति तां नवरत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे ।
वीदयोदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥१६

वैश्यनाथ उवाच ।

अस्मिन्रत्नवरे दिव्ये सस्पृहं यदि ते मनः ।
त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम् ॥२०

वेश्योवाच ।

वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ।
अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः ॥२१
यद्येतदखिलं चित्तं गृह्णाति करभूषणम् ।
दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम् ॥२२

वैश्य उवाच ।

तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे ।
ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः ॥२३
एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ ।
त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥२४

वेश्योवाच ।

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो ।
सहधर्मं चरामीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२५

नन्दीश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ ।
प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥२६
अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्वा रत्नकंकणम् ।

लिंगं रत्नमयं तस्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत् ॥२७

वैश्यनाथ उवाच ।

इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम् ।
रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः ॥२८

नन्दीश्वर उवाच ।

एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम् ।
नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद्गृहम् ॥२९
सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा ।
सुखं सुष्वाप पर्यंके मृदुतल्पोपशोभिते ॥३०
ततो निशीथसमये सुप्ते वैश्यपतीच्छया ।
अकस्मादुत्थिता वाणी नृत्यमण्डपिकान्तरे ॥३१
महाप्रज्वलितो वह्निः सुसमीरसहायवान् ।
नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत् ॥३२
मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात् ।
मर्कटं मोचयामास सा वेश्या तत्र बंधनात् ॥३३
स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना ।
भिया दूरं हि दुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून् ॥३४
स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम् ।
दृष्ट्वा वेश्या स वैश्यश्च दुरतं दुःखमापतुः ॥३५
दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा ।
ज्ञातुन्तद्भावमन्तःस्थम्मरणाय मतिन्दधे ॥३६
निविश्येतितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ।
नानालीलो महेशानः कौतुकान्नरदेहवान् ॥३७

वैश्यपतिरुवाच ।

शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे मत्प्राणवल्लभे ।

सत्यं वच्मि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥३८
चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु ।
शिवे मनस्समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥३९
यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ।
तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाम्यसून् ॥४०

नन्दीश्वर उवाच ।

तस्यैवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता ।
स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद्बहिः ॥४१
ततस्स वैश्यशिवः एक एव
प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ।
विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः
सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः ॥४२
दृष्ट्वा सा तद्गतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता ।
अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम ॥४३
अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् ।
सर्वान्बंधुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः ॥४४

महानन्दोवाच

रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् ।
दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता ॥४५
कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती ।
तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥४६
स्वधर्मचारिणीत्युक्तमाचार्यैः सत्यवादिभिः ।
एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु ॥४७
सत्याश्रयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः ।
सत्येन स्वर्गमोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४८

नन्दीश्वर उवाच

इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः ।
सत्यलोकपरा नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनोदधे ॥४९
सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम् ।
तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत् ॥५०
तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम् ।
वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः ॥५१

सा तं विलोक्याखिलदेवदेवं
त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम् ।
शशांकसूर्यानलकोटिभासं
स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥५२

तां विह्वलां सुविज्ञस्तां वेपमानां जड़ीकृताम् ।
समाश्वास्य गलद्बाष्पां करौ धृत्वाऽब्रवीद्वचः ॥५३

शिव उवाच

सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम् ।
परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः ॥५४

शिव० शतरुद्र० अ० २६

एक समय उस वेश्या के घर शिव जी स्वयं वैश्य बन कर शुभव्रत धारे उसके भाव की परीक्षा करने को आये । १३ । त्रिपुंड्र से शोभायमान माथे वाले, रुद्राक्ष के आभरण धारे, शिव नाम जपने में आसक्त, जटा वाले तथा शिव के वेष को धारण किये हुऐ । १४ । वह वैश्य अंग में भस्म लगाये, हाथ में सुन्दर कंकण पहिने, बड़े रत्नों से शोभायमान, दूसरों को कौतुक दिखाने वाला हो शोभित हुआ । १५ । उसको आया हुआ देख उस सुन्दरी वेश्या ने बड़े आनन्द के साथ सत्कार करके उसको आदर सहित अपने स्थान में बैठाया । १६ । उसके हाथ में अतिमनोहर सुन्दर कंगन को देख कर उसमें लोभित हुई विस्मित वह वेश्या उस वैश्य से बोली । १७ । महानन्दा बोली यह रत्न जटित आप के हाथ में स्थित हुआ दिव्य

स्त्रियों के आभूषण में उचित कंकण शीघ्र ही मेरे मन को लुभाता है । १८ । नन्दीश्वर बोले इस प्रकार नवीन रत्नों से युक्त उस हाथ के भूषण में उसकी इच्छा देख गंभीर बुद्धि वह वैश्य हंस कर बोला । १९ । वैश्यनाथ बोला यदि इस दिव्य श्रेष्ठ रत्न में तुम्हारा मन लुभा गया है तो तुम ही प्रीति से इसको धारण करो और इस का मूल्य क्या दोगी ।२०। वेश्या बोली हम व्यभिचारिणी वेश्या हैं, पतिव्रता नहीं हैं, हमारे कुल का व्यभिचार करना ही धर्म है इसमें कुछ संशय नहीं । २१ । यदि यह हाथ का भूषण आप मुझे देंगे तो मैं तीन दिन रात तुम्हारी स्त्री रहूँगी । २२ । वैश्य बोला हे बीर बल्लभे ! बहुत अच्छा, यदि तेरा वचन सत्य है तो अपना रत्नों का कंकण तुझे देता हूँ, तुम तीन रात हमारी स्त्री हो । २३ । हे प्रिये ! इस व्यहार में चन्द्रमा तथा सूर्य प्रमाण हैं, तीन बचन से सत्य वचन कह कर मेरे हृदय को स्पर्श कर । २४ । वेश्या बोली हे प्रभो ! तीन दिन तथा तीन रात तुम्हारी भार्या होकर तुम्हारे साथ विषय करूंगी इसमें कुछ संशय नहीं है । २५ । नन्दीश्वर बोले यह महानन्दा तीन बार कह कर, सूर्य और चन्द्रमा को साक्षी कर प्रसन्नता पूर्वक उस वैश्य के हृदय को स्पर्श करती हुई । २६ । तब वह वैश्य उस वेश्या को रत्न जड़ित कंकण देकर उसके हाथ में रत्नमय शिवलिंग को देकर कहने लगा । २७ । वैश्यनाथ बोला हे कान्ते ! यह रत्न जड़ित शिव का लिंग मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारा है तू इसकी रक्षा करना और यत्न से छिपाना । २८ । नन्दीश्वर बोले ऐसा ही होगा इस प्रकार कह कर वह रत्न जड़ित लिंग लेकर नाट्यशाला (नाचने के घर) के मध्य में रख कर उसने घर में प्रवेश किया ।२९। तब वह वेश्या उस विटधर्मी वैश्य के साथ रात्रि में मिल कर कोमल तकिये गद्दों से शोभायमान फेन से पलंग पर सुख पूर्वक सोई । ३० । हे मुने ! तब रात्रि के समय उस वैश्य की इच्छा से, नृत्यमण्डप में से अकस्मात् बाणी हुई । ३१ । हे तात ! तेज पवन की सहायता वाला अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होकर इस नाच भवन को एक साथ ले उड़ा है अर्थात् नाट्यशाला चारों ओर से जलने लगी है । ३२ । मंडप के जलने पर उस वेश्या ने एक साथ उठकर बन्धन से बन्दर को खोला ।३३। वह बन्दर बन्धन से खुला हुआ उस मुर्गे के साथ बहुत से आग की चिनगारियों को दूर करके भय से दूर भाग गया । ३४ । खंभों के सहित वह लिंग जल कर खंड २ हो गया, यह दुश्चरित्र देख कर वह वेश्या तथा वैश्य दोनों महादुखी हुये

। ३५ । उस समय वैश्यपति ने अपने समान शिव लिंग को जला हुआ देख उस वेश्या के चित्त के भाव जानने के निमित्त मरण की इच्छा की । ३६ । नाना लीला करने वाले महेश्वर कौतुक करने को मनुष्य शरीर धारे वह वैश्यपति बड़ा दुःखी हो कर उस दुःखित हुई वेश्या से बोले । ३७ । वैश्यपति बोला मेरे प्राणों से भी प्रिय शिवलिंग के जलजाने पर मैं जीने का उत्साह नहीं करता यह सत्य २ कहता हूँ इसमें कुछ संशय नहीं है ।'३८।। हे भद्रे ! अपने श्रेष्ठ नौकरों से बहुत शीघ्र चिता को बनवाओ, मैं शिव में मन लगाकर चिता में प्रवेश करूंगा । ३९ । हे भद्रे ! यदि मुझे यहां आकर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदिक देवता भी निषेध करें तो भी इस समय अग्नि में प्रवेश करूंगा और प्राणों को त्याग दूंगा । ४० । नन्दीश्वर बोले उसका ऐसा दृढ़ संकल्प जान कर दुःखित हुई उस वेश्या ने अपने नौकरों से अपने स्थान से बाहर चिता बनवाई ॥ ४१ ॥ तब उस सुन्दर कौतुक करने वाले तथा संगति के प्रेम की परीक्षा करने वाले वैश्यरूप धारी एक मात्र शिव ने जलती हुई अग्नि की परिक्रमा करके मनुष्यों के देखते २ अग्नि में प्रवेश किया । ४२ । हे मुनिसत्तम ! वह युवती महानन्दा नामक वेश्या उस गति (चरित्र) को देख विस्मित हो अतिखेद को प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ और उस दुःखी हुई वेश्या ने सुन्दर निर्मल धर्म का स्मरण करके सब कुटुम्बी पुरुषों को देख करुणा से दीनता के वचन कहे । ४४ । महानन्दा बोली मैंने इस वैश्य से रत्न कंकण को लेकर सत्य वचन कहा और तीन दिन इस वैश्य की पत्नी हुई । ४५ । मेरे इस कर्म से यह शिवव्रत-धारी वैश्य मरा है इस कारण मैं भी इस वैश्य के साथ अग्नि में प्रवेश करूंगी ॥ ४६ ॥ सत्य बोलने वाले गुरुओं ने स्वधर्माचरण करने वाली यह होगी ऐसा हम को कहा है,इससे प्रसन्न होकर ऐसा करने से सत्य हमारे बीच में नष्ट न होवे ।४७। सत्य का आश्रय ही परम धर्म है, सत्य से परम गति होती है, सत्य से ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, सत्य में ही सब प्रतिष्ठित है ॥ ४८ ॥ नन्दीश्वर बोले इस प्रकार कह सत्यलोक में तत्पर हुई तथा दृढ़ संकल्प को बांधे हुये वह वेश्या नारी अपने भाई बंधुओं से निषेध की हुई भी प्राणों को त्यागने की इच्छा करने लगी ।४९। और अपना सर्वस्व धनादि पदार्थ मुख्य ब्राह्मणों को दान कर, सदा शिव का ध्यान कर उस अग्नि की तीन वार परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करने लगी ॥५०॥ जलती अग्नि में गिरती हुई तथा अपने चरणों में मन अर्पण करती हुई उस वेश्या को देख

विश्वात्मा साक्षात् शिव ने प्रकट होकर उसको निवारण किया ! ५१ । वह वेश्या उन सब देवताओं के अधिपति, तीन नेत्रों वाले, चन्द्रमा की कला से शोभित, कोटि चन्द्रमा तथा सूर्य अग्नि की समान प्रकाश वाले उन शिव को देख कर निश्चल हुई भीत की समान स्थित हुई । ५२ । तब व्याकुल हुई, बड़ी त्रासवाली कांपती हुई जड़ीभूत, आंसू भरे नेत्रोंवाली उस वेश्या के हाथों को पकड़ कर शिवजी यह वचन बोले । ५३ । शिव जी बोले तेरे सत्य धर्म तथा मुझ में निश्चल हुई भक्ति की परीक्षा करने के निमित्त मैं तेरे समीप वैश्य बन कर आया था । ५४ ।

इस कथा में प्रथम तो महानन्दा का पूर्ण भक्तिमती होना लिखा है, फिर यह लिखा है कि इस भक्ति से प्रसन्न होकर शंकर उसकी धर्म परीक्षा को आये, तीन दिन के लिये वह सह धर्मिणी बनी, परीक्षा में पूरी उतरी, इसमें दोष कौन सा हो गया ? शंकर ने महानन्दा को लिंग दिया और वह लिंग रत्नजटित था, महानन्दा ने लिंग को लेकर नाट्यगृह में रख दिया, वह आग लग कर जल गया, इन घटनाओं से सिद्ध है कि वह लिंग मूत्रेन्द्रिय नहीं था वरन् मूत्रेन्द्रिय से भिन्न कोई वस्तु विशेष थी । महादेव ने जो महानन्दा को तीन दिन के लिये पत्नी बनाया वह काम भावना से नहीं बनाया, केवल धर्म परीक्षार्थ बनाया, फिर इस कथा से महादेव की रण्डीबाजी कैसे सिद्ध हो गई ? कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यह तो ठीक है किन्तु महादेव उस वेश्या के साथ एक चारपाई पर तो सोये ? क्योंकि वहाँ 'पर्यंके " शब्द पड़ा है ? ठीक है, जो लोग लिखने पढ़ने पर परिश्रम नहीं करते उन को ऐसा सन्देह हो ही जाता है ; यहां पर ' पर्यंके ' यह जातित्वात् एक वचन है किन्तु यहां पर ' पर्यंके ' से दो पर्यंकों का मतलब है, व्याकरणानुसार अनेक स्थलों में जब कई पदार्थ एक होते हैं उनको जातित्व होने से एक वचन दे दिया जाता है, इसी प्रकार जातित्व से यहाँ पर एक वचन दिया गया है इस को कोई त्रिकाल में भी मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता । जब वेश्यागृह गमन ही काम भावना से सिद्ध न होकर परीक्षार्थ सिद्ध हो गया तब तो वेश्यागमन उड़ ही गया, अब केवल 'पर्यंके ' शब्द से उसकी सिद्धि नहीं हो सकती । यहाँ पर पर्यंक शब्दजाति वाचक है इस कारण एक वचन है और वास्तविक में वेश्या अपने पर्यंक पर सोई, महादेव दूसरे पर, ऐसी दशा में हम इस कथा में कोई भी कलंक नहीं पाते ।

शिव मोहनी

(१३) कई एक सज्जन कहते हैं कि मोहनी पर शिव आसक्त हो गये यह चरित्र दूषित है।

श्रीमद्भागवत स्कंध आठ अध्याय बारह में यह कथा लिखी है कि जब मोहनी रूप धारण कर के भगवान् विष्णु ने दैत्यों को मोह कर देवताओं को अमृत पिला दिया तब शंकर ने इस चरित्र को सुना और सुन कर आश्चर्य में पड़ गये कि वह कैसा भव्य, अद्भुत रूप होगा जिस को देख कर समस्त दैत्य मोह में पड़ गये इसका आश्चर्यमान शंकर विष्णु के पास गये और प्रार्थना की कि वह मोहनी रूप हमको दिखलाओ ? विष्णु ने निषेध भी किया किन्तु शंकर ने कहा कि नहीं ऐसा रूप तो हम देखना ही चाहते हैं, शंकर के इस आग्रह पर विष्णु ने मोहनी रूप दिखलाया, इस रूप को देखकर शंकर मोहित हो। उसके पीछे दौड़े, शंकर का वीर्य गिरने लगा उस वीर्य से चांदी और सुवर्ण बन गया यह कथा है।

इस कथा में रूपकालंकार है, जो कथा वेद मंत्र के 'पिता यत्स्वाँ दुहितर-मधिष्कन्' मँत्र में वर्णित है, जिसका अभिप्राय प्रकृति के ऊपर ब्रह्म का आसक्त होना और इसी कार्य से संसार की उत्पत्ति वर्णन की है उसी गंभीर विषय को यहां इतिहास रूप में लिखा है। यद्यपि हम ब्रह्मा सरस्वती के प्रकरण में कई प्रमाण इस विषय की पुष्टि में दे आये हैं इतने पर भी सादृश्यता दिखलाने के लिये उन्हीं प्रमाणों में से एक शतपथ का प्रमाण यहां उद्धृत करते हैं पाठक साद-श्यता मिलाने का परिश्रम करें।

प्रजापतिर्वै स्वाँ दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषस-मित्यन्ये। तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत् तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्य तदसावादित्यो भवदिति। प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता।

शत० कां० १० अ० ब्रा० ७ कं० ४

प्रजापति अपनी दुहिता के पीछे चला, द्यु को प्रजापति माना है और उषा को प्रजापति की पुत्री माना है। द्युरूप प्रजापति उषा रूप पुत्री के पीछे चला।

उषा के पीछे दौड़ने वाले प्रजापति का वीर्य गिर गया उससे सूर्य उत्पन्न हुआ यह श्रुति संसारोत्पत्ति की उपलक्षण है अर्थात् प्रकृति ने अनेक रूप धारण किये उन अनेक रूपों के पीछे प्रजापति अनेक रूपों से दौड़ा तब संसार के अनेक पदार्थ उत्पन्न हुये ।

मोहनी की कथा में प्रकृति को मोहनी नाम से लिखा और प्रजापति को शंकर रूप से । प्रजापति शंकर प्रकृति रूप मोहनी के पीछे भागा उससे सुवर्ण और चांदी की उत्पत्ति हुई । जब समस्त संसार की उत्पत्ति होने का मार्ग यही है कि प्रकृति पर पुरुष की दृष्टि पड़े और तीसरा पदार्थ पैदा हो जाय । जिस कथा को वेद ने डंके की चोट लिखा और जो विज्ञान सिद्ध है उसी कथा को श्रीमद्भागवत ने ब्रह्म को शंकर और प्रकृति को मोहनी की कथा में लिखा एवं उससे सुवर्ण चांदी की उत्पत्ति दिखलाई तो फिर हुज्जतबाज इस कथा पर घबराये क्यों ? उन को वेद में अश्लीलता न दीखी और भागवत में देख पड़ी इसका कारण क्या ?

कई एक सज्जन यह कह देंगे कि क्या पुराणों में भी रूपकालंकार हैं ? इस के ऊपर हमारा यह उत्तर होगा कि जिन्होंने कभी स्वप्न में भी पुराण नहीं पढ़े, पुराणों से नौकोश दूर रह कर बिना जाने खण्डन करते हैं उनकी दृष्टि में पुराणों में रूपकालंकार हैं ही नहीं किन्तु जिन्हों ने पुराणों का अध्ययन किया है, पुरंजन पुरंजनी का इतिहास और त्रिपुरासुर की कथा पढ़ी है उनकी दृष्टि में पुराणों में अनेक स्थानों में आलंकारिक कथा विद्यमान हैं ।

कई एक मनुष्य यह कह देंगे कि हम इसमें रूपकालंकार नहीं मानते । कह दें, कहने से रूपकालंकार नहीं मिटेगा । यदि कोई यह कह दे कि नित्य सूर्य नहीं निकलता तो किसी के कथन मात्र से नित्य सूर्य का उदय होना कैसे बन्द हो जावेगा ? कोई जले भुने मिजाज का मनुष्य यह कह बैठे कि मेरे मुंह पर नाक नहीं तो क्या इस कथन मात्र से नाक का सफाया हो जावेगा ? फिर कहे क्यों ? इस कथा में रूपकालंकार नहीं है इस कहने का प्रयोजन तो यही है कि इतिहास के रहते हुये हम इस कथा पर कुछ चीं चपट कर सकते थे, रूपकालंकार होने पर तो हमारी हुज्जतों का ही सफाया हो गया, हम डर कर इस कथा को रूपकालंकार नहीं बनाते, इसमें रूपकालंकार है इस कारण बनाते हैं ।

रही इतिहास की बात, इतिहास में भी इसमें कोई हउआ नहीं, मोहनी विष्णु शक्ति है, शंकर ने विष्णु से आग्रह किया है कि आप मोहनी शक्ति दिखला दें ? इस कारण आग्रह पर विष्णु ने शक्ति की प्राबल्यता दिखला दी। इस कथा में तो विष्णु शक्ति का उत्कर्ष है, शंकर विष्णु शक्ति से मोहित हो गये—इसमें क्या अश्लीलता है ? इससे तो भोलानाथ का भोलापन और उनके वीर्य से चाँदी सोने की उत्पत्ति होना इससे ईश्वरत्व टपकता है।

क्या निराकार ईश्वर संसार के समस्त पुरुष स्त्रियों को नित्य नग्न नहीं देख रहा ? तुम चाहे मान लो कि नहीं देख रहा—वेद का कथन तो यही है कि 'पश्यत्यचक्षुः' क्या निराकार ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण पुरुष स्त्री की गुह्येन्द्रिय में नित्य स्थायी रूप से नहीं रहता ? यदि कोई हुज्जतबाज वेद के इस कथन का अभिप्राय न जान कर यह कहने लगे कि हम ऐसे व्यभिचारी ईश्वर को नहीं मानते जो नित्य स्त्री पुरुषों को नग्न देखता है और प्रत्येक स्त्री पुरुष की गुह्येन्द्रिय में धंस बैठा है तो इसका क्या उत्तर होगा ? यदि ये कहें कि ईश्वर स्त्री पुरुष की गुह्येन्द्रिय में नहीं है तब तो उसकी व्यापकता उड़ गई, यदि कहें कि है तो तब ईश्वर दूषित हो गया, जैसे मनुष्य स्त्री की गुह्येन्द्रिय में ईश्वर के नित्य रहने पर भी ईश्वर पवित्र है इसी प्रकार सुवर्ण चाँदी की उत्पत्ति करने के लिये शंकर मोहनी के पीछे दौड़ा फिर इसमें दोष कैसे धंस बैठा ? श्रुति—स्मृति में कहे हुये विधि—निषेध जब ईश्वर के लिये हैं ही नहीं तब कोई बुद्धिमान् किस प्रकार शंकर को दूषित कह सकता है। हम ईश्वर से यही प्रार्थना करेंगे कि ईश्वर हुज्जतबाज नास्तिकों को बुद्धि दे जिससे वेद और पुराणों का अभिप्राय इनकी समझ में आवे, कथा निर्दोष है।

* अवतार त्रय चरित्र *

❁ अत्रि तप ❁

(१४) कई एक सज्जन यह शंका करते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर अनसूया से भोग करने के लिये गये, निःसन्देह ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का यह चरित्र भ्रष्ट है।

हम चाहते हैं कि हम पाठकों के आगे पहिले कथा रख दें और फिर

विवेचन रक्खें। कथा इस प्रकार है।

कदाचिद्भगवानत्रिर्गंगाकूलेऽनसूयया।
सार्द्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्शंभुः स्वस्ववाहनमास्थिताः।
वरं ब्रूहीति वचनं तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयंभूतनयो मुनिः।
नैव किञ्चिद्वचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भावं समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः।
अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०
लिङ्गहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः।
ब्रह्मा कामब्रह्मलोपा स्थितस्तस्या वशं गतः।
रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥७१
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम्।
नैव किंचिद्वचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२
मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा।
मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्मायाविमोहिताः ॥७३
तदा क्रुद्धा सती सा वै तान्शशाप मुनिप्रिया।
मम पुत्रा भविष्यन्ति यूयं कामविमोहिताः ॥७४
महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा।
भविष्यन्ति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ॥७५
इति श्रुत्वा वचोघोरं नमस्कृत्य मुनिप्रियाम्।
तुष्टुवुर्भक्तिनम्राश्च देवपाठैश्च वाङ्मयैः ॥७६
अनसूया तदाप्राह भवन्तो मम पुत्रकाः।
भूत्वा शापं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिमवाप्स्यथ ॥७७

इत्युक्ते वचने ब्रह्मा चन्द्रमाश्च तदा ह्यभूत ।
दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद्दुर्वासा भगवान्हरः ॥
तत्पापपरिहारार्थं योगवन्तो बभूविरे ॥७८

भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खण्ड ४ अ० १७

किसी समय अत्रि अनसूया सहित गंगा के तट पर घोर तप करते हुये ईश्वर के ध्यान में तत्पर हुये ॥६७॥ उस समय ब्रह्मा, विष्णु महेश ये तीनों ही अपने २ वाहन पर सवार होकर अत्रि के पास आये और आकर बोले कि बर मांगो ॥ ६८ ॥ परमात्मा के ध्यान में स्थित ब्रह्मा के पुत्र अत्रि उन तीनों के वचनों को सुनकर कुछ भी न बोले ॥ ६९ ॥ तीनों सनातन-देव अत्रि के पवित्र भाव को जान कर अत्रि की धर्मपत्नी अनसूया के पास पहुँचे और जाकर बोले ॥ ७० ॥ रुद्र हाथ में लिंग लेकर गये, विष्णु उसके पोषक भये एवं ब्रह्मा इच्छित ब्रह्मलोप में स्थित होकर उसके वश में हो गये, ब्रह्मा बोले कि हे मदाघूर्णितलोचने ! मुझे तू रति दे नहीं तो मैं प्राणों को त्याग दूंगा ॥७१॥ उनकी इस अपवित्र वाणी को सुनकर पतिव्रता अनसूया क्रोध में आगई और कुछ नहीं बोली ॥७२॥ अनसूया की माया से मोहित तीनों देवों ने चाहा कि हम इसको जबरदस्ती से पकड़ लें इत्यादि मैथुन करने का उद्योग करने लगे ॥७३॥ उस समय वह सती अनसूया क्रोधित हो गई और ऋषिपत्नी ने शाप दिया कि जाओ तुम तीनों ही मेरे पुत्र बनोगे ॥७४॥ महादेव का लिंग और ब्रह्मा का शिर, वासुदेव के चरणों का मनुष्य सदा पूजन किया करें और हे देवताओं में श्रेष्ठ देवो ! तुम्हारा संसार में उपहास होगा ॥७५॥ इस घोर वाणी को तीनों देव सुनकर और ऋषिपत्नी को प्रणाम कर भक्ति से नम्र हो ऋषिपत्नी की स्तुति करने लगे ॥७६॥ उस समय अनसूया बोली कि तुम लोग मेरे पुत्र बनोगे और फिर मेरे शाप से मुक्त हो जाओगे ॥७७॥ इसके कहने के पश्चात् ब्रह्मा ने चन्द्रमा बनकर अनसूया के पुत्रत्व संज्ञा को धारण किया, विष्णु दत्तात्रेय रूप से प्रकट हुये और साक्षात् शंभु अनसूया के दुर्वासा नाम के पुत्र हुये एवं उस पाप के दूर करने के लिये तीनों ने योग का अनुष्ठान किया ।७८

अत्रि के उत्कट तप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर दंग रह गये, मन में

विचार किया कि अत्रि तो इतने उच्चश्रेणी के तपस्वी हो गये कि अब वे तुम्हारे वरों को कुछ भी नहीं समझते वरन् हेय दृष्टि से देखते हैं। अत्रि अकेले ही इस उच्चश्रेणी के धर्मात्मा हैं अथवा इनकी धर्मपत्नी भी उच्चश्रेणी की धर्मिष्ठा है इसकी भी परीक्षा होनी चाहिये। स्त्रियों का मुख्य धर्म पातिव्रत है इस पातिव्रत धर्म की परीक्षा के लिये तीनों मूर्ति भगवती अनसूया के पास गये।

पातिव्रतधर्म की परीक्षा कामचेष्टाओं के बिना कभी हो नहीं सकती जब तक कि कामोद्दीपन का उद्योग न हो तब तक यह पता नहीं लग सकता कि इसका मन काम मोहित हुआ या इसके अन्तः करण में पहिले की भांति ज्यों की त्यों शुद्ध भावना अब भी ज्यों की त्यों स्थायी रूप से विराजमान है। जहां २ कामोद्दीपन की परीक्षायें हुई हैं वहां २ कामचेष्टायें उत्कट रूप से दिखलाई गई हैं इसकी पुष्टि में नर नारायण, भोलानाथ शंकर और ऋष्यश्रृंग प्रभृति तपस्वियों की उन कथाओं को देख सकते हैं जिन कथाओं में इनकी परीक्षायें की गई हैं, जहां पर कुचेष्टाओं का कुछ भी प्रभाव अन्तः करण पर न हो वहां समझ लिया जाता है कि यह व्यक्ति शुद्ध, धर्मिष्ठ है और जहां पर कुचेष्टाओं का प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ा कि फौरन धर्म छूट जाता है एवं यह व्यक्ति काम के पंजे में पड़ जाता है।

यहां पर अनसूया के पातिव्रत धर्म की परीक्षा करनी है इस कारण कामोत्पादक कुचेष्टायें अवश्य ही करनी होंगी, बिना कुचेष्टाओं के कामोद्दीपन हो नहीं सकता इस कारण त्रिदेव ने यहां कुचेष्टाओं का आश्रय लिया किन्तु अनसूया कोई कच्ची पक्की पतिव्रता नहीं थी वह तो इस उच्चश्रेणी की पतिव्रता थी कि यदि समस्त पतिव्रताओं में शिरोमणि कहें तो किंचित् भी अत्युक्ति न होगी, उसको कामोद्दीपन न होकर क्रोध आ गया और क्रोध में उस पतिव्रता के मुख से शाप निकल पड़े।

पहिला शाप यह है कि विष्णु के चरण ब्रह्मा का शिर और शंकर का लिंग पुजा करेगा, भाव यह है कि तुमने जिन शरीरों से मेरे सामने कुचेष्टायें की हैं उन पूर्ण शरीरों का पूजन अब न होगा किन्तु शरीर के ऐसे भागों का पूजन होगा जिन अंगों से कुचेष्टायें नहीं हो सकतीं, पैरों से कोई भी कामोद्दीपन कुचेष्टा नहीं हो सकती इस कारण विष्णु के चरण पुजेंगे, शिर और मस्तक से भी कोई कामोद्दी-

पन कुचेष्टा नहीं होती अतएव ब्रह्मा का शिर पुजेगा, इसी प्रकार कुटुम्बधारी शंकर या शरीरधारी शंकर का पूजन न होगा किन्तु शंकर के जिस शरीर स्वयंभू आदि लिंग से कुचेष्टायें नहीं हो सकतीं वह पुजेगा। तुमने हमारे सामने घृणित कुचेष्टायें की हैं इस कारण तुम तीनों ही मेरे पुत्र बनोगे। शाप को सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर ने अनसूया को धर्मिष्ठा समझ उसकी स्तुति की।

हमको नहीं मालूम, यह कथा किस कारण से दूषित है? दूषित नहीं है लोगों के मन दूषित हैं इस कारण कथा दूषित जान पड़ती है, कथा निर्दोष है। साथ ही साथ इस कथा से यह शिक्षा भी निकलती है कि पतिव्रता स्त्री के धर्म भंग करने के उद्योग से सृष्टि रचयिता जगदीश्वरों को भी आपत्ति में पड़ जाना पड़ा अतएव कोई भी सांसारिक मनुष्य पतिव्रताओं के धर्म भंग करने की कुचेष्टायें न करे।

मिथ्या कलंक।

जब पुराणों में कोई दूषित कथा नहीं मिलती तब जबरदस्ती से पुराणकथाओं को दूषित बना दिया जाता है इसका उदाहरण देखिये—

(१५) कोई कोई सज्जन का कथन है कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ और विष्णु ने माता के साथ, शंकर ने बहिन के साथ विवाह करवाया, इसको भविष्य पुराण में इस प्रकार लिखा है।

स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥

ब्रह्मा अपनी स्वकीय लड़की को और विष्णुदेव अपनी माता को, भगवान् शंभु अपनी भगिनी को ग्रहण करके श्रेष्ठ बने हैं।

अब इसका उत्तर सुनिये, आज कल जो नई नई धार्मिक सभायें बनी हैं वे संसार को धर्म सिखलाने या धर्म प्रचार करने के लिये नहीं बनीं किन्तु धर्म धर्म चिल्लाकर संसार को धोखा देने, बेईमानी करके अपना मतलब सिद्ध करने संसार को चालबाजी में फांस धर्म को संसार से उड़ाने के लिये बनी हैं ऐसी सोसाइटियों में जो सबसे अधिक बेईमानी या धोखादेही करते हैं वे लोग प्रतिष्ठा पाकर महर्षि और पुराण मार्तंड के नाम से याद किये जाते हैं यह आज कल की

धार्मिकता का चमकता हुआ उदाहरण है। आज इस पूरी कथा को पढ़कर धार्मिक सोसाइटियों और उनके धर्मवक्ताओं की बेईमानी नीचता पाठकों के सन्मुख आकर अपना नग्न नाच दिखलायेगी, कथा यह है।

चतुर्द्धा प्रकृतिर्देवी गुणभिन्ना गुणैकिका।
एका सा प्रकृतिर्माता गुणसाम्यात्सनातनी ॥२३
सत्त्वभूता च भगिनी रजोभूता च गेहिनी।
तमोभूता च सा कन्या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥२४
बहवः पुरुषा ये वै निर्गुणाश्चैकरूपिणः।
चैतन्याऽज्ञानवंतश्च लोके प्रकृतिसंभवाः ॥२५
अलोके पापजास्सर्वे देवब्रह्मसमुद्भवाः।
या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्य पुरुषं शुभम् ॥
कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत् ॥२६
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७

भविष्य पु० प्रतिसर्ग प० खं० ४ अ० १८

प्रकृति देवी चार प्रकार की है, पहिले उसमें दो भेद हैं, प्रथम वह प्रकृति है कि जिसमें रज-सत्व-तम इन गुणों के पृथक् पृथक् भेद दृष्टि गोचर होते हैं यह प्रकृति का प्रथम भेद है। जब तीनों गुण प्रकृति में जाकर मिल जाते हैं उस समय प्रकृति की साम्यावस्था हो जाती है उसको गुणैकिका प्रकृति कहते हैं उन दो भेदों में से चार भेद हो जाते है जिस दशा में उसदशा में प्रकृति में गुणों की साम्यता होती है अर्थात् सब गुण जाकर उसमें मिल जाते हैं उस समय यह सनातनी प्रकृति माता कही जाती है ॥ २३ ॥ सत्व प्रधान प्रकृति को भगिनी कहते हैं और रजोगुण प्रधान जिसमें हो ऐसी प्रकृति का नाम भार्या है एवं तमाधिक्य जिस प्रकृति में हो वह कन्या के नाम से याद की जाती है ऐसी देवी प्रकृति को हम प्रणाम करते हैं ॥ २४ ॥ बहुत से जीव निर्गुण और जिन को हम एक रूपी कह सकते हैं चैतन्य और अज्ञानवाले इस लोक में प्रकृति से उत्पन्न होते हैं यह दशा स्थावर सृष्टि वृक्षों

में हैं ॥ २५ ॥ मर्त्य संसार से बाहर जो देव और ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं वे अपापज हैं, ज्ञानमयी नारी जो प्रकृति है वह शुभ पुरुषों को स्वीकार करती है, कोई पुत्र होकर, कोई पिता, कोई भ्राता बन कर प्रकृति को ग्रहण करता है, ग्रहण करने से वह पति कहा जाता है ॥ २६ ॥ ब्रह्मा ने कन्या संज्ञावाली तमो भूत प्रकृति का ग्रहण किया। और विष्णु ने माता संज्ञा रखने वाली साम्यावस्था प्रकृति को स्वीकार किया तथा शंकर ने बहिन कहलाने वाली सात्विकी प्रकृति ग्रहण की है इससे शंकर सब से श्रेष्ठता को प्राप्त हुये हैं ॥२७॥

यहाँ पर अपनी बनावटी कलई खुलने के भय से चार श्लोकों को तो चालबाज लोग छोड़ देते हैं और केवल पांचवें श्लोक को लेकर ब्रह्मा विष्णु महेश पर मिथ्या कलंक लगाते हैं एवं निर्लज्ज इतने हैं कि जब कोई पिछले श्लोकों को उठा कर इनके आगे रख देता है उस समय शास्त्रार्थ में इनके बनावटी जाल का भंडाफोड़ हो जाता है, ये इतने पर भी नहीं शरमाते। इन पिछले चार श्लोकों को इनके आगे न भी रक्खा जावे, केवल इतना पूछ दिया जावे कि बतलाओ ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ विवाह किया ब्रह्मा की उस स्त्री का क्या नाम था जिसके गर्भ से यह पुत्री पैदा हुई थी ? तुम कहते हो कि विष्णु ने अपनी माता से विवाह करवाया तो तुम बतलाओ विष्णु के बाप का क्या नाम है ? और विष्णु के पिता की जो धर्मपत्नी है उसका क्या नाम है ? एवं महादेव की बहिन का क्या नाम तथा इन नामों का उल्लेख कौन पुराण में है ? इस प्रश्न के सुनते ही बलात्कार अपने आप बने हुये महर्षि और जाली पुराण मार्तंड की अक्ल का दिवाला निकल जाता है।

हमको इसका बड़ा शोक है कि आर्यसमाज ने नीमच के शास्त्रार्थ में इस प्रकरण को रखकर अपनी नीचता और धोखेबाजी का परिचय संसार को दिया, क्या इस प्रकार की धोखेबाज सोसाइटी को कोई धार्मिक सोसाइटी कह सकता है हजार वार धिक्कार है आर्यसमाज की इस घृणित चेष्टा पर।

यदि हम इनसे यह प्रश्न कर दें कि अयोनिज सृष्टि में मातृपुत्री, भगिनी व्यवहार तुम किस आधार से मानते हो ? तो इस प्रश्न को सुनकर ही इन मूर्खों की बुद्धि के तोते उड़ जाते हैं और औंधे मुंह गिरने के सिवाय और कोई उत्तर इनके पास नहीं रहता, अयोनिज सृष्टि में श्रुति-स्मृति, पुराण-इतिहास ने मातृ

पुत्री-भगिनी व्यवहार माना ही नहीं, सर्वथा वेदादि सच्छास्त्र विरुद्ध अयोनिज सृष्टि में मातृ आदि की कल्पना करके संसार को धोखे में डालने के सिवाय और इसमें कोई सार नहीं ? ब्रह्मा विष्णु-शंकर जब ये तीनों ही अयोनिज हैं फिर इनके साथ भगिनी प्रभृति सम्बन्ध जोड़ना अपनी अक्ल को नीलाम करके दिखलाना नहीं तो और क्या है ?

विज्ञप्ति

आजकल इस पापी पेट के भरने के लिये कई एक मनुष्य इस चालाकी पर उतर पड़े हैं कि वे अवसर पर पुराणों के किन्हीं एक दो श्लोकों को लेकर उनके बनावटी नये अर्थ बना, आगे पीछे के श्लोक दबा संसार को धोखा देने के लिये पुराणों को दूषित ठहराने का साहस कर बैठते हैं, इनकी नीचता स्पष्ट कर देने के लिये यही उपाय तोष दायक हो सकता है कि उन से श्लोक का पूरा पता लेकर और उस प्रकरण को निकाल आगे पीछे का प्रसंग देख डालो, इनके जाल का भंडा फोड़ हो जावेगा और फिर ये भागते नजर आवेंगे। अठारह पुराणों में एक भी प्रसंग ऐसा नहीं जहां पर ब्रह्मा विष्णु या शंकर को कलंक लगाया गया हो। सनातनधर्मी इनके मुंह से बनावटी जाल को सुन कर घबराया न करें, इनको पहिले तो जबाब दे दें कि हम तुम्हारी बात नहीं मानते, तुम मनुष्य नहीं हो पेट के कुत्ते हो और फिर प्रकरण निकाल कर देखलें, कथा शुद्ध और पवित्र निकलेगी।

* ईश्वरार्चा *

जब ईश्वर चरित्र में पराजय हो जाते हैं तब हुज्जतबाज सज्जन कहने लगते हैं कि इन पुराणों में पाषाण काष्ठादिकों का पूजन ही ईश्वर पूजन और वही मनुष्य शरीर का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया है (१) मूर्तिपूजन जैनियों से चला है (२) वेद में मूर्तिपूजन का खंडन है (३) वेद ने मूर्तिपूजा करना नहीं बतलाया (४) कोई तर्क या दलील से मूर्तिपूजन सिद्ध नहीं कर सकता (५) पुराणों में कहीं २ मूर्तिपूजा का खंडन भी है इस मूर्तिपूजा के मानने से पुराण कर्ताओं की अनभिज्ञता प्रकट होती है ।

जैनियों से मूर्तिपूजा

इतिहास के देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि मूर्तिपूजा अनादिकाल से चली आती है फिर हम कैसे मान लें कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है । द्वापर में मूर्तिपूजा होती थी । त्रेता में मूर्तिपूजा प्रचलित थी । सत्ययुग में संसार मूर्तिपूजन करता था । हम युग क्रम के अनुसार मूर्तिपूजा के प्रमाण इतिहास से लिखते हैं पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें ।

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां
स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥
पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुंजे-
ष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ।
अनंतलिंगैः समलंकृतेषु
चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः । १८ ।
गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाप्लुतोऽधः शयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं
कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा-
मेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ २० ॥
तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं
वनं यथा वेणुजवन्हिसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोच-
न्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ २१ ॥
तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च
पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य
यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥
अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः
कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यंगमुख्यांकितमंदिराणि
यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥ २३ ॥
श्रीमद्भा० स्कं० ३ अ० १

कौरवों के पुण्य से प्राप्त हुये वह विदुरजी हस्तिनापुर से बाहर जाकर पुण्य कर्म करना चाहिये ऐसी इच्छा से भूतल पर ब्रह्म रुद्रादि अनंतमूर्ति धारण करने वाले भगवान् जिस जिस स्थान में रहे हैं तिन तीर्थपाद विष्णु भगवान् के पवित्र क्षेत्रों में यात्रा करने को चल दिये ॥ १७ ॥ विष्णु भगवान् की मूर्तियों से शोभायमान नगर पर्वत कुंज (लता आदि से छाया हुआ स्थान) स्वच्छ जल की नदियें और सरोवर तीर्थ तथा क्षेत्रों में वह विदुर जी इकले ही विचरने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार विचरने वाले तिन विदुरजी ने एकान्त में पवित्र अन्न भोजन करना, प्रत्येक तीर्थ में स्नान करना, पृथ्वी पर शयन करना, शरीर को दबवाना तथा तेल मलना आदि संस्कारों को त्यागना, वृक्षों की छाल आदि ओढ़ना, किसी से भी

अपना परिचय न देना इत्यादि श्रीहरि को प्रसन्न करनेवाले अनेकों व्रत धारण किये ॥ १९ ॥ वह विदुरजी इस प्रकार भरतखंड में तीर्थ यात्रा करते करते कितने ही काल के अनंतर जब प्रभासक्षेत्र में जाकर पहुँचे इतने समय में ही श्रीकृष्ण जी की सहायता से धर्मराज एक चक्र और एकछत्र पृथ्वी का राज्य करने लगे ॥२० ॥ इधर तिस प्रभास क्षेत्र में पहुंच कर बिदुरजी ने बांसों के परस्पर घिसने से उत्पन्न हुई अग्नि करके जैसे वन भस्म हो जाता है तैसे परस्पर की स्पर्धा से कौरवों का नाश हो गया यह वृत्तान्त सुना तदनन्तर वह बिदुरजी कौरवों का शोक करते हुये मौन धारण करे पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी की ओर को चल दिये ॥२१॥ और उन्होंने तिस नदी के तट पर के त्रिततीर्थ, शुक्रतीर्थ, मनुतीर्थ, पृथुतीर्थ अग्नितीर्थ, असिततीर्थ, वायुतीर्थ, गोतीर्थ, गुहतीर्थ, और श्राद्धदेवतीर्थ इन ग्यारह प्रसिद्ध तीर्थों का क्रम से सेवन किया ॥ २२ ॥ और तहां अन्यऋषि तथा देवताओं के बनाये हुये जिन के शिखरों पर के सुवर्ण के कलसों पर चक्रों की मूर्तियें शोभा दे रही हैं ऐसे अनेकों विष्णु भगवान् के मन्दिर तिन बिदुरजी ने देखे जिन मन्दिरों के शिखरों पर विराजमान् चक्रों के दर्शन से दूर रहने वाले पुरुषों को भी बारंबार श्रीकृष्ण भगवान् का स्मरण होता है । २३ ।

+ त्रेतायुग +

ऊपर द्वापरयुग का उदाहरण दिया है त्रेतायुग के उदाहरण नीचे देखिये-

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिंगं तत्र तत्र स्म नीयते ॥
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गंधाढ्यैः पुष्पैश्चागुरुगंधिभिः ॥

वाल्मीकि रा०

राक्षसों का राजा रावण जहां जहां जाता था सुवर्ण की मूर्ति साथ ले जाता था । रेत की वेदी बना कर उस मूर्ति को स्थापित करता फिर उत्तम गंधवाले पुष्पादि से उस मूर्ति का पूजन करता था । त्रेता में रघु, दलीप, अज, दशरथ, प्रभु राम आदि समस्त नरेन्द्रों ने अश्वमेधादि यज्ञें की हैं और यज्ञों में प्रजापति महावीर की

मूर्ति का पूजन आवश्यकीय है जिसको यजुर्वेद माध्यंदिनी शाखा और शतपथ ब्राह्मण कात्यायनि सूत्र ने लिखा है अतएव यह मानना पड़ेगा कि त्रेता में भी मूर्तिपूजन होता था।

÷ सत्य युग ÷

इस वर्तमान "श्वेतवाराह कल्प" में वर्तमान कलियुग २८वां युग है इसको सभी विद्वान् जानते हैं इसके आरंभ में जो सत्ययुग था जिसके बाद ६ सत्ययुग और बीत चुके उस में भी मूर्तिपूजन होता था उस समय में केवल ब्राह्मण ही मूर्ति-पूजन नहीं करते थे किन्तु समस्त वर्ण करते थे मामूली ही पुरुष नहीं करते थे किन्तु बड़े बड़े सम्राट भी करते थे। हम उस पुरुष का उदाहरण देते हैं कि जो उससमय चक्रवर्ती राजा था पढ़िये—

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम्।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम्।
विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६ ॥
वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत्स्मृतम् ॥ १७ ॥
स वै मनः कृष्णपदारविंदयो
वंचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मंदिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥
मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंगसंगमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते। १९।
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने।

कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥
एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितःशशास ह ॥२१॥

श्रीमद्भा० स्कं० ९ अ० ४

भाग्यशाली महाराज अंबरीष सप्तद्वीपवाली पृथ्वी का राज्य पाकर और अतुल अव्यय विभव और ऐश्वर्य को पाकर ॥१५॥ जो संपत्ति मनुष्यों को मिलना दुर्लभ है इसको भी स्वप्न के सदृश मानता था क्योंकि इस वैभव में लिप्त होकर पुरुष उन्नति के बदले अवनति करता है राजा यह समझता था कि जब तक मोक्ष न होगी शान्ति न मिलेगी ॥ १६ ॥ वह राजा वासुदेव भगवान् और उसके भक्त तथा सज्जन लोगों में उत्तम भक्ति को पाकर इस विश्व को ऐसा समझता था कि यह संसार पत्थर का ढेला है जिस प्रकार पत्थर लोहे का ढेला कुछ काम नहीं आता वैसे ही आत्मोन्नति में ऐश्वर्यमय विश्व भी कोई काम नहीं देता ॥ १७ ॥ उस राजा ने अपने मन को भगवान् कृष्ण के चरणारविंद में और वाणी को उनके गुण वर्णन में और अपने करों को भगवान् के मन्दिर झाड़ने में और अपनी श्रवणशक्ति को अर्थात् कानों को हरि की कथा सुनने में ॥ १८ ॥ अपनी दृष्टि को मुकुन्द भगवान् के लिंग (मूर्ति) में और अपने शरीर को ईश्वर के भक्तों की सेवा में और अपनी घ्राणेंद्रिय नाक को भगवान् के चरण की तुलसी को सूँघने में लगा दिया ॥ १९ ॥ पैरों को भगवान् के क्षेत्र में चलने को और शिर को भगवान् के चरणारविंद की वंदना को और अपनी इच्छा को शरीरपूर्ति की इच्छा से हटा कर भगवान् के दास्यभाव में लगा दिया इंद्रियों से कहा कि यदि तुम अपने अपने विषय में लगना चाहती हो तो इस प्रकार लगो राजा का भाव ऐसा हो गया कि जैसा उत्तम श्रेणी के भक्त का होता है ॥ २० ॥ इस प्रकार सर्वदा ईश्वर की भक्ति में लगा हुआ राजा भगवान् की अनन्यभक्ति को प्राप्त होकर पृथ्वी का शासन करता था ॥ २१ ॥

अब इससे भी पहिले लोगों ने मूर्तिपूजन किया है इस बात को दिखलाते हैं। ध्रुव जी महाराज उत्तानपाद के पुत्र थे वे सौतेली माता की बाणी में विद्ध होकर दुःखित हुये और पाँच वर्ष की अवस्था में ही घर से निकल वृन्दावन आये हम आपको यह दिखलाना चाहते हैं कि उन्होंने वृन्दावन में क्या किया, आगे पढ़िये—

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ।
समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥
त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥७२॥
द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥
तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥७४॥
चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥
पंचमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन्ब्रह्मपदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥
सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥

श्रीमद्भा० स्कं० ४ अ० ८

इधर ध्रुवजी ने मधुबन में जाकर यमुना में स्नान किया और जिस रात्रि में वहां पहुंचे थे उसी रात्रि में देह की शुद्धि के निमित्त उपवास करके एकाग्रचित्त हो नारद जी के उपदेश के अनुसार चित्त लगा कर भगवान् की पूजा करी ॥ ७१ ॥ फिर तीन तीन दिन उपवास करके चौथे दिन शरीर के निर्वाह के योग्य कैथा और बेर खाकर उन ध्रुव जी ने श्रीहरि की आराधना करते हुये एक मास बिता दिया ॥७२॥ तथा दूसरे महीने छठे छठे दिन वृक्षों से गिरे हुये पत्ते तृण आदि के भक्षण से देह निर्वाह करके तिन ध्रुव जी ने व्यापक प्रभु की आराधना करी ॥ ७३ ॥ तीसरे

मास में नवें नवें दिन शरीर के निर्वाह के निमित्त केवल जल ही पीकर उन ध्रुवजी ने समाधि के द्वारा उत्तमकीर्ति भगवान् की आराधना करी ॥ ७४ ॥ चौथे महीने में बारहवें दिन एक समय वायु का भक्षण करके प्राणायाम से श्वास को वश में कर हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुये शरीर को धारण करा इस प्रकार ध्रुवजी ने हर मास में तपस्या की वृद्धि और भोजन की न्यूनता (कमी) करी ॥ ७५ ॥ फिर पाँचवां मास लगने पर वह राजकुमार ध्रुव जी प्राणवायु को जीत कर ब्रह्म का ध्यान करते हुये एक चरण से खंभे के समान निश्चल खड़े हुये ॥ ७६ ॥ फिर शब्द आदि विषय और इन्द्रियें जिसमें रहती हैं ऐसे अपने मन को सकल पदार्थों से हटा कर तहां ही भगवान् के स्वरूप का (ब्रह्म का) ध्यान करने वाले तिस बालक ने ब्रह्म वस्तु से भिन्न कुछ नहीं देखा ॥७७॥

ऊपर के लिखे हुये प्रकरण और इनसे भिन्न ऐसे ही सैकड़ों प्रकरणों को देख कर कोई भी विचारशील मनुष्य इस बात को स्वीकार नहीं करता कि मूर्ति-पूजन का आरंभ जैनियों से हुआ है या जैन धार्मिक सज्जनों ने मूर्ति पूजन संसार में चलाया है।

यदि कोई सज्जन यह कह उठावे कि हम इन प्रमाणों को नहीं मानते उनके लिये हम दो प्रमाण और लिखे देते हैं वे ये हैं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

इसका निरुक्त यह है—

त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्। सुगंधिं सुष्टु गंधिं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुंचस्व मां कस्मादित्येषा परा भवति।

हम तीन नेत्र वाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्य गन्ध से युक्त और धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ाने वाला है जिससे कि उसकी कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बंधन से छूटें, अमृत से न छूटें।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।

नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० कां० १ अ० ३ मं० १

मैं बिजली रूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ, मैं गर्जना रूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूं, मैं पाषाण रूप ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ, जिस पाषाण से चोट लगती है

ऊपर के लेखों को पढ़ कर कोई भी विचार शील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है जो लोग संसार को धोखा देने के लिये मूर्तिपूजा जैनियों से चली बतलाते हैं उनका अभिप्राय यह है कि पुराण और वेद दोनों ही जैनियों के बाद के बने हुये नवीन सिद्ध हो जावें नवीन होने के कारण इन दोनों को ही संसार छोड़ दे और फिर हम धर्म कर्म से पिंड छुड़ा कर पाप करें एवं हमारे पाप को कोई पाप न कहे।

◎ वेद में मूर्तिपूजन का निषेध छल ◎

हमने यह दिखला दिया कि मूर्तिपूजन जैनियों से नहीं चला किन्तु सृष्टि के आरम्भ से ही चला आता है इसमें इतिहास और वेद साक्षी है। वेद में मूर्तिपूजन का निषेध करने वाले सज्जन जिस मंत्र को प्रमाण में देते हैं वह यह है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याथंरताः ॥

यजु० अ० ४० मं० ९

जो संभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं।

इस अर्थ के रहते हुये भी उपासक लोग यह उत्तर देते हैं कि हम प्रकृति और उसके कार्य की उपासना नहीं करते किंतु प्रकृति और कार्य में व्यापक ब्रह्म की उपासना करते हैं लहसन भी खाया और व्याधि की निवृत्ति भी नहीं हुई। अर्थ

बदलने पर भी उपासना का खंडन नहीं होता सत्य तो यह है कि—

(ये) जो (जनः) मनुष्य (असंभूतिं) शरीर की (उपासते) उपासना करते हैं [इस शरीर के छूटने पर दूसरा शरीर मिलता ही नहीं ऐसा जानते हैं] (ते) वे (अंधंतमः) अज्ञान लक्षण तम को (प्रविशंति) प्रवेश करते हैं (ये उ) जो (संभूत्यां) सूक्ष्म आत्मा के ज्ञान में (रताः) रत हैं (ते) वे (ततः) उससे (भूयः) अधिकतर (अंधंतमः) अज्ञान लक्षणतम को (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं।

भाव यह है कि जो मनुष्य अपने शरीर की उपासना करता है अर्थात् शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं ऐसा जान कर "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" के सिद्धान्त पर चलता है चाहें ऋण भी लेना पड़े किन्तु शरीरसुख में बाधा न पहुँचे ऐसे ज्ञान को ग्रहण करता है वह पुरुष नरक को जाता है। बस अब यहां विचारिये कि नास्तिक मत का खंडन है या मूर्तिपूजन का। उत्तरार्द्ध का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य कार्य कारण सब जगत् को ईश्वर मान कर कर्मकाण्ड का लोप कर देता है वह उससे भी अधिक मूर्खता को प्राप्त होता है। इसका अभिप्राय यह है कि सब जगत् ईश्वर है इसका ज्ञान होने पर भी कर्म को धक्का न दिया जावे, सब जगत् ब्रह्म है इसके जानने से भी कुछ नहीं होता किंतु कर्मकाण्ड द्वारा ही मनुष्य उच्चगति को प्राप्त हो सकता है। इसमें कर्मत्याग का खण्डन है। यह जो कुछ हमने अर्थ किया है उव्वट भाष्य ठीक ठीक इसी अभिप्राय को कहता है नीचे देखिये—

इत उत्तरमुपासन मंत्राः प्रोच्यन्ते अंधंतमः षडनुष्टुभः। लोकायतिकाः प्रस्तूय निन्द्यते। येषामेतद्दर्शनम्। जलबुद्बुदवज्जीवाः मदशक्तिवद्विज्ञानमिति। अंधं तमः प्रविशन्ति ये संभूतिमुपासते। मृतस्य सतः पुनः संभवो नास्ति। अतः शरीरग्रहणादस्माकं मुक्तिरेव। नहि विज्ञानात्मा कश्चिदनुच्छित्ति धर्माभिर्यो यमनियमैः संवध्यते। एवं ये उपासते ते अंधं अज्ञानलक्षणं तमः प्रविशन्ति ततो भूय इव वे ते तमः। ततोऽपि बहुतरम्। इवोऽनर्थकः। ते तमः प्रविशन्ति ये उ। उकारः कर्मोपसंग्रहार्थीयः। ये संभूत्यामेवरताः। आत्मैवाहमिस्म नान्यत्किंचिदस्तीत्ययमभिप्रायः कर्मपराङ्मुखाय तत्कर्मकाण्डज्ञानकाण्डयोरसंभवः। इत्ययमभिप्रेत्य स्वबुद्धिमद्भुतां विभावयन्तः आत्मज्ञान एव रताः।

इसके ऊपर महीधर भाष्य भी मौजूद है वह भी इसी अर्थ की पुष्टि करता है पढ़िये—

अत: परमुपासनामंत्रा उच्यन्ते षडनुष्टुभ: । यमनियमसंयंयवान्विज्ञानात्मा कश्चिन्नास्ति जलबुद्बुदवज्जीवा: मदशक्तिवद्विज्ञानमित्यादि मतवादिनो बौद्धा प्रस्तूय निन्द्यन्ते । ये नरा: असंभूतिमसंभवमुपासते, मृतस्य पुन: संभवो नास्ति अत: शरीरान्तेऽस्माकं मुक्तिरेवेति वदन्ति ते अंधंतमोऽज्ञानलक्षणं प्रविशन्ति । ये उ ये च संभूत्यामेव रता: संभवन्त्यखा इति संभूतिरात्मा तत्रैवासक्ता: कर्मपराङ्मुखा: स्वबुद्धितादयमजानाना आत्मज्ञानमात्ररत: आत्मैवास्ति नान्यत् कर्मादीनि कर्मकाण्डज्ञानकांडयो: संबंधो नास्तीत्यभिप्रायवन्त इत्यर्थ: । ते नरा: ततोऽन्धात्तमसो भूय इव । इव शब्दोऽनर्थक: । बहुतरं तमोऽज्ञानं विशन्ति अस्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते । अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयो: समुच्चिचीषया प्रत्येकं निंदोच्यते । सम्भवनं संभूति: कार्यस्योत्पत्ति: तस्या अन्या असंभूति: प्रकृति: कारणमव्याकृताख्यं तामसंभूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणं विद्या कामकर्मबीजभूतामदर्शनात्मिकाँ ये उपासते ते तदनुरूपमेवान्धं तमोऽदर्शनात्मकं संसारं प्रविशन्ति । ये संभूत्याँ कार्यब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रता: ते ततस्तस्मदपि भूयो बहुतरमिव तम: प्रविशन्ति ।

उव्वट भाष्य और महीधर भाष्य इन दोनों ही भाष्यों में असंभूति शब्द से मनुष्य शरीर और संभूति शब्द से आत्मा का ग्रहण किया है जो कि हमारे अर्थ में लिखा गया है । नहीं मालूम इन अर्थों के विरुद्ध असंभूति का अर्थ अनादि प्रकृति और संभूति का अर्थ महातत्वादि सृष्टि किस प्रकार ले लिया है ये दोनों ही अर्थ मनगढंत और मिथ्या हैं जिनकी पुष्टि के लिए कोई भी किसी समयमें लेखनी नहीं उठा सकता । अब इसके आगे अपने अर्थ की पुष्टि में यजुर्वेद के मूल मंत्र का भी प्रमाण देते हैं पढ़िये—

सम्भूतिंच विनाशं च यस्तद्वेदो भयथंसह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥

यजु० अ० ४० मं० ११

(य:) जो (योगी) योगी (संभूतिम्) आत्मा (विनाशम्) विनाशी शरीर (तदुभयम्) इन दोनों को (सह) मिले हुये (वेद) जानता है (स:) वह (विनाशेन) शरीर

से (मृत्युम्) मृत्यु को (तीर्त्वा) जीत कर (संभूत्याम्) आत्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (अश्नुते) पाता है ।

जो अर्थ हमने किया वही अर्थ उव्वट भाष्य में लिखा है देखिये—

संभूतिं च समस्तस्य जगतः संभवैकहेतुं च परं ब्रह्म । विनाशं च विनाशिशरीरं च । यः योगी तदुभयं वेद जानाति । सह एकीभूतम् । शरीरग्रहणेन ज्ञानोत्पत्तिहेतूनि कर्माणि करोति । सः विनाशेन । विनाशिना शरीरेण । मृत्युं तीर्त्वा उत्तीर्य । संभूत्या आत्मविज्ञानेन । अमृतमश्नुते । अमृतत्वमश्नातात्यर्थः ।

जिस अर्थ को उव्वटभाष्य ने कहा है उसी अर्थ को महीधरभाष्य भी कहता है पढ़िये—

संभूतिं सर्वजगत्संभवैकहेतुं परं ब्रह्म । विनाशं विनाशोऽस्यास्तीति विनाशः अर्श आदित्वादच्प्रत्ययः । विनाशधर्मकं शरीरम् । तदुभयं शरीरि शरीररूपं द्वयं यो योगी सह एकीभूतं वेद जानाति । देहभिन्नोऽहं देहीवासे कर्मवशादिति ज्ञात्वा शरीरेण ज्ञानोत्पत्तिकराणि निष्कामकर्माणि करोतीत्यर्थः । स विनाशेन विनाशिना शरीरेण मृत्युं तीर्त्वान्तःकरणशुद्धिं संपाद्य संभूत्यात्मज्ञानेनामृतमश्नुते मुक्तिं प्राप्नोति। अस्या ऋचोऽर्थान्तरम् । यथा । संभूत्युपासनयोरेक पुरुषार्थत्वात्समुच्चय एव युक्त इत्याह । अत्र विनाशशब्दद्वये अवर्णलोपो द्रष्टव्यः पृषोदरादित्वात् । अन्यदाहुरसंभवादित्युक्तेः । संभूतिम् विनाशं च व्याकृतमव्याकृतोपासनद्वयं यः सह वेद । उभयमुपास्त इत्यर्थः स योगी अविनाशेनाव्याकृतोपासनेन मृत्युमनैश्वर्यम् । धर्मकामादि दोषजातं च तीर्त्वातिक्रम्य संभूत्या हिरण्यगर्भोपासनेनामृतं प्रकृतिलयलक्षणमश्नुते।

संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति का एक हेतु जो ब्रह्म है उसको संभूति कहते हैं और नश्वर शरीर को विनाश कहा है जो योगी इन दोनों को इकट्ठे हुये शरीर में जानता है वह शरीर से मृत्यु के पार उतर कर आत्म विज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ।

असंभूति का अर्थ महीधर ने शरीर किया और संभूति का अर्थ ब्रह्म किया है । उव्वट ने भी यही अर्थ किया है । ग्यारहवें मन्त्र में " विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते " में असंभूति का अर्थ मूलवेद ने नाशकारी शरीर कर दिया है और संभूति का अर्थ आत्मा किया है । जब वेद मन्त्र ही असंभूति का अर्थ शरीर और संभूति का अर्थ आत्मा करता है तो फिर वेद के विरुद्ध असंभूति का अर्थ

प्रकृति और संभूति का अर्थ प्रकृति के कार्य कोई भी विचारशील मनुष्य किसी प्रकार मान नहीं सकता। जिस अर्थ से मूर्तिपूजा का खंडन किया गया है यह अर्थ वेद के विरुद्ध है अतएव अमान्य है। इस अमान्य अर्थ से मूर्तिपूजा का खंडन करना उतना ही असंभव है जितना कि फूंक से पहाड़ का उड़ा देना।

मूर्तिपूजा के खंडन में जो दूसरा मन्त्र दिया जाता है वह यह है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति।

यजु० अ० ३४ मं० ४३

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।

इस वेद मन्त्र से जो मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं वे जान बूझ कर छल करते हैं। हम प्रथम सम्पूर्ण मन्त्र को लिखते हैं और फिर उसके आगे विवेचन लिखेंगे। मन्त्र इस प्रकार है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषः मा माहिंसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः॥

यजु० अ० ३२ मं० ३

उस परमात्मा की तुल्यता नहीं है जो महत् यशवाला है, जो "हिरण्यगर्भ" इस श्रुति में वर्णित हुआ है। जिस परमात्मा का वर्णन "मामाहिंसी" श्रुति कर रही है जो "यस्मान्नजात" इस श्रुति में वर्णित है।

प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति करना छल है क्योंकि मन्त्र के पद ईश्वर की मूर्ति ही सिद्ध करेंगे। मन्त्र कहता है कि उसके तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है। यदि हम यह अर्थ करें कि उसकी मूर्ति नहीं क्योंकि वह महत्यश वाला है तो महत् यशवाला यह विरुद्धहेतु हो जाता है। संसार में महत् यशवाले ही पुरुषों की ही मूर्ति होती है भिखमंगों की नहीं होती अतएव यह हेतु सिद्ध करता है कि ईश्वर के तुल्य कोई नहीं क्योंकि वह महत् यशवाला है। उव्वट ने प्रतिमा शब्द का अर्थ "न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते" लिखा है अर्थात् जिस ईश्वर की समतावाला कुछ या कोई नहीं है। महीधर ने "प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति" लिखा है अर्थात् ईश्वर से बराबरी करनेवाली कोई

वस्तु नहीं है । शंकराचार्य ने भी "न तस्य प्रतिमा अस्तीति ब्रह्मणोऽनुपमानत्वं दर्शयति" लिखा है जिसका भाषा यह होता है कि ब्रह्म की उपमा रखनेवाला कोई पदार्थ नहीं है यही वेदमंत्र दिखा रहा है । मंत्र के उत्तरार्द्ध में तीन मंत्रों की प्रतीक है, उन तीन में ईश्वर कैसा कहा गया है इसको देखिये—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १३ । ४

हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्ड में गर्भरूप से जो प्रजापति स्थित है वह हिरण्य गर्भ कहलाता है वह प्रजापति सर्व प्राणिजाति की उत्पत्ति से प्रथम स्वयं ब्रह्माण्ड शरीरी हुआ और उत्पन्न होनेवाले जगत् का स्वामी हुआ वह प्रजापति अंतरिक्ष द्युलोक और भूमि को धारण किये हुये है उस प्रजापति की हम हवि से परिचर्या करते हैं ।

मामाहिं थं सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवथं सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १२ मं० १०२

(यः) जो प्रजापति (पृथिव्याः) पृथ्वी का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (यः) जो (सत्यधर्मा) सत्य धारण करनेवाला (दिवम्) द्युलोक को (व्यानट्) सृजन कर व्याप्त है (च) और (यः) जो (प्रथमः) आदिपुरुष प्रथमशरीर (आपश्चन्द्राः) जगत् का आह्लाद और तृप्तिसाधक जल को (जजान) उत्पन्न करता हुआ मनुष्यों का रचनेवाला है वह प्रजापति (मा) मुझे [मा हिंसीत्] मत मारे (कस्मै) उस प्रजापति के निमित्त (हविषा विधेम) हवि देते हैं ।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया स थं रराणस्त्रीणि ज्योतीथंषि सचते स षोडशी ॥

यजु० अ० ८ मंत्र० ३६

(यस्मात्) जिस पुरुष से (अन्यः) दूसरा कोई उत्कृष्ट (न) नहीं (जातः) प्रादुर्भूत हुआ (अस्ति) है (यः) जो (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकों में (आविवेश) अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है (सः) वह (षोडशी) षोडश

कलात्मक सब भूतों का आश्रय (प्रजापतिः) जगत् का स्वामी (प्रजया) प्रजारूप से (संरराण) सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापालन के निमित्त [त्रीणि) अग्नि वायु सूर्य लक्षणवाली तीन (ज्योतींषि) ज्योतियों को अपने तेज से (सचते) उज्जीवन करता है।

हम पहिले दिखला चुके हैं कि प्रतिमा का अर्थ तुल्यता है अब तीनों प्रतीक के मंत्र लिखते हैं। "हिरण्यगर्भः" इस मंत्र में ईश्वर को शरीरी मूर्तिमान् बतलाया है। "मामाहिंसीं" इस मंत्र में ईश्वर को संसार की मूर्तियों में व्यापक बतला कर मूर्तिमान् सिद्ध कर उससे रक्षा की प्रार्थना की गई है। "यस्मान्नजात" इस मंत्र में ईश्वर को व्यापक मूर्तिमान् बतला कर ईश्वर से उत्कृष्ट कोई भी नहीं यह दिखलाया है। जब तीनों ही मंत्रों में ईश्वर को मूर्तिमान् कह दिया तब ईश्वर की मूर्ति का निषेध करना पागलपन नहीं तो और क्या है। "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र में जो "हिरण्यगर्भः" इसकी प्रतीक दी है इस प्रतीकवाले मंत्र में ही मूर्ति-पूजन करना लिखा है इसके ऊपर जो कात्यायन कल्पसूत्र है वह यह है —

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृत थं हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः १ उत्तानस्थाप्य थं हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति ॥

कात्यायन कल्पसू० १७ । ४ । १३

"हिरण्यगर्भः" इस मन्त्र के ऊपर शतपथ भी पढ़िये——

अथ सामगायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृश-मेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥ २२ ॥ ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथास्मिन् पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमि-च्छतेति वाव तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति॥२३॥ ते चेतयमाना एतत्सामापश्यंस्तदगायस्तस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवास्मि-न्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तद्युपधाय न पुरस्तात्परीयान्मेन मायम-

ग्निहि न सदिति ॥२४॥ अथ सर्पनामैरुपतिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः।
श० । ७ । ४ । १ । २२–२४

जब देवताओं ने हिरण्यमय पुरुष को सुवर्णफलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्णपुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक की समान है। तब फिर सब बोले कि इस हिरण्यमय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो। सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वे देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्ररूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्र रूप साम को गाया तब उस हिरण्यमय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया। इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य का विधान करता है, तात्पर्य यह कि ऊपर के तीन मंत्र पढ़ने से इस रुक्म पुरुष में सामर्थ्य प्रकट होती है।

जब शतपथ "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र के उत्तरार्द्ध में प्रतीक युक्त "हिरण्यगर्भ" इस मंत्र से ईश्वर की मूर्ति बनाना और उस मूर्ति में चैतन्यता आना लिख रहा है तब फिर शतपथ को मिथ्या ठहरा कर "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र से मूर्तिपूजन का निषेध कोई भी वेदज्ञात आस्तिक मान नहीं सकता। जब शतपथ मूर्तिपूजन बतलाता है तो फिर इसके विरुद्ध लेखनी उठाने का किसी का स्वत्व ही नहीं। इसके विरुद्ध जो लेखनी उठाते हैं उनका गूढ़ अभिप्राय वेदों से घृणा करवा देने को छोड़ कर अन्य कुछ नहीं हो सकता। पाठक समझ गये होंगे कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इसमें मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं है वरन् मूर्ति स्थापन करने और उसमें चैतन्यता लाने की विधि है।

वेद में मूर्तिपूजा

(३) जो लोग यह कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं या तो उन्होंने कभी वेद के पुस्तक हाथ में ही नहीं लिये और या संसार को धोखा दे रहे हैं। वेद में मूर्तिपूजन का करना स्पष्ट रूप से लिखा है देखिये—

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।

अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं न धृष्णवर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

हे अध्वर्यादि ! तुम परमात्मा इन्द्र का पूजन करो, स्तुति विशेष से पूजन करो, प्रियमेधस सम्बन्धी व प्रियमेधा के गोत्र वाले तुम पूजन करो और पुत्र भी विशेष कर इन्द्र को पूजें एवं जैसे पुरुष को घर्षणशील को अर्थात् जैसे घर्षण शील को पूजते हैं वैसे तुम पूजो ।

निराकार वादी से शास्त्रार्थ करते हुये जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं कि—

अथ ब्रह्मावतारस्य शिवस्योपासनं श्रुतौ ।
प्रोक्तं तस्य निराशो नो कर्तुं केनापि शक्यते ॥

ब्रह्मा का अवतार और शंकर का पूजन जो वेद ने कहा है उसके खण्डन करने के लिये कोई भी मनुष्य शक्ति नहीं रखता ।

जगद्गुरु शंकराचार्य जी वेदों में ब्रह्मा का अवतार और शिव का पूजन मानते हैं फिर हम अन्य किसी साधारण मनुष्य के कहने से कैसे मानलें कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं है ? कई एक अनभिज्ञ, नास्तिक जगद्गुरु शंकराचार्य के लेख को भी मानने को तैयार नहीं हैं उनकी तुष्टि के लिये हम वेद के दो प्रमाण नीचे उद्धृत करते हैं जिनमें पूजन का विस्तृत वर्णन है ।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥

ऋग् अष्ट० १ अ० १ व० १

इसका निरुक्त देखिये——

वायवा याहि दर्शनीयेमे सोमा अरंकृता अलंकृतास्तेषां पिब शृणु नो ह्वानमिति । कमन्यं मध्यमा देवमवक्ष्यत् । तस्यैषापरा भवति ॥

हे वायु हे दर्शनीय आ, यह सोम तैयार किये गये हैं उनको पी, हमारे बुलावे को सुन, मध्यम से भिन्न किस दूसरे को ऐसा सोमपी कहता ॥

ऋग्वेद के इस मंत्र में सोमरस पान करने के लिये ईश्वर को बुलाना और सोम रस के पीने की प्रार्थना करना 'हे ईश्वर तुम हमारे बुलाने को सुनो' ऐसा कहना यह मूर्तिपूजन या मूर्तिपूजन का एक अंग भोग लगाना नहीं है तो और क्या है ?

और भी देखिये—

भवाशर्वौ मृडतं माभियातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा विस्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा
अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्मः उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंसि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥
अस्त्रानीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७॥
स नो भवः परिवृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो
भवः । मा नोभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्चपशवो विभक्ता गावो अश्वाःपुरु षा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ॥
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो
अभिमाः श्वानः परोयन्त्वघरुद्रो विकेश्यः ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४॥
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

अथ० कां० ११ अ० १ सू० २

इस सूक्त का नाम अर्थसूक्त है इस अर्थसूक्त से स्वस्ति की कामनावाला पुरुष आज्य, समिधा, पुरोडाश आदि तेरह द्रव्यों में से किसी एक से या सब को मिला कर होम करता है यह कौशीतकी सूत्र में लिखा है और इसी सूत्र में यह भी लेख है कि इन तीन सूक्तों से समान रूप का जिस गौ का वत्स होवे उस गौ के दुग्ध में चरु पका कर तीन विभाग कर तीनों सूक्तों से होम करे। दूसरे कार्यों में भी इन मंत्रों का विनियोग है।

अर्थ—हे भव ! हे शर्व ! मुझको सुखी करो हे भूतों के पतियो मेरे पास सब ओर से आओ अर्थात् रक्षार्थ हे पशुओं के पतियो आप दोनों को नमस्कार है तुम दोनों धनुषों में धरे और विस्तृत बाण को मेरे ऊपर मत छोड़ो और आप हमारे द्विपद मनुष्यों को, चतुष्पद पशुओं को मत मारो ॥१॥ हे पशुपते हमारे शरीरों को कुत्तों के लिये और गीदड़ों के लिये मत करो अर्थात् आपकी कृपा से बावले कुत्ते और गीदड़ हमको न काटें तथा मरणान्तर हमारे शरीरों को गीदड़ और कुत्ते न खावें किंतु हमारी सत्क्रिया हो जावे और आमिष की इच्छा करनेवाले जो कृष्णकाक और मक्खी हैं वे अपने भोजन के लिये हमें न पावें ॥२॥ हे भव तुम्हारे शब्द को तथा प्राण को नमस्कार है और जो तुम्हारी मोहन करने

वाली मूर्तियें हैं उन सब को हम नमस्कार करते हैं, हे अमर रुद्र सहस्राक्ष जो आप हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३॥ हे रुद्र तुमको पूर्व से और उत्तर दक्षिण से भी हम नमस्कार करते हैं या पूर्व दक्षिण और उत्तर सब ओर तुम हो इसलिये सब ओर रहनेवाले आपको प्रणाम है अधर शब्द नीचे का भी वाचक है नीचे से और सबको अवकाश देनेवाला जो आकाश है उसके भी ऊपर जो स्थित आप हैं सूर्यरूप से या व्यापक रूप से तुमको नमस्कार है ॥४॥ हे पशुओं के पति शङ्कर तुम्हारे मुख को नमस्कार है, हे भव तुम्हारे जो चक्षु हैं उनको भी नमस्कार है और तुम्हारी त्वचा को, तुम्हारे रूप को और सम्यग्दर्शी जो आप हैं तथा प्रत्यग्दर्शी जो आप हैं और सब में व्यापक जो आप हैं आपको नमस्कार है ॥५॥ हे पशुपते आपके अंगों को नमस्कार है, आपके उदर को आपकी जिह्वा को आपके मुख को और दांतों को तथा नासिका को भी नमस्कार है ॥६॥ जो अस्त्र चलाने वाले और नील शिखण्ड वाले सहस्राक्ष और अश्ववाले तथा आघाघात करनेवाले रुद्र हैं उनके साथ हम विरोध न करें ॥७॥ वह भव हमको सब ओर से दुश्चरितों से रोकें जैसे जल अग्नि को सब ओर से रोकते हैं ऐसे भव हमको सब ओर से रोकें किंतु हमारा हनन न करें इसलिये हमारा उस भव को नमस्कार होवै ॥८॥ भव नामक शिव को चार बार और आठ बार नमस्कार हो, हे पशुपते आपको दश बार नमस्कार होवै तुम्हारे ये पांच पशु विभक्त हैं गाय घोड़े पुरुष और बकरी तथा भेड़ हैं ॥९॥ हे उग्र चारो दिशा आप की हैं स्वर्ग आप का है, पृथ्वी आपकी है और बड़ा विस्तीर्ण आकाश भी आप का है और क्या कहें इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राणवाले और शरीरवाले हैं वे सब आप के ही हैं ॥१०॥ हे पशुओं के पति शङ्कर जिस ब्रह्माण्ड कटाह के अंदर ये सब भुवन हैं और जिसमें पाप पुण्य का खजाना स्थित है वह समस्त ब्रह्माण्ड आपका है सो आप जो सब से उत्कृष्ट हैं आप को नमस्कार है आप हमको सुखी करो और शृगाल तथा माँस खाने वाले कुत्ते, रोने वाली और खुले केश वाली पिशाचनी हमसे दूर जावें यह हमारी प्रार्थना है ॥११॥ हे शिखण्ड रखने वाले रुद्र तुम हजारों को ज़खमी करने वाले और सैकड़ों को मारने वाले सुवर्णमय हरित धनुष को धारण करते हो तथा हमारा तो उस दिशा को भी नमस्कार है जिस दिशा में रुद्र का बाण और रुद्र की शक्ति घूमती होवे ॥१२॥ हे रुद्र जो पुरुष लड़ने की इच्छा से आपके पास आता है और प्रहार करता है फिर भगाना

चाहता है उसके प्रहार करने के बाद आप प्रहार करते हो फिर उस शस्त्रहत को आप के पाद प्राप्त करते हैं अर्थात् वह शस्त्रहत होकर आपके चरणों में गिरता है ॥१३॥ भव और रुद्र दोनों ही उग्र और मिले हुए तथा सम्यग् ज्ञाता हैं जिस दिशा में वे पराक्रम करते हुये विद्यमान हैं उन दोनों को नमस्कार है ॥१४॥ हे रुद्र आते हुये तुमको और जाते हुये तुमको तथा खड़े हुये तुमको और बैठे हुये तुमको नमस्कार होवै ॥१५॥ हे रुद्र तुमको सायंकाल नमस्कार है तथा रात में और दिन में भी नमस्कार है और मैं भवदेव के और शर्वदेव को, दोनों को नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

वेदों में मूर्तिपूजाविधायक सहस्रों प्रमाण विद्यमान हैं उनमें से कुछ प्रमाण हमने यहां लिख दिये। अधिक न लिखने का कारण यह है कि प्रथम तो पुस्तक अति विस्तृत हो जावेगी (२) जो नास्तिक हैं या वेदों पर जिनकी श्रद्धा नहीं है वे सहस्रों प्रमाणों को पाकर भी अपना आग्रह नहीं छोड़ते अतएव विचारशील मनुष्यों को इतने ही प्रमाणों से तोष होगा।

दलीलबाजी

नास्तिकों का कथन है कि हमारी तर्कें अकाट्य हैं, कोई भी मनुष्य दलील या तर्क से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सकता किन्तु हम इनकी दलीलों को नीचे लिख और उनके उत्तर देकर दिखलावेंगे कि इनकी एक भी दलील मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं कर सकती।

[क] इनका कथन है कि सनातनधर्मी पाषाण पूजक हैं।

क्या सच ही सनातनधर्मी पाषाण पूजक हैं? हम जिस समय पूजन पर बैठ कर पूजन का आरम्भ करते हैं उस समय यह कहते हैं कि "पाद्यं समर्पयामि विष्णवे नमः" "अर्घ्यं समर्पयामि विष्णवे नमः" हम तो षोड़सोपचार पूजन में सभी कृत्य विष्णु के लिये करते हैं फिर हम पाषाणपूजक कैसे? स्तुति के समय हमारा कथन है कि—

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

हे ईश भगवन् रुद्र ! यह जो हिमालय पहाड़ है इसको फूक कर तो कज्जल बनाया जावे और हिन्द महासागर की दवात बना उसमें कज्जल घोल कर स्याही बने एवं कल्पतरु वृक्ष की डाली की कलम बने, समस्त पृथ्वी का कागज बन जावे और शारदा इतनी सामग्री लेकर आपके गुणों का उल्लेख करे तब भी आपके गुणों का पार नहीं हो सकता।

क्या सच ही यह स्तुति किसी पत्थर और पहाड़ की है ? जब हम प्रार्थना करते हैं तो यही कहते हैं कि——

ना विद्या ना बाहु बल-ना खर्चन को दाम ।
मुझसे पतित गरीब की-तुम पत राखो राम ॥

कौन कह सकता है कि हम पाषाण पूजक हैं ? हाँ अलबत्ते यदि हम यह कहते कि हे पाषाणदेव ! तुम मकराने के पहाड़ से काटे गये और जयपुर के कारीगरों ने तुम्हें छील कर खूब सूरत बनाया है, काशी के पंडितों द्वारा गिरधारीलाल ले तुम्हारी प्राणप्रतिष्ठा की है, तुम पौन हाथ ऊंचे कभी खाओ न पिओ, बहरे-गूंगे हमें सब कुछ दे दो, तब तो हम पाषाण पूजक होते किन्तु जब हम पद पद पर भगवान् का नाम लेते हैं तब पत्थर पूजक कैसे ? मालूम होता है कि इन नास्तिकों की बुद्धि और बिचार पर पत्थर पड़ गये।

और समझिये, एक मनुष्य गंगोत्तरी से जल भर प्रेम में मग्न होकर चलता है और उसके अन्तः करण में यह अभिलाषा भरी है कि मैं इस जल को लेजाकर भगवान् रामेश्वर पर चढ़ाऊंगा और इसके फल से मेरा आवागमन का फन्दा कट जायगा, वह महीनों का सफर करते करते रामेश्वर पर जल चढ़ा अपने को कृतकृत्य मानता है; क्या सच ही यह पत्थर पूजक है ? यदि यह पत्थर पूजक होता तो गंगोत्तरी से जब यह चला था मण्डी रामनगर तक इसको छोटे-बड़े, मझोले-लम्बे लचों पत्थर मिले किसी एक पर गंगोत्तरी का जल चढ़ा कर 'बम-बम' करने लगता किंतु यह ऐसा नहीं करता किरोड़ों पत्थरों को कुचलता हुआ भारतवष

के अंतिम दक्षिणी भाग को चला जाता है वहां पहुंच कर भगवान् रामेश्वर पर जल चढ़ाता है फिर पत्थर पूजक बतलाना कैसा ? हम पत्थर नहीं पूजते हैं ईश्वर का पूजन करते हैं, पत्थर पूजक वही कहते हैं जो लार्डमेकाले के हाथ बिक चुके हैं।

[ख] कई एक मनुष्यों का यह प्रश्न है कि क्या मूर्ति में ईश्वर धंस बैठा ?

ऐसे अज्ञजनों ने एक भजन भी बना लिया कि——

ईश्वर नहिं मन्दिर मसजिद में गौर कर देखना जी।

यह चोखी रही; ईश्वर मसजिद और मंदिर में नहीं रहा। आई आफत ईश्वर की, पक्की सड़कों में पी० डब्लू० डी०, कच्ची सड़को में डिस्ट्रिक्टबोर्ड न रहने देगा, घरों में घर वाले, खेतों में कास्तकार धंसने न देंगे, अब ईश्वर के रहने का स्थान केवल नारदाने रह गया। अच्छी जगह बिठलाया, ईश्वर को भी नानी याद आती होगी। क्या 'ईश्वर नहिं मसजिद मंदिर में' इस वाक्य के कहने वाले भी मनुष्य कहला सकते हैं ?

फिर यह शंका कैसी, कि क्या ईश्वर मूर्ति में धंस बैठा ? जब नास्तिक सैकड़ों पदार्थों को बिना धंसे ही मान बैठते हैं तो मूर्ति में ईश्वर धंसने की शंका कैसी ?

एक बंगाली बाबू एक वक्त किसी पुरवा (छोटे से गावं) में पहुँच गया उसके पास उस समय न तो रुपया रहा और न पैसा, हाँ साथ में जितना द्रव्य था सब नोट थे। इसने उस बस्ती के किसी मालदार कास्तकार को बुलाया, जब कास्तकार आया तब इसने एक हजार रुपये का एक किता नोट निकाल उसके आगे रक्खा और कहा कि इसके रुपये हमको ला दो। वह कास्तकार रुपये वाला तो जरूर था किंतु मूर्ख भी दर्जे अव्वल का ही था, उसने सोचा कि यह क्या मामला है, जब हम किसी शहर में जाकर एक पैसे के कागज माँगते हैं तो पंसारी एक पैसे के लम्बे चौड़े चार ताव (तख्ते) देता है और यह बंगाली एक बिलस्त लम्बे एवं छः अंगुल चौड़े कागज के एक हजार रुपये माँगता है। कास्तकार अपने मन में विचार करता है कि इस बाबू ने अपने मन में यह समझा है कि यह एक छोटा

सा पुरवा है और इसमें सभी मनुष्य मूर्ख बसते हैं अतएव यहां से कुछ माल मारो यह खबर नहीं कि यहाँ पर घसीटू भी रहता है जो किसी के भी जाल में कभी नहीं फंस सकता, यह विचार कर उसने कहा कि बाबूजी इस पुरवा में रुपया कहाँ यहाँ पर तो गरीब कास्तकार भूखों मरते हैं, मेरे पास भी तो रुपया नहीं। बार बार समझाने पर भी इस कास्तकार ने रुपया देना स्वीकार न किया, लाचार यह बंगाली बाबू समीप के किसी शहर में गया और वहां पर किसी सराफ को नोट देकर कहा कि यह नोट तो लेलो और इसके हजार रुपये हमको दे दो, सराफ ने नोट तो ले लिया और एक हजार रुपया दे दिया। अब हम पूछते हैं कि क्या उस नोट में एक हजार रुपये धंस बैठे ? आप कहेंगे कि पण्डित जी ! नोट पर गवर्नमेंट की छाप है, हम कहेंगे कि मूर्ति पर प्रतिष्ठा द्वारा वेदमंत्रों की छाप है। आप कहेंगे कि जो नोट न लेगा वह गवर्नमेंट की दृष्टि में मुजरिम है इसको आप नहीं जानते, हम कहेंगे कि जो वेद की आज्ञा तोड़ कर मूर्तिपूजन नहीं करता वह समस्त गवर्नमेंटों की बड़ी गवर्नमेंट ईश्वर की दृष्टि में पापी और नरक भेज देने के योग्य है। यह तुम्हारी हठ है जो मूर्ति में ईश्वर के धंसने का प्रश्न उठाओ और नोट में रुपये धंसने के प्रश्न को चट कर जाओ।

अब ज़रा दूसरे प्रकार से भी समझ लीजिये और जरा फोटू का दृष्टान्त सुनिये—फोटू को तो आप भली भाँति जानते हैं क्योंकि आपने कई एक बार फोटू उतराया होगा। आहा ! जिस समय किसी को फोटू उतरवाना होता है उसको एक दिन पहले से ही सोच पड़ती है कि कल फोटू उतरवाना है। अनेक बन्दोबस्त होने लगते हैं। झगडू नौकर को बुला कर समझाया जाता है कि नाई को सुबह साढ़े चार बजे ही बुला लाना ताकि वह पाँच बजे से पेश्तर ही हजामत बनादे। क्योंरे झगडू क्या हमारे डेस्क में कोई काला कोट है। झगडू उत्तर देता है कि बाबूजी आपने ही तो नीलाम कर डाला था। बाबूजी बोले अच्छा नहीं हो तो फिर मास्टर रघुबरदयाल का ही कोट मांग ला। क्योंकि बिना काले कपड़ों से फोटू साफ आवेगा नहीं। इस प्रकार के अनेक बन्दोबस्त करके रात को सोते हैं और प्रातःकाल के चार भी नहीं बजने पाते कि फिर फोटू का भूत सवार है। अरे झगडू दौड़ दौड़ जल्दी से नाई को बुला, दिन निकल आया। झगड़ू बेचारे की आफत नींद पूरी

नहीं हुई, घंटा भर सोने नहीं पाया फिर आफत सवार होगई। झगड़ू जैसे कैसे उठा और आंख मलता हुआ नाई के दरवाजे पर पहुँचा। नाई को सैकड़ों आवाजें लगा रहा है। खवास-अरे बदलू उठ बाबूजी बुलाते हैं। सैकड़ों आवाजें देने पर भी नाई करवट नहीं बदलता। इधर बाबूजी नाई के आने में देर समझ कर उसको बुलाने के लिये मनुष्य पर मनुष्य भेज रहे हैं। धीरे धीरे ४५ मिनट में नाई के दरवाजें पर आधा दर्जन नौकर जा डटे। यदि नाई एक घंटा और न उठे तो कोई आश्चर्य नहीं है कि बाबूजी खुद ही नाई के किवाड़ खटखटावें। कारण यह है कि इनको तो यह फोटू का भूत पूरी तौर से चिपट बैठा है। खैर चिल्लाते चिल्लाते कहीं नाई ने भी करवट बदली। नाई को खबर पड़ी कि दर्वाजे पर बहुत से मनुष्य जमा हो गये हैं अपने मन में विचारता है कि इसका कारण क्या है। नाई ने अपने मन में समझा कि हो न हो घर में आग लग गई है अन्यथा इतने मनुष्यों का दरवाजे पर काम ही क्या था यह बिचार कर नाई खटिया से उठ रोते हुये बाहर को आया। बाहर आकर क्या देखता है कि बाबू बी० बी० एल० बर्मन के नौकर दर्वाजे पर डटे हैं नाई का नीचे का साँस नीचे और ऊपर का ऊपर रह गया और इधर झगड़ू रोते हुये नाई को देखकर समझा कि इसके घर में कोई मृत्यु हो गई। यह समझ कर फौरन बोल उठा कि वाहरे फोटू फोटू क्या है प्लेग का भतीजा है। फोटू ने तो अपने आने से पहिले ही भोग लगाना शुरू कर दिया। ६–७ नौकरों को देख कर नाई ने कहा कि आज क्या है तुम क्यों आये हो ? नौकरों ने कहा कि तुम को बाबूजी बुलाते हैं। नाई बोला कि खैर तो है, आज माजरा क्या है कि पाँच बजने से पहिले ही बाबू बुला रहे हैं। बाबूजी तो हमेशा आठ बज कर ५६ मिनट पर उठा करते थे. यह सुन कर झगड़ू बोल उठा कि भाई साहब आज बाबू जी का फोटू उतरेगा अपनी पेटी लेकर जल्दी चल। अस्तु पेटी लेकर नाई आया और उधर पानी गर्म हो गया। बाबूजी हजामत बनवाने लगे ही थे कि इतने में ही फोटूग्राफर भी आ गया। बाबू हाथ में शीशा (दर्पण) लेकर बड़े गौर से देख रहे हैं कि कहीं खूंटी न रह जावे। बाल बनवाने के बाद बाबूजी ने तेल लगा कर स्नान किया, कपड़े पहिन कर कुर्सी पर बैठे। अब फोटूग्राफर ने अपना केमरा लगाया, केमरे में बाबूजी को देखकर कुर्सी के पास आया और बाबूजी से कहने लगा कि बाबूजी क्या वाहियात बैठक बैठे हो, फोटू बिगड़ जावेगा, हाथ ऐसे करो। इतना कह कर फोटूग्राफर ने

फिर जाकर केमरा में देखा। केमरे में बाबू जी को देखकर फिर बाबू जी के पास आया और पैरों को दो झटके देकर बोला कि पैरों को ऐसे रक्खो जी, मालूम होता है कि कभी आपने फोटू नहीं उतराया अब बेचारे बाबू जी सुकड़े बैठे हैं कि कहीं फोटू न बिगड़ जावे इस भय से हाथ पैर कुछ नहीं हिलाते। उस समय में यदि नाक पर मक्खी बैठ जावे और उसके उड़ाने के लिये अंगुली उठाई जावे तो फोटू को देख कर मारे हंसी के पेट फूल जावेगा और जो कहीं फोटू उतरने के समय में आंख की पलक नीचे गिरगई तब तो फोटू न बाबूजी का रहा और न गोस्वामी तुलसीदास का, यह फोटू तो सूरदास का हो जावेगा, ईश्वर न करे कि फोटू के समय में कहीं बाबूजी के बर्र (भिरड़) या ततैया काट खावे। यदि ऐसा हो गया तो उछल कूद नाच गबड़ी का मजा आ जावे। अस्तु, बाबूजी का फोटू उतरा। फोटूग्राफर ने तीन कापी तैयार कर बाबूजी के हवाले कीं। बाबूजी ने एक फोटू अपने बाहर के दरवाजे पर लगा दिया, एक मनुष्य गङ्गा स्नान किये आता था उस फोटू को देख कर इसका मन प्रसन्न हो गया और चित्त में आया कि इस पर कुछ चढ़ाना चाहिये। आप जानते ही हैं कि हिन्दू पुजारीपन में फस्ट क्लास की डिगरी पाये हुये हैं, ये ३३ करोड़ देवता अपने पूज लें और मुसलमानों के गाज़ी मदार तक को बिना पूजे न छोड़ें। सच बात तो यह है कि संसार में समदृष्टि से देखनेवाली सब जगह ब्रह्म को माननेवाली यदि कोई जाति है तो वह हिन्दू जाति है, जो शत्रु को भी ब्रह्म की दृष्टि से देखती है। अपने प्राकृतिक स्वभाव से इस मनुष्य ने उस फोटू के ऊपर ज़रा सा चन्दन लगा दिया और बहुत बढ़िया एक दो पैसे का फूल का गजरा (माला) चढ़ा दिया। इतना कर वह मनुष्य तो अपने घर को चला गया अब पौने नौ बजे बाबूजी उठे बाहर निकले फोटू की तरफ दृष्टि पड़ते ही बाबूजी का मन बाग बाग हो गया कोठी के अन्दर जाकर मुनीम लोगों से ज़िक्र किया कि आज कोई ऐसा सज्जन पुरुष आया कि हमारी फोटू पर बहुत बढ़िया गजरा चढ़ा गया, गजरा पहिने हुए फोटू बहुत ही सुहावनी (खुशनुमा) मालूम होती है। मुनीम लोग भी देख देख कर खुश होते हैं और बाबूजी तो आज इतने खुश हैं कि खुशी के मारे फूले नहीं समाते। यह तो पहिले दिन का समाचार है अब दूसरे दिन की कथा सुनिये—दूसरे दिन कोई हमारे जैसा दुष्ट चला आया और चाकू से उस फोटू के आंखों के नीचे के हिस्से को रगड़ गया। प्रातःकाल उठ कर फिर बाबूजी

फोटू के पास पहुँचे । पास पहुँचतेही जो फोटू देखा कि मारे क्रोध के बाबूजी आपे में न रहे और लगे हजारों गालियां दनादन गालियां देते हुए कोठी के अन्दर पहुँचे बाबूजी की गालियों को सुन कर मुनीम लोग आ गये और कई एक मनुष्य बाहर से भी चले आये । बाबू जी से पूछा कि क्या है, मामला क्या है, इतना क्रोध क्यों आया? बाबूजी बोल उठे कि क्रोध क्यों आया, क्रोध आने का कारण ही है कोई बेवकूफ ऐसा आया कि फोटू का ही सत्यानाश कर गया । मुनीम पूछते हैं कि क्या कर गया कुछ कहो भी तो । बाबूजी बोले अजी क्या कहें, कहें तो तब जब कहने की बात हो जरा जाकर बाहर तो देखो । बड़े मुनीमजी फोटू के पास पहुँचे तो आकर क्या देखा कि कोई दुष्ट फोटू की नाक काट गया ।

सारांश यह है कि जब इनकी फोटू का पूजन करें उस पर माला चढ़ादे तो ये खुश होते हैं ये फूले नहीं समाते । और यदि कोई मनुष्य इनकी फोटू का अङ्ग भङ्ग कर दे तो ये नाराज होते हैं और नाजायज हरकत करनेवाले को गालियाँ देते हैं, अब इनसे पूछिये कि क्या आप उस फोटू में धंस बैठे जो सत्कार से प्रसन्न और अनादर से क्रुद्ध होते हैं । जब उस में नहीं धंसे तो फिर ईश्वर के धंस बैठने का सवाल कैसा ? आप तो मूर्ति में धसे भी नहीं तो भी आदर अनादर से प्रसन्न और क्रोध करते हैं

बहुत दिन की बात है कानपुर आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था उसमें बहुत से मनुष्य एकत्रित थे । पं० रामाश्रय व्याख्यान दे रहे थे, उस समय हम भी चले गये, हमें देख कर मंत्री आर्यसमाज सभ्यता से लिवाने के लिये आये, हम मण्डप में पहुँचे, मंत्री जी से पूछा कि व्याख्यान कौन विषय पर हो रहा है ? मंत्री जी ने दबी जबान से कहा कि मूर्तिपूजा का खण्डन हो रहा है । यह सुन कर हम बोले कि आप के यहाँ मण्डप में फोटू बहुत लगे हैं, पहिला फोटू लोकमान्य तिलक का था, उसके बाद स्वा० दयानन्द जी का फोटू था जिसमें नित्यानन्द, दर्शनानन्द, लेखराम और मुँशीराम जी का भी फोटू था, और भी कई एक फोटू थे, फोटू भी अच्छे थे एवं वे पुष्प मालाओं से उत्तम रीति से सजाये गये थे इस कारण बड़े सुहावने लगते थे । हमने कहा कि जब मूर्तिपूजा का खण्डन हो रहा है तब यह क्या किया ? मंत्री जी कुछ मन्द मन्द हंस कर बोले कि पंडित जी ? ये तो देश के शुभ-

चिन्तक हैं, हमने कहा कि क्या ईश्वर ही देश का दुश्मन है ? मंत्री जी चुप रह गये ।

आज वे लोग भी अपने कमरों को फोटुओं से सजाते हैं जो मूर्तिपूजा नहीं मानते, क्या सच ही इन फोटुओं में वे लोग धंस बैठे हैं कि जिनके ये फोटू हैं ? यदि नहीं धंसे तो फिर हमसे मूर्ति में ईश्वर के धंसने का प्रश्न क्यों उठाया जाता है ? सच तो यह है कि न नोट में रुपये धंसे, न फोटुओं में फोटू वाले धंसे किंतु यजुर्वेद कहता है कि जैसे घट में मिट्टी ताना और बाना हो गई है जैसे कपड़े में सूत ताना और बाना है और जिस प्रकार कड़े मे सुवर्ण ताना और बाना है उसी प्रकार

स ओत प्रोतश्च विभुः प्रजासु

समस्त संसार में ईश्वर ताना और बाना हो गया है।

इसी मंत्र का अनुवाद गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार लिखते हैं कि—

तुलसी मूरत राम की, यों घट रही समाय।
ज्यों मेंहदी के पात में, लाली लखी न जाय॥
दिल के आइने में है तसवीरे यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देखली॥

वेद को तिलांजलि देने वाले सज्जन संसार को धोखे में डाल मूर्तिपूजन छुड़ाना चाहते हैं इसको छोड़ कर इनकी हुज्जतों में कोई सार नहीं इनकी तो लीला ही अजब है ये कहने सुनने में अक्ल से बाहर रहते हैं। जो अक्ल से काम ही नहीं लेता ऐसा औट आफ सेन्स सब कुछ कह सकता है। जब ये इस तर्क पर भी चारों खाने चित्त गिरते हैं तब यह कह बैठते हैं कि—

(ग) मूर्ति तो कारीगर की बनाई है।

उत्तर—क्या सच ही मूर्ति कारीगर की बनाई है ? इन सज्जनों से पूछिये कि उस मूर्ति में कारीगर ने क्या क्या बना दिया, शायद जिस पाषाण से यह मूर्ति बनी है वह कारीगर ने बनाया हो। अजी भाई साहब जरा कुछ सोच विचार कर कहो। कारीगर ने उस मूर्ति में कुछ नहीं बनाया केवल मूर्ति के ऊपर का फिजूल

अंश उतारा है कि फौरन भीतर से बनी बनाई दिव्य मूर्ति निकल आई। क्या ऊपर के फिजूल अंश उतारने वाले को बनाने वाला कहा जावेगा। ऐसा न कहिये नहीं तो लाखों रुपयों की जायदाद पर पानी फिर जावेगा। हल जोतने वाला काश्तकार जमींदार को नोटिस दे देगा कि मैं मालगुजारी नहीं दूंगा क्योंकि जो खेत मैं जोतता हूँ वह मैंने पैदा किया है। वाकई में जिस प्रकार कारीगर ने फिजूल अंश मूर्ति के ऊपर से उतारा है उसी प्रकार इस काश्तकार ने भी झाड़ घास आदि अंश को अपने हल से दूर किया है। एक काश्तकार ही खेत का बनाने वाला नहीं होगा किन्तु मकान में झाड़ू लगाने वाला—मकान का बनाने वाला, और बर्तन मांजने वाला—बर्तन बनाने वाला, और शिर के बाल बनाने वाला नाई—शिर बनाने वाला हो जावेगा यदि ये सब मिलकर दावा करदें तो इस नये कानून के मुताबिक हाथ से खेत निकल जावे, मकान पर झाड़ू देने वालों को कब्जा मिल जावे और जितने मनुष्य बाल बनवाते हैं उनके शिरों के मालिक नाई हो जावेंगे। अब शिरों का स्वत्व (हक) नाइयों को होगा चाहे जो कुछ करें ठोकें पीटें सुधारें बेच डालें, अच्छा कानून चलाया संसार भर को रुण्ड बना कर छोड़ा। क्यों न हो नास्तिकों की ही तो तर्क है ये लोग तो तर्क उठाने में बीर हैं फिर तर्क उलटी पड़े चाहे सीधी इस बात का बिचार करना यह इनका काम नहीं है। आओ अब इसका विचार करें कि मूर्ति किस की बनाई है, मूर्ति किस चीज से बनी है। जिन लोगों ने साइन्स पढ़ा है वह इस विषय को अच्छी तरह जानते हैं कि जमीन ही कुछ मुद्दत के बाद पत्थर बन जाती है। अच्छा पृथिवी किस चीज से बनती है जल से, और जल बनता है अग्नि से, अग्नि की पैदायश है वायु से और वायु आकाश से बनता है अर्थात् आकाश से वायु बनता है, वायु से अग्नि और अग्नि से जल और जलसे पृथिवी, जो पृथिवी है वही पाषाण है। इन पांच तत्वों में से आकाश और वायु ये दो अमूर्त हैं और अग्नि जल पृथिवी ये तीन मूर्तमान हैं।

अब इन से पूछिये कि पृथिवी किस कारीगर ने बनाई। इनको मानना पड़ेगा कि किसी लौकिक कारीगर ने नहीं बनाई किन्तु यह उस कारीगर ने बनाई है कि जिसने सूर्य्य चन्द्र तारे आदि समस्त ब्रह्माण्ड को बनाया है किन्तु जिसके ऐसे ब्रह्माण्डों के जानने की हम में शक्ति भी नहीं। यदि बृहदारण्यक में कही भूतो-

त्पत्ति को जानते तो कभी यह प्रश्न ही न उठाते कि मूर्ति तो कारीगर की बनाई है, क्या कोई मनुष्य इस जमीन पर ऐसा है जो यह साबित करदे कि मूर्ति कारीगर की बनाई है, हमको आशा नहीं कि कोई ऐसा हो । मुझे इसका बड़ा सन्देह है कि यह मूर्ख समुदाय विद्वानों के साथ क्यों उलझता है ।

(घ) मूर्ति के पूजन से ईश्वर प्रसन्न कैसे होगा अर्थात् दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष कैसे ।

उत्तर—आप लोग अपने मन को स्थिर करके देखें कि यह किस दुष्ट भाव से भरा प्रश्न है "दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष कैसे" अर्थात् इनके चित्त में इस प्रकार के भाव भरे हैं कि हम खांय तो हमारे नाना का पेट भरे कैसे, हम कपड़ा पहिनें तो हमारे बाप का शरीर कैसे ढका जावै । हम औषधि लगावें तो हमारी नानी का फोड़ा कैसे अच्छा हो । ठीक है देशोद्धारको ठीक, तुम्हारे भिन्न भिन्न संदेह पर भिन्न भिन्न दोष हैं, यदि आप जरा भी सोचें, तनक भी सोच समझ कर बुद्धि से काम लें तो एक भी दोष न रह जावेगा ।

इस प्रश्न से जान पड़ता है कि प्रश्नकर्त्ताओं ने ईश्वर को जगत् से भिन्न समझ रक्खा है परन्तु क्या गम्भीर बुद्धि वाला पुरुष इसको स्वीकार कर लेगा कि ईश्वर से जगत् भिन्न है । जब हम लोग एक छोटे से कुन्द के फूल की सुन्दरता को देखते हैं तो उसमें भी एक वस्तु माधुरी ऐसा अपूर्व पाते हैं कि उस पर काली पीली चितकबरी सैकड़ों तितलियां मण्डरा रही हैं मकरन्द चूसने के लिये सैकड़ों भौंरे गुञ्जार कर परिक्रमा दे रहे हैं जिसने पाया मस्तक पर रक्खा इस फूल में यह गुण कहां से आ गया । पक्षियों के पक्ष में भिन्न भिन्न प्रकार की सुन्दरता कहाँ से आ गई, चन्द्र और ताराओं में ठीक ठीक अपनी कक्षा में स्थित रखने की ताकत किस के घर से आई, पृथिवी में आकर्षण शक्ति, सूर्य में तेज शक्ति क्या किसी महल में से पहुँच गई । यदि ऐसा है तो ईश्वर में तो एक भी शक्ति नहीं फिर वह सर्व शक्तिमान् कैसा और ऐसे के मानने से क्या लाभ । जब कि संसार के समस्त पदार्थों में शक्तियों का आगमन ईश्वर शक्ति से है फिर ईश्वर से संसार में भेद कैसा । संसारी पदार्थों में जितनी मनोहरता है वह उसी परमात्मा की मनोहरता तो दिखाई दे रही है और जितनी शक्ति है सब उसी की

तो है सिवाय उसके कुछ भिन्न बचता नहीं समस्त संसार ईश्वर का ही तो रूप है फिर भेद कैसा ?

यदि मान भी लिया जावे कि ईश्वर और जगत् में भेद है और दोनों भिन्न भिन्न हैं। मान भी लिया जावे कि हम पूजन मूर्ति का करते हैं और ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं तो फिर यह कौन तर्क से असम्भव है। इस सौभाग्य को अधिक दिन भी नहीं हुये कि देहली में दरबार हुआ था। जिस रोज देहली दरबार में प्रभु पंचमजार्ज सिंहासनारूढ़ हुए उस दिन बम्बई के समुद्र से लेकर हिमालय की चोटी तक और कलकत्ते के समुद्र से लेकर काबुल तक भारतवर्ष के नगर २ ग्राम २ में दरबार का उत्सव मनाया गया है। बड़े२ मण्डप बनाये गये, अनेक प्रकार के दीपक झाड़ फानूस गैस आदि सजाये गये और उन मण्डपों में महाराजाधिराज के फोटू लटकाये गये। उन फोटुओं पर उत्तम फूलों की माला पहिनाई गई एक राज का प्रधानाधिकारी सिंहासन पर बैठा उसके आगे बड़े २ कवियों ने कविता सुनाई, बड़े २ जमीदारों ने नज़राने रक्खे, झुक कर दण्डवतें कीं, अनेक प्रकार के बाजे बजाये बन्दूकों और तोपों से सलामी हुई, आतिशबाजी छुड़ाई। यह क्यों इस शताब्दी में इतना क्यों। क्या इन दीपकों का उजियाला महाराजाधिराज पञ्चमजार्ज के केम्प तक पहुँचा था। यदि ऐसा हुआ तब तो आपने महाराज को कष्ट पहुँचाया क्या इन बन्दूकों और तोपों की आवाज महाराज के कान तक पहुंची यदि ऐसा हुआ तब तो आपने दरबार नहीं महाराज के कान फोड़ने का सामान किया। ऐसा क्यों किया इसका मतलब क्या, कहो कि हमने अपने शहंशाह की प्रसन्नता के लिये किया यदि भक्त परमात्मा के लिये ऐसा करे तो फिर चिढ़ो क्यों। क्या उस स्थान पर महाराज उपस्थित थे, आपने उनको प्रसन्न किया। यदि कहो कि वहां तो महाराज उपस्थित नहीं थे किन्तु जब कभी यह बात वे सुनेंगे तो प्रसन्न अवश्य होंगे। भला फिर जो परमात्मा सब स्थानों में स्थित होकर भक्त की पूजा को देख रहा हो उसकी प्रसन्नता पर हुज्जत कैसी ? यदि कहो कि पंडित जी महाराज आप राज के कानून को नहीं जानते यह ऐसा ही होता है तो फिर ईश्वर के कानून से विरोध क्यों ? यदि कहो कि यह कुछ नहीं यह तो राजभक्त प्रजा का कर्त्तव्य है तो ईश्वर भक्त प्रजा के कर्त्तव्य में शंका कैसी ? यदि कहो कि राजभक्त अपनी भक्ति के उद्गार को रोक नहीं सकते तो

फिर ईश्वरभक्त के उद्गार को रोकनेवाले तुम कौन ? जब कि तुम सब काम अपने आप करते हो जबकि दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष तुम खुद मानते हो फिर शङ्का कैसी, विवाद क्यों ? जब कि दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष तुम्हीं ने माना तब इस पर महाभारत का युद्ध कैसा ? जबकि सारा संसार दूसरे के पूजन से दूसरे का तोष मान रहा है फिर ईश्वरभक्त के ऊपर शङ्काओं की बौछार क्यों ? जब दूसरे के पूजन से दूसरा प्रसन्न होता है तब तो यही कहना पड़ता है कि शंका करने वालों में न समझने की बुद्धि है और न शङ्का करने का विचार।

[च] एक यह भी शंका है कि निराकार ईश्वर साकार होगा कैसे उसकी मूर्ति बनेगी किस प्रकार।

उत्तर—एक समय सेठ मोतीलाल के यहां से सेठ गोवर्धन लाल रुपये सैकड़े के व्याज पर ५००) रुपये कर्ज ले गया। ६ महीने के बाद सेठ मोतीलाल ने अपने मुनीम से पूछा कि गोवर्धनलाल जो रुपये ले गया था क्या वे रुपये आगये, मुनीम ने कहा कि जी हां जिस दिन ४ महीने पूरे हुये उस दिन ५२०)रुपये गोवर्धनलाल के आ गये। सेठ मोतीलाल ने कहा कि उस का खाता तो दिखलाओ। सेठजी की आज्ञानुसार मुनीम खाता उठा लाया। सेठजी ने देखकर कहा कि मुनीम जी इसके खाते में तो अभी बाकी है उसको लिख दो कि जो कुछ और बकाया है इसको भी भेज दो ताकि खाता बेबाक कर दिया जावे। मुनीम जी ने कहा कि इसमें तो कुछ भी बाकी नहीं। सेठ जी बोले कि यह गोल २ क्या है क्या कम दिखाई देता है। मुनीम बोला कि यह खाते के नीचे गोल शून्य (जीरो) है सेठजी बोले कि इसी के लिये तो कह रहा हूँ उसको लिख दो कि यह जीरो जल्दी भेज दे वरना इसका व्याज लिया जावेगा। मुनीम बोला सेठ जी यह कोई रुपया पैसा नहीं है यह तो कुछ नहीं का निशान है। सज्जनो ! सोचो तो कि जो कुछ नहीं उसके लिये तो गोल २ लड्डू कैसी मूर्ति बने और जो सब कुछ है यदि उसकी मूर्ति बन जावे तो पेट में दर्द क्यों उठे। यदि निराकार की मूर्ति नहीं बनती तो फिर संसार में कलम दवात स्याही का काम ही क्या। छापेखाने बन्द क्यों नहीं कर दिये जाते। वेद और सत्यार्थप्रकाश क्यों खरीदा और बेचा जाता है। क्या इसमें कुछ और है। और कुछ नहीं केवल निराकार शब्द की मूर्ति (अक्षर) हैं। जब ये लोग निराकार

की मूर्ति खुद बना रहे हैं फिर शंका कैसी ? आश्चर्य की बात है कि आप ही तो निराकार की मूर्ति बनावें और आपही शंका करें ।

(छ) एक यह भी शंका हुआ करती है कि मूर्ति के टूटने पर ईश्वर की मृत्यु हो जावेगी ।

उत्तर— ऐसी ऐसी तुच्छ शंकाओं का उत्तर देना केवल समय का व्यर्थ खराब करना है और इन शंका करने वाले महात्माओं को तो क्या कहें । यह शंका कितनी नास्तिकता से भरी हुई है इसका विचार पाठक स्वतः करलें । यदि ऐसा ही है व्यापक मूर्ति के टूटने पर ईश्वर का नाश हो जाता है तो शरीर की मृत्यु होने पर जीव भी मर जावेगा । मूली के खाने से ईश्वर भी खाया गया । क्योंकि उसमें भी तो ईश्वर व्यापक है । इसी प्रकार कपड़े के फटने पर ईश्वर फट जावेगा । लकड़ी के जलने पर ईश्वर जल जावेगा, पकाये अन्न के सड़ने पर ईश्वर सड़ जावेगा । चने के चबाने से भी ईश्वर चबा लिया गया । जब आप इन स्थानों पर एक भी शङ्का नहीं करते तो फिर मूर्ति पर शंका करने का स्वत्व आप को कहां से मिल गया ? जिस समय छोटा सा लड़का पाठशाला में जाता है उस समय उसको न तो साइंस पढ़ाई जाती है और न ग्रामर (व्याकरण) । उस समय उस नन्हें से बच्चे को अ० आ० उ० ई० या अलिफ० बे० पे० या ए० बी० सी० डी० आदि आदि प्रारम्भिक अक्षर सिखलाये जाते हैं लड़के को अक्षर लिख कर बतलाते हैं । जब वह इनको पहिचानने लगता है तब उसको इनका लिखना सिखलाया जाता है । वह लड़का इन अक्षरों को पाटी (तख्ती) पर लिख कर गुरु जी को बतलाता है गुरु जी उन्हें देख कर आज्ञा करते हैं कि पाटी को धो कर घोट कर फिर इन्हीं को लिखो । इसी प्रकार प्रत्येक लड़का दिन भर में चार चार या बाज बाज लड़का आठ आठ बार (अक्षरों को लिख फिर मिटा, लिख फिर मिटा) इसी काम को करता है और यह काम न आज से है और न परसों से किन्तु जिस दिन से संसार में अक्षर लिखने की परिपाटी का आरंभ हुआ उस दिन से आज तक पढ़ने वाले लड़के ऐसा ही करते आते हैं फिर आप यहां पर यह शंका क्यों नहीं करते । जिस शब्द की मूर्तियें अक्षर हैं वह भी तो निराकार है और उसके आकार (उसकी मूर्ति) जो ये अक्षर हैं ये कल्पित किये गये हैं ये फर्जी हैं । इसी कारण से भिन्न भिन्न देशों में अक्षरों

के आकार भिन्न भिन्न प्रकार के देखने और लिखने में आते हैं किसी ने किसी प्रकार का आकार कल्पित कर लिया और किसी ने किसी प्रकार का। वास्तव में अक्षर आकार शून्य हैं। जिस समय लड़का मदरसे में पढ़ने जाता है यदि उस समय कोई इन शंका करने वालों में से जाकर लड़के को समझा दे कि अक्षरों के आकार स्वरूप नहीं हैं अक्षर तो निराकार हैं और इसी बात को वह लड़का अपने मन में रख ले तो फल यह होगा कि लड़का मूर्खानन्द सरस्वती हो जावेगा। यदि ईश्वर की मूर्ति अक्षरों की भांति सोलह आने झूठी भी हो तथापि मूर्ति बनाने से ईश्वर की उपासना तो होती है क्योंकि मूर्ति के बिना उपासना ही नहीं हो सकती। उपासना का अर्थ यह है कि 'उप' नाम समीप में आसन लगा कर बैठना। यदि ईश्वर की मूर्ति बनाकर पास नहीं बैठोगे तो उपासना ही नहीं बनेगी किन्तु आप सब शंका ईश्वर की मूर्ति पर ही करते हैं। यदि मूर्ति के टूटने से ईश्वर का नाश हो जाता है तो पाटी के अक्षरों के मिटने से भी असली अ० आ० इ० ई० का नाश हो जावेगा किन्तु यहां तो आप को शंका भी नहीं होती।

(ज) मूर्ति रूप नकली है क्या नकली से भी कभी असली का ज्ञान होता है।

उत्तर—संसार में प्रायः सभी ज्ञान नकली के द्वारा होते हैं जरा मन को एकाग्र करके सुनिये। प्रथम दृष्टान्त यह है—

इतिहास के जानने वालों में यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि एक लव्य नामक कोई भिल्ल किसी समय धनुर्विद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य्य के समीप गया और प्रणाम कर बोला कि हे प्रभो! मैं धनुर्विद्या सीखने आया हूँ सो कृपा कर सिखलाइये। द्रोणाचार्य ने कहा कि तुम जंगली भील हो तुम्हारे लिये इतना ही तीर चलाना आवश्यक है कि कोई बाण भालू मिले तो मार लो। तुम इतना जानते ही हो, इसकी ओर गहिरी विद्या सीख के क्या करोगे। यह विद्या क्षत्रियों के लिये है जो धनुर्विद्या से प्रजा का पालन करते हैं। कितना ही भील ने कहा पर द्रोणाचार्य ने स्वीकार न किया और अर्जुनादि की भी यही सम्मति हुई, तब विचारा भील अपना सा मुंह ले चला आया।

पर उस भील को धनुर्विद्या सीखने की ऐसी चाह लगी थी कि उसने फिर

के आकार भिन्न भिन्न प्रकार के देखने और लिखने में आते हैं किसी ने किसी प्रकार का आकार कल्पित कर लिया और किसी ने किसी प्रकार का। वास्तव में अक्षर आकार शून्य हैं। जिस समय लड़का मदरसे में पढ़ने जाता है यदि उस समय कोई इन शंका करने वालों में से जाकर लड़के को समझा दे कि अक्षरों के आकार स्वरूप नहीं हैं अक्षर तो निराकार हैं और इसी बात को वह लड़का अपने मन में रख ले तो फल यह होगा कि लड़का मूर्खानन्द सरस्वती हो जावेगा। यदि ईश्वर की मूर्ति अक्षरों की भांति सोलह आने झूठी भी हो तथापि मूर्ति बनाने से ईश्वर की उपासना तो होती है क्योंकि मूर्ति के बिना उपासना ही नहीं हो सकती। उपासना का अर्थ यह है कि 'उप' नाम समीप में आसन लगा कर बैठना। यदि ईश्वर की मूर्ति बनाकर पास नहीं बैठोगे तो उपासना ही नहीं बनेगी किन्तु आप सब शंका ईश्वर की मूर्ति पर ही करते हैं। यदि मूर्ति के टूटने से ईश्वर का नाश हो जाता है तो पाटी के अक्षरों के मिटने से भी असली अ० आ० इ० ई० का नाश हो जावेगा किन्तु यहां तो आप को शंका भी नहीं होती।

(ज) मूर्ति रूप नकली है क्या नकली से भी कभी असली का ज्ञान होता है।

उत्तर—संसार में प्रायः सभी ज्ञान नकली के द्वारा होते हैं जरा मन को एकाग्र करके सुनिये। प्रथम दृष्टान्त यह है—

इतिहास के जानने वालों में यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि एक लव्य नामक कोई भिल्ल किसी समय धनुर्विद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य्य के समीप गया और प्रणाम कर बोला कि हे प्रभो! मैं धनुर्विद्या सीखने आया हूँ सो कृपा कर सिखलाइये। द्रोणाचार्य ने कहा कि तुम जङ्गली भील हो तुम्हारे लिये इतना ही तीर चलाना आवश्यक है कि कोई जानवर मिले तो मार लो। तुम इतना जानते ही हो इसकी और गहिरी विद्या सीख के क्या करोगे। यह विद्या क्षत्रियों के लिये है जो धनुर्वेद से प्रजा का पालन करते हैं। कितना ही भील ने कहा पर द्रोणाचार्य ने स्वीकार न किया और अर्जुनादि की भी यही सम्मति हुई, तब विचारा भील अपना सा मुंह ले चला आया।

पर उस भील को धनुर्विद्या सीखने की ऐसी चाह लगी थी कि उसने फिर

भी न रहा गया और यह भी उसके जी में जमा था कि बिना गुरु कोई काम ठीक नहीं होता है। तब उसने मिट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाई और उसी को प्रणाम कर उसके आगे धनुर्बाण रख आप ही आप निशाना लगाना सीखने लगा। जब भूले तब आप ही अपने कान ऐंठने लगे और फिर द्रोणाचार्य को प्रणाम कर अभ्यास करने लगे। यों करते२ कुछ दिनों में इसे एक प्रकार की अच्छी धनुर्विद्या आ गई।

एक दिन अर्जुन बन में टहल रहे थे इतने में देखा कि एक जन्तु भागा चला जाता है और उसके मुंह में बाणों का लच्छा भरा हुआ है जिससे वह बोल नहीं सकता। अर्जुन को आश्चर्य हुआ कि इस रीति से किसने बाण मारे कि यह मरा भी नहीं और बोलना बन्द हो गया। अर्जुन यों सोचता विचारता उसी ओर खोजने लगा तब तक देखा कि एक भील धनुर्बाण लिए टहल रहा है।

अर्जुन ने पूछा कि क्या इस पशु के मुंह में तुमने तीर मारे हैं। भील बोला हां वह बड़ा कोलाहल करता था तब हमने तीर से उसका मुंह बंद कर दिया। अर्जुन ने कहा वाह! तुमने अपूर्व और दुर्घट काम किया। उसने कहा गुरु की कृपा से कोई काम दुर्घट नहीं रहता। अर्जुन ने पूछा तुम किसके शिष्य हो। वह बोला द्रोणाचार्य का शिष्य हूं। यह सुन अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ कि द्रोणाचार्य ने इस भील को वह विद्या सिखलाई जो हमको भी न सिखलाई।

अर्जुन ने चट द्रोणाचार्य के समीप जा आक्षेप पूर्वक कहा कि क्या आपने चोर और लुटेरों को भी धनुर्विद्या सिखलाना आरम्भ किया और उनको वे हथकण्डे सिखलाए कि जिनका हम लोगों ने नाम भी नहीं सुना। सुनते ही द्रोणाचार्य चौंक उठे और बोले कि सर्वथा मिथ्या है! तुम्हारे ऐसे क्षत्रिय-कुल-भूषणों के रहते हमें क्या पड़ी थी कि भीलों को शिष्य बनावें।

अर्जुन ने कहा हमारे साथ चलिये और मुकाबला कीजिए यों अर्जुन द्रोणाचार्य जी को साथ ले जङ्गल में उसी भील के पास पहुँचे। भील ने देखते ही द्रोणाचार्य को गुरु २ कह के प्रणाम किया। द्रोणाचार्य का क्रोध और भी दूना हुआ और उन्होंने भील से पूछा कि रे मूर्ख मैंने तुझे कब धनुर्विद्या सिखलाई? भील प्रणाम कर बोला कि प्रभो! इस मूर्ति से तो आपने नहीं सिखलाई पर दूसरी

मूर्ति से सिखलाई है इधर आइये तो दिखला दूं।

तब अर्जुन और द्रोणाचार्य्य ने आगे बढ़ के देखा कि उसने द्रोणाचार्य्य की मिट्टी की एक मूर्ति बना रक्खी है और उसी के आगे धनुर्बाण रख छोड़े हैं। तब द्रोणाचार्य्य का क्रोध उतरा और दोनों द्रोणार्जुन बहुत चकित हुये।

देखिये द्रोणाचार्य्य को विदित भी न था पर उसको नकली मूर्ति के विश्वास पूर्वक आराधन का कैसा फल हुआ।

किसी बादशाह ने वजीर से कहा कि "आप हिन्दू लोग जानते हैं कि वह अल्लाहताला मिट्टी पत्थरों का नहीं है फिर भी उसके नाम से आप लोग इन दुनियावी चीजों को पूजते हैं तो वह खुश होगा या नाराज" वजीर ने कहा जहांपनाह ६ महीने की मोहलत मिले तो मैं इसका जवाब सोचूं। बादशाह ने मंजूर किया।

उसी बादशाह की राजधानी में एक वेश्या आई और जिस पथ से रोज शाम को बादशाह की सवारी निकलती थी ठीक उसी सड़क पर एक कमरे में उसने अपना जमावड़ा जमाया और एक बादशाह साहब की बड़ी तस्वीर बना के ऊंची चौकी पर रख दी और उसी के सामने हाथ जोड़ बैठने लगी (कौन जाने वजीर साहब का भी इसमें कुछ इशारा हो) बादशाह की सवारी जभी उस राह से निकले तभी उनकी आँखें उस पर पड़ती थीं और उन्हें कौतुक सा होता था कि मेरी तस्वीर पर यह क्यों कुर्बान होती है। दर्याफ्त करने से बादशाह को मालूम हुआ कि वह उसी तस्वीर के सामने कभी फूलों के गुच्छे रखती है कभी इत्र और कभी पान रखती है और कभी उसी तस्वीर को माला पहिनाती और कभी उसी की सिजदा कर हाथ बांध उसी के सामने खड़ी होती है। यह सुन बादशाह साहब और भी उधर झुके और जभी उस ओर जाते तभी उसे देखते और गाड़ी धीमी कर लेते दूसरी ओर जाना होता तो भी फेर से उसी ओर आ पड़ते और उसे उसी तरह हाथ जोड़े देख और भी खुश होने लगते।

आखिर एक रोज बादशाह से न रहा गया और चुपचाप घोड़े पर चढ़ दौड़े और उसके कमरे में आ उस से पूछा कि तू हर वक्त मेरी तस्वीर के आगे सिजदा किया करती है इस से तेरी क्या मन्शा है। उसने शिर झुका पैर चूम कहा कि जहाँपनाह न तो मुझे ऐसा कोई इल्म है और न ऐसी बुलन्द किस्मत ही की

उम्मीद रखती हूँ कि कभी हुजूर की कदमबोसी कर सकूं तब क्या करूं हुजूर की तस्वीर ही के आगे अपने दिल का गुबार निकालती हूँ। यह सुन उस की विचित्र प्रीति देख बादशाह साहब की आखों से आंसू आगये और उस से कहा कि "मैं तेरे अजीब वो गरीब इश्क से खुश हुआ अब मेरे साथ चल"।

बादशाह साहब उसे पालकी पर चढ़वा ले गये और बेगमों में दाखिल किया और खुद बखुद वजीर से कहने लगे कि "अब मूर्ति पूजा पर जवाब दरकार नहीं"। यहां पर नकली मूर्ति से ही असली बादशाह मिल गये हैं।

कृपा कर जरा मदरसे में भी चलें। मदरसे में मास्टर लड़के को समझाता है कि रेखा उसको कहते हैं कि जिसमें लम्बाई तो हो किंतु मोटाई या चौड़ाई न हो, जब लड़का इस बात को समझ जाता है तब प्रोफेसर साहिब बोर्ड पर खड़ी (खरी) से एक लकीर खींचता है जो एक बिलस्त लम्बी और अंगुल भर चौड़ी होती है। उस रेखा को खींच कर लड़कों को बतलाता है कि देखो यह रेखा है यदि उस समय कोई लड़का यह बहस कर बैठे कि यह रेखा नहीं क्योंकि इसमें अंगुल भर चौड़ाई है आप ठीक रेखा खींचें जैसा कि आपने रेखा का लक्षण किया है। कैसा भी प्रवीण मास्टर हो किंतु असली रेखा (जिस में चौड़ाई मोटाई न हो) कभी खींच ही नहीं सकता यह तो नकली रेखा है। अब जरा विन्दु की भी कथा सुनलें। प्रोफेसर लड़कों को बतलाता है कि विन्दु उसको कहते हैं कि जिस के टुकड़े न हो सकें। जब मास्टर बोर्ड पर खड़ी से एक गोल गोल निशान बना कर लड़कों को कहता है कि यह बिन्दु है। क्या सच ही वह बिन्दु है, एक दो की कौन कहे इस के तो सौ दो सौ टुकड़े हो जावेंगे। प्रोफेसर असली बिन्दु क्यों नहीं बनाता? मास्टर चाहे जितनी कोशिश करे सुई की नोक से भी काम क्यों न ले किंतु असली बिंदु बन नहीं सकता। रेखा विन्दु दोनों निराकार हैं और ये बोर्ड पर जो रेखा बिन्दु बने हैं ये तो असली रेखा बिन्दु की नकली मूर्ति हैं। यह रेखा बिन्दु कैसे नकली किन्तु फल कैसा असली इस नकली रेखा बिन्दु के ऊपर से रेखा गणित (तहरीर उक्लेदश) बनी और उसी रेखागणित के जरिये से जमीन पर रेलगाड़ियां दौड़ गईं जिनके जरिये से महीनों का रास्ता एक ही दिन में तै हो जाता है। इसी नकली रेखा बिन्दु के जरिये से टेलीग्राफ (तार) दौड़ गया जिसके जरिये से हजारों मील के फासले

पर मिनटों ही में खबर पहुँच जाती है। रेखा बिन्दु कैसा नकली, फल कैसा असली, बिल्कुल सत्य, कहिये यहां पर नकली ही रेखा बिन्दु से असली का ज्ञान हुआ या नहीं ? जब कि संसार में रेखा बिन्दु आदि अनेक ज्ञान नकली से हो रहे हैं फिर शंका कैसी। बहस का क्या काम ? और भी लीजिए। जिस समय देहाती मदरसों में डिप्टी इन्सपेक्टर मदारिस मदरसे में आता है तो परीक्षा के वक्त (समय) वह विद्यार्थी को पूछता है कि हिमालय पहाड़ कितना ऊंचा है तब लड़का इसका उत्तर देता है कि पैंतालीस मील ऊंचा है। फिर डिप्टी साहब प्रश्न करते हैं बतलाओ कहां पर है। यह सुन कर लड़का उस तरफ को जाता है कि जिधर दीवार पर एक लम्बा चौड़ा कागज लटक रहा है। लड़का उस कागज पर लकड़ी रख कर कहता है कि हजूर यह है हिमालय, डिप्टी साहिब कहते हैं कि आलराइट।

यदि इस समय में कोई हुज्जतबाज यह हुज्जत कर बैठे कि हिमालय पहाड़ ४५ मील ऊंचा है और मदरसा २२ फुट ऊंचा है तो २२ फुट ऊंचे मकान के अन्दर ४५ मील ऊंची वस्तु आ सकती है। क्या इसको कोई मान लेगा ? हां अलबत्ते यह हो सकता है कि "हिमालय पहाड़ पर मदरसा"। यदि शिक्षा विभाग सब छोड़कर इसी हुज्जत को मिटाने के लिये चिपट जावे तो भी मदरसे में हिमालय पहाड़ का आना सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि वास्तव में यहाँ पर हिमालय पहाड़ नहीं किन्तु नकशे में उसकी नकली मूर्ति बनी है। फिर डिप्टी इन्सपेक्टर पूँछता है कि गङ्गा हिमालय से निकल कर कहाँ गई ? लड़का उत्तर देता है कि हरद्वार, सोरों, फर्रुखाबाद, कानपुर इलाहाबाद, काशी आदि आदि शहरों के नीचे को बहती हुई समुद्र में गिरी है। डिप्टी इन्सपेक्टर कहता है कि यह ठीक कहता है। अब आप ही बतलावें कि नकशे में गंगा नकली है कि असली, ईश्वर न करे कि असली गंगा मदरसे में आजावे यदि ऐसा हो गया तो फिर लड़कों की तो कौन कहे मास्टर और डिप्टी साहिब का भी पता न लगे कि किधर को चले गये। एक वर्ष जरा ही सोरों की तरफ बढ़ गई थी इतने में हाहाकार मच गया था इस कारण यह तो वहां ही रहे तो अच्छा है। अब देखिये कि इस नकली हिमालय और नकली गंगा से लड़के को असली का ज्ञान होजाता है कि नहीं इससे आप समझ गये होंगे कि नकली से असली का ज्ञान होता है।

जैसे ये शंका करते हैं ऐसे ही हमारी भी इच्छा है कि एक शंका हम भी करें। हमारी शंका को भी कोई हल कर सकता है। हमारा कथन है कि रामधन अपने पिता की औलाद नहीं है इस पर आप क्या सबूत देंगे कि पिता की ही सन्तान है यदि कहें कि मुहल्ले वाले कहते हैं तो सबूत तो मुहल्ले वाले भी नहीं दे सकते। क्या सबूत दें, अब कोई सबूत नहीं दे सकता। यदि रामधन को अपना पिता पूछना है तो फिर अपनी माता की शरण में जाना होगा इसी प्रकार यदि आपने परमपिता परमेश्वर का पता पूछना है तो बहस को छोड़ कर संस्कृत गैया की शरण चले जाओ वह बतला देगी कि तुम्हारा पिता परमात्मा कैसा है और उसकी मूर्ति बनती है या नहीं।

(रू) कोई कोई यह भी कहते हैं कि ईश्वर तो परिपूर्ण है उनको पूजा की क्या जरूरत है और वह किसी की पूजा नहीं लेते

इसका उत्तर यह है कि एक तअल्लुकेदार हैं उनके यहां उस समय के महाराज पहुँचे। तअल्लुकेदार उठा, महाराज को कुर्सी पर बिठाया और एक थाल अशर्फियों का भर कर महाराज के सामने रक्खा। महाराज ने छू दिया तअल्लुकेदार अपने मन में बड़ा मग्न हुआ और अशर्फियों को उठा कर ले गया बाद में महाराज चले गये। मनुष्य पूछते हैं कहिये आपने भेंट दी थी, तअल्लुकेदार कहता है कि दी थी। एक मनुष्य कहता है कि क्या महाराज को अशर्फियों की कमी थी जो आप ने भेंट दी। वह उत्तर देता है कि उनके यहाँ तो कमी नहीं थी परन्तु हमारा तो फर्ज था कि हम उनको भेंट करें क्योंकि हम उनकी प्रजा हैं। बस यों ही समझ लीजिये कि ईश्वर को तो किसी चीज की कमी नहीं परन्तु हम उनकी प्रजा हैं उनको अपनी तरफ से देना यह हमारा फर्ज है और देते समय भी हम यही [illegible] कि हे ईश्वर! आप परिपूर्ण हैं और जितनी वस्तु संसार में मौजूद है वह [illegible] ही है परन्तु हम आप की ही वस्तु आप को देते हैं। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"

प्रच्छक कहता है बादशाह ने भेंट नहीं ली वह तो तुम ही ले आये। तअल्लुकेदार जवाब देता है कि तुम तो बेवकूफ हो उन्होंने ले तो ली परन्तु फिर अपने प्रसाद में हम को दे दी। इसी प्रकार हम सब चीजें ईश्वर को अर्पण करके तब प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं और हम समझते हैं कि हमारी तरफ से दे दी गई

हमारा तो फर्ज अदा हो गया। ईश्वर को इसी प्रकार से दिया जाता है और ईश्वर के हाथ में हमको नहीं मालूम किस मजहब में दिया जाता है।

(ट) अब कोई कोई सज्जन इस शंका पर उतारू हुए हैं कि अखण्ड ईश्वर के खण्ड कैसे होंगे।

ये लोग मूर्ति पूजन से ईश्वर के खण्ड हो जाना मानते हैं इस शंका के उत्तर को रोक कर मैं इन सज्जनों से यह पूछता हूं कि इन को यह भी मालूम है कि यदि मूर्ति पूजन संसार से उठ गया तो फिर उस परमात्मा का ध्यान भी उड़ जावेगा क्योंकि ध्यान जब होता है तब साकार वस्तु का ही होता है। निराकार का ध्यान तो मन कर ही नहीं सकता।

भला आप ही विचारिये कि जो मन रात दिन साकार संसार में दौड़ रहा है, जो मन प्रति दिन साकार कामिनी कंचन में लिप्त हो रहा है, जो मन २३ घंटा ४५ मिनट साकार माया मोह में विह्वल हो रहा है उसे १५ मिनट में तुम खींच कर कैसे निराकार में लगा सकते हो। ऐसे तुम कहाँ के वीर हो जो वायु से भी प्रबल चञ्चल मन को आंख मूँदते ही खींच लोगे। अच्छा यह भी मान लेते हैं कि तुमने खींच ही लिया तो अब बैठाओगे कहां? निराकार तो कोई रूपवान् स्थान ही नहीं। तुमने यदि कभी खींच कर देखा होता तो जान जाते कि मन कितना चपल है और उसको स्थिर करने के लिये सर्वोत्तम साधन सौन्दर्य है और भगवान् श्यामसुंदर की मूर्ति का सौन्दर्य अनुपमेय है। उसमें अर्थात् साकार मूर्ति में जितनी जल्दी मन स्थिर हो सकता है यह बात निराकार में नहीं।

मन को संसार से खींच कर भी साकार संसार से अलग कर के भी तुम मन को किस आश्रय में ठहराओगे, निराकार में सर्वथा असम्भव है। निराकार एक ऐसी शून्य दशा अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था है उसकी थाह पाना संसारी मनुष्य के मन के लिये किसी प्रकार सम्भव नहीं क्योंकि मन भौतिक स्थूल पदार्थ है। भौतिक मन को अभौतिक निराकार में, स्थूल मन को अति सूक्ष्म निराकार में, एकदेशी मन को सर्वव्यापक निराकार में, अल्पज्ञ मन सर्वज्ञ निराकार में, शान्त मन को अनन्त निराकार में तुम सात जन्म, नहीं नहीं सात लाख जन्मों में भी स्थित नहीं कर सकते हो। तुम्हारी वही दशा होगी जो पहिले पहिल बौद्धों की हुई थी।

उन लोगों ने वैराग्य योग द्वारा मन को विषयों से खींच तो लिया पर साकार न मानने से जब निराकार में मन नहीं ठहर सका तो निराकार को छोड़ कर कह दिया कि ईश्वर तो कोई चीज ही नहीं । आर्यसमाजी भी कुछ दिन निराकार में भटकेंगे फिर उसे भी असम्भव कह कर साकार निराकार दोनों से हाथ धो कर निरीश्वरवादी बनेंगे । पहिले तो विषयों से मनको खींचना ही अति कठिन है फिर उस वेचारे को निराकार समुद्र में गोते देना उससे भी अधिक कठिन नितान्त कठिन "एक तो बाघ ऊपर बन्दूक बांधे है" ऐसे कठिन कार्य में समाजी भाइयों का ठहरना कब सम्भव है जिनका मन परम रम्य मूर्ति—पूजन कार्य में ही उबता जाता है ।

एक साहब आफ़िस से लौट कर घर में चाह मांगने लगे बीबी ने कहा जरा ठहरिये अभी तैयार करती हूँ बस साहब का मिज़ाज बिगड़ गया—धैर्य छूट गया लगे बीबी को फटकारने कि नामाकूल हमतो सारा दिन माथा पच्ची करके लौटें तैंने अभी चाह भी नहीं बनाई । अब क्रोधान्ध साहब पर वैराग्यता का भूत चढ़ गया । तुरन्त एक साधू से जाकर बोले बाबा ! घर संसार सब मिथ्या मतलबी है आप ऐसा मन्त्र बतलाइये कि मैं बात की बात में सब भूल जाऊं, साधू बोला बेटा ! यह मन बहुत काल अभ्यास वैराग्य करते करते कहीं बश होता है । परन्तु साहब ने न माना । कहा गुरू जी हमारे मन से संसार भुला ही दीजिये । तब साधू बोले अच्छा तू अभी जिसे देखकर आता है पहिले उस गधे को भूल जा तो मैं फिर समस्त माया जाल भुला दूं । साहब गधे को भूलने लगे । आंखें मीच कर मन को एकान्त कर बड़ा यत्न करने लगे कि गधा भूल जाय, गधा भूल जाय, परन्तु ज्यों ज्यों भुलाते थे त्यों त्यों गधा और साहब पर सवारी बांधता जाता था । विचारे रात भर "गधा भूलजा-गधा भूलजा" मन्त्र की माला फेरते रहे पर दुर्बल मन साहिब न भूल सके । साधू ने कहा—बच्चा ! जब क्षण भर का देखा पदार्थ नहीं भूलता तो लाखों जन्मों का साथी यह घर कुटुम्ब क्षण भर में कैसे भूल सकता है । चल हट जा घर बैठ संसार भूल कर निराकार में गोता लगाना कहीं कढ़ी भात का खाना नहीं है इस निर्गुण निराकार के मनमोदक से भूख बुताती होती तो सभी दुनियां कब की मोक्ष पा गई होती ।

इस दृष्टान्त को सुना कर हम जानना चाहते हैं कि आप निराकार का ध्यान कैसे करते हैं। लो आंख मूंद लो ध्यान करो । हाँ क्या ध्यान करें । यदि प्रकाश रूप कहो तो प्रकाश तो साकार है, यदि ज्योतिः स्वरूप कहो तो ज्योति भी साकार है तुम बतलाओ तो सही ध्यान में क्या करते हो ? किसका ध्यान करते हो ? बिना किसी आकृति (शकल) के निराकार का ध्यान कैसे करते हो ? यदि कहो आंख मींचने पर भीतर कुछ श्यामता भासित होती है तो फिर हमारे श्यामसुन्दर "नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्ग" भगवान् का ही ध्यान क्यों नहीं करते ? एक मनुष्य बैठा हुआ मन को इधर उधर भटकाता है पर मन को लगाने का कोई आश्रय नहीं पाता । दूसरा भक्त आसन पर आते ही आँख मूंद कर तुरन्त इष्टदेव की मूर्ति को सामने कर मन को स्थिर कर देता है । इन दोनों में कौन कृतकार्य्य होगा । यही साकारवादी क्योंकि इसका मन मूर्ति के सहारे काबू हो जायगा पर निराकारवादी का मन शून्य में हैरान होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायगा। इस भांति विचार करने से सिद्ध हुआ कि सर्व साधारण के पक्ष में निराकार का ध्यान ही असम्भव है । अब कोई कोई समाजी यह भी समझाते हैं कि आंख मूंद कर "ओं गायत्री दयामय न्यायकारी आदि ब्रह्म के नामों का स्मरण करना अर्थ का चिन्तन करते रहना ही निराकार का ध्यान है" । यह युक्ति भी ठीक नहीं कारण कि शब्द तो आकाश भूत का गुण है । ओ३म् आदि नाम शब्दों के सहारे मन स्थिर किया गया तो फिर तेज भूत के गुण रूप मूर्ति के सहारे भी ध्यान क्यों न होगा, अब दया न्याय आदि तो गुण हैं इनका ध्यान तो गुणों का ध्यान हुआ । हम पूछते हैं ऐसे अनन्त गुण जिस ब्रह्म में हैं उस गुणी का ध्यान तुम कैसे करते हो । यदि दयामय न्यायकारी आदि शब्दों का ही चिन्तन करना है तो साकार ब्रह्म में ही गुण रह सकते हैं बिना साकार के ध्यान भी नहीं बन सकता और यदि ध्यान ही उड़ गया तो उपासना विधायक योगशास्त्र भी उड़ जावेगा ऐसी हालत में नास्तिकों में और हम में क्या फर्क है । इसका भी उत्तर है या कोरा खण्डन ही खण्डन जानते हो । अब सुनिये अखंड के खंड का उत्तर । इन्होंने यह समझा है कि उसके अवतार धारण करने से या उसकी मूर्ति बनाने पर उस परमात्मा के खण्ड हो जाते हैं इस विचार में इन्होंने बड़ी ही गलती खाई है । इनको विचारना चाहिये था कि आकाश भी तो अखण्ड है

परन्तु वही अखण्ड आकाश मठ में आया तो मठाकाश कहलाया और वही आकाश जब घट में आया तो घटाकाश कहलाया और जो व्यवहार का हिस्सा रहा वह महाकाश कहलाया। क्या आकाश के खण्ड हो गये? हर्गिज नहीं। जब आकाश के ही खण्ड नहीं हुए तो फिर ईश्वर के खण्ड किस युक्ति से होंगे। दूसरा उदाहरण देखिये—जैसे ईश्वर अखण्ड है उसी प्रकार काल (समय) टाइम भी अखण्ड है। फिर उस काल के टुकड़े की तरफ भी दृष्टि डालिये वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, घंटा, मिनट। जर्मन आदि देशों के विद्वानों ने टाइम के यहाँ तक विभाग किये कि सेकंड की भी सुई लगा कर छोड़ी। फिर क्या टाइम के टुकड़े हो गये? हरगिज नहीं। जब कि समय की हजारों मूर्तियें बन गई, काल साकार बन कर मनुष्यों की जेबों में कूद पड़ा, आलों में स्थापित हो गया, दिवारों पर लटक गया और इतने पर भी अखण्ड काल (टाइम) के खण्ड न हुए तो ईश्वर की मूर्ति बनने या अवतार लेने से अखण्ड ईश्वर के खण्ड होंगे कैसे जरा इसका भी तो पता लगाना चाहिये। इसके आगे यह कहने लगे हैं कि—

(ट) सनातन धर्मी तो मूर्ति में ईश्वर की भावना मानते हैं और भावना सच्ची नहीं होती।

मैं कहता हूँ कि यदि यही मान लिया जावे कि भावना करते हैं तो फिर भावना को झूठ कर कौन सकता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपने श्रीमुख से कहते हैं कि—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थ—जो जिस प्रकार मेरी शरण आता है मैं वैसी ही उसकी रक्षा करता हूँ।

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

इस भावना के ऊपर हमको एक दृष्टान्त याद आ गया जरा उसको भी सुन लें। एक समय गोस्वामी तुलसीदास जी वृन्दावन में गये वहां पर जाकर इन्होंने क्या देखा कि चारों ओर से 'राधाकृष्ण—राधाकृष्ण' की आवाज आ रही है राम जी का कहीं पता ही नहीं यह देख तुलसीदास को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सब मनुष्य

कृष्ण के ही भक्त हैं प्रभु रामचन्द्र का एक भी नहीं, इन्होंने इसको देख स्नान करते समय यमुना जी के के घाट पर एक दोहा कहा कि—

राधा राधा रटत हैं, आक ढाक और कैर ।
तुलसी या ब्रजभूमि में, कहा राम से बैर ॥

एक परशुराम नामक ब्राह्मण किसी मन्दिर के पुजारी थे वह भी यमुना पर स्नान कर रहे थे स्नान करके वह मन्दिर में आये और दर्वाजे पर बैठ गये। इसी समय गोस्वामी तुलसीदास जी भी स्नान कर उसी मन्दिर में दर्शन के लिये चले। जब तुलसीदास श्रीकृष्ण की मूर्ति के दर्शन को मन्दिर में धंसे तो उस समय परशुराम ने यह दोहा पढ़ा कि—

अपने अपने इष्ट को, नमन करै सब कोय ।
परशुराम बिन इष्ट के नमे सो मूरख होय ॥

यह आवाज तुलसीदास के कान तक पहुँची। तुलसीदास जी मूर्ति के सम्मुख पहुंचे और मूर्ति को देखकर बोले कि—

काह कहूं छबि आज की, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक जब नवे, धनुष बाण हों हाथ ॥

इस दोहे को पढ़ते ही अपने आप पर्दा गिरा और ५ मिनट तक पर्दा गिरा रहा। इसके पश्चात् अपने आप पर्दा उठा। मूर्ति को देख तुलसीदास जमीन में गिर गये। बार बार प्रणाम करते और मूर्ति के दर्शन कर रहे हैं। अब यह मूर्ति बंशीवाले की नहीं है अब राघवकुलकमलदिवाकर प्रभु रामचन्द्रजी की होगई। प्रणाम करने के अनन्तर तुलसीदास जी ने फिर एक दोहा पढ़ा वह यह है कि—

तुलसी रुचि लखि भक्त की, नाथ भये रघुनाथ ।
मुरली मुकुट दुराय के, धनुषबाण लिये हाथ ॥

कहिये भावना सच्ची है या झूँठी ?

और भी भावना देखिये—एक स्त्री है वह स्त्री राधाकृष्ण की पुत्री और मोहनलाल की पत्नी एवं गिरधारीलाल की माता है। जिस समय इसको राधाकृष्ण देखता है अन्तः करण एकदम मोह से विकृत हो जाता है। क्यों कारण

यह है कि यह उसको पुत्री की भावना से देखता है और जिस समय इसको मोहनलाल देखता है एकदम अन्तःकरण में काम का सञ्चार हो जाता है। कारण यह है कि यह उसको पत्नी की भावना से देख रहा है। और जिस समय गिरधारीलाल देखता है तो उस के हृदय में एकदम प्रेम उमड़ उठता है। कारण यह है कि वह इसको माता की भावना से देख रहा है। धर्म को पुष्ट करने के लिये भावना सर्वोत्तम सहायक है। संसार में जितने काम हैं सब भावना पर ही स्थित रहते हैं फिर भावना झूँठी कहता कौन है। भावना को झूंठ समझने वाले एक बार फिर विचार करें। उनका यह मन्तव्य निर्मूल है कि भावना सच्ची नहीं होती।

(ड) मूर्ति–पूजन से हम को तो कुछ प्रत्यक्ष फल दिखाई नहीं देता।

उत्तर—प्रथम तो पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से आज प्रायः मनुष्यों के अन्तःकरण में यह भाव भर गया है कि ईश्वर की सत्ता (हस्ती) का मानना ही मूर्खों का काम है। फिर यदि कोई ईश्वर भी मानते हैं तो वह कोरा चालीस सेरा निराकार कह कर उपासना से दिल चुराते हैं। और यदि कोई साकार मान कर पूजा भी करें तो एक अद्भुत प्रकार की पूजा करते हैं। रोज रोज आस्तिकता से पूजन करने वाले बहुत ही न्यून संख्या रखते हैं हां अलबत्ते जिस दिन सत्यनारायण की कथा हो उस दिन पूजन करना पड़ता है। एक दिन प्रथम ही नौकर को हुक्म दिया जाता है कि जाओ एक पैसे के पूजा के पान लेते आओ और एक पैसा यह और भी लेते जाओ इसकी पूजा की सुपारी लेते आना। यह नौकर तम्बोली के यहाँ पहुँचा। तम्बोली ने पैसा तो ले लिया और सड़े गले छोटे छोटे पान हाथ में दे दिये। क्यों साहब पूजा में इतनी ही प्रीति है या कि अधिक। जब आप को पान खाने हों तो बढ़िया से बढ़िया आवें और प्रभु के लिए सड़े गले। अस्तु, अब नौकर साहब पंसारी के यहां गया उसने भी पैसा ले लिया और राजा युधिष्ठिर के जमाने की वह सुपारी दी कि जिसमें हजारहां बार कीड़े पड़ कर मर गये हों। अस्तु, अब पूजा का लग्गा लगा। आचार्य ने कहा कि "वस्त्रं समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" यजमान बोलता है कि वस्त्र तो नहीं आया, आचार्य बोला कि अच्छा "वस्त्रस्थाने अक्षतान्समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" फिर आचार्य ने कहा कि "यज्ञोपवीतं समर्पयामि

श्रीविष्णवे नमः" इसको सुन कर यजमान बोल उठा कि पण्डित जी जनेऊ तो नहीं लाए,पंडितजी ने फिर पढ़ दिया कि "यज्ञोपवीतस्थाने अक्षतान्समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" । अब आया समय गोल गोल का "दक्षिणाँ समर्पयामि श्रीविष्णवे नमः" । अब यदि यजमान कहदे कि महाराज आचार्यजी दक्षिणा तो है नहीं बस इतना सुनकर आचार्य क्रोधित हो जावेगा और कह उठेगा कि नहीं साहिब यह न चलेगी दक्षिणा स्थाने अक्षतान् हरगिज न कहा जावेगा । किन्तु दक्षिणा स्थाने दक्षिणा ही होगी । बस इसी पूजन पर फल चाहते हो जब कि यजमान तो चाहता है कि घर का टका न लगे और आचार्य चाहता है कि पूजा चाहे हो या न हो किन्तु अपने टकों में फर्क न आवे इसी पर प्रत्यक्ष फल चाहते हो । आप सच्चे दिल से प्रीति के साथ पूजन करिये । रावण, ध्रुव, मार्कण्डेय आदि आदि की भांति प्रत्यक्ष फल अवश्य मिलेगा । विष्णु नित्य शंकर का पूजन किया करते थे और नित्य ही एक सहस्र कमल भी चढ़ाया करते थे एक दिन पूजा करते समय कमल संभाले गये तो एक सहस्र के स्थान में ९९९ ही निकले बस समय विष्णु को फिकर हुई कि मेरा संकल्प तो एक हजार का है और ये नौ सौ निन्यानवे ही हैं अब क्या किया जावे चारों तरफ देखा तो भी कमल का पता न चला अन्त में विष्णु ने विचारा कि हम कमल नेत्र कहलाते हैं हमारा नेत्र भी कमल के सदृश है यह समझ कर समस्त कमल चढ़ाने के पश्चात् एक कमल की पूर्ति के लिये अपना नेत्र उतार कर शिव के ऊपर रक्खा कि उसी समय शंकर प्रकट हो गये ।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्र वपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुर हर जागर्ति जगताम् ॥

त्रिपुरहर शंकर ! जब विष्णु ने आप के चरणारविन्द में भक्ति पूर्वक सहस्र कमल रक्खे तब सहस्र संख्या में एक कमल की न्यूनता रह गई,तब हरि ने सोचा कि यहां पर अब कमल तो मिल नहीं सकता, मुझे कमल नयन कहते हैं, मेरा नेत्र भी कमल ही है ऐसा समझ विष्णु ने अपने नेत्र को निकाल कमल के स्थान में तेरे चरणों में अर्पण कर दिया । आप भक्ति के इस अलौकिक दृश्य को

देख प्रकट हो गये और विष्णु को सुदर्शन चक्र एवं नेत्र दिया आप संसार की रक्षा के लिये प्रत्येक क्षण तत्पर रहते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि मूर्तिपूजा से क्या लाभ ? वे अपनी आंखों से ईसाइयत के चश्मे को उतार इस कथा को पढ़ लें, उनकी शंका की अन्त्येष्टि हो जावेगी। पुराणों में केवल यह एक ही उदाहरण ऐसा नहीं है कि जिसमें पूजा से लाभ हुआ हो, मार्कण्डेय, अम्बरीष, मुचकुन्द प्रभृति सहस्रों भक्तों के चरित्र पुराणों में विस्तार पूर्वक वर्णित हैं जिनसें यह स्पष्ट दीखता है कि मूर्तिपूजा से इस लोक में कल्याण हो कर सर्वदा के लिए संसार बंधन टूट गया।

यदि मूर्तिपूजा से कोई लाभ नहीं तब तो वेद झूठा ठहर जावेगा "त्र्यम्बकं यजामहे" इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि शंकर हम तेरा पूजन करते हैं तुम हम को दुःखों से छुड़ाओ और मोक्ष से मत छुड़ाओ, वेद का यह एक ही मन्त्र झूठा और व्यर्थ न होगा वरन् "भवाशर्वौ" प्रभृति अथर्व के अठारह मन्त्रों में जो शंकर का पूजन और उस पूजन से जो इच्छायें शंकर के आगे रख उनकी पूर्ति की मांग पेश की है ये सब वेद मन्त्र व्यर्थ हो जावेंगे किंतु इतना वह समझे कि जिस ने कुछ अध्ययन किया हो। आजकल जो मूर्तिपूजा का खंडन कर रहे हैं वे सर्वथा वेद, धर्म शास्त्र, पुराण—इतिहास से अनभिज्ञ कोरे मूसलचंद हैं, इतना ही नहीं वरन् जिन गुरुओं से ये मूर्तिपूजा का खंडन सीखते हैं उनको वेद, शास्त्र में भैंसा से अधिक कुछ भी ज्ञान नहीं, इन ज्ञान रहित पशुओं को न कोई मनुष्य समझा सकता है, न वेद, न ईश्वर हां जो मूर्तिपूजा का सत्य २ निर्णय चाहते हैं उनको यह पूरा ज्ञान हो जावेगा कि मूर्तिपूजा युक्ति युक्त, वेद सिद्ध संसार का माना हुआ मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है और इसके बिना किसी का भी संसार बंधन नहीं टूट सकता।

❁ मूर्तिपूजा खण्डन ❁

(५) जो लोग यह कहते हैं कि पुराणों में मूर्तिपूजा का खण्डन है वे सब से पहिले जो प्रमाण में श्लोक देते हैं वे श्लोक ये हैं—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥ ११॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ८४

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार स्वामी श्रीधर जी इन श्लोकों के टीका में लिखते हैं कि "एतत्प्रपंचयति न ह्यम्मयानीतित्रिभिः ॥११॥ वाङ्मनसयोरप्युपासना विषयत्वम् "यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते मनो ब्रह्मेत्युपास्ते इति श्रुतेः" । अघं तन्मूलज्ञानं न हरन्ति । अत्रहेतुः । भेदकृतो भेदकर्तारः । यद्वा भेदबुद्धिं कुर्वतः पुंसः । विपश्चितो निरस्तभेदाः । ते तु मुहूर्तमात्रसेवयैवाघं घ्नंतीति ॥१२॥ अतः साधून्विहायान्यत्रात्मादिबुद्ध्या सज्जमानोऽतिमंद इत्याह । यस्येति । आत्मबुद्धिरहमिति बुद्धिः । त्रयो धातवो वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतयो यस्य तस्मिन्कुणपे शरीरे स्वधीः स्वीया इति बुद्धिः । भौमे भूविकारे इज्यधीर्देवताबुद्धिः । यत्यस्य तीर्थबुद्धिस्तीर्थमिति बुद्धिः । अभिज्ञेषु तत्त्ववित्सु यस्य ता बुद्धयो न संति स एव गोष्वपि खरो दारुणोऽत्यविवेकी । यद्वा गवां तृणादिभारवाहः खरो गर्दभः इति" ॥१३॥

जलमय तीर्थ और मृण्मयादि देवता ये बहुत काल में पवित्र करते हैं किन्तु साधु दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाक्, मन ये उपासना किये हुये भेदबुद्धि रखने वाले पुरुष के पाप को दूर नहीं कर सकते और जो विद्वान् हैं वे एक मुहूर्त की सेवा से पाप को दूर करते हैं ॥१२॥ जो शरीर में आत्मबुद्धि करता है और जो कलत्रादिकों में ये मेरे हैं ऐसी बुद्धि रखता है और जो भूमि के बिकारों में पूज्यबुद्धि मानता है तथा जल में तीर्थबुद्धि समझता है और विद्वानों में आत्मबुद्धि और स्वकीयबुद्धि था तीर्थबुद्धि नहीं मानता वह बैल और गधा है ॥१३॥

११ ग्यारह के श्लोक में तीर्थ और मूर्ति द्वारा देर में पवित्र होना माना है, और सज्जनों के द्वारा अतिशीघ्र पवित्र होना माना है, किन्तु यह नहीं कहा कि तीर्थ और मूर्ति पवित्र कर ही नहीं सकते। १२ बारहवें श्लोक में यह बतलाया है कि जो ब्रह्मबुद्धि से अग्नि आदि की उपासना नहीं करते उनके पाप दूर नहीं होते किन्तु जो अभेदबुद्धि ब्रह्मबुद्धि से उपासना करते हैं उनके दूर होते ही हैं। १३ तेरह के श्लोक में यह बतलाया कि जो महात्माओं में पूज्य-बुद्धि नहीं रखता और वह शरीर में आत्मबुद्धि रखता है तथा कलत्रादिकों में स्वकीय बुद्धि रखता है भूमि के पदार्थों में इज्यबुद्धि और जल में तीर्थबुद्धि रखता है वह गोखर है। यहां पर आस्तिक लोग भूमि विकार का पूजन नहीं करते और भूमि के पदार्थों में उनकी इज्यबुद्धि नहीं है किन्तु भौमपदार्थों में व्यापक जो ईश्वर है उसमें इज्यबुद्धि रख उसी व्यापक का पूजन करते हैं ऐसे मनुष्य निंदनीय नहीं हो सकते, निंदनीय वे हो सकते हैं जो व्यापक को छोड़कर केवल भूविकार में पूज्यबुद्धि रखते हैं और अभिज्ञजनों में भी अटूट श्रद्धा रखते हैं सामान्य जल में तीर्थबुद्धि रखने वाला मनुष्य निंदनीय हो सकता है ईश्वर की विशेषशक्ति धारण करने वाले गंगादि विशेष जलों में पूजनीय बुद्धि रखने वाला निंदनीय नहीं हो सकता यह इस श्लोक का अभिप्राय है। फिर इस श्लोक में जो महात्मा लिये गये हैं वे सामान्य नहीं हैं किन्तु शब्दब्रह्म, वेद में निष्णात और साक्षात् ब्रह्म में निष्णात पूर्ण ब्रह्मभूत हो जाने वाले लिये गये हैं इसी प्रकार के ऋषि यहां आये थे, कौन कौन ऋषि थे उनके नाम ये हैं—

> द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलो सितः।
> विश्वामित्रः शतानंदो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥
> रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः।
> पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥४॥
> द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथांगिराः।
> अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥५॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ८४

द्वैपायन, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज तथा गौतम ॥३॥ शिष्यों सहित परशुराम, भगवान् वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय और बृहस्पति ॥४॥ द्वित, त्रित, एकत, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव प्रभृति अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषियों से ये तीन श्लोक कहे गये हैं ॥५॥ जिनका अभिप्राय यह है कि वेदविधि से अनुष्ठित वैदिक कर्म जीव का कल्याण देर में करता है और ब्रह्मवेत्ताओं की कृपा यदि हो जावे तो इस पामर जीव का शीघ्र कल्याण होता है अतएव ब्रह्मवेत्ताओं का आदर करना यह मनुष्य का धर्म है । इतना अभिप्राय इस प्रकरण में है ।

कई एक स्थान में जहाँ पर निवृत्तिमार्ग का अवलम्बन किया है वहां पर मूर्तिपूजा का छोड़ देना भी लिखा है किन्तु अभ्यासयुक्त ज्ञानी होने पर यह विधि है जैसा कि—

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥

एकादश स्कन्ध के इस श्लोक में लिखा है कि प्राणीमात्र में असली ब्रह्मभावना न हो जावे तब तक मन, वाणी, शरीर से ईश्वर की उपासना करना । इसी अवस्था में पहुँच कर मनुष्य वेदविधि को भी छोड़ देता है । भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि—"त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" हे अर्जुन ! वेद रज, तम त्रैगुण्य विषयक हैं किन्तु तू त्रिगुण से बाहर हो जा । जिस समय यह जीव अभ्यास द्वारा असली तत्वज्ञान को पा जाता है तब इसका मूर्तिपूजन ही नहीं छूट जाता किंतु समस्त कर्तव्य समाप्त हो जाते हैं इस को इस प्रकार कहा है—

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसंदेहवृत्तेः ।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्वावबोधं
निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥

जिस समय मनुष्य भक्ति—ज्ञान के अभ्यास से शब्दातीत वेद जिसको नहीं

कह सकता त्रिगुण रहित तत्व ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है उस समय इसके भेद और अभेद ये दोनों नष्ट हो जाते हैं उस समय शुभा शुभ कर्मों का क्षय हो जाता है माया और मोह इनका नाश होजाता है और जितने भी संदेह हैं उन सबका सफाया हो जाता है ऐसे विधि निषेध से परे ब्रह्मभूत महात्माओं को आदर्श में रख मूर्ति-पूजा का खण्डन करना संसार को धोखा देना है क्योंकि ऐसे महात्मा ऐसे मार्ग पर चलते हैं जहां रज सत्व, तम फटक नहीं सकता और जिस मार्ग का ज्ञान अन्य पुरुषों को हो नहीं सकता ऐसे महात्माओं के लिये तो वेदाज्ञा में चलना शुभदा-यक और न चलना अशुभदायक भी नहीं हो सकता। जब समस्त वेदाज्ञाओं के त्याग देने से उनको कोई पाप नहीं तो उन्हीं वेदाज्ञाओं में से एक आज्ञा मूर्ति-पूजन का छोड़ देना हानि कारक कैसे हो सकता है किन्तु इस बात को मूर्ख समु-दाय नहीं समझता इस लिए उसकी दृष्टि में सब धान बाइस पसेरी तुल रहे हैं किंतु समझदार इस पर दृष्टि डालें और अपने कल्याण के लिये वेदाज्ञा सिद्ध युक्ति-युक्त मूर्ति पूजा का ग्रहण करें।

* सृष्टि *

कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों की सृष्टि रचना बच्चों का खेल है, भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न प्रकार की सृष्टि दिखलाई गई है। किसी किसी पुराण में सृष्टि रचना दुर्गा से, कहीं शिव से, कहीं विष्णु से, कहीं ब्रह्मा से, इस अद्भुत सृष्टि को कैसे सत्य मानें ?

दुर्गा, विष्णु, शंकर, ब्रह्मा ये सब ईश्वर के रूप हैं। सृष्टि के आरंभ में सृष्टि रचनार्थ ईश्वर अनेक रूप धारण करता है एक रूप से प्रेरणा करके दूसरे रूप से सृष्टि रचता है। वेद में ईश्वर के अनेक रूप रहते हुए भी पाँच मुख्य रूपों का वर्णन है और वे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, दुर्गा तथा सूर्य ये पांच रूप हैं देखिये-

× देवी सूक्त ×

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥४
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि ॥५
अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उं।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूं। मैं बारह आदित्यों के साथ विचरती हूँ और विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूँ, मैं मित्रदेवता और

वरुणदेवता को धारण करता हूँ , मैं इन्द्र और अग्निदेवता को, मैं ही अश्विनीकुमारों को दोनों को धारण करता हूं ॥ १ ॥ मैं सब तरफ से मारने वाले सोमदेवता का पोषण करती हूं मैं ही त्वष्टा को और पूषा देवता को,भगदेवता को धारण करती हूँ ; धन को हविषवाले सुँदर प्राप्त करते हुये यजमान को सोम निकालते हुये को ॥ २ ॥ मैं ईश्वरी मिलनेवाली ज्ञान वाली पहिली अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली अनेक तरह से सब ओर से प्रवेश कराती हुई हूँ तिस मुझको देवलोग अनेक जगह विधान करते हैं ॥ ३ ॥ मैं ही आप यह कहता हूँ सेवित है देवताओं से और मनुष्यों से जिसको मैं चाहती हूं उस उसको उत्तम बढ़िया बनाती हूं । उसको ब्रह्मा उसको ऋषि उसको मेधावी बनाती हूँ ॥४॥ मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है जो देखता है, जो स्वास लेता है और सुनता है कहे हुये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते हैं या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले बचन को तुझ से कहती हूं ॥ ५ ॥ मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण बैरी के लिये हिंसक के लिए मारने के लिये और मैं ही जन के लिये मदयुक्त करती हूं मैं ही आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—वाणी की अधिष्ठात्री देवी अंभृण नामक ऋषि की दुहिता होकर अपने असली रूप का बोधन कराती हुई इन मन्त्रों से कहती है । जिस प्रकार आज कल के लोग कहा करते हैं कि परमात्मा कहता है हे मनुष्यो ! और जब यह कहा जाता है कि परमात्मा अव्यक्त इस प्रकार कैसे कह सकता है । तब यह उत्तर दिया जाता है कि कि ऋषि के द्वारा कहता है । ऐसे ही यहाँ ऋषिपुत्री के द्वारा देवी कहती है मैं ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य और विश्वेदेवा देवता इन सबके साथ विचरती हूं अर्थात् देवलोग जो चलते फिरते हैं वे नहीं चलते फिरते मैं ही चलती फिरती हूँ । उनमें मेरे बिना शक्ति नहीं है या देवलोग जो हव्य कव्य खाते हैं वह मैं ही खाती हूं और मैं ही मित्रावरुण को, इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ या इन सब का पालन करती हूँ।१। भगवती देवी कहती है कि हे मनुष्यो ! मैं ही सब ओर से शत्रुओं को मारते हुये सोमदेव को धारण करती हूँ और मैं ही त्वष्टा पूषा और भगदेवता को धारण करती

हूँ और जो यजमान हवि तथा सोम सब देवताओं को प्राप्त करते हुये हैं उनके लिये मैं ही धन को देती हूँ । तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य इन्द्रादि देवताओं को हविर्दान और सोमपान कराते हैं उन सब को अनेक प्रकार के धन मैं ही देती हूं क्योंकि सब कर्मों की फलदात्री मैं ही हूं ॥ २ ॥ देवी उपदेश करती है कि हे मनुष्यो ! मैं ही सारे जगत की ईश्वरी हूँ और उपासकों को अपने उपास्य से या जो चीज की इच्छा से मनुष्य उपासना करता है उस इच्छित वस्तु को प्राप्त करने वाली मैं ही हूँ अर्थात् चित्स्वरूपा मैं ही हूँ; इन रुद्रादि देवताओं में जो ज्ञान है वह सब मेरा ही है और यज्ञ में भी मुख्य देवता मैं ही हूँ, तथा सब जगह सब प्रकार से रहनेवाली मैं ही हूं और सब शरीरों में जीवरूप से प्रवेश करानेवाली मैं ही हूं। इस लिये मनुष्यों की गणना ही क्या देवताओं ने भी उस मुझको सर्वत्र या अनेक स्थानों में पूजा के लिये निर्माण किया रचा या मुझ को सर्वत्र आगे किया अर्थात् सब देवताओं में मैं ही प्रधान हूँ ॥ ३ ॥ इस मन्त्र में यह वर्णन है कि देवी जिस जीव का कल्याण चाहती है उस को ऊंचे से ऊंचे दर्जे तक ले जा सकती है यहां तक कि ब्रह्मा ऋषि और मेधावी बनाती है इसलिये कल्याण की कामनावालों को देवी की ही उपासना करनी चाहिए। देवी कहती है कि हे मनुष्यो ! मैं यह स्वयं अपने मुख से कहती हूँ और जो मैं कहती हूं इसे पूर्व कल्प के देवता और मनुष्यों ने सदा सेवन किया है। कुछ मैं ऐसी बात नहीं कहती कि जो नवीन हो या अपने मतलब की हो किन्तु आप लोगों के बड़े प्रयोजन की है बस ज्यादा क्या कहूँ इतने ही में समझ लेना कि जिस २ को मैं चाहती हूँ उस उसको मैं बढ़िया बनाती हूं, अब शास्त्रानुसार ऊंचे दर्जे तीन हैं । सबसे उन्नत दरजे पर तो ब्रह्मा हैं और मध्यम दर्जे पर ऋषि हैं और अवनत दरजे पर मेधावी जो ब्रह्मज्ञानी हैं तथा जो विशेष बुद्धिमान हैं, इनमें जिसको बहुत उन्नत करती हूँ उसको ब्रह्मा बना देती हूँ और जिसको मध्यम कक्षा की उन्नति पर ले जाना चाहती हूँ उसको ऋषि बना देती हूँ और तीसरी कक्षा में ब्रह्मज्ञानी बना देती हूँ,तात्पर्य यह है कि जगत्कर्त्री और जगत् की हर्त्री तथा ईश्वरीय देवी है, जिसको वह चाहती है उसको ब्रह्मा बना देती है । अब इस बात को फल से जान लेना कि वह चाहती है किसको । वह चाहती है उसको जो उसको चाहता है अर्थात् विश्व के समस्त पदार्थों को लात मार कर केवल उसी का भजन, उसी का स्मरण

और उसी की पूजा में उसी के यथार्थ रूप को समझने वाला है तथा इन मंत्रों में जो देवी का महत्व बोधन किया है उसके अनुसार उसको जानकर उसकी उपासना करते हैं वे प्रथम मेधावी फिर ऋषि अनन्तर ब्रह्मा तक हो जाते हैं। इसलिये वेदों में देवी को ब्रह्मरूप माना है। जिस प्रकार वेदों में रुद्र को, विष्णु की ब्रह्मरूपता झलकती है और तीसरे मंत्र में सब स्त्रीलिंगवाचक शब्द हैं इसलिये वागधिष्ठात्री देवी ही इनके कहने वाली है ॥ ४ ॥ पुरुषों पर कल्याण करती हुई प्रेमभाव से देवी कहती है कि हे सखे ! जो बात श्रद्धा और यत्न से मिलती है उसे मैं तुझ से कहती हूं तू सुन। जो मनुष्य खाता है यह मेरी ही कृपा से खाता है, जो देखता है वह मेरी ही शक्ति से देखता है, और अधिक क्या कहूँ जो प्राण भी लेता है जिसके लेने में परिश्रम नहीं होता वह मेरी ही कृपा से श्वांस लेता है तथा दूसरे के कथित को समझता है यह सब से मेरी ही दया है। जो इस बात को नहीं मानते वे शीघ्र ही क्षीण हो जाते हैं। जो इस बात को हर समय समझते हैं वे उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ देवी कहती है कि जो रुद्र देवता ब्रह्मद्वेषी त्रिपुरासुर के मारने के लिये अपना धनुष प्रत्यंचा सहित करते हैं अर्थात् धनुष को चढ़ाते हैं उनके अंदर में ही उस धनुष को चढ़ाती हूँ। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कभी भी ब्राह्मणों का विरोध नहीं होना और हिंसाशील कभी नहीं होना जो विप्रविरोधी और हिंसाशील होते हैं उनके लिये रुद्र भगवान् का धनुष खिंचता है और जो देवी की स्तुति में लगे रहते हैं उनको मैं सगर्व करती हूँ अर्थात् उनकी सर्वत्र सिद्धि होती है और मैं समस्त विश्व में व्यापक रूप से विद्यमान् हूं ॥ ६ ॥

यद्यपि मंत्र इस प्रकरण में १८ हैं परन्तु तत्व की बात इन मंत्रों में भी आ गई है अतएव शेष मंत्र लिखना व्यर्थ है। इन्हीं मंत्रों से देवी का ईश्वर स्वरूप होना सिद्ध है।

* सूर्यदेव *

दूसरा ईश्वरस्वरूप सूर्यदेव है जिसको वेदों में ब्रह्मस्वरूप से माना है। गायत्री मंत्री में उस सूर्य की ही उपासना है। देखिये—

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्

सविता देवता संबंधी जो भर्ग तेज है उसका हम ध्यान करते हैं वह हमारी बुद्धि की प्रेरणा करे।

गायत्री मंत्र को छोड़ कर यजुर्वेद में लिखा है कि—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥

यजु० अ० ४० मं० १७

जो आदित्य में पुरुष है वह मैं ब्रह्म हूं।

गायत्री मंत्र से और यजुर्वेद के अंतिम मंत्र से यह सिद्ध है कि सूर्य में जो तेज है और सूर्य में जो व्यापक पुरुष है वह ब्रह्म है।

इन प्रमाणों से भिन्न वेद भगवान् सूर्यदेव की उपासना के लिये लिखता है कि—

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः विराजे नमः स्वराज्ये नमः सम्राजे नमः ।२२।

अथर्व० कां० १७। १। १

उदय होते हुये, उदय होनेवाले और उदित सूर्य को नमस्कार है। अस्त-होते हुये, अस्त होनेवाले और अस्त हुये सूर्य को नमस्कार है। तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को नमस्कार है।

* ब्रह्मा *

वेदों ने ब्रह्मा को ईश्वरस्वरूप माना है। देखिये——

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० १९। २३। ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरम्भ में बड़े द्युलोक को विस्तार किया है सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ है उस ब्रह्म से स्पर्धा करने कौन को समर्थ है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

मुण्डकोपनिषत्।

ब्रह्माजी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये, जो संसार के रक्षक और विश्व के बनानेवाले हैं।

◎ विष्णु ◎

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥

ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २

मृग की समान सो विष्णु भगवान् अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होते हैं। नृसिंह रूप से भीम, वराहादिरूप से पृथिवी में विचरने से कुचर, कैलासादि गिरि में स्थित रहने से गिरिष्ठ हैं। जिस विष्णु के बड़े तीन पाद विक्षेप में सम्पूर्ण भुवन कंपित होते वा बसते हैं।

❀ शिव ❀

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥

यजु० अ० १६ मं० २

हे गिरिशन्त! कैलाश पर्वत में यद्वा मेघ में यद्वा वेदवाणी में स्थित होकर मनुष्यों को सुख देने वाले रुद्र! तुम्हारा कल्याण देने वाला मंगलरूप पुण्यफल देने वाला शरीर है उस शान्तरूप शरीर से हमको देखिये।

वेद से सिद्ध है कि ईश्वर सृष्टि के आरंभ में इन पांच स्वरूपों को धारण करते हैं। ब्राह्मय पाद्म, वाराह, श्वेत, अग्नि, गारुड़, वृहत्, सारस्वत, ईशान, सत्पुरुष, अघोर, रथंतर, कूर्म, मानव, सत्य, लक्ष्मी, भविष्य, ये कल्प हैं इन कल्पों के ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, श्रीमद्भागवत देवीभागवत, अग्नि, स्कंद, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, बामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड इतने पुराण हैं। समस्त ही पुराणों में सृष्टि कर्ता ब्रह्मा हैं। सारस्वतकल्प में भगवती देवी ने सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को प्रेरित किया है। श्वेतकल्प में भगवान् शंकर ने ब्रह्मा से कहा कि तुम सृष्टि रचो। वाराहादि अनेक कल्पों में विष्णु ने ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी है। ब्रह्मा अन्य अन्य ईश्वर स्वरूपों से सृष्टि रचने के लिये प्रेरित हुआ है किंतु सृष्टि ब्रह्मा ने ही रची है। आप किसी भी पुराण को उठाकर देखिये समस्त पुराणों में सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा ही हैं। कई एक सज्जन यह प्रश्न कर बैठते हैं कि रुद्र का जन्म ब्रह्मा से हुआ फिर शिव ने किस अधिकार से ब्रह्मा को सृष्टि

रचने की आज्ञा दी । ब्राह्मय कल्प में ब्रह्मा के द्वारा शंकर प्रादुर्भूत हुये हैं किन्तु जिस श्वेतकल्प में शंकर ने ब्रह्मा को सृष्टि रचने की आज्ञा दी है उस कल्प में ब्रह्मा के द्वारा शंकर का प्रादुर्भूत होना नहीं है इस कल्प में शंकर रूप की प्रधानता है और सबसे प्रथम ईश्वर शंकर रूप से ही प्रकट हुआ है जिसको सन्देह हो वह शिवपुराण के सृष्टि खंड को देख ले । यद्यपि पुराणों में एक ही प्रकार की सृष्टि है और एक ही ब्रह्मा रचयिता हैं इतना होने पर भी आज संसार में यह भ्रम फैलाया जाता है कि पुराणों ने देवी, विष्णु, सूर्य्य, शंकरादि अनेक सृष्टिकर्ता माने हैं इस मिथ्या भ्रम के लिये हम यही कह सकते हैं कि मनुष्य पुराणों को पढ़ते नहीं किंतु अपने मन से मिथ्या कल्पनायें तैयार कर जानबूझ कर पुराणों को अशुद्ध बतलाने का उद्योग कर रहे हैं ।

(२) कई एक सज्जनों का कथन है कि ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि का रचा जाना वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध है ।

कहने के लिये प्रत्येक मनुष्य जो चाहे सो कह सकता है इसी सिद्धान्त का आश्रय लेकर मनुष्य मनमानी कल्पनायें उठाते हैं किंतु अंत में सत्य सत्य ही रहता है ।

भगवान् मनु सृष्टि क्रम को इस प्रकार लिखते हैं—

ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।

तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ १२॥
ताभ्यां स शकलाभ्याँ च दिवं भूमिं च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३।

मनु० अ० १

प्रलय काल के अनन्तर स्वयं प्रकट होनेवाले भगवान् इस छिपे हुये संसार को प्रकट करने के लिये महाभूतादिकों में वर्तमान है बल जिसका अंधकार को दूर करते हुये प्रकट हुये ॥६॥ जो भगवान् अतीन्द्रिय अग्राह्य है, जो सूक्ष्म है, अव्यक्त है, सनातन है, जो सर्वभूतमय है, जो अचिन्त्य है वह ईश्वर अपने आप महत्तत्वादि कार्यों से प्रकट हुआ ॥ ७ ॥ विविध प्रजा रचने के लिये उस परमात्मा ने प्रथम ध्यान किया फिर जल बनाये और उन जलों में भावी सृष्टि के कारण को रक्खा ॥ ८ ॥ वह जो जलमय अंड है सुवर्णकान्तिवाला सूर्य के तुल्य कान्तिवाला हुआ उस अंड में स्वयं ईश्वर ब्रह्मारूप से प्रादुर्भूत हुआ जो ब्रह्मा समस्त संसार का पितामह है ॥९॥ जल को नारा कहते हैं क्योंकि यह नर ईश्वर का पुत्र है वह जल प्रथम ईश्वर के रहने का स्थान हुआ इसी से ईश्वर का नाम नारायण है ॥१०॥ जो संसार का कारण है और जो अव्यक्त है, जो नित्य है तथा सत् और असत् का आधार है उससे रचा हुआ जो पुरुष है उसको "ब्रह्मा" कहते हैं ॥११॥ वह जो अंड है उस अंड में भगवान् बहुत काल तक वास करके अपने आत्मा के ध्यान से उस अंड के दो टुकड़े कर दिये ॥ १२ ॥ उन टुकड़ों से ब्रह्मा ने दिवि, स्वर्ग और भूमि का निर्माण किया। मध्य में आकाश और आठ दिशा तथा जलों के स्थान रचे ॥ १३ ॥

मनुस्मृति से यह सिद्ध है कि प्रलयकाल के अनंतर अव्यक्त ईश्वर ब्रह्मा बन कर प्रकट हुआ और उसने द्युलोक, पृथ्वी, आकाश, जल का स्थान और आठों दिशाओं का निर्माण किया। जिस प्रकार स्मृतियों में सृष्टि रचयिता ब्रह्मा है उसी प्रकार वेदों में भी सृष्टि रचयिता ब्रह्मा है। अथर्ववेद [१९। २३। ३०] के इस मंत्र को हम पुराणवर्म में दो स्थान में लिख आये हैं प्रथम तो ईश्वरस्वरूप में

इस मंत्र से ब्रह्मा का अवतार होना दिखलाया है द्वितीय वार इसी प्रकरण में ऊपर जहां ईश्वर के पांच स्वरूप दिखलाये हैं वहां पर इसी मंत्र से ब्रह्मा को ईश्वरस्वरूप दिखलाया है अतएव इस मंत्र का तृतीय वार दिखलाना व्यर्थ है। इस मंत्र में यह दिखलाया गया है, कि "ब्रह्म के बराबर किसी में पराक्रम नहीं। ब्रह्म सब से ज्येष्ठ है उस ब्रह्म ने ही दिव को रचा है। समस्त भूतों से प्रथम वह ब्रह्म ही ब्रह्मारूप से प्रकट हुआ"। सिद्ध हो गया कि वेद में भी ब्रह्मा के द्वारा ही सृष्टि की रचना है। जब धर्मशास्त्र और वेद ने ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि रचना लिखी, यही बात पुराणों ने लिखी फिर पुराणों में लिखी हुई सृष्टि रचना वेद विरुद्ध किस प्रकार हो गई ?

(३) किसी किसी सज्जन का यह कथन है कि यह सब ठीक है किन्तु पुराणों में मनुष्य सृष्टि बड़ी आश्चर्यजनक है, श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा की गोदी से नारद, अंगुष्ठ से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु उत्पन्न हुए।

संसार में जितने ईश्वर के माननेवाले मजहब हैं उन सब ने ही आरंभिक सृष्टि को ईश्वर की मानसिक सृष्टि माना है यदि ऐसा न मानें तो फिर सृष्टि के आरंभ में उत्पत्ति में अन्योन्याश्रय दोष आ जावेगा अर्थात् उस समय में मनुष्य स्त्रियां हैं नहीं, जब मनुष्य स्त्रियां ही नहीं तो बच्चे पैदा कैसे होंगे और जो बच्चे न होंगे तो फिर पुरुष स्त्रियाँ कहाँ से होंगी अतएव ईश्वर माननेवाले सभी मजहबों ने आरम्भ की सृष्टि को ईश्वर के मन से उत्पन्न हुई सृष्टि माना है। साइंसवादी जो ईश्वर को नहीं मानते उन्होंने भी आरंभिक सृष्टि को अयोनिज माना है। जिस प्रकार संसार के समस्त सृष्टिक्रम आरंभिक सृष्टि को अयोनिज मानते हैं उसी प्रकार पुराणों ने भी आरंभिक सृष्टि को अयोनिज माना है। हमको नहीं मालूम कि किसी भी सृष्टिक्रम को दोष न लगा कर पुराणों के ही सृष्टिक्रम को क्यों दोष लगाया जाता है। पुराणों की पुष्टि के लिये "वैशेषिक दर्शन" लिखता है कि—

तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ॥

वैशे० द० अ० ४ आ० २ सू० ६

पिछले सूत्रों में कहा हुआ शरीर योनि से उत्पन्न होनेवाला और बिना योनि के

उत्पन्न होनेवाला दो प्रकार का है।

पिछले पांच सूत्रों में जो पृथिवी आदि द्रव्यों को शरीर, इन्द्रिय और विषय नाम से तीन प्रकार का बताया गया है उन तीनों में से शरीर दो प्रकार का होता है योनिज और अयोनिज जल अग्नि और वायु से उत्पन्न शरीर अयोनिज होते हैं तथा पृथिवी से उत्पन्न शरीर योनिज और अयोनिज भी होते हैं यह प्रशस्तपाद आचार्य का मत है। फिर योनिज भी दो प्रकार के होते हैं (१) जरायुज और (२) अंडज। गर्भ के लपेटने वाली झिल्ली जरायु कहाती है उससे जन्म लेनेवाले मनुष्य पशु और मृगों का शरीर जरायुज कहाता हैं। एक प्रकार के गोले को अण्डा कहते हैं जो भीतर से पीला होता है और उसी के भीतर शरीर बनता है, उसके टूटने से जिनके शरीरों का जन्म होता है उन पक्षियों और सांपों का शरीर अण्डज कहाता है। फिर अयोनिज शरीर भी चार प्रकार के होते हैं सांकल्पिक सांसिद्धिक, स्वेदज और उद्भिज। परमात्मा के संकल्प से प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होनेवाले ऋषि, मुनि, महर्षि और साधारण मनुष्यों के तथा पशु आदि के शरीर सांकल्पिक कहाते हैं। योगियों को जो योग द्वारा सिद्धियें प्राप्त होती हैं उन सिद्धियों के बल से योगी लोग जिस शरीर को चाहते हैं उसको धारण करते हैं वे उनके शरीर सांसिद्धिक कहाते हैं। डांस, मच्छर, ईत और अनेक प्रकार के जन्तु सील से उत्पन्न होते हैं, उनके शरीर स्वेदज कहाते हैं वृक्ष वनस्पति, गुल्म, वीरुध, लता, घास, फूस आदि जो पृथिवी को फोड़ कर उपजते हैं उनके शरीर उद्भिज कहाते हैं।

सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले जीवों के शरीर परमात्मा के संकल्प मात्र से अयोनिज उत्पन्न हो जाते हैं, यह बात समझ में नहीं आई, क्योंकि उसका कारण नहीं बताया गया। अब समाधान समझिये—

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ॥ ७ ॥

सर्गारंभ के शरीर जिस कारण से उत्पन्न होवें उस कारण की दिशा और देश पूर्व नियत न होने से उनको अयोनिज ही मान सकते हैं।

सृष्टि के आरंभ में किसी दिशा वा देश में किसी जीव की कोई योनि शेष नहीं थी और प्रकृति जड़ होने से इस चमत्कार चातुरीय युक्त सृष्टि को उत्पन्न

कर ले, यह संभव नहीं। इसलिये चेतन परमात्मा के संकल्प से उपादान कारण प्रकृति में से इस आश्चर्य रूप जगत् का उत्पन्न होना माना जा सकता है, इस लिये सर्गारंभ में उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सब प्राणियों के देहों को परमात्मा के संकल्प से उत्पन्न होने से सांकल्पिक कहा गया।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो समान कारण से उत्पन्न हुये समस्त शरीर एक से होते भिन्न भिन्न और विलक्षण सृष्टि की उत्पत्ति का क्या कारण है?

उत्तर—धर्म विशेषाच्च॥

विशेष धर्म से और विशेष अधर्म से।

सृष्टि के आरंभ में जो जीव भिन्न भिन्न देहों को धारण करते हैं उन्होंने पूर्वकल्प में भिन्न भिन्न प्रकार के धर्म विशेष और अधर्म विशेष किये थे, बस उन्हीं धर्माधर्मों के विशेष होने से मनुष्य पशु पक्षी आदि एक दूसरे से विलक्षण शरीर उत्पन्न हुये।

अर्थात् सातवें सूत्र में कहा हुआ ही एक हेतु नहीं है जिससे दिशा और देश का पूर्व कारण में भेद न होने से सबके एक से देह उत्पन्न होने की शंका बन सकती किन्तु दूसरा हेतु भी जो इस आठवें सूत्र में कहा गया है वह धर्म और अधर्म विशेष है क्योंकि सब जीवों के धर्म और अधर्म आपस में समान नहीं होते इसलिये धर्माधर्म का फल भोगने के लिये जो देह उनको दिये जाते हैं वे सब ही एक से नहीं होते किन्तु अपने २ किये हुये धर्म विशेष और अधर्म विशेष से सबको भिन्न भिन्न प्रकार के देह मिलते हैं। सर्गारंभ के शरीरों के अयोनिज होने में अन्य भी हेतु है यथा—

समाख्याभावाच्च ॥९॥

प्रसिद्ध नाम पाये जाने से भी।

भृगु, बसिष्ठ, गौतम, भरद्वाज, अंगिरा जमदग्नि आदि कितने ही ऋषियों के नाम सदा से प्रसिद्ध हैं कि जिनका कोई पिता वा माता परमात्मा के अतिरिक्त नहीं था। इस ऐतिहासिक प्रमाण से भी सांकल्पित अयोनिज शरीर सिद्ध होते हैं।

संज्ञाया आदित्वात् ॥१०॥

संज्ञा के सबसे प्रथम होने से।

बसिष्ठ, अंगिरा, कश्यपादि की संज्ञा (नाम) सबसे प्रथम पाये जाते हैं।

उनके पूर्व उनके पिता आदि का नाम नहीं पाया जाता। इससे उनको अयोनिज मानना बनता है।

पुराणों ने ऋषियों को अयोनिज सृष्टि बतलाया है। जैसे पुराणों ने ऋषियों को अयोनिज लिखा है इसी भांति वैशेषिक दर्शन ने भी ऋषि सृष्टि को सांकल्पिक सृष्टि माना है नहीं मालूम इतने पर भी पुराणों में कही हुई मानसिकसृष्टि मिथ्या कैसे हो जाती है। वेदों में भी मानसिक सृष्टि कही गई है प्रथम वेदोक्त मर्त्यलोक की सृष्टि का अवलोकन करें—

सा ह इयमीक्षां चक्रे कथं नु मां आत्मन एव जनयित्वा संभवति, हंत तिरोसानीति। सा गौरभवत् वृषभ इतरः। स तामेव समभवत्ततो गावोऽजायंत।

पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बनाकर मुझसे रमण किया, इस खेद से वह छिप गई। छिप कर गौ हुई। पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया। उससे गोजाति उत्पन्न हुई।

बडवा इतरा अभवदश्व इतरः गर्दभी इतरा अभवद्गर्दभ इतरः, स तामेव समभवत्तत एकशफा अजायन्त। अजा इतरा अभवत् वस्त इतरः। अविरितरा मेष इतरः। स तामेव समभवत्ततः अजा अवयश्च अजायन्त। यदिदं किं च मिथुनं अपिपीलिकाभ्यः तत्सर्वमसृजत।

शतपथ।

फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना। पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टाप वाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुये। फिर पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना। पत्नी फिर भेड़ बनी पुरुष मेढ़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी इसी प्रकार दोनों चींटी तक बनते गये और संसार बनता गया।

वेदोक्त मर्त्यलोक की सृष्टि को आप देख चुके अब ऋषि सृष्टि को देखिये। मनु जी लिखते हैं कि—

मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥

मनु० अ० १ श्लोक ३५

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद । ब्रह्मा ने इन दश पुत्रों को रचा ।

जिस प्रकार मरीच्यादि ऋषि पुराणों में अयोनिज लिखे हैं उसी प्रकार इनको मनुस्मृति ने भी अयोनिज लिखा है । इस विषय में वेद भी देखिये—

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम् ॥

मुण्डकोपनिषत्

समस्त विद्याओं का अधिष्ठान ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा ने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा से कहा । जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मा ने अथर्वा को बतलाई थी वही ब्रह्मविद्या अथर्वा ने अंगिरा से कही।

यहाँ पर अथर्वा को ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है और ब्रह्मा ने ब्रह्मा शरीर से अमैथुनी ही सृष्टि रची है अतएव सिद्ध है कि आरंभ में जो ब्रह्मा ने ऋषियों की रचना की है वह सांकल्पिक (संकल्पमात्र की) सृष्टि है । यजुर्वेद कहता है कि देव-सृष्टि, अयोनिज होती है—

ये देवा मनोजाता मनोयुजो
दक्ष क्रतवस्तेनोऽवन्तु ते नः पांतु तेभ्यः स्वाहा ॥ यजु० ४।११

जो देवता मन से उत्पन्न होते हैं और जो मन से संबंध रखते हैं तथा संकल्पितार्थ करनेवाले हैं वे हमारी रक्षा करें और वे हमारे यज्ञ को सुरक्षित करें उनके लिये हम आहुति देते हैं ।

सिद्ध हो गया कि साँसारिक सृष्टि योनिज और अयोनिज भेद से दो प्रकार की है सृष्टिकाल के आरम्भ में जो ऋषियों की उत्पत्ति है वह सांकल्पिक अयोनिज है और इसके पश्चात् फिर योनिज सृष्टि है किंतु विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, और गंधर्व किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत । ये जो दशभेदवाली देवसृष्टि है यह मानसिक साँकल्पिक है, यह योनिज नहीं है ।

* आयु *

(१) कई एक सज्जनों का यह प्रश्न है कि पुराणों में मनुष्यों की आयु बहुत अधिक लिखी है उतनी आयु वर्तमान समय में किसी भी मनुष्य की हो नहीं सकती अतएव मिथ्या आयु लिखनेवाले पुराण किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकते।

उत्तर इसका यह है कि सृष्टि के आरंभ में जो ऋषि और देवता उत्पन्न हुये मृत्यु का पचड़ा उनके पीछे नहीं लगा। सभी ऋषि और सभी देवता मृत्यु से सर्वथा मुक्त हो गये। सृष्टि के आरम्भ के पश्चात् जो ऋषि उत्पन्न हुये उनमें से भी कोई कोई ऋषि मृत्यु के पंजे से बच गये। इसका प्रमाण वेद है, देखिये—

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः
श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रि-
रवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥१५॥
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ
भरद्वाज गोतम वामदेव।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः
सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

अथर्व० १८। ३। ३। मं० १५—१६

कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ़, अगस्त्य, श्यावाश्व सौभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप, वामदेव ये सब पितर हमारी रक्षा करें॥१५॥ हे विश्वामित्र; हे जमदग्ने, हे वसिष्ठ, हे भरद्वाज, हे वामदेव, आप हमारे पितर हैं, हमको आनंदित करें; हम आपको नमस्कार करते हैं॥ १६ ॥

इनमें से कुछ ऋषि सृष्टि के आरंभकाल के हैं और कुछ पश्चात् के हैं।

वेद ने मनुष्यों को आज्ञा दी है कि इनसे अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना करें। सिद्ध हो गया कि ये जीवित ऋषि हैं और इनसे रक्षा प्रार्थनीय है।

सृष्टि के आरम्भकाल के कुछ पश्चात् ब्राह्मणों का मृत्यु होने लगा। मनु ने विचारा कि यह क्या हुआ, ब्राह्मण क्यों मरने लगे। विवेचन करने से मनु इस फल पर पहुंचे कि—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥

मनु० अ० ५ श्लो० ४

वेदों का न पढ़ना, आचार को छोड़ देना, शरीर में सुस्ती रखना, दूषित अन्न खाना, इसी से ब्राह्मण मरते हैं। वेदाभ्यास में ब्रह्मचर्य्यव्रत का पूर्ण पालन करना पड़ता है ऐसा करने से फिर मनुष्य मरता नहीं। "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत अथर्व० का० ११ अ० ३ सू० ५ मं० १८" ब्रह्मचर्य तप के प्रभाव से देवताओं ने मृत्यु का क्षय कर दिया। मर्त्यलोक में भी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से भीष्म इच्छामृत्यु हुये। जिस प्रकार आयुवृद्धि में ब्रह्मचर्य सहायक होता है इसी प्रकार आचार, आलस्यत्याग और पवित्रान्न भोजन आयुवृद्धि में सहायक होते हैं।

जो लोग इन चार वस्तुओं का पूर्ण सेवन करते हैं उनकी आयु अधिक और जो सेवन नहीं करते उनकी आयु न्यून होती है।

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की आयु अधिक होना और फिर जैसे जैसे सृष्टि प्राचीन होती जावे वैसे २ देहधारियों की आयु न्यून होते जाना यह प्राकृतिक है। जैसे जिस जमीन में कभी खेती नहीं हुई उसको जोत कर यदि कोई खेती करेगा तो आरम्भकाल में खेती बड़े जोर शोर से होती रहेगी और फिर जब उस खेत में खेती होते बहुत काल बीत जावेगा तो उसकी पैदावार पेड़ और अन्न की लम्बाई मोटाई कम होती जायगी क्योंकि प्रथम उस खेत के मृण्मय परमाणु बलवान् थे और अब निर्बल हो गये हैं। इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भकाल में पाँचतत्वों के परमाणु बलवान् रहते हैं अतएव शरीरधारियों के शरीर लम्बे चौड़े अधिक मजबूत और बहुत बड़ी उम्र वाले होते हैं फिर जैसे २ सृष्टि पुरानी होती जाती है

काल के वेग से मनुष्यों की श्वासवायु फैलने से संसार में अन्य दूषित सड़े हुए पदार्थों के संसर्ग से, मनुष्यकृत अनेक हानिकारक यन्त्रों से उत्पन्न हुये धूआं से, पंचतत्वों के न्यूनाधिक होने से तथा परमाणुओं के प्राचीन पड़ने से इस संसार के तत्व दिनों दिन निर्बल होते जाते हैं जैसे जैसे ये निर्बल होते हैं वैसे ही वैसे मनुष्यों के शरीर छोटे, बलहीन, हीनआयुवाले होते जा रहे हैं।

कई एक सज्जनों का यह सिद्धान्त है कि सांसारिक परमाणु जैसे सृष्टि के आरंभ में थे वैसे ही अंत तक रहेंगे अतएव सृष्टि के आरंभ से और सृष्टि के अंत तक शरीरधारियों की व्यवस्था समान रहती है।

उत्तर—यद्यपि साधारण मनुष्य इस बात को मान सकता है कि सृष्टि के आरंभ से अंत तक परमाणुओं की शक्ति एक होती है किन्तु सूक्ष्म विचार रखने वाला विज्ञानवेत्ता मनुष्य इस बात को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है कि सृष्टि के आरंभ काल में परमाणुओं में शक्ति की अधिकता और फिर दिनोंदिन शक्ति का ह्रास होते होते अंत में परमाणु सर्वथा निर्बल हो जाते हैं। इसको इस प्रकार समझिये कि सृष्टि के आरंभ में परमाणुओं में वह प्रबल बल रहता है कि जिससे प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुओं से ठस कर घनीभूत बनकर संसार की रचना कर देते हैं और अंतकाल में परमाणु इतने कमजोर होते हैं कि अब वे घनीभूत रहते हुए भी अपनी दशाको स्थायी नहीं रख सकते। शक्तिहीन परमाणु बिखर जाते हैं जिससे संसार बिगड़ जाता है इसी बिगड़ने का नाम प्रलय है। फिर इतने बिगड़ जाते हैं कि अपने स्वरूप को खोकर कारण में मिल जाते हैं। कोई भी विचारशील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि परमाणु प्रयलकाल में उतने ही बलवान् रहते हैं जितने बलवान् वे सृष्टि के आरंभ में थे। यदि तुल्य बल मानेंगे तो फिर प्रलय न हो सकेगी; प्रलय होती देख यह मानना ही पड़ेगा कि इस समय परमाणुओं की शक्ति क्षय हो गई और यह भी मानना ही पड़ेगा कि परमाणुशक्ति एक दम नाश नहीं हुई किन्तु धीरे धीरे घटी है। अब सिद्ध हो गया कि आरंभ काल में परमाणु पूर्ण बलवान् रहते हैं और फिर कुछ दिन के बाद इनका बल घटने लगता है अंत में सर्वथा बलहीन होकर अपने स्वरूप को खो बैठते हैं। अब मानना पड़ेगा कि परमाणुओं की शक्ति के अनुसार ही देहधारियों के आयु और शरीर

होंगे। इसी विज्ञान को लेकर पुराण सत्ययुग में मनुष्यादिकों की आयु बहुत बड़ी लिखते हैं और कलियुग में न्यून लिखते हैं।

कई एक सज्जनों का यह भी प्रश्न है कि जब जमीन की शक्ति घटती है तब काश्तकार लोग उसमें खाद देकर फिर जमीन की शक्ति को बढ़ा लेते हैं। इस प्रकार क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे संसाररूपी क्षेत्र की शक्ति बढ़ जावे।

उत्तर—इस विषय में शास्त्रों का विचार यह है कि यहां खाद के देने से खेत की शक्ति तो नहीं बढ़ती किन्तु पौधों की शक्ति बढ़ जाती है अर्थात् समस्त संसार के परमाणु तो खाद से शक्तिशाली नहीं बन सकते किन्तु पौधे के परमाणु शक्तिशाली बनकर पौधे को मजबूत कर देते हैं। अभिप्राय इसका यह है कि खाद देने से देहधारियों के शरीर लम्बे, चौड़े मजबूत और अधिक आयु वाले हो जाते हैं। इस कार्य सिद्धि में सहायक खाद ब्रह्मचर्यव्रत पूर्वक वेदाभ्यास और आचार, फुर्ती (आलस्य त्याग) तथा पवित्र अन्न का खाना। जिस समय ये शरीरों को प्राप्त होते हैं शरीरों की आयु बहुत बढ़ जाती है। जैसे जैसे ये कम मिलते हैं वैसे ही वैसे आयु कमती होती जाती है और जब इनका अभाव होजाता है तब आयु बहुत न्यून परमाणुओं की शक्ति के अनुसार रह जाती है सत्ययुग में इन चारों पदार्थों का पूर्ण सेवन होता है, त्रेता में लापरवाही होकर कुछ सेवन घट जाता, द्वापर में आधे के तुल्य होता है, कलियुग में आयुदायक इन चारों पदार्थों को पोपों के गपोड़े बतला कर मनुष्य स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। जैसा जैसा इन खाद्य पदार्थों का अनुष्ठान होता है पुराण वैसी ही आयु बतलाते हैं। सतयुग में बहुत अधिक, त्रेता में उससे कम, द्वापर में और न्यून, कलियुग में हीन आयु इस तात्विक अनुसंधाधान को लेकर ही पुराणों ने मनुष्यों की आयु लिखी है। यह असत्य नहीं है किन्तु प्रत्यक्षवाद से दूषित हुआ मनुष्यों का मन इसके विचार पर नहीं पहुँच सकता।

❀ योगियों की आयु ❀

साधारण मनुष्यों की आयु का विचार ऊपर हो चुका अब योगियों की आयु का निर्णय देखिये। योगदर्शन कहता है कि—

उदानजयाज्जलपंककण्टकादिष्वसंगउत्क्रान्तिश्च।

योग द० विभूति पा० सू० ३८

उदानवायु विशेष के जीतने से जल, कीचड़ और झाड़ कांटे आदि में फंसना तथा उत्क्रान्ति स्वेच्छानुसार शरीर त्याग होता है।

योगदर्शन के इस सूत्र से यह उत्तम रीति से सिद्ध हो जाता है कि योगी इच्छा मृत्यु होते हैं। जब तक उनकी इच्छा हुई तब तक उन्होंने शरीर रक्खा और जब उनकी इच्छा शरीर त्याग की हुई तब शरीर छोड़ दिया। योगी मृत्यु के बश में नहीं आ सकता मृत्यु ही योगी के बश में रहता है। इस सूत्र की पुष्टि में वेद कहता है कि—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥ १२॥

श्वेताश्वतरोपनिषत् अ० २

(पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते) अपने शरीरस्थ पृथिवी, अप, तेज वायु और आकाशरूप पंचतत्वों के निकृष्ट मलिनांश का नाश होकर शुद्धांश की प्रबलता वा उन्नति होने से इस प्रकार (पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते) दिव्य गंधादि विषयों में प्रकृष्ट साक्षात् वृत्ति होने पर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अति दूर के शब्दादि विषयों का साक्षात् बोध होने की शक्ति प्रकट होने पर (तस्य योगाग्निमयं प्राप्तस्य न रोगो न जरा न मृत्युः) पंचतत्व की शुद्धि द्वारा योगाग्निरूप शरीर को प्राप्त हुये उस योगी पुरुष को न रोग न निर्बलता और न मृत्यु सताता है।

भावार्थ यह है कि प्रत्येक का सार ही दृढ़ व चिरस्थायी होता है इसी से औषधि में वनस्पतियों के सार निकाले जाते हैं। सार सर्वत्र ही शुद्धांश कहाता व चिरस्थायी होता है। वैसे ही तपोबल व योगाभ्यासादि के द्वारा शरीर के मल नष्ट होकर सारभूत अंश रह जाते हैं सारभूत अविनाशी हीरा आदि के तुल्य होकर योगी के शरीर को रोग जरा और मृत्यु आदि बाधा नहीं पहुंचा पाते।

कई एक सज्जनों का कथन है कि "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्०। यजु०३६। २४" के मन्त्र में मनुष्यों के लिये सौ वर्ष का ही जीना लिखा है फिर हम यह

कैसे मान लें कि मनुष्यों की बड़ी २ आयु होती थी ।

इसका उत्तर यह है कि जो ऐसा कहते हैं उनको उपरोक्त वेदमन्त्र का अर्थ ही नहीं आता 'पश्येम शरदः शतम्' और 'शृणुयाम शरदः शतम्' इत्यादिक अन्वय करने के पश्चात् फिर इस मंत्र में पड़ा है "शरदः शताद्भूयः शरदः शतम्" यानी सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष जीवें, सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष सुनें, सौ वर्ष के बाद सौ वर्ष बोलें । इसके पश्चात् फिर "शताद्भूयः शतम्" अर्थात् वेद मंत्र में पहिले यह प्रार्थना की है कि हम सौ वर्ष जियें, सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष सुनें उस सौ वर्ष के बाद फिर हम सौ वर्ष जियें, सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष सुनें उसके पश्चात् फिर देखें–सुनें–जीवें, इस प्रकार से प्रार्थना है । केवल सौ वर्ष का जीना–सुनना–बोलना जो इस मन्त्र में मानते हैं या तो वे मन्त्र के अर्थ को नहीं जानते और या जान बूझ कर वेदमन्त्र को प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर रख रहे हैं । दोनों अवस्थाओं में किसी भी अवस्था को लेकर केवल सौ वर्ष की अवधि करना यह नितान्त वेदविरुद्ध है । वेद का अभिप्राय यह है कि जब तक तुम जियो तब तक बोलो सुनो और सौ सौ वर्ष को आगे रख कर उसमें प्रार्थना की गई है ।

सिद्ध हो गया कि योगशक्ति से अधिक आयु होना तो एक तुच्छ बात है । योगशक्ति तो मनुष्य को अमर बना देती है । प्राचीन काल में जितने भी ऋषि, मुनि और राजा बड़ी बड़ी आयुवाले हुये हैं वे सब योगी थे और योग के प्रभाव से ही उन्होंने बहुत बड़ी बड़ी आयु पाई हैं इसमें हुज्जतबाजी को किंचित् भी अवकाश नहीं है ।

कई एक मनुष्य यह कहने को तैयार हो जावेंगे कि हम इस बात को नहीं मानते किन्तु उनका यह कथन प्रमाद मात्र है । यदि कोई मनुष्य योगी बने और फिर अपने अनुभव से यह सिद्ध करे कि योग से आयु नहीं बढ़ती तो उसकी बात मान्य हो सकती है किन्तु जो बिना पढ़े लिखे ही अमान्य बतलाते हैं उनका अमान्य बतलाना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता । आज भी योगियों में आश्चर्यजनक सिद्धियां पाई जाती हैं फिर हम कैसे मान लें कि योगविद्या ही असत्य है ।

भूगोल

(१) कई एक सज्जनों का कथन है कि पुराणों का भूगोल सर्वथा भ्रष्ट और अशुद्ध है। जिन पुराणकर्त्ताओं को भौगोलिक ज्ञान नहीं आता था उनके बनाये पुराण कैसे सत्य हो सकते हैं ?

उत्तर—जो लोग संस्कृत का एक अक्षर नहीं पढ़ते और अपनी पढ़ी हुई थोड़ी सी विद्या से अपने को संसार से अधिक विद्वान् मान बैठे हैं वे ही लोग पुराणों के भूगोल को भ्रष्ट और असत्य बतलाते हैं।

वास्तविक में पुराणवर्णित भूगोल का एक एक अक्षर सत्य है। आज तक जितने मनुष्य संसार में हुये किसी में भी यह शक्ति न हुई कि पुराण के भूगोल को भ्रष्ट तथा असत्य सिद्ध कर दें और आगामी काल में जो मनुष्य संसार में उत्पन्न होंगे वे भी पौराणिक भूगोल की सत्यता में धब्बा नहीं लगा सकेंगे। हमारा यह दावा है कि पौराणिक भूगोल सर्वथा सत्य है और जो उसको अशुद्ध बतलाते हैं वे महामूर्ख मनुष्य नहीं हैं किन्तु नरपशु हैं।

बिना लिखे पढ़े लोग पुराण वर्णित भूमि को अपनी भूमि से मिलाते हैं जब व्यास, परिधि, क्षेत्रफल में बड़ा अन्तर पाते हैं तब पुराणों के भूगोल को अशुद्ध कह बैठते हैं। जिसको पौराणिक भूगोल का ज्ञान करना हो वह मनुष्य प्रथम पुराणों को पढ़े तब उसको पता लगेगा कि जिस भूमि पर हम रहते हैं ऐसी ऐसी सहस्रों भूमियां पुराण वर्णित भूगोल के पेट में समा गई हैं इतने बड़े भूगोल को जो केवल पृथ्वी मात्र का भूगोल समझ बैठे उससे अधिक मूर्ख संसार में कौन हो सकता है।

प्रथम हम इस बात का प्रमाण देंगे कि पुराणों का भूगोल केवल उस पृथ्वी का नहीं है जिस पर हम रहते हैं। इसके पश्चात् यह सिद्ध करेंगे कि पौराणिक भूगोल में कितनी पृथिवी का वर्णन है, फिर हम आर्ष प्रमाणों से यह भी लिखेंगे कि जिस भूमि पर हम रहते हैं उसका क्या मान है।

पुराण वर्णित भूगोल केवल इसी पृथ्वी का नहीं कहता जिस पर हम रहते हैं इसके प्रमाण नीचे देखिये:—

(१) एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य ।

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६ श्लो० ७

इन नौ खण्डों में इलावृत नामक खंड सबके बीच में है, उसमें कुल पर्वतों का राजा मेरुपर्वत है, वह भूमण्डल रूप कमल का कर्णिका रूप है और जम्बू द्वीप की समान (एक लाख योजन) ऊंचा तथा जड़ से शिखर पर्यन्त सब सुवर्णमय है ।

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा पर्वत नहीं है जिसकी लंबाई चार लाख कोश हो इससे सिद्ध है कि पुराण जिसको वर्णन कर रहा है वह कोई बड़ी पृथ्वी है । फिर उस चार लाख कोश ऊंचे सुमेरु पर्वत पर क्या है इसको भी विचारिये—

मेरोर्मूर्द्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥ २८ ॥ तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२६॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

मेरुपर्वत के माथे पर मध्यभाग में रची हुई दश सहस्र योजन लम्बी और मोटी, समान, चौकोर, भगवान् ब्रह्माजी की सुवर्णमय नगरी है ऐसा कहते हैं ॥२८॥ उस ब्रह्मपुरी के चारों ओर पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि आठ लोकपालों की आठ नगरी, उन लोकपालों के वर्ण के अनुसार, ब्रह्माजी की नगरी से चौथाई (अढ़ाई २ सहस्र योजन) में बनी हुई हैं । [ब्रह्माजी, इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान इन नौ दिक्पालों की नगरियों के नाम क्रम से मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णाङ्गना, श्रद्धावती, गंधवतीमहो,दया और यशोवती ये पुराणों में कहे हैं] ॥२९॥

जिस जमीन पर हम रहते हैं उसके ऊपर न तो एक लाख योजन ऊंचा कोई पर्वत है और न आठ दिक्पालों की कोई नगरी ही है। इस जमीन पर तो बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुसल्मान, हिन्दू यही रहते हैं और यह जमीन जिस पर हम हैं १५८१ योजन से ऊंची नहीं है। फिर हम कैसे मान लें कि पुराण जिस पृथ्वी का वर्णन करते हैं वह हमारे रहने की भूमिमात्र है। लम्बाई, चौड़ाई के ध्यान में न रखना, पुरी निर्माण भी न देखना, बलात्कार अपने रहने की पृथ्वी मान लेना इससे अधिक भूल क्या हो सकती है।

(२) मन्दरो मेरुमंदरः सुपार्श्वः कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा। मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भ गिरय उपक्लृप्ता॥ ११॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजंबूकदंबन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वत केतव इवाधि सहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटप विततय शतयोजन परिणाहाः॥ १२॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

मेरुपर्वत की पूर्व आदि चारों दिशाओं में मंदर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद ये चार मेरुपर्वत के आधारभूत (टेकन) सुवर्ण के पर्वत दश दश सहस्र योजन विस्तारवाले और ऊंचे परमेश्वर ने रचे हैं॥ ११॥ इन चार पर्वतों पर क्रम से एक पर एक इस प्रकार आम, जामुन, कदंब और बड़ के प्रचंड वृक्ष, मानों पर्वतों की ध्वजा हैं ऐसे प्रतीत होते हैं; ११ सौ योजन ऊंचे और ११ सौ योजन शाखाओं के विस्तारवाले हैं, उनके शरीर का घेर सौ सौ योजन विस्तार का है॥ १२॥

जिस पृथ्वी पर हमारा निवास है उस पृथ्वी पर न तो ऐसे चार पर्वत ही हैं और न इतने बड़े बड़े वृक्ष ही हैं। फिर हम किस अवलम्ब से कह सकते हैं कि पुराण हमारी ही पृथ्वी का वर्णन करता है और इन चार पर्वतों पर जो दूध, शहद, ईख का रस, शुद्धजल के चार तालाब बतलाये गये हैं ऐसे तालाब इस मनुष्य लोक में कहीं पर भी नहीं हैं। हां, ऐसे अद्भुत तालावों का वर्णन वेद देवलोक में करता है। देखिये—

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयंतु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना: ॥

अथर्व० ४ । ३४ । ६

जिनमें घृत के ह्रद हैं जिनके किनारों पर शहद है, जिनमें अमृत ही जल है, दूध-दही से जो भरे हैं । तेरे लिये ये सब धारारूप से स्वर्गलोक में प्राप्त हों ।

इसके अनन्तर इस नीचे लिखे प्रमाण से भी यही सिद्ध है कि पुराण बड़ी विस्तृत भूमि का वर्णन कर रहा है । देखिये—

(३) यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तर कोशो नियुत योजन विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

हे राजन् ! हम जहाँ इस समय हैं यह जंबूद्वीप भूमण्डलरूप कमल की पखुरियों के घेरे में का कोश रूप (जिसमें पखुरियें लगी होती हैं) है । इसका क्षेत्र फल लंबाई चौड़ाई एकलाख योजन (चारलाख कोश) है और यह कमल के पत्ते की समान (गोल) है ।

ऊपर के दो प्रमाणों से यह सिद्ध होगया कि पुराणों के भूगोल में ऊपर उपब्रह्मलोक है और उसके नीचे उपदेवलोक है । तथा ये दोनों ही लोक हमारे निवास की भूमि पर नहीं हैं फिर इनको हम पृथ्वी कैसे मान लें । अब इस तीसरे प्रमाण में पुराण पृथ्वी को कमल की कर्णिका मानता है और उसके चारों तरफ़ ऊंचे नीचे पत्ते मानता है । इसका अभिप्राय यह है कि जिस पृथ्वी पर हम बसते हैं वह तो बीच में है और जिस ब्रह्माण्डार्द्धरूपी पृथ्वी का पुराण वर्णन करते हैं वह ब्रह्माण्ड नीचे, बराबर में और ऊंचे भी अपना विस्तार रखता है । और भी देखिये—

(४) उपवर्णितं भूमेर्यथा सन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृ-

प्ताः । अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पाताल-मिति ॥ ७ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २४

जिस भूमि पर हम बैठे हैं उस भूमि के नीचे अतल, वितल, सुतल, तला तल, महातल, रसातल, पाताल ये सात लोक पृथक् पिंड रखनेवाले हैं, और प्रत्येक लोक एक दूसरे से चालिसर हजार कोश के अंतर पर है। इन सात लोकों को भी पुराणों ने अपनी वर्णित भूमि में शामिल किया है। पृथ्वी से पाताल कितनी दूर है अब यह पाठक जान गये होंगे किंतु भूगोलानभिज्ञ मनुष्यसमुदाय इसी पृथ्वी के अधःभाग में बसी हुई अमेरिका को पाताल मानता है। यह महान् और विरुद्ध मूर्खता है। क्या अब भी कोई विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि पुराणों में केवल हमारे ही निवास की भूमि वर्णित है। और भी देखिये—

(५) एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिंतितः कविभिः स तु पंचाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोका चलः ॥ ३८ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः कांचन्यन्या दर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

इस प्रकार परिमाण लक्षण और रचना के साथ व्यासादि कवियों का विचार के साथ निश्चय करा हुआ लोक का विस्तार इतना ही है अर्थात् यह लोक विस्तार पचास करोड़ योजन है इस गिने हुये भूगोल का चौथा भाग अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन यह लोकालोक पर्वत है ॥ ३८ ॥ हे राजन् परीक्षित ! उस मधुर जलवाले समुद्र के परलीपार चारों ओर सूर्य के प्रकाश से युक्त और सूर्य के प्रकाश से रहित ऐसे दोनों प्रदेशों का विभाग करने के निमित्त उन दोनों

प्रदेशों में लोकालोक नामवाला पर्वत ईश्वर ने स्थापन करा है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ? मानसोत्तर पर्वत और मेरुपर्वत इनके मध्य में जितना अंतर है [एक करोड़ सत्तावन लाख पचास सहस्र योजन] उतनी ही भूमि शुद्ध जलवाले समुद्र की परली पार है उसके ऊपर प्राणी रहते हैं परन्तु उससे परली ओर लोकालोक पर्वत के समीप और दूसरी आठ करोड़ उनतालीस लाख योजन दर्पण की समान चिकनी और चमकनेवाली भूमि है। उसके ऊपर गिरा हुआ पदार्थ फिर कभी भी नहीं मिलता है क्योंकि वहां देवताओं को छोड़ अन्य प्राणियों को प्रवेश करना कठिन है ॥ ३५ ॥

क्या कोई मनुष्य इस बात को मान लेगा कि जिस भूमि पर हम रहते हैं वह भूमि इतने बड़े विस्तारवाली है। क्या कोई मनुष्य यह भी मान लेगा कि लोकालोक पर्वत जहाँ पर सूर्य के प्रकाश की गति नहीं वह इसी भूमि पर है। पुराण वर्णित भूमि अति विस्तृत भूमि है उस भूमि को अपनी भूमि से मिलाकर पुराणों के भूगोल को असत्य बतला देना यह काम किसी विचारशील मनुष्य का हो नहीं सकता, ऐसा तो वही कर सकते हैं कि जिन्होंने पुराण पढ़ा नहीं, पुराणवर्णित भूमि को समझा नहीं अपने मन से ही पुराणवर्णित भूमि का मान अपने निवास की भूमि के तुल्य मान लिया है। ऐसे ही मनुष्य आजकल यह शोर गुल मचा रहे हैं कि पुराणों का भूगोल भ्रष्ट और अशुद्ध है। इसके ऊपर इतना ही उत्तर तोष दायक हो सकता है कि ऐसे मनुष्यों का विचार शून्य मन ही भ्रष्ट और अशुद्ध है।

◎ पुराणोक्त भूमिमान ◎

पुराण अपनी वर्णित भूमि को मनुष्यों को समझाते हैं और उसको इस प्रकार समझावेंगे कि जिसके समझाने से साधारण मनुष्य को भी ज्ञान हो जावे कि पुराणों ने किस भूमि का वर्णन किया है। क्रम से प्रमाणों को देखते जाइये—

(१) उक्तस्त्या भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६

राजा ने कहा कि हे मुने ? जहां रह कर सूर्य प्रकाश करता है और जहाँ

तारागणों सहित चन्द्रमा दीखता है वहाँ तक के पृथ्वी मंडल का लंबान और चौड़ान विशेष रूप से तुमने मुझसे वर्णन किया है।

राजा परीक्षित स्पष्ट कह रहा है कि नीचे से लेकर सूर्यलोक तक और जहां चन्द्रमा और तारे दीखते हैं इस भूमि का वर्णन आपने किया है। राजा परीक्षित के कहने का अभिप्राय यह है कि सूर्यलोक के नीचे के जितने लोक हैं वे आपने वर्णन कर दिये। इसके कहने से यह भी सिद्ध है कि ऊपर के लोक अभी बाकी हैं।

आगे देखिये—

(२) अंडमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्।
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः॥४३॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २०

स्वर्ग और भूमि इन दोनों का जो मध्यभाग है वही ब्रह्माण्ड का मध्यभाग है तहां सूर्य रहता है। सूर्य और ब्रह्माण्ड गोलक के मध्य में सब ओर से ब्रह्माण्ड पचीस पचीस करोड़ योजन है।

अब यहां पर सिद्ध हो गया कि सूर्य से पच्चीस करोड़ योजन ऊपर और सूर्य से २५ करोड़ योजन नीचे तथा सूर्यलोक से पचीस करोड़ योजन बाईं तरफ और पच्चीस करोड़ योजन दहिनी तरफ। इतने विस्तारवाली समस्त दुनियां है। इसी को वैदिक ग्रंथों में ब्रह्माण्ड कहा है। पुराणों ने इस ब्रह्माण्ड के दो गोले बनाये। २५ करोड़ योजन सूर्य से बाईं तरफ और २५ करोड़ योजन दाहिनी तरफ। इन दोनों का योग करके पुराणों ने श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध [२०। ३८] में पृथ्वी का मान पचास करोड़ योजन लिखा है। परीक्षित के कहने से यह भी सिद्ध होगया कि आपने ब्रह्माण्ड के नीचे के गोले का वर्णन किया है क्योंकि परीक्षित स्पष्ट कहता है कि आपने सूर्यलोक तक की भूमि वर्णन की। इन दोनों श्लोकों का स्पष्टीकरण आगे चलता है—

(३) एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः॥१॥ एतेन हि दिवो मंडलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभय संधितम्॥२॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० २१

हे राजन् ! इस भूमंडल की विस्तार में पचास करोड़ योजन और निचाई में पचीस करोड़ योजन, इतनी ही प्रमाण और लक्षणों के साथ रचना है ॥ १॥ इस ५० करोड़ योजन रूप प्रमाण से स्वर्गलोक के मंडल का प्रमाण, प्रमाण के जाननेवाले पुरुष, जैसे मटर आदि के दो दलों में से एक का प्रमाण कहने पर दूसरे का प्रमाण कहा हुआ सा ही हो जाता है तैसे ही उपदेश करते हैं। भूगोल और खगोल के मध्य में उन दोनों से लगा हुआ आकाश है ॥ २ ॥

पुराण ब्रह्माण्ड के दो गोले बनाता है। नीचे का गोला २५ करोड़ योजन नीचे को मोटा और ५० करोड़ योजन लंबा चौड़ा है। इस भूमि में पृथ्वी-लोक ही नहीं आया किंतु पृथ्वीलोक कैसी सहस्रों भूमियां आ गई हैं। शुक-देवजी कहते हैं कि राजन् ! नीचे का गोलार्द्ध हमने मान लक्षण से तुमको सुना दिया। नीचे गोला भूगोल है और ऊपर गोला खगोल है इन दोनों के बीच में कुछ ऐसा आकाश है जिसमें लोकरचना नहीं। जब हमने तुमसे नीचे के गोलार्द्ध का मान कह दिया तो ऊपर के गोलार्द्ध का इतना ही मान तुम अपने आप समझ लो जैसे एक मटर में से दो दाल बनती हैं। एक दाल के मान से दूसरी दाल का मान अपने आप निकल आता है। इसी प्रकार इस भूगोल के तुल्य ५० कोटि योजन विस्तारवाला और २५ कोटि योजन मोटा खगोल को समझें। ऊपर का भाग खगोल और नीचे का भाग भूगोल तथा इन दोनों गोलार्द्धों को मिलाने से ब्रह्माण्ड हो जाता है। अब स्पष्ट होगया कि पुराणों ने केवल हमारी ही पृथ्वी का वर्णन नहीं किया किन्तु हमारी पृथ्वी जैसी सहस्रों भूमियां जिसके पेट में पड़ी हैं ऐसे भूगोल नामक ब्रह्माण्ड के गोलार्द्ध का वर्णन किया है। फिर हम किस न्याय से केवल अपनी पृथ्वी का वर्णन मान कर उसको अशुद्ध बतलाने के लिये तैयार होते हैं।

पुराण यह भी कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर हम बैठे हैं उसके नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल ये सात लोक हैं और अपने रहने की पृथ्वी को गणना में लेकर भू, भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्य ये सात लोक ऊपर हैं। इस प्रकार चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड है। नीचे के सात लोकों के आस पास और भी बहुत लोक हैं। इसी प्रकार ऊपर के सात लोकों से

मिलते हुये अनेक लोक हैं । इसी प्रकार दाहिनी और बाईं तरफ असंख्य लोक हैं। श्रीशुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध के [१६ । ४] पद्य में स्पष्ट कह दिया है कि देवताओं कितनी आयु रखने वाला भी कोई ऋषि अपनी पूर्ण आयु में भी समस्त लोकों का वर्णन नहीं कर सकता । कोई कोई ऋषि का यह भी मत है कि चौदह लोक के गिनाने की क्या आवश्यकता है लोक तो तीन ही हैं। तीन लोकों की गणना रखनेवालों के मत में भू, भुव, स्व ये तीन लोक हैं। पृथ्वी के सब नीचे के लोक और पृथ्वी इन सबको एक लोक माना है इसका नाम भू है। मध्यभाग के लोकों का नाम भुव रक्खा तथा उसके ऊपर के लोकों का नाम स्व। इस प्रकार तीन लोक कल्पना करके इसको त्रिलोकी कहते हैं। चाहे १४ लोक कहो, चाहे त्रिलोकी कहो, चाहे ब्रह्माण्ड कहो, तीनों ही नामों से समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रहण हो जाता है। इतने भेद को समझनेवाला कोई भी मनुष्य पुराणों के भूगोल को भ्रष्ट और मिथ्या कह नहीं सकता।

* ब्रह्माण्ड कथन फल *

(२) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि इतने विस्तारवाले ब्रह्माण्ड के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—इस ब्रह्माण्ड के वर्णन करने का प्रयोजन पुराणों ने स्वतः ही लिख दिया है, देखिये—

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ५ अ० १६ श्लो० ३

भगवान् के सगुण विराट् स्वरूप में स्थिर करा हुआ मन निर्गुण, अतिसूक्ष्म स्वप्रकाश और परब्रह्म वासुदेव के विषे स्थिर करने के योग्य होता है। इस कारण हे गुरो! भगवान् के इस ब्रह्माण्डरूप स्थूल स्वरूप का मुझ से वर्णन करो।

विराट् में मन किस प्रकार से लगाया जाता है और विराट् का ध्यान कैसे होता

है इसको भी पुराण ही बतलाते हैं देखिये—

जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेन्द्रियः ।
स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥२३॥
विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसां ।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥
आण्डकोषे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ।
वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥
पातालमेतस्य हि पादमूलं
पठन्ति पार्ष्णि प्रपदे रसातलम् ।
महातलं विश्वसृजोथ गुल्फौ
तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥२६॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्ते-
रूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते
नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवामहर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपो रराटीं विदुरादिपुंसः
सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥
इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः
कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे
घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥२९॥
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः
पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।

तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्य-
मापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥
छन्दांस्यनंतस्य शिरो गृणन्ति
दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च माया
दुरंतसर्गो यदपांगमोक्षः ॥३१॥
व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो
धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ
कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥३२॥
नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि
महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनंतवीर्यश्वसितं मातरिश्वा
गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥३३॥
ईशस्य केशान्विदुरंबुवाहा-
न्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च
स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥
विज्ञानशक्तिं महिमामनंति
सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि
सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥३५॥
वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं
मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।

गंधर्वविद्याधर चारणाप्सरः
स्वरः स्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥
ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा
विडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो
द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥
इयानसावीश्वर विग्रहस्य
यः सन्निवेशः कथितो मया ते ।
स धार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे
मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥३८॥
श्रीमद्भा० स्कं० २ अ० १

हे राजन् ! साधक पुरुष ऐसा अभ्यास करे कि एक ही आसन से बहुत समय तक बैठा रह सके, प्राणायाम के द्वारा श्वास को जीते, अहंता ममता को त्यागे, इन्द्रियों को विषयों में न जाने देय, ऐसी धारणा करके भगवान् के स्थूलरूप में बुद्धि की सहायता से मन को लगावै ॥२३॥ तिन भगवान् का यह विराट्स्वरूप संपूर्ण महान् वस्तुओं से भी बड़ा है, जहां भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों काल में होनेवाला यह चराचर जगत् देखने में आता है ॥२४॥ हे राजन् ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्व इन सात आवरणों से वेष्ठित (घिर हुये) इस ब्रह्माण्डरूप शरीर में जो वैराजनामक भगवान् परमपुरुष निवास करते हैं वह ही धारणा के विषय (स्थान) हैं ॥२५॥ इन विराट्रूप भगवान् का पाताललोक चरण के नीचे का भाग (तलुआ) है, रसातल चरण का अग्रभाग (पंजा) और पिछला भाग (एड़ी) है महातललोक गुल्फस्थान (एड़ी के ऊपर की गांठ) और तलातललोक दोनों जंघा हैं, ऐसा शास्त्रों का कथन है ॥ २६ ॥ सुतललोक विश्वमूर्ति परमात्मा की दोनों जानु और वितल तथा अतल ये दोनों लोक ऊरु (घुटने) हैं । हे राजन् ! महीतल उसकी कमर के पीछे का भाग और आकाश उसका नाभिसरोवर है ऐसा कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतिश्चक्र (स्वर्ग) इन विराट् पुरुष का वक्षःस्थल है, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक इनका मुख है, तपोलोक

तिन आदिपुरुष का कपाल और सत्यलोक तिन सहस्रशीर्षा के अनंत मस्तक हैं ॥२८॥ इन्द्रादि देवता इन विराट् पुरुष के बाहु हैं, दिशा कान और शब्द श्रोत्र इन्द्रिय है, दोनों अश्विनीकुमार तिन परमपुरुष के दो नासापुट और गंध इनकी घ्राण इन्द्रिय तथा प्रज्वलित अग्नि ही मुख है ॥ २९ ॥ अन्तरिक्ष लोक इन विराट् पुरुष के दोनों नेत्र गोलक, सूर्य चक्षु, रात्रि और दिन ये दोनों विष्णु भगवान् के नेत्रों के पलक, ब्रह्मपद भृकुटी (भौं) का विस्तार, जल तालुरूप और सकल रस जिह्वारूप हैं ॥ ३० ॥ सकल वेद इन अनंत का मस्तक है, यम दाढ़ है, स्त्री पुत्रादिकों के विषे जो संसारी पुरुषों का प्रेम है वही इस विराट् पुरुष के द्विज कहिये दांत हैं, लोकों को मोहित करनेवाली माया ही विराट् भगवान् का हास्य है और अनंत सृष्टि इनके नेत्रों का कटाक्ष है क्यों कि इनके नेत्र के कटाक्ष से अनंत ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं ॥३१॥ लज्जा ऊपर का ओष्ठ, लोभ नीचे का ओष्ठ, धर्म स्तन, और अधर्ममार्ग इन विराट् पुरुष की पीठ, दक्ष प्रजापति इनका मेढ़ (मूत्रेन्द्रिय) सूर्य और वरुण वृषण (अंडकोश) सब समुद्र कोख और सकल पर्वत इनकी अस्थियों के समूह हैं ॥३२॥ हे राजेन्द्र ? सकल नदियें इन विश्वरूप परमात्मा की नाड़ियें, वृक्ष रोम, वायु तिन अनंतवीर्य का प्राण, आयु रूप काल गमन और सत्वादि गुणों से उत्पन्न होनेवाले कार्य तिन परमेश्वर की क्रीड़ा हैं ॥ ३३॥ हे कुरु वंश में श्रेष्ठ राजन् ? मेघों को इन ईश्वर के केश और सन्ध्याकाल को तिन विभु का वस्त्र कहते हैं, अव्यक्त को हृदय और नाना प्रकार के विकारों के भंडार चंद्रमा को तिन का मन कहते हैं॥३४॥ महत्तत्त्व को तिन परमात्मा का चित्त और रुद्रभगवान् को अंतःकरण कहते हैं। घोड़ा, खच्चर, ऊंट हाथी आदि इनके नखरूप तथा मृग आदि अन्य सकल पशु इनकी कमर में कल्पित हैं ॥३५॥ नाना प्रकार के पक्षी इनकी विचित्र शिल्प चातुरी है, मन इनकी बुद्धि और मनुष्य इनका निवास स्थान है, गंधर्व विद्याधर चारण अप्सरा ये सब इनका स्वर हैं तथा दैत्यों के समूह में श्रेष्ठ प्रह्लादजी इनकी स्मृति हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, और वैश्य इन महात्मा की ऊरु(जंघा) हैं, शूद्र इनके चरण रूप हैं, परमपूजनीय वसु रुद्र आदि अनेकों नामधारी देवताओं से युक्त और चरु पुरोडाश आदि द्रव्यों से होनेवाला यज्ञ का विस्तार इन विराट् भगवान् का आवश्यक कर्म है ॥३७॥ यह इतनी जो

भगवान् के शरीर की रचना मैंने तुमसे कही, इस महान् विराट् स्वरूप में अपनी बुद्धि की सहायता से मन की धारणा करी जाती है, क्योंकि इस स्वरूप के बिना जगत् में कोई भी वस्तु नहीं रह सकती ॥ ३८॥

अब यह स्पष्ट हो गया कि पुराणों ने जो ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है वह योगियों के मन के अवरोध के लिये किया है। यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि प्रथम मन स्थूल में ही स्थिर होता है। स्थूल में स्थिर होते होते जब वह चंचलता छोड़ देता है तब सूक्ष्म में स्थिर होने लगता है। योगियों के लिये यह आवश्यकीय है कि पहिले वे अपने मन को भगवान् के स्थूलरूप विराट् अथवा ब्रह्माण्ड जिसको कहते हैं उसमें स्थिर करें। जब वहां पर मन चंचलता छोड़ जावेगा तब सूक्ष्म भगवान् में स्थिर होने के योग्य बनेगा। यह बात समझ कर पुराणों ने ब्रह्म के स्थूल रूप ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है। इस सिद्धान्त को केवल पुराण ही नहीं मानते किंतु योगदर्शन के भाष्यकार श्रीवेदव्यासजी "भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् विभू० पाद" इस सूत्र के भाष्य में पुराणोक्त लोकों का इस कारण वर्णन करते हैं कि योगी उनमें अपने मनको स्थिर करे। इस बात को केवल भाष्यकार ही नहीं मानता किंतु योगदर्शन के आचार्य महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लिखते हैं कि "परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः १। ४० " आरंभ में योगी का मन परमाणु से लेकर परममहत् ब्रह्माण्ड तक में स्थिर होता है और भी जितने योग के ग्रंथ हैं सभी मनका वशीकरण ईश्वर के स्थूलरूप ब्रह्माण्ड में मानते हैं। इसी कारण पुराणों ने ब्रह्माण्ड का वर्णन किया है।

+ मर्त्य पृथिवी +

(१) कोई कोई सज्जन यह कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसका तो पता ही नहीं लगा कि कितनी है।

उत्तर-ऋषियों ने पुराणोक्त भूगोल से अपनी पृथ्वी का ज्ञान किया और उस को अन्य ग्रंथों में लिखा। आर्ष ग्रन्थो में लिखी हुई पृथ्वी का वर्णन करते हुए भास्कराचार्य लिखते हैं कि—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः
तद्व्यासः कुभुजंगसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिका।

पृष्ठक्षेत्रफलं तथा सुगगुणं त्रिशच्छराष्टाद्रयो
भूमेः कन्दुकजालवत्कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम् ॥

सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय ।

४९६७ योजनात्मक पृथ्वी की परिधिका मान है और पृथ्वी का व्यास १५८१–१ + २४ योजन है । पृथिवी का पृष्ठक्षेत्रफल ७८५३०३४ योजन है। इस पृष्ठक्षेत्र का स्वरूप जैसे कि कन्दुक जाल का आकार होता है वैसे ही पृथ्वी के ऊपर पृष्ठक्षेत्रफल का होता है ।

आर्ष ग्रन्थों में यह मान हमारी इसी पृथ्वी का है जिसके ऊपर हम रहते हैं इस मान के ऊपर कोई भी हुज्जतबाज चीं चपट नहीं कर सकता । चाहते हैं कि हम बलात्कार अंग्रेजों के पक्ष को स्वीकार करके इसका भी खण्डन कर दें किन्तु अभी तक किसी की लेखनी में यह शक्ति नहीं आई कि जिससे पृथ्वी के इस मान को असत्य कहने का साहस करे

शेषनाग

(४) किसी किसी सज्जन का यह भी कथन है कि इतनी बड़ी पृथ्वी को शेषनाग ने अपने फन पर कैसे धारण किया और फिर वह शेषनाग किसने धारण कर रक्खा है ?

उत्तर—यह प्रश्न उन्हीं सज्जनों का है कि जिन्होंने कभी स्वप्न में भी पुराण नहीं देखे । हमारे रहने की पृथ्वी ही शेषनाग के फन पर नहीं है किन्तु ब्रह्माण्ड रूप पृथ्वी को शेष सर्षप के तुल्य धारण किये है । शेषनाग क्या चीज है इसको बतलाता हुआ पुराण लिखता है कि—

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥२५॥

श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ३

जिस समय द्विपरार्धपर्यन्त यह लोक नष्ट हो जाता है और पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाश ये पंच महाभूत आदिभूत अहंकार में जाकर मिल जाते हैं तथा काल के वेग से व्यक्त संसार का कारण अव्यक्त रूपरहित ईश्वर में मिल जाता है उस समय शेष संज्ञा वाले केवल आप ईश्वर ही शेष रहते हैं।

पुराण के इस प्रमाण से उत्तम रीति से समझ गये होंगे कि ईश्वर को ही शेष कहते हैं, ईश्वर से अन्य कोई शेष नहीं है।

पाठक इसको इस प्रकार समझने का कष्ट उठावें! समझिये। जब सृष्टि नहीं होती जिस समय केवल ईश्वर ही शेष रहता है उस समय कोई भी रंग नहीं होता अंधकार मय होता है। इसी को वेद लिखता है कि "तम आसीत्तमसा गूढ़ मग्रे" अर्थात् उस समय तम रहता है और तम से ढका हुआ रहता है तथा उसी समय ईश्वर शेष रहता है इस कारण ईश्वर का रूप काला बनाया गया। यद्यपि सृष्टिरचना के पश्चात् ईश्वर के भांति भांति के अनेक रंगों वाले रूप होते हैं किन्तु शेषावस्था में केवल श्यामरूप होने से शेष को काले रूप में वर्णन किया। इसी शेष में से शक्ति सहित साकार ईश्वर का प्रादुर्भाव होगा और निराकार उसके ऊपर नीचे रहेगा यह घटना केवल नाग में हो सकती है अतएव प्रलय में अवशिष्ट शेष का श्यामरूप और सर्पाकृति बनाई गई है। वास्तव में निराकार ईश्वर ही पृथ्वी को धारण किये है। इतने बड़े ब्रह्माण्ड को फन पर कैसे लिये है यह वेद में साफ सिद्ध है कि ईश्वर के एकही अंश में सृष्टि है। अब सिद्ध हो गया कि पृथिवी को धारण करने वाले शेष नामवाले ईश्वर हैं और उनको धारण करनेवाला न कोई कभी हुआ है और न होगा। निराकार ईश्वर ही आकर्षणरूप से पृथ्वी को धारण किये है। इस आकर्षणरूप को ही ग्रन्थोंने पृथ्वी की आकर्षणशक्ति कही है अब चाहे आकर्षण शक्ति पृथ्वी को धारण किये है यह कहो और चाहे शेष नामक ईश्वर पृथ्वी को धारण किये है यह कहो, बात एक ही है।

× चन्द्रार्क ग्रास ×

(५) स्मृतिकारों ने और पुराणों ने लिखा है कि राहु सूर्य और चन्द्र को आच्छादन करता है किंतु ज्योतिष के सिद्धान्त और करणग्रन्थ चन्द्रमा को आच्छादित करनेवाली भूभा मानते हैं तथा सूर्य को आच्छादन करनेवाला चन्द्रबिंब मानते

हैं और ग्रहण साधन में भूभा तथा चन्द्रबिंब का ही गणित करते हैं। पाश्चात्य देशों के यंत्रों ने भी यही सिद्ध किया है फिर राहु चन्द्र सूर्य को ग्रसता है पुराण के इस गपोड़े को हम कैसे सत्य मानें ?

उत्तर—जब तक मनुष्य अज्ञ रहता है तब तक ज्ञानजनित समस्त सिद्धान्त उसकी समझ में नहीं आते अतएव वह उनको गपोड़े कहता रहता है किंतु जैसेजैसे मनुष्य ज्ञान की उपलब्धि करता है वैसे ही वैसे प्रत्येक सिद्धान्त उसकी समझ में आता जाता है। यहां तक समझ लेता है कि फिर वह गपोड़े कहनेवालों को ये मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं, अभी समझने के योग्य नहीं हुये ऐसा कहने लगता है। जिन विद्वानों ने चन्द्रबिंबग्रास, भूभा ग्रास और राहुग्रास इनमें परिश्रम किया है वे भूभा और चन्द्रबिंबग्रास को सत्य कहते हैं तथा इसी प्रकार राहुग्रास का भी सर्वथा सत्यमान कर मनुष्यों को दोनों बातोंके समझानेका उद्योग प्राचीन कालसे करतेचले आतेहैं। हम इस विषय में अपनी तरफ से कुछ न लिख कर दैवज्ञ केशव के निर्माण किये हुये विवाह वृन्दावन नामक ज्योतिष ग्रन्थ में जो लिखा है वह पाठकों के आगे रक्खे देते हैं, पाठक देखने का कष्ट उठावें—

> सोऽन्धकारचरतां वहन्महि
> च्छायया विशति सोममंडलम्।
> दीप्तितापरदलेन्दुमंडल-
> च्छायया सह च सूर्यमंडलम् ॥३॥

विवाह वृन्दावन राहुसत्ताध्याय ७।

वह राहु अंधकारचारी के भाव को धारण करता हुआ पृथ्वी की छाया के साथ सोममंडल नाम चन्द्रमंडल को प्रविष्ट होता है। भाव यह है कि पृथ्वी की छाया अंधकाररूपिणी है और पृथ्वी की छाया के साथ विचरनेवाला राहु भी अंधकारचारी होता है। वह राहु पृथ्वीछाया की सहायता से चंद्रमंडल को ढक लेता है। दीप्तिनाम प्रकाशमान है अपरदल (ऊर्ध्वभाग) जिसका ऐसे चंद्रमंडल की छाया के साथ राहु अंधकारचरता को धारण करता हुआ अर्थात् अंधकाररूप होकर सूर्यमंडल को ढक लेता है। भाव यह है कि अमावस्या के दिन ऊपर भाग में प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा का नीचे का भाग अंधकाररूप होता है। उसी अंधकाररूप चन्द्रमा के नीचे

के भाग की छाया के सहित अंधकाररूप राहु भी सूर्यमंडल को ढक लेता है। इस कथन से जो कि गोलगणित में राहु को ढकनेवाला नहीं मानते किंतु पृथ्वीछाया को ढकने वाला मानते हैं और स्मृति आदिक राहु को ढकनेवाली मानती हैं इन दोनों का विरोध दूर हो गया।

> वृत्तयोः पतनमेव पात इ-
> त्याहुरत्र किल राहुरीक्षते।
> आपतंतममृतद्युतिं सुधा-
> स्नानदानहवनांशलालसः ॥४॥

विवाह वृ० अ० ७।

यदि कहो कि शरवृत और क्रान्तिवृत के संगम से संपात किस प्रकार राहु का है इस शंका को दूर करते हुये कहते हैं कि शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त इन दोनों के पतन को पात गोलविद् कहते हैं। वृत्तों को संपात करे उसका ही नाम पात है। उस पातस्थान में स्थित हुआ राहु आपतंत नाम आते भये अमृतद्युति जो चन्द्रमा है तिसे ग्रहण करने की इच्छावाला हुआ देखता रहता है। तिसके आगमन विषे कहते हैं कि सुधा नाम अमृत और स्नान, दान हवन, मंत्र इत्यादिक तिसे चन्द्रमा के अंशों का विभाग है। तिनके चाहने में राहु हमेशा तत्पर रहता है। भाव यह है कि संपात के विषे स्थित हुआ राहु चंद्रमा ग्रहण के निमित्त जो स्नान, दान, मंत्रादिक होते हैं सो मेरे वास्ते होयं यह वर ब्रह्मा से पहिले माँगा था सो ब्रह्मा ने कह दिया था कि तथास्तु। यहब्रह्मपुराण में प्रसिद्ध है। सो राहु अमृतद्युति चंद्रमा के ग्रहण की इच्छा करता रहता है। निश्चय कर चन्द्रमा को अमृत की इच्छावाला राहु ग्रहण करता है। यह तो सिद्ध है फिर रवि को क्यों ग्रहण करता है तहाँ कहते हैं। चन्द्रच्छाया के आश्रय हुआ राहु सूर्य को ग्रहण कर लेता है इस बात का निर्णय पहिले कर चुके हैं। भाव यह है कि इस प्रकार आगमन के संपात से राहु सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

> सैंहिकेयस्तुतामुपेयुषो-
> दूरगो भियति वृत्तपातयोः

आसमेति न रविर्न चन्द्रमा

गृह्यते स खलु पार्श्वगस्तयोः ॥ ५ ॥

विवाह वृ० अ० ७।

ऐसा कहते हो तो राहु प्रतिपर्व के विषे ग्रहण क्यों नहीं करता है इस शंका को निवारण करते हुये कहते हैं कि सैंहिकेय जो राहु है सो ग्रस्तता को प्राप्त होने की इच्छावाला हुआ। वृत्तगतयोः नाम शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त में संपात हुआ दूर आकाशमार्ग में सूर्य को नहीं ग्रहण करता है इस प्रकार चन्द्रमा को ग्रहण करता है। जब शरवृत और क्रान्ति में स्थित राहु समीप वर्ती रवि को निश्चय ग्रहण कर लेता है। यहां एक रूप राहु का कह दिया अब दो रूप यानी शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त दो निश्चय संपात स्थान हैं। एक तो चन्द्रपात दूसरा तिपले सप्तम जानना तिन दोनों में एक राहु दूसरा केतु जानना। वे दोनों दूर स्थित रवि चन्द्रमा को नहीं ग्रहण करते हैं क्योंकि शरश्राहुल्यात् अर्थात् शर नाम राहु और चन्द्रमा इन दोनों के बीच में अन्तर नहीं होता है तो ग्रहण होता है और अन्तर होय तो नहीं। भाव यह है कि जब चन्द्रमा और राहु के अंश बराबर होवें तो ग्रहण निश्चय होता है और अधिक न्यून होवें तो नहीं ऐसा ग्रहगणित से सिद्ध है ॥५॥

राहु के ग्रास को दैवज्ञ केशव ने स्पष्ट कर दिया है अब इसमें विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

* भूभ्रमणविचार *

आज कल के मनुष्यों का एक यह भी कटाक्ष चलता है कि पुराणों में पृथ्वी को स्थिरा और सूर्य का भ्रमण लिखा है यह आजकल के विज्ञान के विरुद्ध है क्या विज्ञानविरोधी पुराण कभी मान्य हो सकते हैं ?

इस विषय में मदरसों के विद्यार्थी कुछ भी ज्ञान नहीं रखते उनको उच्च श्रेणी के उदाहरणों से पृथ्वी का चलना सिद्ध करके नहीं बतलाया जाता केवल पढ़ा दिया जाता है कि पृथ्वी घूमती है या बनावटी मिथ्या यंत्रों से समझा दिया जाता है कि पृथ्वी घूमती है, उनको पृथ्वी घूमने के विरुद्ध जितनी भी दलीलें हैं एक नहीं समझाई जाती, इतने परभी ये लड़के समझ बैठते हैं कि हम संसार में उच्च श्रेणी के विद्वान् हो गये ।

लड़के लोग इतना समझ कर ही चुप नहीं हो जाते किन्तु ये लोग भारत-वर्ष के संस्कृतज्ञ विद्वानों को बुरीदृष्टि से देखने लगते हैं, ये कहते हैं कि संस्कृत के पंडित ओल्डफूल होते हैं, ये लोग अब भी पृथ्वी को अचला ही मानते हैं । इतना ही नहीं कि पंडितों को मूर्ख समझते हों किन्तु उनकी हंसी करना, मिट्टी पीटना इनके बायें हाथ का कर्तव्य हो जाता है ।

संस्कृत के विद्वान् ऐसे बेवकूफ नहीं जो भूभ्रमण और भूअचला के सिद्धांत और इनके भेद तथा इनके विवेचन से अनभिज्ञ हों । संस्कृतवाले यह भी जानते हैं कि पहिले जमाने में समस्त संसार पृथ्वी को अचला मानता था, सब से पहिले ईरान में एक दार्शनिक 'पैथागोरास' उत्पन्न हुआ उसने सब से पहिले पृथ्वी का घूमना संसार के आगे रक्खा, संस्कृतवालों को इसका भी ज्ञान है कि उन्हीं के लेख को पढ़ कर आर्यभट्ट ने उस सिद्धान्त को भारतवर्ष के आगे रक्खा, संस्कृत के विद्वान् यह भी परिचय रखते हैं कि फिर लल्ल और वराहमिहिर प्रभृति विद्वानों ने इसका ऐसा खण्डन किया कि यह सिद्धान्त दब गया, संस्कृत वालों को यह स्मरण है कि फिर इस सिद्धान्त को 'केप्लर' ने योरुप के आगे रक्खा, और इसके पश्चात् 'न्यूटन' ने ।

संस्कृत वाले यह खूब जानते हैं कि संसार में जितने सिद्धान्त चलते हैं वे सब ही सत्य नहीं हुआ करते, संस्कृतवालों का यह भी अनुभव है कि मिथ्या सिद्धांत भी अधिक प्रचार करने या शिक्षा पद्धति में सम्मिलित होने से सत्य सिद्धान्त को मिटा कर संसार को अपनी तरफ खैंच लिया करते हैं यह सब समझ कर भी संस्कृतज्ञता चुप बैठे हैं, वे समझते हैं कि इनविद्यार्थियों का कोई दोष नहीं, दोष केवल वर्तमान शिक्षा पद्धति का है। वर्तमान शिक्षा पद्धति मनुष्य को अभिमानी बना कर दूसरे की बात सुनने समझने में इज्जत हतक की डिगरी दे देती है, संस्कृतवालों ने इसका खूब अनुभव किया है कि आजअंग्रेजी शिक्षित समुदाय अपने को सर्वोत्तम विद्वान् मान दूसरों की सच्ची बात भी सुनना नहीं चाहता इस कारण संस्कृतवाले चुप बैठे रहते हैं।

ढोल की पोल।

वास्तविक में भूभ्रमणवादियों के पास कोई ऐसी युक्ति नहीं है जो विचार शील मनुष्यों के अन्तः करण में भूभ्रमण को बिठला दे, जितनी भी युक्तियाँ हैं वे सब ढोल की पोल ही हैं। अब उनको क्रम से देखते जाइये

(१) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि जैसे नावपर बैठे हुये मनुष्यों को नाव का ठहरा रहना और किनारे के वृक्षों का चलना ज्ञात पड़ता है इसी प्रकार पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को पृथ्वी की स्थिरता और ग्रहों का भ्रमण समझ पड़ता है।

यह उदाहरण यदि निर्दोष होता तो संसार इसके मानने को भी तैयार हो जाता किंतु इस उदाहरण में भ्रम और प्रत्यक्ष विरोध ये दो दोष हैं इस कारण विचार शील मनुष्य इसको कभी भी मानने को तैयार नहीं।

(क) जहां पर कुछ का कुछ दीखता हो ऐसे ज्ञान को भ्रमजन्य ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान मिथ्या हुआ करता है। कल्पना करो कि एक मनुष्य अंधेरी रात में चलाजा रहा है और रास्ते में एक मोटी रस्सी का तीन हाथ का टुकड़ा पड़ा है, अंधकार के कारण उसको मिथ्या ज्ञान होगया कि यह सर्प है, जैसे रस्सी में सर्पज्ञान मिथ्या और भ्रमजन्य ज्ञान है इसी प्रकार नौका में स्थिरता और नदी के तट के वृक्षों में चलने का ज्ञान भी भ्रमजन्य और मिथ्या ज्ञान है, भ्रमजन्य

मिथ्या ज्ञान का चर्चा न्याय वेदान्त प्रभृति समस्त ही हिन्दू दर्शनों में आता है, दर्शनों ने स्पष्ट कह दिया है कि भ्रमजन्य मिथ्या ज्ञान असत्य होता है अतएव त्याज्य है, फिर हम किस आधार पर नौका की स्थिरता और किनारे के वृक्षों का चलना इस भ्रमजन्य ज्ञान को सत्य मानें ? संसार के आगे नाव और किनारे के वृक्षों के उदाहरण को रखने वाले की बुद्धि में यह दोष उस समय नहीं आया किंतु जो लोग इसको समझ रहे हैं वे इस प्रकार के उदाहरण को लड़कों का खेल समझ कर छोड़ देते हैं।

(ख) नौका में स्थिरता बुद्धि और वृक्षों में संचलन बुद्धि असावधानी से होती है। यदि तुम नौका पर बैठ अपने मन को रोक सावधानता से देखोगे तो यह विपरीत ज्ञान हो ही नहीं सकता। जो बात असावधानी से मनुष्य के अन्तः करण में बैठी है उसको सत्य मानना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है वरन् सावधानी से उसका ज्ञान अंतः करण से निकाल देना ही मनुष्य कर्तव्य है। जब हम सावधानी से देखते हैं तब हमको कहनापड़ता है कि यह उदाहरण ही गलत है नाव का न चलना, वृक्षों का चलना यह ज्ञान होता ही नहीं, जो ज्ञान नहीं होता उसको लेकर पुष्टि करना यह उदाहरण बनाने वाले और उदाहरण को सच्चा समझने वालों की भूल है, चलो पहिले उदाहरण का सफाया होगया।

(ग) जो पृथ्वी को अचला और ग्रह गणों का भ्रमण मानते हैं उनका यह कथन है कि जैसे कुछ मनुष्य वृत्ताकार चबूतरे पर खड़े हों और उस चबूतरे की बहिर्भूमि पर घोड़े दौड़ रहे हों, इसी प्रकार हम वृत्ताकार गोल पृथ्वी पर ठहरे हैं और घोड़ों की भांति भपंजर पृथ्वी की परिक्रमा दे रहा है, भूभ्रमणवादियों के पास कोई युक्ति, कोई प्रमाण ऐसा नहीं है कि जिससे इस उदाहरण का खण्डन हो जावे, अपने दिये उदाहरण की पुष्टि में गिरजाना और दूसरे के दिये उदाहरण के खंडन में चुप रह जाना यह भूभ्रमणवादियों की अत्यन्तकमजोरी है, जो विवेकशाली मनुष्यों के अन्तःकरण में यह सिद्ध कर देती है कि भूभ्रमणवादियों के कथन में कोई सार नहीं केवल हठ धर्मी और अभिमान है।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि सहस्रों तारे पृथ्वी से अत्यन्त दूर हैं उनकी रोशनी पृथ्वी पर इतनी देरसे आती है कि उस रोशनी से जब हिसाब

लगाया जाता है तो करोड़ों मील दूरी उन तारों की सिद्ध हो जाती है, ऐसे तारे जब पृथ्वी के चारों तरफ घूमेंगे तब उनकी क्या चाल होगी यह दोष पृथ्वी के अचला होने में आता है।

इसका उत्तर यह है कि जिनका प्रवेश भपंजर में नहीं है वे ऐसी शंका किया करते हैं। सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों के नाम स्पष्ट लिखदिये जो पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। आकाशस्थ सब ही तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमते, पुच्छल तारों से पता चला है कि बाज बाज पुच्छल तारा पृथ्वी के जिस भाग में आया था उसी स्थान पर वह सैकड़ों वर्षों के पश्चात् आता है फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आकाश के सब तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी की एक परिक्रमा देजाते हैं? आप आकाशगंगा को ही ले लें, चातुर्मास्य में एक ऐसी सड़कसी दिखलाई देती है जिसकी लम्बाई उत्तर दक्षिण होती है और उसमें तारों की बहुतायत रहती है, चातुर्मास्य में वह दीखता है, जाड़े और गर्मी में नहीं दीखता फिर हम कैसे मान लें कि आकाश गंगा के तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी का दौरा करते हैं, इन सब झगड़ों को निपटाने के लिये सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों का नाम स्पष्ट लिख दिया जो चौबीस घंटे में पृथ्वी की परिक्रमा दे आते हैं. इसको आप आगे देख लेना, इतना हम कहते हैं किचौबीस घंटे में पृथ्वी के चारों तरफ घूमने वाले ग्रह कहलाते हैं। इस प्रकार से विचार करने पर यह शंका मनुष्य के अन्तःकरण से दूर हो जाती है।

(३) कई एक लोगों का कथन है कि भारतवर्ष में सबसे प्राचीन ग्रंथ आर्य-भट्टीय है जिसको आर्यभट्ट ने शाके ४२१ में चार पादों में १२० श्लोक से निर्माण किया है उसमें भपंजर का स्थिरत्व और धरा का भ्रमण सिद्ध किया गया है फिर हम कैसे मान लें कि आर्षग्रंथों में भपंजर भ्रमण और धरा को स्थिरत्व है।

इसका उत्तर यह है कि आर्यभट्टीयसिद्धान्त नामक ग्रन्थ जिसमें १८ अधि-कार और ६२५ आर्याछन्द हैं आर्यभट्ट ने आर्षसिद्धान्त को लेकर बनाया था। इसमें भपंजर भ्रमण और पृथ्वी का अचलत्व उत्तम रीति से सिद्ध किया गया है फिर कोई कैसे कह सकता है आर्यभट्ट भूभ्रमण मानता है।

१२० श्लोक वाली आर्यभट्टीय जो आर्यभट्ट ने बनाई है उसके बनाने का

कारण दूसरा ही है। वह यह है कि उस समय भारतवर्ष में अनेक आर्षसिद्धान्त ग्रन्थ वर्तमान थे और उसी समय में लल्ल तथा वराहमिहर जैसे ज्योतिष के धुरंधर विद्वान विद्यमान थे। उस समय में सिद्धान्त ग्रन्थ लिख कर भी कोई प्रतिष्ठा नहीं पा सकता था। आर्यभट्ट ने जब आर्यभट्टीय लिख कर भी प्रतिष्ठा न पाई तब अपनी प्रतिष्ठा के लिये भ्रममूलक भूभ्रमण यवन मत को १२० श्लोक की आर्यभट्टीय में लिख कर आत्मश्लाघा पाने की आकांक्षा की। केवल इस हेतु से १२० श्लोक की आर्यभट्टीय चार पादों में निर्माण की है किन्तु वह उसका सिद्धांत नहीं था। इस विषय में अनेक विद्वानों ने बड़ी २ विस्तृत विवेचनायें की हैं जिन विवेचनाओं से यही सिद्ध है कि १२० श्लोक की आर्यभट्टीय में जो आर्यभट्ट ने लिखा है वह यवन सिद्धान्त है और आर्यभट्ट इसको नहीं मानते थे। जिसको यह विवेचना देखनी हो वह 'सुमति प्रकाशिका' नामक पुस्तक देख ले।

[४) किसी किसी सज्जन का कथन है कि पं० सुधाकर द्विवेदी जी भी पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं ?

ठीक है, किंतु उनके समकालीन और तत्तुल्य विद्वान् पं चन्द्रदेव जी ने तो भूभ्रमण का खंडन किया है, इनका लेख क्यों नहीं माना जाता ? द्विवेदी जी तो ज्योतिष के फलित को भी असत्य मानते थे तो क्या वेद को ताक में रख कर हम द्विवेदी जी के कथन से ज्योतिष फलित को असत्य मानलें ? इसके विषय में वेद क्या कहता है एक दृष्टि इस पर भी डालिये।

पुण्यं पूर्वाफाल्गुन्यौ चात्र हस्त
श्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३

अथर्व० कां० १९ अ० १

पूर्वाफाल्गुणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, राधा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, अरिष्टकारक मूल मेरे लिये शुभ हों।

यह मूल शान्ति का मंत्र है। मूल में जन्म होना फलित ज्योतिष ने अरिष्टकारक बतलाया है और इस अरिष्ट की शान्ति भी मुहूर्त चिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थों

में लिखी है, यह भी लिखा है कि शान्ति करने पर अरिष्टाभाव हो जाता है इसी को यह वेद मंत्र कह रहा है, अब विद्वान् लोग फैसला दें कि इम द्विवेदी जी की बात को सत्य मानें या वेद की आज्ञा को ? जो सज्जन वेद का भी सफाया कर सकता है वह नूतन सभ्यता में फंसकर पृथ्वी भ्रमण मानले तो क्या कोई आश्चर्य है ?

जिसके निर्माण किये हुये ग्रंथों को पढ़ कर महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी जैसे विद्वान् बन जाते हैं, इस विषय में इस प्रबल पंडित भास्कराचार्य का लेख प्रमाण क्यों न मानलें, संभव है हमारी इस बात को भूभ्रमणवादी स्वीकार न करें क्योंकि भास्कराचार्य पृथ्वी को स्वभावतः अचला मानते हैं और यह बात भूभ्रमणवादियों को स्वीकार नहीं ।

यूरोपीय लोग जो कुछ कहते हैं दयानन्द जी उसके ऊपर वेद की छाप लगा देते हैं यह उनका अटूट नियम है । स्वामी जी की दृष्टि में यह समाया है कि वेद में भारतवासियों का एक भी सिद्धान्त नहीं, वेद में जो कुछ भी है सब यूरोपीय सिद्धान्तों का संग्रह है, आप वेद के अर्थ बदलने में न डरते हैं और न लज्जित होते हैं, नया अर्थ बनाकर यूरोप की हां में हां मिलाना इनके जीवन का लक्ष्य है ।

हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि जो वेद के एक अक्षर का अर्थ बदलता है वह महापापी है किन्तु जिसने वेद के अर्थ बदलने में एक अक्षर भी शेष नहीं रक्खा वह कितना पापी होगा विद्वान लोग इसको त्रैराशिक से जान लें । वेदों के अर्थ बदलनेवाले महाशय लिखते हैं कि पृथ्वी चलती है और पृथ्वी के चलने में वह महात्मा एक मंत्र देते हैं—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः

यजु० ३ । ६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है ।

(१) क्या मजे की बात है मुसलमानों का सिद्धान्त वेद में से निकल पड़ा । जिन हिन्दुओं का वेद धर्मपुस्तक था, वेद ने उनके सिद्धांत को खंडन कर

दिया और मुसलमानों के सिद्धान्त को सत्य बना दिया इस प्रकार की घटनायें संसार में कभी देखी नहीं गईं वरन् ऐसा देखा जाता है कि जिसका धर्मपुस्तक होता है उसके सिद्धान्त का मण्डन करता हुआ परपक्ष को मिथ्या ठहराया करता है किन्तु यहाँ पर इसके विरुद्ध हुआ। इससे हम कह सकते हैं कि वेद का बहाना लेकर परिव्राजकाचार्य ने मुसलमानों की हिमायत की और न्याय का गला घोट डाला है।

(२) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रु ऋषिः, गायत्री छन्दः; अग्नि देवता है। वेदों का यह नियम है कि जो जिस मंत्र का देवता होता है उस मंत्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इसका अग्नि देवता है तो पृथ्वीपरक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मंत्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृत ज्ञाता ही समझेंगे संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य मान लेंगे। सच है, पक्षपात बड़े बड़े अनर्थ करवा देता है। शोक इस बात का है कि यवनों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोंटते हैं।

(३) इस मंत्र के अर्थ में "मातरम् ? पितरम् ? पुनः,, आदि कई एक शब्द बिलकुल ही छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया। जिस अर्थ में मन्त्र के शब्द ही छूट जांय क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है ? हमको नहीं मालूम ऐसे अर्थ को कोई कैसे सच मान लेगा

(४) यदि हम इस मंत्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रख दें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मंत्र का यही अर्थ है जो इसके भाषा टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मंत्र में पृथ्वी का वर्णन है, या अग्नि का, हमको तो इतना विचार करना है कि मंत्र के नीचे टीका रूप जो भाषा लिखा है वह इस मंत्र का अर्थ है या नहीं। इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेदमंत्र का अर्थ, ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई कि किसी मनुष्य ने पूछा "लोटे" का क्या अर्थ, जिससे पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने "जूता" है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करनेवाले को भी हिन्दू वेद भाष्यकार मान लेते हैं

वेद मंत्र का ठीक अर्थ देखिये—"(आयम्) यह (गौः) यज्ञ सिद्धि के

अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले (पृश्नि) श्वेत रक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने (आ) सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्व दशा में (मातरम्) पृथ्वी को (असदत्) प्राप्त किया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्ग में चलने अग्नि ने (पितरम्) स्वर्गलोक को (असदत्) प्राप्त किया"। सिद्ध होगया कि इस मंत्र में भूभ्रमण नहीं है किंतु मंत्र का धोका देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

निघंटु ने पृथ्वी को 'निर्ऋति' लिखा है। 'निर्ऋति' का अर्थ है गमनरहित (चालशून्य) यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको "निर्ऋति" कैसे लिखता।

वेद भी इसको अचला बतलाता है देखिये—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं
येन नाकः योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः।
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

यजु० ३२। ६

जिसने द्युलोक जलपूर्ण अर्थात् वृष्टिदायक किया है और पृथिवी निश्चल वृष्टिग्रहण तथा अन्न निष्पादन में दृढ़ की है। जिसने स्वर्लोक जहाँ आदित्यमंडल तपता है सो और जिसने दुःखरहित स्वर्गलोक स्तंभित किया है। जो अंतरिक्ष में वृष्टिरूप जल का निर्माता है उस प्रजापति देवता के निमित्त हवि देते हैं।

इस मंत्र में पृथ्वी को निश्चल बतलाया है! इसके विरुद्ध वेद तो सूर्य भ्रमण मानता है, वेद का यह कथन नहीं कि सूर्य आध घंटे में दश हजार मील के हिसाब से लिरा तारे की तरफ जा रहा है इस चाल को वेद नहीं कहता वरन् वेद सूर्य की उस चाल का वर्णन करता है जिस चाल से रात्रि के बाद दिन और दिन के बाद रात्रि होती है देखिये मंत्र—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

हिरण्ययेन सविता रथेना
देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३

यजु० अ० ३३

रात्रि लक्षण तम से वर्तमान् देवादिक और मनुष्यादिकों को अपने २ कार्य में योजित करता हुआ एवं समस्त भुवनों को देखता हुआ हिरण्मय देदीप्यमान रथ से सविता सूर्य आता है।

इस नवीन वेद ज्ञाता को योरुप के प्रेम ने इतना जकड़ कर बांधा है कि जिस मंत्र में सूर्य का चौबीस घंटे का भ्रमण लिखा उस मंत्र को तो छिपाया और "आयं गौः" इस मंत्र की गर्दन पर छुरा फेर उससे बलात्कार भूभ्रमण निकाल दिया इसी का नाम है विलक्षण प्रेम।

इस विषय में भास्कराचार्य जी लिखते हैं कि—

यथोष्णताऽर्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः ॥५

सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है ऐसे ही स्वभाव से पृथ्वी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है।

पृथ्वी अचला है इस विषय में आप सिद्धान्त शिरोमणि का लेख देख चुके अब सूर्यसिद्धान्त के लेख का अवलोकन करें।

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥३०
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधराघनाः ॥३१

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ ३२

सूर्यसिद्धान्त अ० १२

अर्थात् ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाशकक्षा कहते हैं उसके मध्य में नक्षत्रमण्डल का भ्रमण होता है उसके नीचे यथाक्रम शनि, जीव, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र एक से नीचे एक भ्रमण (अपनी अपनी मध्य कक्षा में) करते हैं उनके नीचे सिद्ध विद्याधर मेघ हैं और चारों ओर से बीचों बीच ब्रह्माण्ड के मध्य (केन्द्र में) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल सर्वतोभाव से स्थित है ।

यदि हम समस्त शास्त्रीय प्रमाणों को पाठकों के आगे रक्खें तो एक ग्रन्थ तैयार हो जावेगा, तो क्या हमको यह मानना पड़ेगा कि पहिले के समस्त ग्रन्थ कर्ता एवं वेद तथा वेद रचयिता ईश्वर ये सब अज्ञानी थे और इस विषय में ठीक २ केवल स्वा० दयानन्द जी ने ही समझा है ? हठ वश चाहे कोई मनुष्य ऐसा मान ले किन्तु विचारशील मनुष्य के मानने योग्य यह विषय हो ही नहीं सकता समस्त संसार झूठा केवल स्वा० दयानन्द जी सच्चे यह असंभव है ।

हमने शास्त्रों के कुछ सीधे सादे प्रमाण पाठकों के आगे रख दिये, अब उन प्रमाणों को रखते हैं कि जिनमें युक्तिवाद को लेकर भूभ्रमण का खण्डन किया गया है पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें ।

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षिति-
रित्यपरे वदन्ति नोडुगणः ।
यद्येवं श्येनाद्या नखात्पुनः
स्वनिलयमुपेयुः ॥ ६ ॥
अन्यच्च भवेद्भूमेरम्बा
भ्रमरहता ध्वजादीनाम् ।
नित्यं पश्चात्प्रेरण-
मथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति ॥ ७ ॥

वराहमिहिर ।

जो यह कहते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है भपंजर नहीं घूमता तो उनसे हमारा यह प्रश्न है कि ऐसा होने पर पक्षी अपने घोसलों में नहीं जा सकेंगे ॥६॥ यदि पृथ्वी तीव्र वेग से पूर्वाभिमुखी भ्रमण करती है तो ध्वजा पताका पृथ्वी के वेग से सर्वदा पश्चिम की तरफ को ही उड़ेंगी और यदि पृथ्वी मंद वेग से पूर्व को चलती है ऐसी दशा में २४ घंटे में उसका पूर्ण भ्रमण नहीं हो सकेगा ॥७॥

यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झिताः
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥ ४२ ॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः।
अथ मंदगमात्तदा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥४३॥

शि० धृ० गो०।

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पक्षी अपने घोसलों में नहीं पहुँच सकेंगे और आकाश का फेंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा ॥ ४२ ॥ यदि पृथ्वी पूर्वाभिमुखी घूमती है तो फिर बादल हमेशा पश्चिम को जायगा। यदि कहो कि पृथ्वी धीरे धीरे चलती है इस कारण बादल पश्चिम को नहीं जाते तो ऐसी मंदगति से एक दिवस में पृथ्वी का भ्रमण कैसे होगा ॥ ४३ ॥

+ स्पष्टीकरण ×

इन श्लोकों में भूभ्रमणवादियों के सिद्धान्त में पांच दोष दिखलाये हैं (१) वायु का जोरदार चलना (२) बड़े जोर के साथ ध्वजा पताकाओं का सर्वदा पश्चिम को उड़ना (३) बादल का पश्चिम को जाना (४) बाण का पश्चिम को गिरना (५) पक्षियों को घोंसले का न मिलना।

इन दोषों का हम क्रम से पाठकों के आगे रखते हैं, पाठक समझने का उद्योग करें। आकाश में किसी चीज के घूमने या पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में से

किसी वस्तु के जाने से आकाश में धक्का लगता है, इस संचलन शक्ति से वायु पैदा हो जाता है, आप हाथ में पंखा लीजिये और उसको घुमाइये निश्चल और शान्त आकाश में पंखे के घूमने से वायु पैदा हो जावेगा। जिस कमरे में बिजली का पंखा लगा रहता है उस पंखे को जितने जोर से घुमाया जावेगा उतना ही वायु जोर से चलेगा, जब मोटर जोर से चलता है तो आकाश में उसका धक्का लग कर जोरदार वायु उत्पन्न हो जाता है और वह वायु उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा से मोटर आ रहा है, इसी प्रकार बाम्बे मेल या कलकत्ता मेल जब अपनी पूरी चाल पर चलता है तो आकाश में धक्का लग कर इतना जोरदार वायु पैदा हो जाता है कि उस वायु के जोर से रेल की सड़क के पास के पत्ते, घास, कपड़े उड़ कर अपने स्थान को छोड़ देते हैं। अब सिद्ध हो गया कि जो वस्तु जितने वेग से चलेगी उतना ही भारी धक्का उसका आकाश में लगेगा धक्के के तुल्य वायु पैदा होगा और वह वायु उस दिशा को जावेगा जिधर से वह वस्तु आ रही है। मोटर का उदाहरण हमने दिखला दिया अब रेल का और समझलें, रेल पर एक पताका बांध दीजिये, जब रेल चलेगी तब वह पताका उड़ कर उसी तरफ जावेगी जिधर से वह रेल आरही है, सभी लोग रेल का सफर करते हैं, रेल में जब कोई मनुष्य खिड़की के बाहर धोती सुखाने लगता है तब वह धोती बड़े वेग से उड़ कर उसी दिशा को जाती है जिस दिशा से रेल आरही है।

पृथ्वी की परिधि (दायरे का घेरा) २५ हजार मील है, जैसे जोर से गेंद घुमाई जाती है या जोर से कुम्हार का चाक घूमता है इनके मत में वैसे ही पृथ्वी घूमती है, २५ हजार मील पृथ्वी का २४ घंटे में एक दौरा हो जाता है, यदि हम इस पर त्रैराशिक लगालें तो एक घंटे में १०४१ मील और एक मिनट में १७ मील घूमती है। पृथ्वी की चाल तेज और पृथ्वी का आकार विस्तृत इन दो कारणों से आकाश में जोरदार धक्का लगेगा उससे तीव्र वेगवान् वायु उत्पन्न होगा जिससे पृथ्वी पर सर्वदा भयंकर जोरदार आंधी चला करेगी ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर कोई विचारशील मनुष्य किस प्रकार पृथ्वी का घूमना मान ले? भूभ्रमणवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं।

(२) हम यह पहिले लिख आये हैं कि मोटर और रेल के धक्के से जो

वायु पैदा होता है वह उस दिशा को जाता है जिस दिशा से रेल या मोटर आ रही है। हमारी पृथ्वी पूर्व को जा रही है इससे उत्पन्न हुआ वायु सर्वदा पश्चिम को जावेगा, पश्चिम को हवा जाने के कारण संसार में जितनी भी ध्वजा पताका लगी हैं, वे सर्वदा जोर से पश्चिम को उड़ा करेंगी ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर हम कैसे मान लें कि पृथ्वी घूमती है ?

(३) पृथ्वी के भ्रमण से एक और दोष आवेगा जिसका दूरीकरण भूभ्रमणवादी नहीं कर सकते वह यह कि बादल सर्वदा पश्चिम को जाया करेंगे कभी भी पश्चिम से पूर्व को बादल न आवेगा, इसको इस प्रकार समझिये कि जो बादल पूर्व से उठ कर पश्चिम को जा रहा है वह तो पश्चिम को जावेगा ही किन्तु जो बादल पश्चिम से उठ कर पूर्व को जावेगा हमारी दृष्टि में वह भी पश्चिम को जाता ही नजर आवेगा इसको इस तरह समझिये कि बादल पूर्व को जा रहा है और पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है, बादल की चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है, जैसे २ समय बीतेगा वैसे ही वैसे पृथ्वी और बादल का फासला बढ़ेगा तब हमको यह मालूम पड़ेगा कि बादल पश्चिम को जा रहा है, अन्त में वह बादल धीरे २ हम से अत्यन्त दूर हो जावेगा और फिर पश्चिम दिशा में जो बादल हमको दिखाई दे रहा था उसका दीखना भी बन्द हो जावेगा किन्तु ऐसा प्रत्यक्ष में नहीं होता, फिर इस पृथ्वी का भ्रमण किस आधार पर मान लें, क्या केवल इसी आधार पर मानना होगा कि यह योरूपीय सिद्धान्त है और एशिया वाले बेवकूफ एवं यूरोपवाले हमेशा विद्वान् होते हैं ?

(४) पृथ्वी के भ्रमण से जो चतुर्थ दोष उत्पन्न होता है वह यह है कि बाण पश्चिम को जायगा। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने धनुष पर रख कर तीर ऊपर को फेंका अब वह तीर पश्चिम में गिरेगा कारण इसका यह है कि धनुष से तीर निकल कर आकाश में गया और फिर वहां से लौटा, आने जाने में बाण को लगा चौथाई मिनट, अब चौथाई मिनट में जहाँ से वह बाण ऊपर को फेंका गया है वह भूमि सवा चार मील पूर्व को चली गई इस कारण बाण सर्वदा पश्चिम में गिरेगा किंतु ऐसा नहीं होता, जब प्रत्यक्ष में बाण पश्चिम में नहीं गिरता फिर प्रत्यक्ष विरुद्ध भूभ्रमण को कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान लेगा, केवल वे ही लोग मानेंगे जो लार्ड मेकाले

की दूषित शिक्षा पद्धति के पंजे में पड़ कर अपने विचार और अपनी बुद्धि को तिलांजलि दे चुके हैं।

(५) यदि पृथ्वी घूमती है तो फिर पक्षियों को घोसले नहीं मिलेंगे। कल्पना करो कि प्रातः काल छः बजे कबूतर आकाश को उड़ गया और वह आठ बजे उतरा, अब वह घोसले में जाना चाहता है तो उसको क्या घोसला मिल सकेगा? वह दो घंटे उड़ा है, दो घंटे में उसका घोसला दो हजार मील आगे बढ़ गया? अब हजरत आकाश में ही फिरें मारे मारे। यदि कबूतर ऊपर उड़ कर तुरंत ही उतरने लगा, अब भी उसको घोसला न मिलेगा क्योंकि उड़ने में लगे तीन मिनट, तीन मिनट में उसका घोसला गया ५१ मील, अब वह जो लौट रहा है तो उसकी चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है अब हजरत यह भी आकाश में हो रहा किन्तु कबूतर को घोसला मिल जाता है फिर हम कैसे मान लें कि पृथ्वी घूमती है ?

+ विचार +

इन समस्त प्रश्नों के ऊपर भूभ्रमण वादी एक उत्तर देते हैं कि वायु और ध्वजा पताका, बादल, बाण, कबूतर इन सबको भूवायु सूत्र को खैंचता जाता है इस कारण ये पाँचो दोष नहीं आते, इस विषय में भूभ्रमणवादी भिन्न भिन्न दृष्टान्त भी देते हैं उन सबका विचार पाठक क्रम से सुनें।

(१) इनका कथन है कि रेल में बैठकर जब हम गेंद ऊपर को फेंकते हैं तो वह गेंद जिधर से गाड़ी आ रही है उस तरफ नहीं जाती किंतु उसमें रेल का वेग भरा रहता है इस कारण गेंद भी रेल के साथ खिंची चली जाती है ऐसे ही पृथ्वी के ऊपर रहने वाली समस्त वस्तुओं को भूवायु पृथ्वी की चाल पर पूर्व को खैंचता है।

इसका उत्तर यह है कि गेंद को ऊपर फेंकते समय हाथ का ऐसा इशारा दिया जाता है जिससे गेंद ठीक हमारे हाथ में आ जावे और जब इशारे में फर्क पड़ जाता है तब गेंद को हाथ में लेने के लिये हाथ बढ़ाना पड़ता है। हम रेल में बैठे ही बैठे गेंद को इस इशारे से फेंक सकते हैं कि गेंद एक हाथ उधर को चला जावे जिधर को रेल जा रही है क्या ऐसी दशा में भूभ्रमणवादी गेंद में रेल का डबल वेग मानें गे ? गेंद में अन्तर अवश्य आता है किंतु वह इतना कम है कि जो

ज्ञान में नहीं आसकता।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि रेल की लालटेनों के पास पतंगे घूमते हैं और वे रेल के वेग से रेल की चाल पर चले जाते हैं यह उदाहरण सिद्ध करता है कि पृथ्वी के ऊपर की समस्त वस्तुयें भूवायु से खिंच कर पृथ्वी की चाल पर जाती हैं।

इसका उत्तर यह है कि पतंगे रेल के भीतर आगये, रेल उनका आधार हो गई,भीतर ही क्या यदि रेल के ऊपर भी कोई मनुष्य बैठ जावे तो वह रेल के साथ चला जावेगा किंतु जिन का आधार रेल नहीं है, जो रेलसे किसी प्रकार का लगाव नहीं रखते उनको रेल का वायु या वेग नहीं खैंच सकता। कल्पना करो कि कुम्हार के चाक में चूहों ने छेद कर लिया और भीतर चूहे बैठ गये तो वे चाक के साथ घूम सकते हैं किन्तु जो चूहे चाक के ऊपर हैं वे नहीं घूम सकेंगे इसी प्रकार रेल के ऊपर जहां पर रेल का लगाव नहीं है वहां पर कोई पतंगा या पत्ती अथवा मनुष्य हो तो उसको रेल का वेग या वायु रेल के जाने वाली दिशा को कभी भी न खैंच सकेगा जैसे मुण्डी गाड़ियों में रक्खे हंडे पर पतंगे नहीं चढ़ते फिर हम कैसे मान लें कि ध्वजा पताका, बाण, बादल कबूतर जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते उनको भूवायु खैंच ले जावेगा ? इसके ऊपर भूभ्रमणवादियों को सोचना चाहिये।

(३) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि जब हम रेल की खिड़की में बैठ कर कोई वस्तु नीचे फेंकते है तब वह हमारे निशान पर नहीं गिरती वरन् कुछ खिचकर आगे को गिरती है अब हमको मानना पड़ता है कि उस वस्तु को रेल की वायु ने आगे को खैंचा इसी प्रकार पृथ्वी के समस्त पदार्थ भूवायु से पूर्व को खिचते हैं।

उत्तर इसका यह है कि जब तुम कोई चीज रेल की खिड़की से नीचे फेंकोगे तो पहिले रेल की हवा के जोर से वह पीछे को हटेगी क्योंकि रेल जिधर को जाती है उधर ही से जोरदार वायु रेल के आने की दिशा को दौड़ता है, यदि वस्तु हलकी है तो हवा के धक्के से वह इतनी उड़ेगी कि उसके उड़ने का तुमको ज्ञान हो जावेगा, यदि चीज भारी है तो उसके पीछे को हटने का ज्ञान तुमको न होगा

के पहियों का वायु धक्के से उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा को रेल जा रही है इसका कारण भी समझ लीजिये। जब एक पहिया घूम कर वायु को पीछे को फेंकता है तब वह वायु दूसरे पहिये का धक्का खाती है वह धक्का उस वायु को वापिस आने के लिये बाध्य कर देता है, जब एक पहिया दूसरे आगे के पहिये से वायु को वापिस भेजता है तो इसी सिद्धान्त से समस्त पहिये वायु को आगे को धिकाते रहते हैं, पहियों की शक्ति अधिक हो जाती है इस कारण से पहियों के समीप की हवा पीछे को न जाकर आगे को जाती है, आप खिड़की से एक किनारा पकड़ कर कोई कपड़ा उड़ावें वह उसी दिशा को उड़ेगा जिधर से रेल आ रही है इस से सिद्ध हुआ कि खिड़की से पहिये तक की वायु पीछे को जा रही है फिर आप रेल के पहियों के समीप घास-पत्ते-रुई या बारीक कपड़ा रख दीजिये जब रेल आवेगी पहियों की वायु के स्पर्श से ये वस्तुयें आगे को हट जावेंगी, अब सिद्ध हो गया कि ऊपर का वायु वस्तु को उस तरफ जाने के लिये बाध्य करता जिधर से रेल आरही है और पहियों का वायु आगे को हटाता है, पृथ्वी में पहियों की लाइन नहीं लगी फिर किस आधार से पृथ्वी से उत्पन्न हुआ वायु पूर्व को जावेगा, भूभ्रमणवादियों को गहरी दृष्टि से इसका विचार करना चाहिये।

(४) भूभ्रमणवादी कहते हैं कि रेल में बैठे हुये हम जब किसी नदी के किसी नियत स्थान पर पत्थर फेंकते हैं तो वह पत्थर नियत स्थान पर न पहुंच कर स्थान से उस तरफ बढ़ कर गिरता है कि जिधर को रेल जा रही है इससे सिद्ध होता है कि रेल के वायु ने उसको खैंच लिया।

इसका उत्तर यह है कि यह तो कभी त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकता कि रेल का वायु वस्तु को उस तरफ खैंचता है जिधर को रेल जा रही है आप खिड़की के बाहर मुंह करके खिड़की में कपड़ा उड़ा कर या रेल पर पताका लगा कर यह निश्चय कर सकते हैं कि रेल का वायु पीछे को जाता हुआ वस्तुओं को भी पीछे को फेंकता है फिर नहीं मालूम रेल के वायु का आगे जाना भूभ्रमणवादी क्यों मानते हैं क्या इनको जब कोई उत्तर न आवेगा दुराग्रह से काम लेंगे ? विज्ञान और दुराग्रह यह बड़ी मसखरी की बात है, सीधे सीधे क्यों नहीं कहते कि हमारे पास

भूभ्रमण की पुष्टि में कोई सच्ची युक्ति नहीं है ? पत्थर जो नदी के किसी नियत स्थान पर फेंका जाता है पहिले उसकी लाइन मिलाई जाती है, जिस समय पत्थर और स्थान की लाइन मिलाई गई छोड़ते समय में रेल कुछ आगे को बढ़ गई इस कारण गिरने की लाइन से चल कर कहीं अन्यत्र गिरेगा इससे पृथ्वी की भूवायु द्वारा वस्तुओं के खिंचने की पुष्टि करना भूल ही नहीं वरन् भारी भूल है।

(५) कई एक लोगों का कथन है कि हवाई जहाज से जो डाक के थैले फेंके जाते हैं वे थैले नियत स्थान पर न गिर कर कुछ आगे को गिरेंगे क्योंकि वे हवाई जहाज की वायु से आगे को खिंच जाते हैं।

इसका उत्तर यह है कि थैलों का नियत स्थान पर न गिरना इसका कारण जहाज का वायु नहीं है वरन् लाइन का अन्तर और पृथ्वी का वायु है। जिस लाइन से थैलों के फेंकने का इरादा किया था फेंकते समय हवाईजहाज आगे बढ़ गया इस कारण थैले गिरने की लाइन पहिली लाइन से कुछ आगे बन गई, दूसरा असर थैले पर वायु का होगा, यदि वायु पश्चिम का होगा तो थैला पूर्व को गिरेगा पूर्व का होगा तो पश्चिम को। थैलों से और भूवायु से सादृश्यता ही नहीं मिलती फिर हम जहाज के थैलों के आधार से कैसे मान लें कि भूवायु उन पदार्थों को खैंच लेता है जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते ?

इनका कथन है कि ध्वजा पताकाओं को भूवायु पूर्व को खैंचता है किन्तु यह निरी गप्प है, जब पूर्व का जोरदार वायु चलता है तब ध्वजा पताका बड़े जोर से पश्चिम को उड़ती हैं इस समय में क्या भूवायु की अन्त्येष्टि हो गई ? अब उड़ जाने वाली ध्वजा पताकाओं को क्यों नहीं रोकता क्या अब भूवायु नष्ट हो गया ? भूभ्रमणवादियों के पास इसका क्या उत्तर है ?

भूवायु न पृथ्वी से लगाव रखता है और न पदार्थों को खैंचता है, जब भूभ्रमणवादियों को कुछ नहीं सूझता तब भूवायु द्वारा खिंचने का झूठा अड़ंगा लगा बैठते हैं इसकी पुष्टि में हम कुछ उदाहरण पाठकों के आगे रखते हैं सावधानी से पढ़ने का कष्ट उठावें। पृथ्वी से लगाव न रखने वाले कबूतर को यदि भूवायु पूर्व को खैंचेगा तब तो एक भी बादल पश्चिम को न जा सकेगा।

बादल उठा और भूवायु से खिंच कर पूर्व को जाने लगा इससे पृथ्वी के पश्चिम भाग में बादल न जा सकेगा इसी कारण से वृष्टि भी न होगी। जिस समय बादल जोर से उठते हैं और बादलों के ऊपर बादल दिखलाई देते हैं उस समय कभी २ ऐसा भी अवसर आ जाता है यह हमने अपनी आंख से देखा है और लोगों को दिखलाया है, नीचे के भाग में पूर्व की हवा है इस कारण बादल पश्चिम को जा रहा है और ऊपर के भाग में पश्चिम की हवा है इस कारण बादल पूर्व को जाता है प्रायः यह नियम है कि जिधर को हवा जायगी उधर को ही बादल जावेगा, भूवायु बादल को नहीं खेंचता फिर हम यह क्यों न मान लें कि भूभ्रमणवादियों को जब कुछ नहीं सूझता तब भूवायुद्वारा खिंचने का झूठा धोखा दे देते हैं।

भूवायु का प्रभाव वस्तु पर पड़ता ही नहीं, समझिये। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने जर्मन से एक ऐसी बन्दूक मंगवाई कि जिसकी गोली पांच फर्लांग पर गिरती है, जब वह गोली पूर्व को छोड़ी जाती है तब पाँच फर्लांग पर गिरती है, उतनी ही देर में पश्चिम में भी पांच फर्लांग पर गिरती है, इस गोली पर भूवायु का प्रभाव क्यों नहीं? क्या भूवायु गोली से डरजाता है? जब गोली पर भूवायु का प्रभाव नहीं है तो ऊपर को छोड़े हुये बाण पर भूवायु का प्रभाव हम बुद्धि को नीलाम करके कैसे मानलें?

रेल और मीलों के इंजनों का धुआं पहिले ऊपर को चढ़ता है जब वह इंजन के स्टीम से लगाव छोड़ देता है तब यदि पश्चिम की हवा है तो वह पूर्व को और पूर्व की हवा है तो पश्चिम को, उत्तर की हवा होने पर दक्षिण को जाता है इन धुयें को भूवायु खेंच कर पूर्व को क्यों नहीं ले जाता? नहीं मालूम भूभ्रमणवादी इसका कब जवाब देंगे?

हमने देखा है कि भूवायु के प्रभाव से जहाज की गति में कोई अन्तर नहीं आता। कल्पना करो कि कानपुर में एक हवाई जहाज आ गया वह एक घंटे में अस्सी मील की रफ्तार से चलता है, जब उसको पूरी चाल पर पूर्व दिशा को चलाते हैं तब वह एक घंटे में अस्सी मील जाता है और जब पश्चिम को चलाते हैं तब

भी एक घंटे में अस्सी ही मील जाता है इसी प्रकार उत्तर या दक्षिण किसी दिशा में उस जहाज को चलावें पूरी रफ्तार से जब वह चलाया जावेगा तो फी घंटा अस्सी मील ही जावेगा, पूछना यह है कि इस हवाई जहाज पर भूवायु की शक्ति का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता और कबूतर पर क्यों पड़ जाता है क्या भूवायु हवाई जहाज से डर जाता है ? वास्तव में भूवायु में यह शक्ति नहीं है कि वह पदार्थों को खैंच कर पृथ्वी की चाल पर पूर्व को ले जावे हां जब भूभ्रमण वादियों को प्रतिवादियों की शंकाओं पर कुछ नहीं सूझता तब भूवायु के खैंचने का झूठा अड़ंगा लगा कर जान बचाने का उद्योग करते हैं।

× अनुभव +

अमेरिका वालों ने तारों के देखने की एक दुर्बीन बनाई, उस दुर्बीन से लोगों को तो तारे दीखे किंतु हमने तारों को न देख कर दुर्बीन में यह देखा कि पृथ्वी अचला है वह कभी एक इंच भी अपने स्थान से नहीं हटती, सुनिये कथा जैपुर, उज्जैन, देहली और काशी में जयपुराधीश महाराज जयसिंह के बनवाये ज्योतिष के यंत्र हैं, इन सब स्थानों में एक एक यंत्र ऐसा भी है कि जिससे ध्रुव का दर्शन होता है, इस यंत्र में दक्षिण की तरफ से यंत्र का आरंभ होकर यंत्र की दीवार ऊंची उठती हुई उत्तर को जाती है, उत्तर के आखिरी सिरे पर एक वृत्ताकार लोहे का कड़ा है उसका लम्बा भाग दीवार की ईंटों में चिन दिया गया है अतएव उत्तर के कोने पर केवल वृत्ताकार जिसका व्यास सवा इंच का है लगा हुआ है, एक ऐसा ही कड़ा दक्षिण की तरफ यंत्र के उस भाग में लगा है जहां से यंत्र का आरंभ होता है जब मनुष्य खड़ा होकर नीचे के कड़े से दृष्टि को लाइन ऊपर के कड़े के बीचों बीच लाता है उस साथ में ध्रुव तारा दीख पड़ता है।

एक दिन उजियाली रात में माननीय महामहोपाध्याय श्री १०८ पं० अयोध्यानाथ जी नई बस्तीवाले अमेरिका वाली दुर्बीन लेकर काशी के मान मंदिर में पहुँचे उन्होंने उस दुर्बीन से ध्रुव को देख कर एक भपंजर का नकशा बनाया, दस बजे रात के वे चलने लगे इन दिनों हम काशी में पढ़ा करते थे और मानमन्दिर में ही रहते थे एवं हम ज्योतिष इन्हीं पूज्य महामहोपाध्याय जी से

पढ़ते थे तो हमारा इनका गुरु शिष्य सम्बन्ध था। मैंने कहा कि गुरु जी दुर्बीन छोड़ते जाओ मैं तीन बजे लेता आऊंगा, पूज्य पंडित जी भजन पूजन से निवृत्त होकर तीन बजे रात से विद्यार्थियों का पाठ आरंभ कर देते थे और साढ़े छः बजे प्रातः काल पढ़ा कर पढ़ाने की गद्दी छोड़ देते थे इस कारण मैंने कहा कि मैं तीन बजे दुर्बीन लेता आऊंगा, गुरु जी ने दुर्बीन मुझे दे दी, उस समय चन्द्रमा का प्रकाश था इस कारण बिना दुर्बीन के ध्रुव तारा स्पष्ट नहीं दीखता था। मैंने साढ़े दश बजे कुर्सी डाल और उस पर बैठ दुर्बीन लगाई, डेढ़ बजे रात के बन्द कर दी, साढ़े दश बजे से डेढ़ बजे तक ध्रुव तारा दुर्बीन से उन लोहे के वृत्तों में दीखा करा, जहां साढ़े दश बजे था वहां ही डेढ़ बजे रहा एक बाल कितना भी फर्क उसमें न पड़ा, बस हम को ज्ञान होगया कि ध्रुव तारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथ्वी को अचला कहा है वास्तव में ये दोनों ही नहीं चलते यदि इन दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी न किसी समय इस लाइन से ध्रुव तारा पूर्व पश्चिम अवश्य हो जाता। अब हम पूछना चाहते हैं कि सैकड़ों वर्ष के बने हुये यंत्र में आज तक ध्रुव उसी स्थान पर दीखता है जिस स्थान पर यंत्र के बनने के समय था, यदि हम पृथ्वी को चलने वाली मान लें तो फिर ध्रुव सैकड़ों वर्ष तक लाइन पर कैसे रहेगा? मजा रहा, जो दुर्बीन तारे देखने को बनाई गई वह पृथ्वी का अचलत्व सिद्ध कर गई इसी को कहते हैं कि 'जादू तो वह जो शिर चढ़ के बोले'।

भूभ्रमणवादियों की समस्त युक्तियां निःसार हैं, बच्चों का खेल हैं, इनमें इतनी योग्यता नहीं जो पृथ्वी का भ्रमण सिद्ध कर दें, झूठा गपोड़ा भूवायु का आकर्षण आगे रख संसार को धोखे में डालते हैं केवल इस लिये कि यदि हम भू को अचला मान लेवें तो अंग्रेजी शिक्षा मिथ्या और उस शिक्षा से शिक्षित हम मूर्ख सिद्ध हो जावेंगे, मूर्ख रहने पर भी हमको मूर्खता का कलंक न लगे इस कारण ये रात दिन बकते रहते हैं कि पृथ्वी घूमती है, इनके इस वाग्जाल रूपी धोखे की टट्टी से तुम बचना और अन्यों को बचाना यह प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है इसी कर्तव्य को सामने रख आज हमने पृथ्वी के भ्रमण का कुछ विवेचन पाठकों के आगे रक्खा है इस लेख पर जब कोई भूभ्रमणवादी युक्तियुक्त लेख लिखेगा तब हम इस विषय पर

एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिख कर संसार के आगे रक्खेंगे आज इस विषय को यहां ही रोकते हैं ।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पुराणवर्मणः पूर्वार्द्धम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

हिन्दु कार्यालय के पुस्तकों का सूचीपत्र

धर्मप्रकाश ।

यह पुस्तक आर्यसमाज और सनातनधर्म के सिद्धान्तों में से किस के सिद्धान्त वेदानुकूल हैं इस की जानकारी के लिये शास्त्री जी ने लिखी है। इसमें प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' फिर उतने ही लेख के खण्डन का 'दयानन्द तिमिर भास्कर' इसके पश्चात् दयानन्द तिमिर भास्कर का खण्डन करनेवाला 'भास्करप्रकाश' फिर भास्कर प्रकाश के ऊपर 'धर्मप्रकाश' इस प्रकार प्रत्येक विषय पर चारों ग्रन्थों के लेख पूर्ण छापे गये हैं, इस ग्रन्थ की प्रशंसा स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र तथा वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी एवं विद्यारत्न पं० कन्हैयालाल जी महोपदेशक पं० गोकुलचन्द जी शास्त्री, विद्यावागीश पं० गोविन्दराम शास्त्री और पं० श्रवणलाल जी प्रभृति स्वर्गीय विद्वानों ने लिखी है। वर्तमान काल के विद्वान् महामहोपध्याय पं० गिरिधर जी शास्त्री प्रिंसिपल जयपुर कालेज तथा कविरत्न पं० अखिलानन्द जी एवं विद्याविभूषण पं० श्रीकृष्ण जी जोशी बी० ए० एल० एल० बी० धार्मिक प्रोफेसर विश्वविद्यालय काशी प्रभृति अनेक विद्वानों ने की है इस ग्रन्थ में पृथक् २ समुल्लास हैं छ समुल्लास का यह ग्रन्थ छपा हुआ तैयार हैं पृष्ठ संख्या १२१२ मूल्य ५) डाक व्यय चौदह आना।

सत्यार्थप्रकाश ।

स्वामी दयानन्द जी का बनाया हुआ असली 'सत्यार्थप्रकाश' यही है। इसमें मृतक पितरों का श्राद्ध, स्वर्ग में रहने वाले देवताओं का मानना तथा आर्यसमाजियों के लिये हवन करके गाय बैल को चट कर जाना लिखा है। स्वामी दयानन्द जी के

स्वर्गवास होने पर प्रतिनिधि ने काट छांट करके एक नया सत्यार्थप्रकाश बना लिया और इस असली सत्यार्थप्रकाश को खरीद खरीद कर आर्यसमाज ने नष्ट करना आरम्भ कर दिया, यहां तक अलभ्य हुआ कि तीन रुपये की पुस्तक खोजने पर साठ रुपये को भी नहीं मिलती थी, जब हमने यह देखा कि भीतरी जलन के कारण आर्यसमाजी लोग दयानन्द के सिद्धान्तों को संसार से उखेड़ रहे हैं तब हमने वही असल दयानन्दकृत सन् १८७५ में छपा प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश छपवा दिया। भारत वर्ष की आर्यसमाजों ने रेजुलेशन पास किया चन्दे का संग्रह हुआ, हम को मुकद्दमे का नोटिस दिया गया किन्तु इतने पर भी मुकद्दमा चल न सका, आर्यसमाजियों के मुंह पर स्याही पुत गई, हार कर घर में बैठ रहे। यह वही सत्यार्थप्रकाश है मूल्य ५) रु० डाक महसूल पांच आने

पुराणवर्म

आर्यसमाजी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार, वर्णव्यवस्था विधवाविवाह नियोगादि विषय पर सैकड़ों शास्त्रार्थ हार चुके, उपरोक्त विषय की पुस्तकें भी शास्त्री जी ने ऐसी लिखीं कि जिनके उत्तर में आज तक आर्यसमाज की लेखनी नहीं उठी, अब हार कर आर्यसमाजियों ने यह मैदान छोड़ दिया और पुराणों का खण्डन तथा पुराणों पर शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिये। आर्यसमाज के इस फौज फांटे वाले हमले को दूर करने के लिये शास्त्री जी ने "पुराणवर्म" नामक यह ग्रन्थ लिखा है यह ग्रंथ अभी आधा ही छपा है केवल पूर्वार्ध है, इसके ऊपर काशी से निकलने वाले साप्ताहिक हिन्दी केसरी ने लिखा है कि—

'पुराणवर्म पूर्वार्ध' धर्म ग्रन्थों की कौन कहे, जिस देव वाणी में हमारे धर्म ग्रन्थ लिखे हैं उससे भी पूर्णतया अपरिचित लोगों के बहकावे में आकर धार्मिक शिक्षा शून्य हमारे शिक्षित धर्म बांधव भी पुराणों के सम्बन्ध में हास्यास्पद शंकायें करते देखे सुने जाते हैं। इस प्रकार के सभी सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे 'पुराणवर्म' को एक बार अवश्य देखें, पुराणों पर बौद्ध काल से लेकर आज तक जितनी शंकायें हो सकी हैं 'पुराणवर्म' में एक एक कर उन सभी के समाधान का प्रयत्न होगा। अभी 'पुराणवर्म' का केवल, 'पूर्वार्द्ध' ही प्रकाशित हुआ है। इसे आद्यन्त पढ़ने के बाद निःसंकोच भाव से हम कहते हैं कि पुराण विद्यार्थी इस ग्रंथ को अवश्य देखें। इस ग्रन्थ में जितनी शंकाओं का समाधान हुआ है उन पर कोई अगर मगर शेष नहीं रह जाता। हमारा विश्वास है कि 'उत्तरार्द्ध' के प्रका-

शित हो जाने पर पुराणों के सम्बन्ध में एक भी शंका न रह जायगी। यदि इतने पर भी किसी को सन्तोष न हो तो ग्रन्थकार की घोषणानुसार कोई भी मनुष्य विद्वत्ता पूर्ण रीति से खण्डन कर १०००) पारितोषिक लेने का प्रयत्न कर सकता है और हम अनुरोध करेंगे कि वह अवश्य प्रयत्न करे। अस्तु कहने का मतलब यह है कि पुराण के मानने वालों और उनके विरोधियों दोनों ही के लिये यह ग्रन्थ बड़े काम का है। इसी प्रकार इसग्रन्थ के रचयिता पं० कालूराम जी शास्त्री सनातनधर्म की जो अकथनीय सेवा कर रहे हैं उस पर मुग्ध हो कुछ सनातनी यदि उन्हें श्री शंकराचार्य का अवतार मानने लगे हों तो क्या आश्चर्य है।

जिस 'पुराणधर्म' के 'पूर्वार्द्ध' की समालोचना है उसका मूल्य ३) रु० और डाकव्यय ॥) आने। ग्रन्थकर्ता इस ग्रन्थ के खण्डन करने वाले को १०००) इनाम देना लिखा है।

व्याख्यान दिवाकर।

इस नाम का प्रशंसनीय ग्रन्थ शास्त्री जी ने लिखा है। यह इतना प्रशंसनीय है कि एक महीने में इसकी दो सहस्र कापियां बिक गईं। इसमें धर्म, धर्म, गृहस्थधर्म, अभ्युत्थान, सनातनधर्म गौरव ये पांच व्याख्यान धर्म के हैं। इसके आगे ईश्वरस्वरूप, अवतार, अवतारवाद, कृष्णावतार ये चार व्याख्यान अवतार के हैं। मूर्तिपूजा, प्रतिमापूजन, मूर्तिपूजावाद, भक्ति; भक्ति इस प्रकार चौदह व्याख्यान हैं। सभी व्याख्यान मधुर; सरस प्रामाणिक और युक्ति युक्त हैं। इस ग्रन्थ को हाथ में लेकर व्याख्यानदाता भी बन सकता है और शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजय भी कर सकता है; जिसमें ये चौदह व्याख्यान हैं इस "व्याख्यान दिवाकर" के 'पूर्वार्द्ध" का मूल्य ।-) डाक महसूल पांच आने॥

विधवाविवाहनिर्णय।

विधवाविवाह का आन्दोलन उठने पर शास्त्री जीने यह ग्रन्थ तैयार किया है, इसमें वैदिकविवाह की उत्कर्षता, विधवाविवाह का जाल, वेद विवेचन, तर्क, निर्णय, नष्टे मृते मीमांसा, वाग्दत्ता का पुनर्विवाह, पुनर्भू विवेचन विधवाविवाह निषेध इतिहास विवेचन, पुराणचर्चा; वेद में नियोग की व्यवस्था ये बारह व्याख्यान हैं। यह ग्रन्थ व्याख्यान सीखने के लिये अद्वितीय है इस ग्रन्थ को हाथ में लेकर जो शास्त्रार्थ करेगा वादी उसके आगे एक मिनट नहीं ठहर सकता। इस ग्रन्थ के

खण्डन करने वाले को ग्रन्थ कर्ता ने १०००) रुपया परितोषक भी लिख दिया है॥ यह ग्रंथ व्याख्यान दिवाकर का दूसरा भाग है मूल्य २) रुपया डाक महसूल पांच आना॥

दयानन्द छल कपट दर्पण।

आर्यसमाजियों ने स्वामी दयानन्द जी के अनेक जीवन चरित्र लिखे हैं किंतु वे सब बनावटी और परस्पर विरुद्ध हैं। यह ग्रन्थ 'दयानन्द छल कपट दर्पण' जिसका दूसरा नाम 'दयानन्द का जीवन चरित्र' हैं पं० जियालाल जी जैनी ने उत्कट खोजके साथ है इस कारण यह सच्चा जीवन चरित्र है॥ इसकी भाषा हृदयग्राही नहीं है किन्तु पंडित जी ने स्वामी दयानंद के ऐसे ऐसे मामले दिखलाये हैं जिनको पढ़ आर्यसमाजी शिर नीचा कर चल देते हैं॥ इस ग्रंथ का अधिकार लेकर हमने छपवाया है पाठक इसे अवश्य पढ़ें॥ मूल्य दो रुपया डाकव्यय पांच आने।

मूर्तिपूजा।

वैदिक उपासना के विषय पर शास्त्री जी ने "मूर्तिपूजा" नामक ग्रन्थ लिखा है॥ पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने भारत प्रसिद्ध :सरस्वती मासिकपत्रिका में इस पुस्तक की भूरि भूरि प्रशंसा की है॥ इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को ग्रन्थकर्ता ने १०००) रु० पारितोषिक भी रक्खा है॥ सन् १९१० ई० से यह पुस्तक कई बार छपी, मूर्तिपूजा के खण्डन करने वालों के समस्त हौसले पस्त पड़ गये, खण्डन के लिये किसी ने भी लेखनी नहीं उठाई वरन् जिस दिन से यह पुस्तक तैयार हुई है मूर्ति खण्डन करने वालों ने शास्त्रार्थ करने छोड़ दिये भूल से कोंच, राठ, कुरारा, कानपुर प्रभृति जिन स्थानों में आर्यसमाज ने शास्त्रार्थ किया, इस पुस्तक के आगे भारी हार खानी पड़ी। पुस्तक का मूल्य १) रुपया डाक महसूल चार आना।

अवतार।

इस पुस्तक में वेद और युक्ति से ईश्वर का अवतार धारण करना दिखलाया गया है। वेद के प्रमाणों से ब्रह्मा, वराह वामन, यक्ष मत्स्य प्रभृति अनेक अवतार दिखलाए गये हैं। पुस्तक पढ़ते ही आर्यसमाजी लम्बी स्वांस लेने लगते हैं। ग्रन्थ कर्ता ने इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को १०००) रु० इनाम रक्खा है किंतु

किसी की भी लेखनी न उठ सकी। इस पुस्तक का मूल्य १) डाक महसूल चार आना।

+ धर्म +

धर्म क्या चीज है? धर्म से क्या लाभ है? संसार में धर्माचरण किस प्रकार शान्ति स्थापित करता है? धर्म के बिना संसार की क्या दुर्दशा होती है मरने के बाद जब कोई सहायता नहीं करता तब जीव का धर्म ही रक्षक होता है संसार में विद्यानद्वारा सनातनधर्म किस प्रकार सत्य है और शेष धर्म सनातनधर्म के आगे किस प्रकार हार कर अपनी हस्ती को मिटा देते हैं प्रभृति विषयों का उत्तम फोटू खैंचा है, निर्माता इसके शास्त्री जी हैं मूल्य बारह आने, डाक महसूल चार आने।

शास्त्रार्थत्रय कानपुर।

सन् १९१८ में आर्य समाज कानपुर को शास्त्रार्थ की खुजली पैदा हो गई, अन्त में सनातनधर्म सभा भी तैयार हुई और लेखबद्ध पुराण, श्राद्ध, मूर्तिपूजा इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ हुए। जिस आर्यसमाज कानपुर का डी० ए० वी० कालेज और डी० ए० वी० हाईस्कूल है वह आर्यसमाज ऐसी हारी कि उसने शास्त्रार्थ हो चुकने पर किसी समाचारपत्र में सूचना तक नहीं निकाली और न शास्त्रार्थ छपवा या वरन् उसी दिन से सनातनधर्म सभा से शास्त्रार्थ करने का नाम तक नहीं लिया। अब जब कोई सनातनधर्मी शास्त्रार्थ के लिये आर्यसमाज कानपुर को कहता है आर्यसमाज कानपुर फौरन शास्त्रार्थ से इन्कार कर देती है। इन तीनों शास्त्रार्थों में दोनों पक्षों के लेख बड़ी सावधानता के साथ संग्रह किये हैं। इस शास्त्रार्थत्रय को देख कर आर्यसमाजी चुप रहजाते हैं। मूल्य आठआना, डाकव्यय चार आना

+ नियोग +

स्वा० दयानन्द जी ने वेदों का गला घोट उन से जबर दस्ती नियोग निकाला है, स्वामी जी की समस्त चालाकियां इसमें खोल दी गई। पं० बदरीदत्त जोशी, वेद तीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, ला० मुन्शीराम उर्फ श्रद्धानन्द आदि ने जो इस नियोग का मीठा खण्डन लिखा है वह भी इस पुस्तक में दिखलाया है। स्वा० दयानन्द ने इतना झूठा विषय लिखा कि आर्यसमाजियों को भी इस नियोग से घृणा हो गई। इस विषय पर दो अदालतों के भी फैसले हैं. इन अदालतों ने

नियोग को व्यभिचार बतलाया है, नियोग पुस्तक में ये सब मौजूद हैं इसके खण्डन करने वाले को एक सहस्र रुपया इनाम देना भी शास्त्री जी ने लिखा है। सन् १३ से यह पुस्तक छपरही है आर्यसमाजी कलेजा पकड़ के रह जाते हैं किंतु उत्तर नहीं लिख सकते मूल्य आठ आना।

वर्णव्यवस्था।

इस पुस्तक के प्रकरण और युक्तियों को देख कर सुधारक बिगाड़क लीडर और प्लीडर, आर्यसमाजी और जाति पांति तोड़कों के छक्के छूट जाते हैं, जबान बन्द हो जाती है, चुपके से ही चल देते हैं। पुस्तक का मूल्य छः आना।

श्राद्ध निर्णय।

इस पुस्तक में युक्ति तथा वेद के प्रमाणों से मृतक पितरों का श्राद्ध किया गया है। साथ ही साथ जीवित पितरों के श्राद्ध की भी खूब छीछालेदर की गई है। पुस्तक को देख कर मृतक श्राद्ध के खण्डन करने वालों की नानी मर जाती है मूल्य छः आना

दयानन्द मत विद्रावण।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण है। इसमें जो स्वामी दयानन्द के लेख का परस्पर विरोध और अवैदिकता दिखलाई गई है उसको सुन कर आर्य समाजी अंगुली से जीभ दबा जाते हैं। मूल्य चार आना।

सत्यार्थप्रकाश का छीछालेदर।

स्वामी दयानन्द जी के स्वर्गवास होने पर आर्यसमाजियों ने सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर करडाली। द्वितीयावृत्ति में स्वा० जी का कुछ लेख निकाला कुछ अपनी तरफ से लिख कर सत्यार्थप्रकाश में मिलाया और उसको सत्य बतला दिया, फिर कुछ तृतीयावृत्तिमें निकाला, चतुर्थावृत्ति में फिर निकाल दिया कुछ बदल दिया इसीप्रकार तेरहवीं आवृत्ति तक इस ग्रन्थ में सत्यार्थप्रकाश की काट छांट दिखलाई गई। स्वार्थ बुरी बलाय है, स्वार्थ में पड़ कर आर्यसमाजी स्वामी दयानन्दजी को मूर्ख तथा उनके सत्यार्थप्रकाश को झूठा लिखा करते हैं यही इस पुस्तक में दिखलाया गया है मूल्य दो आना।

शास्त्रार्थ सुजानगढ़।

सुजानगढ़ में आर्यसमाज स्थापित हो गई, बारह वर्ष तक कोई सनातनधर्मी

उपदेशक न पहुंचा, अब तो आर्यसमाज शास्त्रार्थ के लिये कूदने लगी, सनातन धर्मियों को धर्म पर बोलना कठिन हो गया, अन्त में आठ सितंबर सन् २६ में सनातनधर्म और आर्यसमाज से अवतार पर शास्त्रार्थ हुआ। आर्यसमाज ऐसी हारी कि अभीतक मुर्दे की भांति चुप चाप दड़ी है। सनातन धर्म की तरफ से अवतार पर जो प्रमाण दिये गये आर्यसमाजी पंडित ने उनको छुआ तक भी नहीं इस शास्त्रार्थ से अवतार का पूरा ज्ञान हो जाता है मूल्य दो आना।

भजन तरंग।

सनातन धर्मियों के पास भजनों की कोई अच्छी पुस्तक नहीं थी सब विषय के उत्तमोत्तम भजन संग्रह करके यह प्रथम भाग छपा है, मूल्य दोआना।

छोटी पुस्तकें।

ये पुस्तकें जिस जिस विषय पर बनी है अपने विषय का ऐसा ज्ञान करवा देती है कि फिर कोई भी आर्यसमाजी बोल नहीं सकता, लेखनी तथा जबान बन्द हो जाती है। प्रत्येक मनुष्य को ये किताबें मंगवा कर पढ़नी चाहिये देखो क्या मजा आता है किताबों के नाम दाम नीचे देखिये।

तीर्थ ~)॥, बनावटी वेद ~)॥, वेद पर आरा ~)॥ शुद्धिनिर्णय ~)।, संस्कार विधि समीक्षा ~), हिन्दुशब्द मीमांसा ~), नमस्ते मीमांसा ~), हनुमान निर्णय ~), लीडरों की नादिरशाही ~), अनोखा विजय ~), रमामहषि सम्वाद ~), लीडर गुदगर्जन ~), नई शिक्षा का विपरीत फल ~), दयानन्दलीला ॥, दयानन्द की आप्तता)।॥, वेदों का कतल)॥, जालीवेदमंत्र ॥, लोहालक्कड़ देवता)॥, स्वामी शिष्य संग्राम)॥। स्वामी पर कलंक)॥।, मांसविचार)॥।, द्विजत्व में दिया सलाई)॥, स्वामी गुरु कि चेलागुरु)॥ दयानंदकाकच्चाचिट्ठा)॥। दयानन्दकी सरूपता)॥, निराकारकी घुड दौड़)॥, वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा ॥, वेद पर वज्रपात)॥, दयानन्द हृदय)॥, दयानंद मन दर्पण)।, दयानन्द की बुद्धि)।॥, दयानन्द मत सूची)।॥, धर्म सन्ताप)॥, स्वामी दयानन्द और पुनर्विवाह)॥

ब्रह्मप्रेस इटावा की पुस्तकें।

षोडस संस्कार विधि २॥), श्राद्धमीमांसा ॥॥), व्याख्यानरत्नमाला ॥), स्पर्शास्पृश्यमीमांसा॥), आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ।≈), पुनर्जन्म ।), पुत्रकामेष्टि पद्धति ।), सनातनधर्म प्रश्नोत्तरावली द्वितीय भाग ।) प्रथम भाग ~), आश्वमेधिकमंत्र

मीमाँसा ≠), सत्यार्थप्रकाश समीक्षा ≠), पंचकन्या चरित्र ≠), नरमेधयज्ञ मीमांसा)॥, नित्य हवन विधि)॥, कातीय तर्पण विधि)।,

अखिलानन्द कृत पुस्तकें ।

काव्यका अनूठा और सनातन धर्म का ज्ञान कर वाने में अनोखा 'सनातन धर्म विजय महाकाव्य मूल्य ४) डाकव्यय आठ आना ।

हिन्दु मासिक पत्र ।

हमारे यहां से हिन्दु नामका एक मासिक पत्र निकलता है। आर्य्य समाज और सुधारकों का जोरदार, रसीला और मीठा खण्डन करने में जैसा यह पत्र है ऐसा अभीतक भारत वर्ष में दूसरा पत्र नहीं है इस पत्र में निकले हुये लेखों पर किसी आर्यसमाजी और सुधारक की लेखनी नहीं उठती,इसपत्रसे सुधारक,और आर्यसमाजी दोनों ही घबराते हैं, इस पत्र के पढ़ने वालोंकोसनातनधर्म केगूढ़रहस्य और आर्य समाज की निःसारता एवं उसके खोखले सिद्धान्त तथा सुधारकों की चालबाजियां और नास्तिकता, धर्म के साथ इनकी शत्रुता आदि समस्त करतूतें मालूम हो जाती हैं, प्रत्येक सनातन धर्मी गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि इसका ग्राहक वनें और इस पत्र को सुन कर कोई भी वालक फिर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से नास्तिक नहीं बन सकता वार्षिक मूल्य १॥)

नोट—एक रुपये से कम का वी० पी० नहीं भेजा जायेगा ।

समस्त पुस्तकें और हिन्दु के मिलने का पता

पं० कामताप्रसाद दीक्षित मैनेजर हिन्दु

तार का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित अमरौधा

तार घर Pukhrayan

* हिन्दु *

सनातनधर्म की दशा दिनों दिन शोचनीय होती जा रही है किन्तु इतने पर भी सनातनधर्मी जगत् घोर निद्रा में खर्राटे लगा रहा है इसको यह खबर नहीं है कि संसार में क्या हो रहा है और इस समय मेरा कर्तव्य क्या है सनातनधर्मियों का विशेष भाग ऐसा है जिसको सुधारक अखबार तो पढ़ने को मिलते हैं किन्तु सनातनधर्मी पत्र कभी उनके नेत्रों के सामने भी नहीं आते इस कारण सनातनधर्म की रक्षा और विधर्मियों के दुर्ग मर्दन करने के लिये हमारे यहां से 'हिन्दु' नाम का एक मासिक पत्र निकाला गया है। आर्यसमाज और सुधारकों का जोरदार, रसीला और मीठा खण्डन करने में जैसा यह पत्र है ऐसा अभी तक भारतवर्ष में दूसरा पत्र नहीं है इस पत्र में निकले हुये लेखों पर किसी आर्यसमाजी और सुधारक की लेखनी नहीं उठती, इस पत्र से सुधारक, और आर्यसमाजी दोनों ही घबराते हैं, इस पत्र के पढ़ने वालों को सनातनधर्म के गूढ़रहस्य और आर्यसमाज की निःसारता एवं उसके खोखले सिद्धान्त तथा सुधारकों की चालबाजियां और नास्तिकता, धर्म के साथ इनकी शत्रुता आदि समस्त करतूतें मालूम हो जाती हैं, प्रत्येक सनातनधर्मी गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि इसका ग्राहक बनें, और इस पत्र को सुन कर कोई भी बालक फिर अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से नास्तिक नहीं बन सकता। वार्षिक मूल्य १॥)

हिन्दु के मिलने का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित मैनेजर हिन्दु।

मु॰ पो॰ अमरौधा जि॰ कानपुर।